द्वितीय खण्ड

तृतीय विभाग

सवैया (सुन्दर विलास) ३८१-६६२

(इति सवैया के अंगों की सूची)।

चतुर्थ विभाग

साखी ६६३-८१८

(इति साखी के अंगों की सूची)।

पाँचवाँ विभाग

पद (भजन) ८१९-९३८

(इति पदों की सूची)।

छठा विभाग

फुटकर काव्य संग्रह

(इति फुटकर काव्य-संग्रह की सूची ।)

सवैया

(सुन्दर विलास)
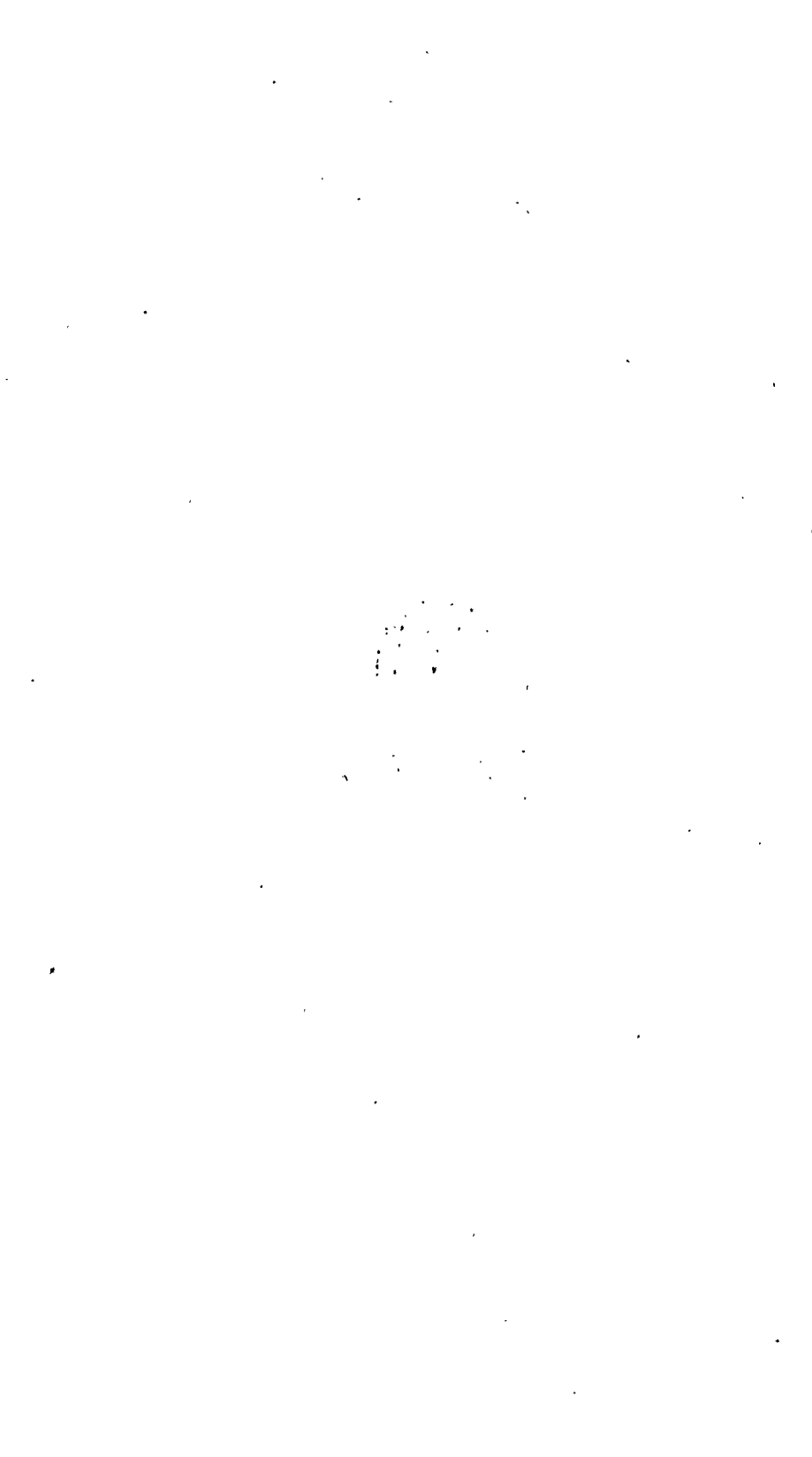
॥ श्री परमात्मने नमः ॥

अथ सवैया (सुन्दरविलास)

॥ अथ गुरुदेव को अंग (१) ॥

इन्दव

मौज करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ कह्यौ हरि नेरौ।
ज्यों रवि कै प्रगट्यें निशि जात सु दूरि कियौ भ्रम भांनि अंधेरौ॥
काइक वाइक मानस हू करि है गुरुदेव हि वंदन मेरौ।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु दादूदयाल कौ हूं नित चेरौ॥ १॥

ॐ ग्रन्थकर्त्ता श्री सुन्दरदासजी ने इस ग्रन्थ का नाम "सवईया" (सवैया) ही रक्खा था ऐसा ही प्रतीत होता है। "सुन्दरविलास" यह नाम पीछे से किसी ने धरा है इस पर और सवैया छन्द पर भूमिका और परिशिष्ट "छन्दतालिका" में विस्तार से लिख दिया है।

इन्दव छन्द—इसका दूसरा नाम मत्तगयन्द है—२३ अक्षर का—७ भगण+२ गुरु—११, १२ पर यति होती है। यह सवैया का प्रधान भेद है। जब आठ भगण= २४ अक्षर हो तो किरीट सवैया कहता है।

(१) मौज (फा०) लहर, आनन्द। हरि नेरो=परमत्मा को अत्यन्त निकट वा पास बता दिया अर्थात् अपने भीतर ही। वा जीव अपना ही ईश्वर है। यह 'तत्वमसि' और 'अहम्ब्रह्मास्मि' के तात्पर्य का द्योतक पद है। भानि अन्धेरौ=भ्रम-रूपी अन्धकार को हटा कर। ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानरूपी अन्धेरा नाश हो जाता है। काइक वाइक=कायिक, दण्डवत, प्रणाम। वाचिक वा वचन द्वारा, स्तुति आदि

पूरण ब्रह्म विचार निरन्तर काम न क्रोध न लोभ न मोहै।
श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राण सु देषि कछू कहुं नैंन न मोहै॥
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण जास गिरा सुनि मोहन मोहै।
सुन्दरदास कहै कर जोरि जु दादूदयाल हि मोर नमो है॥ २॥
धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ आदू।
शील संतोष क्षमा जिनकैं घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू॥
भेष न पक्ष निरन्तर लक्ष जु और नहीं कछु बाद बिवादू।
ये सब लक्षन हैं जिन मांहिं सु सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ३॥
भौ जल मैं वहि जात हुते जिनि काढि लिये अपने करि आदू।
और संदेह मिटाइ दियौ सब काननि टेरि सुनाइ कै नादू॥
पूरण ब्रह्म प्रकाश कियौ पुनि छूटि गयौ यह वाद विवादू।
ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ४॥

उच्चारण से। मानस=मन से वा अन्तःकरण में विचार द्वारा भावना से। वन्दन=प्रणाम। नित चेरौ=सदा सर्वदा ऐसे परम दयालु सच्चे गुरु का शिष्य रहना सौभाग्य है। सदा दास।

(२) मोहै=मोह (मोहादिक उनमें नहीं है)। नैंन न मोहै=श्रोत्रादि इन्द्रियों के विषय उनको मोहित नहीं कर सकते। जितेन्द्रिय। मोहन मोहै=अत्यन्त मनोहर मन को लुभानेवाली, वा मोह भी नीचा वा लज्जित हो जाता है, मोहादिक उस वाणी से नहीं रहते। नमो=नमस्कार।

(३) आदू=सनातन। अनाहद नादू=अनाहत नाद (योगवृत्ति में—ॐकार स्वयम्भू शब्द। विना आहत वा टक्कर के स्वयम् ही जो शब्द अन्दर आत्मा में होता है। यह योगीगम्य है।

(४) अपने करि आदू=अपने निज के कर लिये। गुरु ने शिष्य को साधन और उपदेश द्वारा आप जैसा आदू=ठेठ वैसा ही, कर लिया। 'कीया आप समान'। वाद विवादू=द्वैतभाव, तर्कना, ऊहापोह।

कोउक गोरष कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कवीर कोउ राषत नादू॥
कोउ कहै हरदास हमारै जु यौं करि ठानत वाद विवादू।
और तौ संत सवै सिर ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ५॥
कोउ विभूति जटा नख धारि कहैं यह भेष हमारौ हि आदू।
कोउक कांन फराइ फिरै पुनि कोउक सींग वजावत नादू॥
कोउक केश लुचाइ करै व्रत कोउक जंगम कै शिव वादू।
ये सब भूलि परै जित ही तित सुन्दर कै उर है गुरु दादू॥ ६॥
जोगि कहैं गुरु जैन कहैं गुरु वोध कहैं गुरु जंगम मांनैं।
भक्त कहैं गुरु न्यासी कहैं वनवासि कहैं गुरु और वषानैं॥
शेष कहै गुरु सोफि कहैं गुरु याही तैं सुन्दर होत हरानै।
वाहु कहैं गुरु वाहु कहैं गुरु है गुरु सोइ सवै भ्रम भानैं॥ ७॥
सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी।
इंद्रिय देह मृषा करि जानत शीतलता समता उर धारी॥
व्यापक ब्रह्म विचार अखंडित द्वैत उपाधि सवै जिनि टारी।
शब्द सुनाइ संदेह मिटावत "सुंदर वा गुरु की वलिहारी"॥ ८॥

---

(५) दत्त=दत्तात्रेय महामुनि। दिगम्वर=नग्न, नाथ। कंथर=महायोगी नवनाथों में से। भरथर=भर्तृहरि मत्स्येन्द्र का शिष्य। हरदास=हरिदास निरंजनी।

(६) कांन फराई=कानीफ के सम्प्रदाय में मुद्रा कानों में धारनेवाले योगी। केश लुचाइ=केश लुञ्चन जैन साधुओं में होता है। जङ्गम=योगियों की एक शाखा जो स्थिर नहीं रहते, भ्रमते हैं।

(७) वोध=वौद्ध लोग। न्यासी=संन्यासी, वा न्यास ध्यान करनेवाले। सोफि=सूफी, मुसलमानों में भक्ति मिश्रित वेदान्ती।

(८) मृषा=असत्य, मिथ्या। शीतलता=शीतव्रत, धैर्यमय शान्ति। अक्रोधता। समता=सब को समान जानना। समदर्शीपना। व्यापक=सर्व में अन्त-

पूरण ब्रह्म बताइ दियौ जिनि एक अखण्डित व्यापक सारै।
रागरु दोष करें अब कौन सौं जोइ है मूल सोई सब डारै॥
संशय शोक मिट्यौ मन कौ सब तत्व विचार कह्यौ निरधारै।
सुंदर शुद्ध किये मल धोइ "सुहै गुरु कौ उर ध्यान हमारै"॥ ९ ॥
ज्यौं कपरा दरजी गहि ब्यौंतत काष्ट हि कौं बढई कसि आनैं।
कंचन कौं जु सुनार कसै पुनि लोह कौ घाट लुहार हि जानैं॥
पाहन कौं कसि लेत सिलावट पात्र कुम्हार कै हाथ निपानैं।
तैसेंहिं शिष्य कसै गुरुदेव जु "सुंदरदास तबै मन मानैं"॥ १० ॥

मनहर

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकै सब है समान
देह कौ ममत्व छाडें आतमा ही राम हैं।
और ऊ उपाधि जाकै कबहू न देपियत
सुखके समुद्र में रहत आठौं जाम हैं॥
ऋद्धि अरु सिद्धि जाकै हाथ जोरि आगे परी
सुंदर कहत ताकै सब ही गुलाम हैं।
अधिक प्रशंसा हम कैसैं करि कहि सकैं
"ऐसे गुरुदेव कौं हमारे जु प्रनाम हैं"॥ ११ ॥

र्यामी। अखण्डित=अखण्ड, पूर्ण, एकरस। द्वैत उपाधि=माया को सत्य मानना तथा जीव ब्रह्म को भिन्न स्वतन्त्र मानना द्वैत कहाता है। माया को मिथ्या मानना और जीव ब्रह्म को एक मानना अद्वैत कहाता है।

(९) संशय=सन्देह। जीव ब्रह्म है, वा भिन्न है, ईश्वर से माया उत्पन्न है वा स्वतन्त्र ? ऐसे सन्देह। शोक=फिक्र करना कि जीव की कैसे मोक्ष होगी। दुःख की निवृत्ति क्यों कर हो सकै इत्यादि। मल=पाप, मल, विक्षेप, आवरण।

(१०) कसैं=कसोटी पर लगा कर जांचै वा ताव देकर साफ करै। निपानैं=घड़ा जाय, बनैं।

ज्ञान कौ प्रकाश जाकै अंधकार भयौ नाश
देह अभिमान जिनि तज्यौ जानि सार धी।
सोई सुख सागर उजागर वैरागर ज्यौं
जाकै वैन सुनत विलात है विकार धी॥
अगम अगाध अति कोऊ नहिं जानै गति
आतमा कौ अनुभव अधिक अपार धी।
ऐसौ गुरुदेव वंदनीक तिहुं लोक मांहिं
सुंदर विराजमान शोभत उदार धी॥ १२॥

काहू सौं न रोष तोष काहू सौं न राग दोष
काहू सौं न वैरभाव काहू की न घात है।
काहू सौं न वकवाद काहू सौं नहीं विषाद
काहू सौं न संग न तौ कोउ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट वैन काहू सौं न लैन दैन
ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है।
सुन्दर कहत सोई ईशनि कौ महाईश
"सोई गुरुदेव जाकै दूसरी न वात है"॥ १३॥

---

(१२) सारधी=सारग्राही बुद्धि द्वारा। विवेक वल से। वैरागर=हीरा। हीरा मणि के समान उजागर=शुद्ध कान्तिधारी और प्रशस्त वहुमूल्य। विलात=मिट जाय। विकार धी=कलुषता की वुद्धि, कुत्सित वुद्धि।

मनहर छन्द=इसको कवित्त वा घनाक्षरी भी कहते हैं। ३१ अक्षर का, १६+१५ पर विराम, अन्त में एक गुरु। ('सवैया' नाम के ग्रन्थ में यह छन्द आया सो कोई दोष नहीं क्योंकि ग्रन्थ में इन्दव से प्रारम्भ और उस ही सवैया की प्रधानता है। (देखिये भूमिका सवैया प्रकरण) (तथा परिशिष्ट "सवैया छन्द"।)

(१२) वन्दनीक=वन्दनीय, सेवायोग्य। उदार धी=सव पर कृपा की दृष्टि से सव पर परोपकार करने की वुद्धिवाला।

(१३) घात=हानि पहुंचानेकी दाव-घात, वैरभाव। विषाद=क्लेश, मन का खिंचाव।

लोह कौ ज्यौं पारस पषान हूं पलटि लेत
कंचन छुवत होइ जग मैं प्रवांनियें।
द्रुम कौं ज्यौं चन्दन हूं पलटि लगाइ वास
आपुके समान ताके शीतलता आनियें॥
कीट कौं ज्यौं भृङ्ग हू पलटि कै करत भृङ्ग
सोउ उडि जाइ ताकौ अचिरज मांनियें।
सुन्दर कहत यह सगरै प्रसिद्ध वात
"सद्य शिष्य पलटै सु सत्य गुरु जानिये" ॥ १४ ॥

गुरु विन ज्ञान नाहिं गुरु विन ध्यान नांहि
गुरु विन आतमा विचार न लहतु है।
गुरु विन प्रेम नांहि गुरु विन प्रीति नांहि
गुरु विन शील हू संतोष न गहतु है॥
गुरु विन प्यास नांहि वुद्धि कौ प्रकाश नांहि
भ्रम हू कौ नाश नांहि संशय रहतु है।
गुरु विन वाट नांहि कौडा विन हाट नांहि
सुंदर प्रगट लोक वेद यौं कहतु है ॥ १५ ॥

---

(१४) पषान=पाषान, पत्थर। पलटि लेत=वदल कर सोना वना देता है। द्रुम=वृक्ष। भृङ्ग=कुम्हारी भौंरा जिसका ऐसा विश्वास है कि शब्द गुंजार से लटका भौंरा वनाता है। परन्तु यह वात मिथ्या है यह तो अण्डा गुझाले में रख कर लट को उसमें घुसा कर मुंह वन्द कर देती है अण्डा पक कर फूट कर वच्चा निकल कर उस लट को खा-पी कर मिट्टी की पापड़ी को सिर से फोड़ कर वाहर निकल आता है।

(१५) वाट=रस्ता, मार्ग। कौडा विन हाट=न्यांणा पास हुये विना दुकानदारी चल नहीं सकती, वैसे ही सच्चे ज्ञानोपदेश देनेवाले गुरु विना मुक्ति नहीं हो सकती है। यह मुहाविरा है। "आचार्यवान् भव" (श्रुति)—"गुरुर्ब्रह्मागुरुर्विष्णुर्गुरुर्देव महेश्वरः"—इत्यादि सहस्रों वचन हैं।

पढे के न वैठो पास आषिर न बांचि सकै
बिन हिं पढे तें कैसैं आवत है फारसी ।
जौंहरी के मिलै बिन परष न जानैं कोइ
हाथ नग लियें फिरै संशै नहिं टारसी ॥
वैद्यऊ मिल्यौ न कोऊ बूंटी कौं बताइ देत
भेद बिनु पाये वाकै औषध है छारसी ।
सुंदर कहत मुख रंच हूं न देष्यौ जाइ
"गुरु बिन ज्ञान ज्यौं अंधेरै मांहिं आरसी" ॥ १६ ॥

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा कौं ग्रहै
गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये ।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढै
गुरु के प्रसाद राम नाम गुन गाइये ॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जानैं
गुरु के प्रसाद शून्य मैं समाधि लाइये ।
सुन्दर कहत गुरुदेव जौ कृपाल होंहिं
तिन के प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाइये ॥ १७ ॥

---

(१६) वैठौ=वैठा । पास वैठना=संगति करना । अषिर=अक्षर । अक्षर बांचना=पढ़ना । फारसी आवतन=फारसी भाषा प्राप्त नहीं हो सकती । अर्थात् अनजान पदार्थ का ज्ञान गुरु के बताने से ही आ सकता है । टारसी=कोई पुरुष (सन्देह) को नहीं मिटावैगा । बूंटी=औषधि । छार सी=मिट्टी सी । वृथा । 'अन्धेरे में आरसी'—कितना उत्तम उदाहरण है । वही ज्ञान सार्थक और सिद्ध-शुद्ध है जो गुरु द्वारा मिलै । गुरु प्रकाश के समान है । ज्ञान दर्पण समान है ।

(१७) प्रसाद=प्रसन्नता, कृपा । प्रेम प्रीति=भक्ति । युगति=युक्ति, साधन विधि । तिनके प्रसाद...—प्रसन्न हुए गुरु से—'जो' का सम्बन्ध 'तिनके' से है, और इसका अर्थ तो भी हो सकेगा ।

बूडत भौ सागर मैं आइकैं बंधावै धीर
पारऊ लंघाइ देत नाव कौं ज्यौं पेवसौ।
पर उपकारी सब जीवनि के सारै काज
कबहूं न आवै जाके गुननि कौ छेव सौ॥
वचन सुनाइ भय भ्रम सब दूर करै
सुंदर दिपाइ देत अलष अभेव सौ।
औरऊ सनेही हम नीकै करि देषै सोधि
"जग मैं न कोऊ हितकारी गुरुदेव सौ"॥ १८॥

गुरु तात गुरु मात गुरु बंधु निज गात
गुरुदेव नख शिख सकल संवार्यौ है।
गुरु दिये दिव्य नैन गुरु दिये मुख बैन
गुरुदेव श्रवन दे शब्द हू उच्चार्यौ है॥
गुरु दिये हाथ पांव गुरु दियौ शीस भाव
गुरुदेव पिंड मांहि प्रान आइ डार्यौ है।
सुंदर कहत गुरुदेव जू कृपाल होइ
फेरि घाट घरि करि मोहि निसतार्यौ है॥ १९॥

कोऊ देत पुत्र धन कोऊ दल बल घन
कोऊ देत राज साज देव ऋषि मुन्यौ है।

---

(१८) लंघाइ=तिरादे, पार उतार दें। पेवसौ=केवट की तरह। छेव=अन्त। भय=संसार का। भ्रम=संशय, अज्ञान। अलष=ईश्वर जो बुद्धि वा इन्द्रियों से जाना नहीं जाय। अभेव=अभेद। अखण्ड। वा वेपता, जिसका भेद न जाना जा सके, गुह्य, गुप्त। (अनन्य अक्षर कवि का "अभेद एकादशा" इसकी व्याख्या करता है)।

(१९) नख शिख संवार्यौ=इस मानव देह को सुफल कर दिया। दिव्यनैन=अज्ञान की धुन्ध मिट कर ज्ञान का प्रकाश होने से दिव्यदृष्टि हो गया। श्रवन दे=उपदेश के मर्म को समझने की आन्तरिक बुद्धि वा शक्ति देकर।

कोऊ देत जस मांन कोऊ देत रस आन
कोऊ देत विद्या ज्ञान जगत मैं गुन्यौ है ॥
कोऊ देत ऋद्धि सिद्धि कोऊ देत नव निद्धि
कोऊ देत और कछु तातैं शीस धुन्यौ है ।
सुन्दर कहत एक दियौ जिनि राम नाम
गुरु सौ उदार कोउ देष्यौ है न सुन्यौ है ॥ २० ॥

भूमि हू की रेनु की तौ संख्या कोऊ कहत हैं
भार हू अठारा द्रुम तिन के जो पात हैं ।
मेघनि की संख्या सोऊ ऋषिनि कही विचारि
वूंदनि की संख्या तेऊ आइ कैं विलात है ॥
तारनि की संख्या सोऊ कही है पुरान मांहि
रोमनि की संख्या पुनि जितनेक गात है ।
सुन्दर जहां लौं जंत सब ही कौ होइ अन्त
"गुरु के अनंत गुन कापै कहे जात हैं" ॥ २१ ॥

---

(१९) हाथ पांव=ज्ञान के उच्च लोक में चढ़ने की शक्ति दी और सामग्री प्रदान की। शीस भाव=मस्तिष्क में ईश्वर की भावना धारने की शक्ति दी। पिंड मांहि प्राण=गुरु के उपदेश से पूर्व अन्यथा ज्ञान के कारण मानो यह शरीर वा अतःकरण निर्जीव ही था। सत्यज्ञान के संचार से सजीव सा हो उठा। फेरि घाट घरि करि=इस देह (वा अन्तःकरणादि के ग्राम) को मानों फिर से बना कर सुडोल और योग्य बनाया, जैसे द्विजों में द्विजन्मा बनाने का वैदिक विधान है उस ही प्रकार दीक्षा देकर। निस्तार्यो=मोक्षमार्गी बना कर संसार से तार दिया।

(२०) घन=घना, बहुत। मुन्यौ=मुनिगण। आन=आतङ्क, प्रभाव। गुन्यौ है= गुना गया, क्रिया द्वारा सिद्ध हुआ, गुणगण। शीस धुन्यौ=सिर हिलाया, अफसोस करना (कि गुरु होकर यह क्या हुआ)। रामनाम=परमात्मा का नाम जिससे बढ़ कर और कोई पदार्थ उभय लोक में नहीं। (२१) आइके विलाव=आकाश से पड़ कर नष्ट हो जाती हैं तो भी बुद्धिमानों ने इनकी गणना कर ली है।

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं
गुरु उपदेशे सुतौ छूटै जम फंदतें।
गोविन्द के किये जीव बस परे कर्मनि कैं
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें॥
गोविंद के किये जीव बूडत भौसागर मैं
सुन्दर कहत गुरु काढे दुख द्वंद तें।
और ऊ कहां लौं कछु मुख तें कहैं बनाइ
"गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द तें"॥ २२॥

चिंतामनि पारस कलपतरु कामधेनु
और ऊ अनेक निधि वारि वारि नांपिये।
जोई कछु देपिये सु सकल विनाशवंत
बुद्धि मैं विचार करि वहु अभिलापिये॥
तातें अब मन वच क्रम करि कर जोरि
सुन्दर कहत सीस मेलि दीन भापिये।
बहुत प्रकार तीनौं लोक सब सोधे हम
"ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगैं रापिये"॥ २३॥

---

(२२) अधिक गोविन्द तें="गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागों पाइ। बलिहारी गुरुदेव की सतगुर दिया मिलाइ।"—सुन्दरदासजी ने गुरु की महिमा गोविन्द से भी बढ़ा दी है।

(२३) बहु अभिलापिये=यह उत्कृष्ट लालसा करें कि गुरु के लायक भेंट करने को कोई पदार्थ मिलें। रापिये=धरिये, अर्पण कीजे।

(२४) दासभाव=भक्ति के अनेक भावों में से प्रभु के चरणों का चाकर (हनुमानजी की तरह) बना रहना दृढ़ता से। तैसे=उनके समान। अर्थात् प्रसिद्ध भगवद्भक्तों के समान बड़े पहुंचवान महात्मा।

महादेव वामदेव ऋषभ कपिलदेव
व्यासदेव शुक हू जैदेव नामदेव जू।
रामानन्द सुपानन्द कहिये अनंतानन्द
सुरसुरानन्द हू के आनन्द अछेव जू॥
रैदास कबीरदास सोझादास पीपादास
धनादास हू के दासभाव ही की टेव जू।
सुन्दर सकल संत प्रगट जगत मांहि
तैसैं गुरु दादूदास लागे हरि सेव जू॥ २४॥

गुरुदेव सर्वोपरि अधिक विराजमान
गुरुदेव सब ही तें अधिक गरिष्ट हैं।
गुरुदेव दत्तात्रय नारद शुकादि मुनि
गुरुदेव ज्ञान घन प्रगट वशिष्ट हैं॥
गुरुदेव परम आनन्दमय देपियत
गुरुदेव वर वरियान हूं वरिष्ट हैं।
सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे सिर इष्ट है॥ २५॥

योगी जैन जंगम संन्यासी वनवासी बौध
और कोऊ भेष पक्ष सब भ्रम भान्यौं है।

---

(२५) वरिष्ट=(जैसे गुरु, गरियान, गरिष्ट वैसे) अत्यन्त श्रेष्ठ।

(२६) भ्रम भान्यों=उन मतों में जो भ्रम वा असत्य बातें थी उनको मिटा दिया। तत=तत्व, तथ्य, वास्तविक पना। ऋपिसुर...—मूल.पुस्तकमें ऋपिसुर, मुनिसुर, कविसुर, पाठ है। परन्तु लय' और शुद्धताके कारण यह पाठ किया गया है। यद्यपि छंद उसही पाठ से ठीक था—"तापस ऋ—पिसुरमु—निसुर क—विसुर ऊ" ॥ छंद-भंग दोनों ही तरह नहीं है, कि अक्षर वे ही १६ वर्न रहते हैं। शुद्ध शब्द हैं—ऋपीश्वर, मुनीश्वर, कवीश्वर,। ऊ=भी (जैसे 'तेऊ' में)

तापस ऋषीसुर मुनीसुर कवीसुर ऊ
सवनि कौ मत देषि तत पहिचान्यौं है ॥
वेदसार तंत्रसार स्मृतिरु पुरान सार
ग्रन्थनि कौ सार सोई ह्रदै मांहि आन्यौं है ।
सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ
ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौं है ॥ २६ ॥
जीते हैं जु काम क्रोध लोभ मोह दूरि किये
और सब गुननि कौ मद जिन भान्यौं है ।
उपजै न कोउ ताप शीतल सुभाव जाकौ
सब ही में समता संतोष उर आन्यौं है ॥
काहू सौं न राग दोष देत सब ही कौं पोष
जीवत ही पायौ मोष एक ब्रह्म जान्यौं है ।

---

(२६)...—वेदसार=वेदोंका सार, वेदांत (उपनिषद आदि)। तंत्रशास्त्रों का सार-तंत्र=आत्मवल की वृद्धि और मंत्र द्वारा अनुष्ठान से व्यवहारिक और पारमार्थिक सिद्धि की प्राप्ति का विधान। स्मृति=धर्मशास्त्र, व्यवहारिक और परमार्थिक कर्म्मों की विधियोंका ऋषियों द्वारा प्रतिपादन किया विधान संग्रह। पुराण=पांच लक्षणों वाला सृष्टि आदि का वर्णन व प्राचीन कथाओं का अनुक्रम इत्यादि का संग्रह। ग्रंथनि=अन्य ग्रन्थ अन्य विद्याओं के (षट्शास्त्र, साहित्य, व्याकरण, कोष, काव्य इत्यादि शिल्प आदि के)।—एक आत्मा के अपरोक्ष, अनुभव से दिव्य दृष्टि हो जाती है तव सव जगत् और विद्याएं हस्तामलक हो जाती है। इस ही को "अनुभव फुरना" कहते हैं। यही सिद्धि कहाती है जिससे वड़े २ चमत्कार प्रगट हो जाते हैं। आत्मा का वड़ा भारी लोक, आत्मा की वड़ी भारी ताकत और आत्मा का वड़ा-भारी खजाना है। वह अपार और अटूट है।

सुन्दर कहत कछु महिमा कही न जाइ

ऐसौ गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौं है ॥ २७ ॥

॥ इति उपदेश गुरुदेवको अंग ॥ १ ॥

॥ अथ उपदेश चितावनी को अंग (२) ॥

हंसाल छन्द

(राम हरि राम हरि बोल सूवा)।

तौ सही चतुर तू जान परवीन अति परै जिनि पंजरै मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन गाइ गोविंद गुन जीति जूवा॥
आपु ही आपु अज्ञान नलनी वंध्यौ विना प्रभु विमुख कै वार मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै "राम हरि राम हरि बोलि सूवा" ॥१॥
नफ्स सैतान कौं आपुनी कैद करि क्यां दुनी मैं परया पाइ गोता।
है गुनहगार भी गुनह हीं करत है पाइगा मार तव फिरै रोता॥
जिनि तुझै पाक सौं अजव पैदा किया तूं उसै क्यौं फरामोस होता।
दास सुन्दर कहै सरम तवही रहै "हक तूं हक तूं बोलि तोता" ॥ २ ॥
आवकी बुन्द औजूद पैदा किया नैंन मुख नासिका करि संजूती।
ख्याल ऐसा करै उही लीये फिरै जागिकैं देषि क्या करै सूती॥

---

(२७) मंद भान्यौ—जो गुणों का मिथ्या अभिमान करते थे उनका गर्व गंजन किया। जीवतही पायो मोप=जीवन्मुक्त हो गये। दादूजी और उनके शिष्यों का जीवन्मुक्ति का सिद्धांत था।

(उपदेश चितावनी) ※ हंसाल छंद—३७ मात्राका छंद जिसमें २० और १७ मात्रा पर विराम हो तथा अंत में यगण (।ऽऽ) हो। इसमें और कड़खा छंद में इतना ही भेद है कि कड़खा में ८, १२; ८,९ पर विराम होता है, (१) पंजरै=पिंजरे में। लाइ लै=पकड़ ले। जीति जूवा माया जाल का जूवा खेलमें जीत-वाले। नलनी=नली जिसको तोता पकड़े रहता है। कै वार मूवा=जन्म मरण पा चुका।

भूलि उस षसम कौं काम तें क्या किया बेगि दै यादि करि मरि निपूती ।
दास सुन्दर कहै सर्व सुख तौ लहै "भी तुही भी तुही बोलि तूती" ॥ ३ ॥
अवल उस्ताद के कदम की पाक हो हिरस बुगुजार सब छोडि फैंना ।
यार दिलदार दिल मांहि तूं याद कर है तुम्झी पास तूं देषि नैंना ॥
जांन का जांन हैं जिंदका जिंद है सपुनका सपुन कछु संमुझि सैंना ।
दास सुन्दर कहै सकल घट मैं रहे "एक तूं एक तूं बोलि मैंना" ॥ ४ ॥

मनहर

कांन के गये तें कहा कांन ऐसौ होत मूढ
नैंन के गये तें कहा नैंन ऐसै पाइहै ।
नासिका गये तें कहा नासिका सुगन्ध लेत
मुख के गये तें कहा मुख ऐसै गाइहै ॥
हाथ के गये तें कहा हाथ ऐसौ काम होत
पांव के गये तें ऐसै पांव कत धाइहै ।
याही तें विचार देषि सुन्दर कहत तोहि
देह के गये तें ऐसी देह नहीं आइहै ॥ ५ ॥

वार वार कह्यौ तोहि सावधांन क्यौं न होहि
ममता की मोट सिर काहे कौं धरतु है ।
मेरौ धन मेरौ धांम मेरे सुत मेरी बांम
मेरे पशु मेरो ग्रांम भूलौ यौं फिरतु है ॥

---

(३) बेगि दै=शीघ्र ।

(४) हिरस बुगुजार=कामना को छोड दे (फा०) । फैंना । छल कपट । तुम्झी पास=तेरे अंदरही । नैंना=ज्ञान चक्षु से । जान का जान=जीव का भी परम तत्व जीव-परमात्मा । जिंदका जिंद=जीवन का भी आदि कारण-परात्पर । सखुन का सखुन=सर्व उपदेशों का आदि कारण-महावाक्यों का परम तत्व । सैंना=गुरु की समझौती, इशारा । आत्मा के बारीक मर्म और रम्ज का भेद समझने के लिये प्रवचन

तूं तौ भयौ बावरौ विकाइ गई बुद्धि तेरी
ऐसौ अन्धकूप गृह तामैं तू परतु है।
सुन्दर कहत तोहि नैंक हूं न आवै लाज
काज कौ विगारि कैं अकाज क्यौं करतु है॥ ६॥

तेरैं तौ कुपेच पर्‌यौ गांठि अति घुरि गई
ब्रह्मा आइ छोरै क्यौं ही छूटत न जवहू।
तेल सौं भिजोइ करि चीथरा लपेट राषै
कूकर की पूंछ सूधी होइ नहीं तवहू॥
सासू देत सीष वहू कीरी कौं गनत जाइ
कहत कहत दिन वीत गयौ सवहू।
सुन्दर अज्ञान ऐसौ छाड्यौ नहिं अभिमान
निकसत प्रान लग चेत्यौ नहिं कवहू॥ ७॥

वालू मांहि तेल नहिं निकसत काहू विधि
पाथर न भीजै वहु वरषत घन है।
पानी के मथे तें कहुं घीव नहिं पाइयत
कूकस के कूटे नहिं निकसत कन है॥
शून्य कूं मूठी भरे तें हाथ न परत कछु
ऊसर के वाहें कहा उपजत अन है।

और विवाह की आवश्यकता नहीं। कहने सुनने से क्या प्रयोजन। वहां तो ज्ञान का इशारा गुरु का आत्मा से शिष्य की आत्मा में ज्ञान संचार कर देता है। सोवा, तोता, तूती और मैना यह प्यारा जीव है जो काया पिंजरे में रहता है।

(६) विकाइ गई बुद्धि=विषयादि हीन-मूल्य पदार्थों में यह बुद्धि-हीरा वृथा खोया गया।

(७) कीरी कौं गनत=कीड़ी समान मानैं। निरादर करैं।

उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि
सुन्दर असाध्य रोग भयौ जाकै मन है ॥ ८ ॥

वैरी घर मांहि तेरे जानत सनेही मेरे
दारा सुत वित्त तेरौ पोसि पोसि पाहिंगे।
और ऊ कुटंव लोग लूटैं चहुं वोरही तें
मीठी मीठी वात कहि तोसौं लपटाहिंगे॥
संकट परैगौ जव कोऊ नहिं तेरौ तव
अतिहि कठिन वांकी वेर वुटि जाहिंगे।
सुन्दर कहत तातैं झूठौ ही प्रपंच यह
सुपनै की नाहिं सव देषत विलाहिंगे॥ ९ ॥

वारू कै मंदिर मांहिं वैठि रह्यौ थिर होइ
राषत है जीवने की आसा कैऊ दिन की।
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी
विनसत वार कहा षवरि न छिन की॥
करत उपाइ झूंठे लैन दैन पांन पांन
मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी।
सुन्दर कहत मेरी मेरी करि भूलौ शठ
"चञ्चल चपल माया भई किन किन की" ॥ १० ॥

---

(८) कूकस=थोथा घास। ऊसर=नहीं उपजाऊ भूमि। मन का पाठांतर 'तन' भी है। परंतु मन शब्द से अर्थ का गौरव होता है।

(९) सनेही=प्रेम करने वाले, मित्र। जानत=तू यह जानता है कि ये (मेरे सनेही हैं ?) कठिन वांकी वेर वुटि=संकट और टेढे मेढे अवसर आने पर पूठ फेर जांयगे। पाठांतर "कठिनता की वेर उठि"।

(१०) मिनकी=विल्ली (काल, मृत्यु)। मूसा=चूहा (जीवात्मा, शरीरधारी प्राणी)। भई किन किन की=किसी की भी नहीं हुई।

श्रवनूं लै जाइ करि नाद की लै डारै पासि
नैंनवा लै जाइ करि रूप वसि कर्‌यौ है।
नथुवा लै जाइ करि बहुत सुंघावै फूल
रसनूं लैजाइ करि स्वाद मन हर्‌यौ है॥
चरनूं लै जाइ करि नारी सौं सपर्श करै
सुन्दर कोउक साध ठगनि तें डर्‌यौ है।
कांम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग
"ठगनि की नगरी मैं जीव आइ पर्‌यौ है"॥ ११॥

पायौ है मनुष देह औसर बन्यौ है आइ
ऐसौ देह वार वार कहौ कहां पाइये।
भूलत है वावरे तूं अवकै सयानौ होइ
रतन अमोल यह काहे कौं ठगाइये॥
संमुझि विचार करि ठगनि कौ संग त्यागि
ठगावाजी देष कहुं मन न डुलाइये।
सुन्दर कहत तोहि अव सावधान होइ
"हरि को भजन करि हरि मैं समाइये"॥ १२॥

घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन
भीजत ही गरि जात माटी कौ सौ ढेल है।
मुक्ति हुं कै द्वारै आइ सावधान क्यौं न होहि
वार वार चढत न त्रिया कौ सौ तेल है॥
करि लै सुकृत हरि भजन अखंड उर
याही मैं अंतर परै या मैं ब्रह्म मेल है।

---

(११) श्रवनूं=कान (इंद्रिय) ऐसे नाम देकर पुरुषत्वभाव दिया है। नथुवा=नाक। रसनूं=जीभ, कोउक साध=कई विशेष साधनसे सावधान जितेंद्रिय महापुरुष महात्मा।

(१२) ठगावाजो=ठगी, ठग विद्या। सयानौं=सयाना, सावधान समझदार।

मनुष जनम यह जीति भावै हारि अब
सुन्दर कहत यामैं जूवा कौ सौ षेल है ॥ १३ ॥
जोवन कौ गयौ राज और सब भयौ साज
आपुनि दुहाई फेरि दमामौ वजायौ है।
लकुटी हथ्यार लिये नैननि को ढाल दीये
सेत वार भये ताकौ तंबू सौ तनायौ है ॥
दसन गये सु मानौ दरवान दूरि कीये
जौंगरी परी सु औरै विछौना विछायौ है।
सीस कर कंपत सु सुन्दर निकार्‌यौ रिपु
"देषत ही देषत वुढापौ दौरि आयौ है" ॥ १४ ॥

इंदव

षींच तुचा कटि है लटकी कचऊ पलटे अजहूं रत वांमी।
दंत भया मुख के उपरे नपरे न गये सुपरौ पर कांमी ॥

---

(१३) त्रिया को सो तेल हैं=स्त्रीके विवाह में, कुमारी के, तेल जो चढाया जाता है, तब ही चढ़ता है दुवारा नहीं चढ़ता है, वैसे ही नरदेह वार २ नहीं मिलती। "तिरिया तेल हमीर हठ चढै न दूजी वार"। याही में=इस देह ही में-परमात्मा से दूर रह जाय और इस ही में उस की प्राप्ति हो जाय यह कर्म्म, ज्ञानके आधीन हैं।

(१४) गयो राज=दौर खतम हो गया। और सब भयो साज=रंग-ढंग वदल गये, अवस्था और ही हो गई। दमामो वजायो=नक्कारा वजा चुका, जो कुछ करना था कर चुका। ढाल दीये=अंधा हो गया, यही मानों आंखों पर ढकनी ही ढाल हो गई। तंबू सो तनायो हैं=कूंच की मंजिल पर डेरा डाल दिया, चलने की निशानी है। जौंगरी=शरीर की खाल ढीली होकर सिमट गई। विछौना=विश्राम लेने का निशान है, अंत समय की सामग्री है, यह यौवन की समय की सेज नहीं है। निकार्‌यो रिपु=काम क्रोधादि शरीरस्थ महान् रिपुओंने मार पीट कर राज्य छीन कर देश वाहर कर दिया। उनके डरसे कांपता हैं मानों।

कंपति देह सनेह सु दंपति संपति जंपति है निश जांमी।
सुन्दर अंतहु भौंन तज्यौ न भज्यौ भगवंत सु लौन हरांमी ॥१५॥
देह घटी पग भूमि मंडै नहिं औ लठिया पुनि हाथ लईजू।
आंपिहु नाक परै मुख तें जल सीस हलै कटि घींच नईजू॥
ईश्वर कौं कबहूं न संभारत दुःख परै तब आहि दई जू।
सुन्दर तौहु विषै सुख वंछत 'घोरे गये पै बगैं न गई जू' ॥ १६ ॥
पाई अमोलिक देह इहै नर क्यौं न विचार करै दिल अन्दर।
काम हु क्रोध हु लोभ हु मोह हु लूटत हैं दस हूं दिसि द्वन्दर॥
तूं अब वंछत है सुरलोकहि कालहु पाइ परै सु पुरंदर।
छाड़ि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि 'आतम राम भजै किन सुन्दर' ॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मांनत है शठ याहित तें बहुते दुख पावै।
ज्यौं जल मैं झप मांस हि लीलत स्वाद बंध्यौ जल बाहरि आवै॥

---

(१५) घींच=गरदन । तुचा=त्वचा, खाल । कटि=कमर । कच=सिरके बाल । रतवामी=वामरत, स्त्री का प्रेमी । हंत भया=हे भइया—तेरे । दांत अथवा दांत जो जन्म भर वहे, अर्थात् खाते चावते रहे सो । नषरे=नखरे, मिजाजीपन, हाव-भाव नजाकत । सुषरौ=असली, सचमुच, पक्का (खरा) षर=खर, गधा (गधेके समान कामी) दंपति=स्त्री पुरुषों का बुड्ढा हो जाने पर भी प्रेम हैं । जंपति=(धन दौलत का ही) स्मरण करता है , जिक्र होता है । बोलता है । निसजामी=यहां रात दिन, दिन दिन प्रति । अथवा सुखभोग में रात्रि एक (याम) पहर सी बीतती है । लौंन हरामी=नमक हरामी स्वामी-विमुख । ईश्वर को कृतज्ञता न अर्पण करने वाला ।

(१६) नई=झुकी । आहि दई=हाय भगवान ! (पुकारना) बगैं=पशुओं पर एक दुष्ट मक्खी (मुहावरा है) ।

(१७) द्वंद्वर=विषयादिक । परैं सु पुरन्दर=इंद्र भी गिरैं, नाशैं । (इसमें "किरीट" सवैया है) ।

ज्यौं कपि मूंठि न छाड़त है रसना बसि बंदि परयौ बिल्लावै।
सुन्दर क्यों पहिलें न संभारत 'जौ गुर षाइ सु कांन बिंधावै' ॥१८॥
कौंन कुबुद्धि भई घट अंतर तूं अपनौ प्रभु सौं मन चोरै।
भूलि गयौ विषया सुख मैं सठ लालच लागि रह्यौ अति थोरै॥
ज्यौं कोउ कंचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फौरै।
सुन्दर या नर देह अमोलिक 'तीर लगी नवका कत बोरै' ॥ १९ ॥
देषत कै नर सोभित हैं जैसें आहि अनूपम केरि कौ पंभा।
भीतरि तौ कछु सार नहीं पुनि ऊपर छीलक अंबर दंभा॥
बोलत हैं परि नाहिं कछू सुधि ज्यौं बबयारि तें बाजत कुंभा।
रूसि रहैं कपि ज्यौं छिन मांहिं सु याहि तें सुन्दर होत अचंभा ॥२०॥
देषत के नर दीसत हैं परि लक्षन तौ पसुके सब ही हैं।
बोलत चालत पीवत षात सु वै घरि वै बन जात सही हैं॥
प्रात गये रजनी फिरि आवत सुन्दर यौं नित भार वही हैं।
और तौ लक्षन आइ मिलै सब एक कमी सिर शृंग नहीं हैं ॥२१॥
प्रेत भयौ कि पिशाच भयौ कि निशाचर सौ जित ही तित डोलै।
तूं अपनी सुधि भूलि गयौ मुख तैं कछु और की औरई बोलै॥
सोइ उपाइ करै जु मरै पचि बंधन तौ कबहूं नहिं षोलै।
सुन्दर जा तन मैं हरि पावत सो तन नाश कियौ मति भौलै ॥२२॥

---

(१८) गुर=गुड़ (मुहाविरा है)।

(१९) कत=क्यों, किस लिये।

(२०) अंबर दंभा=ढोंग का वेश। बबयारि=मुंहकी फूंक (घड़े में बोलने से।

(२१) भारवही=भार वाहने वाला, पशु। "यथा खरश्चन्दन भारवाही"।

(२२) मरै=अज्ञानवश ऐसे उपाय (काम) करता है जिन से उलटा मरता है—कुगति को पता है। भौलै=भूलकर भी।

पेट तें वाहिर होतहि वालक आइकैं मात पयोधर पीनौं।
मोह वढ्यौ दिन ही दिन और तरुन्न भयौ त्रिय के रस भीनौं ॥
पुत्र पउत्र वंध्यौ परवार सु ऐसि हि भांति गये पन तीनौं।
सुन्दर राम कौ नाम विसारिसु आपुहि आपु कौ वंधन कीनौं ॥२३॥

मात पिता सुत भाई वंध्यौ जुवती के कहें कहा कान करै हैं॥ ।
चौरी करै वटपारी करै किरषी वनजी करि पेट भरै हैं ॥
शीत सहै सिर घांम सहै कहि सुन्दर सो रन मांहि मरै हैं।
वांधि रह्यौ ममता सवसौं नर ताहि तें वांध्यौइ वांध्यौ फिरै हैं ॥२४॥

तूं ठगि के धन और कौ ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सवही जरि जाइ सु तूं दमरी दमरी करि जोरै ॥
हाकिम कौ डर नांहि न सूझत सुन्दर एक हि वार निचौरै।
तूं परचै नहिं आपु न षाइ सु तेरी हि चातुरि तोहि ले वौरे ॥२५॥

मनहर

करत प्रपंच इनि पंचनि के वसि पर्‌यौ।
परदारा रत भै न आनत वुराई कौ।
पर धन हरै पर जीव की करत घात
मद्य मांस षाइ लव लेश न भलाई कौ ॥
होइगो हिसाव तव मुखतें न आवै ज्वाव।
सुन्दर कहत लेषा लेत राई राई कौ ॥

---

(२३) पयोधर=स्तन, वोवा। पीनौं=पीया, पान किया। पन तीनौं=तीन अवस्थाएं-वालपन, जवानी, वुढापा।

(२४) किरषी=कृषी, खेती। वांध्यौं=वंधा हुआ। (ममता, मायाजाल से लिप्त) वंधन में पड़ा है, फंसा हुआ है।

(२५) एकहि वार निचौरै=(हाकिम लोग) मुकद्दमों में वड़ी घूंसें लेकर वटोरे धन को सूंत लेते हैं। डुवोरै=षावै।

इहां तें किये विलास जम को न तोहि त्रास,
उहां तौ न ह्वै है कछु राज पोपांवाई को ॥ २६ ॥
दुनिया कौ दौडता है औरति कौं लोडता है,
औजूद कौ मोडता है वटोही सराइ का।
मुरगी कौं मोसता है बकरी को रोसता है
गरीबौं कौं पोसता है वेमिहर गाइ का॥
जुल्म कौं करता है धनी सौं न डरता है
दोगज कौं भरता है पजाना वलाइ का।
होइगा हिसाव तव आवैगा न ज्वाव कछु
सुन्दर कहत गुन्हैंगार है पुदाइ का ॥ २७ ॥
कर कर आयौ जव पर पर काट्यौ नार
भर भर वाज्यौ ढोल घर घर जान्यौ है।
दर दर दौर्यौ जाइ नर नर आगै दीन
वर वर वकत न नेंक अलसान्यौ है ॥

---

(२६) भैं=भय, डर। उहां=ईश्वर के घर। पोपांवाई=प्रसिद्ध पोलका राज्य "टके सेर भाजी टके सेर खाजा।" 'सव धान वाईस पसेरी'। यह कुम्हार की लड़की खंडेले के राजा के यहां प्रधान हो गई थी सो उसने ऐसा राज्य जमाया और आप ही फांसी लटकी थी।

(२७) लोडता है=लड़ता है या लाड करता है। वटोही=राहगीर मुसाफिर। यह संसार सराय है। थोड़ी देर ठहरने का स्थान है। मोसता है=उसकी गर्दन मरोड़ कर मार डालता है। हिंसा करता हैं। रोसता है=रोस (क्रोध) करके मारता है, जिवह करता है, काटता है,। (यह अप्रशस्त शब्द है) रींथना का रुपान्तर हो सकता है। वेमिहर=निर्दयी (गाय के वास्तै) यह मुसलमानों के प्रति कहा गया है।

सर सर साधै धन तर तर तौरै पात
जर जर काटत अधिक मोद मान्यौ है।
फर फर फूल्यौ फिरै डर डरपै न मूढ
हर हर हंसत न सुन्दर सकान्यौ है ॥ २८ ॥*

जनम सिरानौ जाइ भजन विमुख शठ
काहे कौं भवन कूप बिन मीच मरिहैं।
गहित अविद्या जानि शुक नलिनी ज्यौं मूढ
करम विकरम करत नहिं डरिहै ॥
आपु ही तैं जात अंध नरकनि बार बार
अजहुं न शंक मन मांहिं अब करिहै।
दुःख कौ समूह अवलोकिकैं न त्रास होइ
सुन्दर कहत नर नागपासि परिहै ॥ २९ ॥*

---

*ऐसा चिन्ह जिन छन्दों के अंत में लगा है, वे चित्रकाव्य हैं। देखो चित्रकाव्यों के चित्रों को तथा सूची को।

(२७) दोजग=दोजख, (फारसी) नरक। षजाना बलाइ का=बलाओं (दोषों, पापों) का भंडार बनता है।

(२८) यह चित्रकाव्य है, देखो सूची और चित्रों में। कर कर=पूर्वजन्म के कर्म करके यहां आया, जन्मा। घर घर=खरड़ खरड़ भोंटे ओजार वा फरडे से रगड़ कर। नार=नाल (नाला नाभिका बच्चे का) भर भर=भड़ भड़ शब्द होकर। दर दर=दरवाजे दरवाजे। प्रत्येक मनुष्य के आगे। बर बर=बड़ बड़, बहुत बाचाल। अलसान्यौ=मुरझाया, थका, वा आलस्य किया। सर सरड़=सरड़ सड सूंत कर लावै। वा आहिस्ता होले होले लावै। तर तर=तरु तरु प्रत्येक वृक्ष के, अर्थात् जहां २ मिले वहीं से धन बटोरै। जर जर=जरड़ जरड़ शब्द के साथ। वृक्ष काटै। वा अन्य पुरुषों की जड़ काट अपना स्वार्थ करै। डर डरपै=भय के पदार्थ वा काल से भी। हर हर=हड़ हड़ शब्द से, जोर से।

(२९) यह भी चित्रकाव्य है। सिरानौ=बीता। गहित=गृहीत, पकड़ा

जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम
काम को न तन मन घेरि घेरि मारिये।
झूठ मूठ हठ त्यागि जागि भागि सुनि पुनि
गुनि ज्ञान आंन आंन वारि वारि डारिये॥
गहि ताहि जाहि शेष ईस सीस सुर नर
और बात हेत तात फेरि फेरि जारिये।
सुन्दर दरद पोइ धोइ धोइ बार बार
सार संग रंग अंग हेरि हेरि धारिये॥ ३०॥*
झूठौ जग एन सुन नित्य गुरु वैंन देंपै
आपुने हू नैंन तोऊ अंध रहे ज्वानी मैं।

हुआ। जानि=जान बूझकर, वा तू जान ले। विकरम=विकर्म, बुरे काम। पाप। अज हूं और अब-दोनों शब्द-मिलकर अर्थ का बल बढ़ाते हैं। अर्थात् शीघ्र, अब देर न कर। नागपास=एक प्रकार की तांत्रिक पाश व फंदा जिसमें प्रबल शत्रु को बांध लेते हैं। सुन्दरदासजी ने नागबंध चित्रकाव्य रचा है और नागपाश ही नाम दिया है। यह संसार भी नागपास की तरह भयानक दृढ़ बंधन है, बिना प्रबल उपाय के छूट वा टूट नहीं सकता है।

(३० चित्रकाव्य) जगमग=जगत के मार्ग में। पग तजि=पग धरना, जाना छोड़, अर्थात् संसार त्याग दे। सजि=ऐसी सामग्री कर। तन=शरीर (यदि भजन नहीं हुआ इससे तो) काम का नहीं। घेरि २—जिधर मन ढुले उधर से पकड़ कर लावै। झूठ मूंठ=मिथ्या माया में संसर्ग की धृष्टता मत कर। सुनि=श्रवण कर। गुनि=मनन कर। ज्ञान आन=निदिध्यासन कर। आंन=ज्ञान से अन्य पृथक अज्ञान।

मिथ्या=अविद्या। वारि वारि डारिये=निछावर करके तजिये। गहि=ग्रहण कर। शेष=उन माया और गुण से अविशिष्ट ब्रह्म को जो देव और मनुष्यों का ईश्वर हैं उसे शिर पर धारो। बात हेत=माया में संसर्ग। फेरि २=बारंबार। जारिये=नाश कीजे। मिटा दीजे।

केते राव राजा रंक भये रहे चलि गये,
मिलि गये धूर मांही आये ते कहानी मैं।
सुन्दर कहत अब ताहि न सुरत आवै,
चेतै क्यौं न मूढ चित लाय हिरदानी मैं।
भूले जन दाव जात लोह कौ सौ ताव जात,
आप जात ऐसे जैसैं नाव जात पानी मैं॥ ३१ ॥*

डुमिला

हठ योग धरौ तन जात भिया हरि नाम विना मुख धूरि परै।
शठ सोग हरौ छन गात किया चरि चांम दिना भुष पूरि जरै॥
भठ भोग परौ गन पात धिया अरि काम किना सुख झूरि मरै।
मठ रोग करौ घन घात हिया परि राम तिना दुख दूरि करै॥ ३२ ॥*

इस २ रे अंग में मूल पुस्तक फतहपुरवाली (क) में जो छन्द १२ वां है वही अन्त में दो वारा लिखा हुआ था सो छोड़ दिया गया। और यह ३१ वां छंद उस (क) पुस्तक में इस अंग में नहीं है, इससे लिखा गया।

(३१) एन=खास, तत्वतः वा, जमाना। देषै=अपने स्थूल नेत्रोंसे व्यवहारिक वा चर्म दृष्टि से पदार्थों को देषै तो अज्ञानी ही रहै। हिरदानी=हृदय, मन (हिरदा + दानी) हृदय का स्थान, अंतरात्मा। हरिदानी भी पाठ है। दाव=यह मनुष्य देह निस्तार होनेका मौका वा अवसर है। ताव=ताता लोह ही कूटने से वढ़ता वा वनता है ऐसे ही जवानी वा मनुष्य देह है। नाव=जमीन पर नाव नहीं चल सकती है। आव=आय। आयु वीती जाती है।

३२, ३३—'डुमिला छन्द'=दुर्मिल सवैया-आठ सगण (॥ऽ) का-२४ अक्षर का छंद सवैया का भेद है। (देखो छंद तालिका परिशिष्ट),

(३२)—(चित्रकाव्य)—भिया=हे भाई! अथवा वहता (वीतता) जाता है। 'भया' भी पाठ है। हठ योग के साधन से शरीर नीरोग और मन वश होता

गुरु ज्ञान गहै अति होइ सुखी मन मोह तजै सब काज सरै।
धुर ध्यान रहै पति षोइ मुखी रन लोह बजै तव लाज परै॥
सुरतान उहै हति दोइ रुपी तन छोह सजै अब आज मरै।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी जन वोह रजै जब राज करै॥३३॥ ❊

॥ इति उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ २ ॥

है, परन्तु योग साधन केवल करने से ही काम नहीं चलैगा। भगवान् का भक्तिपूर्वक भजन करो। धूरि परै=किरकिरी होय। तिरस्कार होवे। सठ सोग=हे मूर्ख! अथवा मूर्खों का सा (संसार को) शोक, हरो=निवारण करो। छन=क्षण-क्षण भर। वा क्षणिक, क्षणभंगुर। चरि=चरकर खाकर। वा चरच कर अलंकृत करके, आभूषणों से सज्जित हुआ। चांम=गात्र, चमडे का शरीर भुष=भुक्त, भुगतने पर पूरि=पूरमें, काष्ठादि में, वा पूर्ण, पूरा हो जाने पर। जरै=(अग्नि में) जलै। भठ=भट्टी (भाड़, अग्निकुण्ड)

भोगादिक इस योग्य हैं कि जला दिये जांय तो कोई हानि नहीं। गन=गणना करो, हिसाव लगाओ। पात धिया=बुद्धि द्वारा आत्मा को खा जाते है अर्थात् बिगाड़ते हैं। भोग जिनका समाधान बुद्धि करती है बेजाने बूझे, हमारी आत्मा की बहुत हानि करते हैं। अरि काम किना=शत्रु का सा काम किया। झूरि=बहुत रो २ कर, अर्थात् सुखों और भोगों के लिये जो बहुत लालायित हुये वे अपने शत्रु आपही हुये और यों मरे, नाशको प्राप्त हुये। वे आत्मा-हत्यारे बने। मठ रोग=योगाश्रम में स्थित योग की विडंबना झंझट भलेही करो। घन घात हिया परि=(हिया) मन पर बहुत ताड़ना देकर उसके ऊपर दवाव डालो। (परन्तु) उन विधानों से सिद्धि संदिग्ध है। केवल राम (ब्रह्म) ही संसार के दुःखों को मिटा सकते हैं। अथवा मठ शरीर, हिया,-मन, इन पर भले ही यम नियम व्रत तप आदिका प्रभाव डाल कर सताओ, परन्तु दुःख तो राम ही मिटावैगा।

❊ (३३)—(चित्र काव्य)—गुरु द्वारा सच्चा अद्वैत ज्ञान प्राप्त करके सत्यानन्द में मग्न हो जानेसे मन का संसार मोह मिट जानेसे मोक्ष प्राप्ति कर कार्य सिद्ध होता

॥ ३ ॥ अथ काल चितावनी को अंग

इंदव

मंदिर माल विलाइति हैं गज ऊंट दमामे दिना इक दोहै।
तात हु मात त्रिया सुत बंधव देषि धौं पामर होत बिछोहै॥
झूठ प्रपंच सौं राचि रह्यौ शठ काठ की पूतरि ज्यौं कपि मोहै।
मेरि हि मेरि करै नित सुन्दर आंष लगै कहि कौनको को है॥ १॥
ये मेरे देश विलाइति हैं गज ये मेरे मंदिर या मेरी थाती।
ये मेरे मात पिता पुनि बंधव ये मेरे पूत सु ये मेरे नाती॥
ये मेरि कामिनि केलि करैं नित ये मेरे सेवक हैं दिन राती।
सुन्दर वैसैं हिं छाडि गयौ सव तेल जर्यौ रु बुझी जब बाती॥ २॥

है। और संसार की कल्पित प्रतिष्ठा को त्याग कर भगवत् की ओर सन्मुख होनेवाला स्वामी धर्मपरायण, पुरुष ध्यानावस्थित होकर, इन्द्रिय और विषयादि शत्रुओं से युद्ध करैगा तब ही उस को अपने पन की रक्षा की लाज मनमें आवैगी। वही सुलतान। (बादशाह-सम्राट) है। जो पुरुष प्रतिष्ठा को त्याग देता है और शरीर में शूरता का उत्साह करता है तब लड़ता है और मरने को तयार रहता है—'अबहि मृत्यु किन होई' ऐसा निश्चय दृढ़ रखता है परन्तु युद्ध से नहीं हटता है। तब ही वह 'पुर थान' (परम धाम, परम गति) राजनगर को पाता है, और अपनी बुद्धि के मल-विक्षेप आवरन दोषों को ज्ञान के पवित्र जलसे धोकर (निर्धूत-कल्मष) शुद्ध हो जाता है। ऐसे रजपूती करता है वही राज्य, (अक्षय-साम्राज्य) को पा सकता है।

(काल चितावनी) छन्द (१)—धौं=(देख) तो सही, कि। वा किस तरह, झट ही। पामर=हे पापी जीव। काठ की पूतरि=काठका बना हुआ बंदर—पुतली देख सच्चा बंदर उसको असली मानता है। वैसे इस माया के इन्द्रजाल को सच्चा संसार मान मनुष्य फंसा है। आंष लगे=मरजाने पर।

(२) थाती=धनकी धरोहर गाड़ी हुई। तेल जर्यो=शक्ति घटी, आयु बीती। बाती=वत्ती, शरीर। पल फेरी=एक पलक में पलटा सा जाता है।

तैं दिन च्यारि विराम लियौ सठ तेरे कहैं कछु है गइ तेरी ।
जैसें हि बाप ददा गये छाडि सु तैसें हि तूं तजिहै पल फेरी ॥
मारि है काल चपेटि अचानक होइ घरीक मैं राष की ढेरी ।
सुन्दर लै न चलै कछु संग सु "भूलि कहै नर मेरि हि मेरी" ॥ ३ ॥
कै यह देह जराइ कै छार किया कि किया कि किया कि किया है ।
कै यह देह जिमी मंहिं पोदि दिया कि दिया कि दिया कि दिया है ।
कै यह देह रहै दिन चारि जिया कि जिया कि जिया कि जिया है ।
सुन्दर काल अचानक आइ लिया कि लिया कि लिया कि लिया है ॥ ४ ॥
संत सदा उपदेश बतावत केश सबै सिर सेत भये हैं ।
तूं ममता अजहूं नहिं छाडत मौतिहू आइ संदेश दये है ॥
आज कि काल्हि चलै उठि मूरष तेरे हि देषत केते गये हैं ।
सुन्दर क्यौं नहिं राम संभारत या जग मैं कहि कौन रहे हैं ॥ ५ ॥
देह सनेह न छाडत है नर जानत है सठ है थिर येहा ।
छीजत जाइ घटै दिन ही दिन दीसत है घट कौ नित छेहा ॥
काल अचानक आइ गहै कर ढाहि गिराइ करै तन पेहा ।
सुन्दर जानि यहै निहचै धरि एक निरंजन सौं करि नेहा ॥ ६ ॥
तूं कछु और विचारत है नर तेरौ विचार धर्यौ ई रहैगौ ।
कोटि उपाइ करै धन के हित भाग लिख्यौ तितनौ ई लहैगौ ॥
भोर कि सांझ घरी पल मांझ सु काल अचानक आइ गहैगौ ।
राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुन्दर यौं पछिताइ कहैगौ ॥ ७ ॥

---

(४) किया कि किया कि...(इत्यादि) क्रिया की बार बार उक्ति अर्थ को बलवान और भाव की दृढ़ता तथा काल के क्रम को दिखाती है—अर्थात् ऐसा होता ही रहता है, यह बात रीति जगत् में दृढ़ निश्चित है ।

(५) दये=दिया ।

(६) येहा=यह । छेहा=छेह, अंत । पेहा=खेह, राख

(७) लहैगो=पावेगा, मिलेगा ।

भूलि गयौ हरि नाम कौ तूं सठ देषि धौं कौन संयोग वन्यौं है।
काल अचानक आइहै या कठ पेषि धौं झूठौ सौ तानौ तन्यौं है॥
छार करै सब चांम कौं लूटै जु आदि कौ ऐसौंहि जीव हन्यौं है।
कोउ न होत सहाइ कौं कूटै अनादि कौ सुन्दर यासौं सन्यौ है॥ ८॥
वीति गये पिछले सब ही दिन आवत हैं अगिलौ दिन नेरै।
काल महा बलवंत बडौ रिपु सांधि रह्यौ सिर ऊपर तेरै॥
एक घरी मंहि मारि गिरावत लागत ताहि कछू नहिं वेरै।
सुन्दर संत पुकारि कहै सबहूं पुनि तोहि कहूं अब टेरै॥ ९॥
सोइ रह्यौ कहा गाफिल ह्वै करि तो सिर ऊपर काल दहारै।
धामस धूमस लागि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारै॥
ज्यौं वन मैं मृग कूदत फांदत चित्रक लै नख सौं उर फारै।
सुन्दर काल डरै जिहिं कै डर ता प्रभु कौं कहि क्यौं न संभारै॥ १०॥
चेतत क्यौं न अचेतन ऊंघन काल सदा सिर ऊपर गाजै।
रोकि रहै गढ कै सब द्वारनि तूं तब कौन गली होइ भाजै॥
आइ अचानक केस गहै जब पाकरि कै पुनि तोहिं झुलाजै।
सुन्दर कौन सहाइ करै जब मूंड हि मूंड भराभरि वाजै॥ ११॥
तूं अति गाफिल होइ रह्यौ सठ कुंजर ज्यौं कछु शंक न आंनै।
माइ नहीं तन मैं अपने बल मत्त भयौ विषया सुख ठांनै॥

---

(८) कौन संयोग=मनुष्य देह, अच्छा कुल, अच्छी सतसंगति आदिकी प्राप्ति।

(९) सांधि रह्यो=तीर का निशाना लगा रहा।

(१०) धामस धूमस=धूमधाम। लागि रह्यो=दाव घात कर रहा है। चित्रक=चीता।

(११) ऊंघ न=मत ऊंघै। पाकरिके=(पाकरिकै)=पकड़ करके। झुलाजै=झुलावै, लटकावै। मूंढहि मूंड भराभर बाजै=आपस में सिर टकरावैं, लड़ाई होने लग जाय और मांथे फूटने लगैं।

पोसत पासत वे दिन वीतत नीति अनीति कछू नहिं जांनै ॥
सुन्दर केहरि काल महारिपु दंत उपारि कुंभस्थल भानैं ॥ १२ ॥

मात पिता जुवती सुत बंधव आइ मिल्यौ इन सौं सनमंधा ।
स्वारथ के अपने अपने सब सो यह नाहिं न जानत अंधा ॥
कर्म विकर्म करै तिन कै हित भार धरै नित आपनै कंधा ।
अंत विछोह भयो सब सौं पुनि याहि तें सुन्दर है जग धंधा ॥ १३ ॥

मनहर

करत करत धंध कछुव न जानैं अंध
आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दै ।
जैसैं बाज तीतर कौं दावत अचांनचक
जैसैं बक मछरी कौं लीलत लपाकि दै ॥
जैसैं मक्षिका की घात मकरी करत आइ
जैसैं सांप मूषक कौं ग्रसत गपाकि दै ।
चेति रे अचेत नर सुन्दर संभारि राम
ऐसैं तोहि काल आइ लेइगौ टपाकि दै ॥ १४ ॥

मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब
मेरौ धन माल मैं तौ बहुविधि भारौ हौं ।
मेरौ सब सेवक हुकम कोउ मेटै नांहि
मेरी जुवती कौ मैं तौं अधिक पियारौ हौं ॥

---

(१२) पोसत पासत=आप छीनें और दूसरों से छिनावै (मुहावरा)। केहरि=सिंह । कुंभस्थल=गंडस्थल । ललाट मस्तक ।

(१३) सनमंधा=सम्बन्ध । जगधंधा=संसारका कार व्यवहार । अथवा यह जगत धंधा (कार्य्यरूप) मात्र है ।

(१४) चपाकदै=तुरंत, झटपट । (दै=शीघ्रता, तड़ाका का द्योतक-राजस्थानी भाषा) ।लीलत=निगल जाता है । लपाक दै=एक ही ग्रास में गड़प कर जाता है । गपाकि दै=गप से गले उतार लेता है । टपाक दै=टप से उचट कर ले जायगा ।

मेरौ वंश ऊंचौ मेरे बाप दादा ऐसै भये
करत बडाई मैं तौ जगत उज्यारौ हौं।
सुन्दर कहत मेरौ मेरौ करि जानैं सठ
ऐसी नहिं जानै मैं तौ काल ही कौ चारौ हौं ॥१५॥

जब तें जनम धर्यौ तब ही तें भूलि पर्यौ
बालापन मांहि भूलौ संमुभयौ न रुख मैं।
जोवन भयौ है जब काम बस भयौ तब
जुवती सौं एक मेक भूलि रह्यौ सुख मैं ॥
पुत्रउ पौउत्र भये भूलौ तब मोह बांधि
चिंता करि करि भूलौ जानै नहिं दुख मैं।
सुन्दर कहत सठ तीनौं पन मांहिं भूलौ
भूलौ भूलौ जाइ पर्यौ काल ही के मुख मैं ॥ १६ ॥

ऊठत बैठत काल जागत सोवत काल
चलत फिरत काल काल बोर धर्यौ है।
कहत सुनत काल षात हू पीवत काल
काल ही के गाल मांहि हर हर हंस्यौ है ॥
तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल
सकल कुटंब काल काल जाल फंस्यौ है।
सुन्दर कहत एक राम बिन सब काल
काल ही कौ कृत्त कियौ अंत काल ग्रस्यौ है ॥१७॥

---

(१५) भारो=भारी, बड़ा।

(१६) रुख=सैन, निगाह का इशारा। एकमेक=गटपट मिला हुआ। दो तन एक जान।

(१६) पौउत्र=पौत्र, पोता। (छन्द के निमित्त ऐसा किया है)।

(१७) वोर=की तरफ। इस छंद में सर्वत्र काल से प्रयोजन एक सर्व भक्षक

जब तें जनम लेत तब ही तें आयु घटै
माइ तौ कहत मेरौ वडौ होत जात है।
आज और कालि्ह और दिन दिन होत और
दौरयौ दौरयौ फिरत पेलत अरु पात है॥
वालापन वीत्यौ जब जोवन लग्यौ है आइ
जोवन हू वीते वूढौ डोकरा दिपात है।
सुन्दर कहत ऐसें देपत ही वुझि गयौ
तेल घटि गये जैसें दीपक वुझात है॥ १८॥

सब कोउ ऐसें कहैं काल हम काटत हैं
काल तौ अपंड नाश सबकौ करतु है।
जाकै भय ब्रह्मा पुनि होत है कंपाइमान
जाकै भय असुर सुर इंद्रऊ डरतु है॥
जाकै भय शिव अरु शेप नाग तीनौं लोक
केउक कलप वीतें लोमस परतु है।
सुन्दर कहत नर गरब गुमान करै
तूं तो सठ एकई पलक मैं मरतु है॥ १९॥

काल से है परन्तु अर्थमें बारीक सा भेद भी करना पड़ता है। कहीं काल की सामग्री, काल की गति, नाश के वा वधन के कारण, मायाजाल इत्यादि।

(१८) आयु घटै=लौकिक में प्रत्येक सालगिरह पर खुशी मनाई जाती है। परन्तु प्रत्येक वर्ष असल में अवस्था में कम होता जाता है। दीपक वुझात है=तेल बीतने पर दीवा बुझ जाता है वैसे ही आयु घटने पर शरीर का पतन हो जाता है।

(१९) काल हम काटत हैं=काल को बिताना काल का काटना है। दिन टेर करना। काल किसी के काटे नहीं कटता है, यह कहने मात्र है। लोमस=वह दीर्घजीवी ऋषि जो ब्रह्मा के मरने पर शिर पर से एक बाल तोड़ कर फेंकता है कि नित्य उसके ब्रह्मा मरें नित्य मुंडन, कहां से, कैसे करावै।

काल सौ न वलवंत कोऊ नहिं देपियत
सव कौ करत अंत काल महा जोर है।
काल ही कौ डर सुनि भग्यौ मूसा पैकंवर
जहां जहां जाइ तहां तहां वाकौ गोर है॥
काल है भयानक भैभीत सव किये लोक
स्वर्ग मृत्यु पाताल मैं काल ही को सोर है।
सुन्दर काल को काल एक ब्रह्म है अखंड
वासौं काल डरै जोई चल्यौ उहि वोर है॥ २० ॥

वरषा भये तें जैसैं वोलत भंभीरी सुर
पंड न परत कहुं नैकहूं न जानिये।
जैसैं पूंगी वाजत अखण्ड सुर होत पुनि
ताहू मैं न अंतर अनेक राग गांनिये॥
जैसैं कोऊ गुडी कौं चढावत गगन मांहि
ताहू की तौ धुनि सुनि वैसैं ही वषांनिये।
सुन्दर कहत तैसैं काल कौ प्रचंड वेग
राति दिन चल्यौ जाइ अचिरज मांनिये॥ २१ ॥

माया जोरि जोरि नर रापत जतन करि
कहत है एक दिन मेरै काम आइहै।

---

(२०) मूसा पैकंवर=यहूदियों का एक पैगम्बर (ज्ञानी पुरुष) जिसके द्वारा 'तौरत' नमक धर्म पुस्तक प्रगट हुई। इसने काल की अवहेलना की तव इसके पीछे पड़ा तव इसको ईश्वर की महिमा का ज्ञान हुआ और आंख खुली। गोर=खयाल, भय। अथवा मरने की निशानी कवर। सोर=जोर, शोर। प्रभाव। वोर=तरफ, मार्ग।

(२१) भंभीरी=झींगरी। गुडी=पतंग, डुगड़ा जिसके घूंघरू वांध कर आकाश में उडा चढा कर पलंग से वांध देते थे सो रात को उसकी एक सी आवाज आया करती। यहां काल की निरन्तर इकसार गति वर्णित है।

तोहि तौ मरत कछु वार नहिं लागै सठ
देषत ही देषत वल्ला सौ विलाइहै ॥
धन तौ धर्यौई रहै चलत न कौडी गहै
रीते ही हाथनि जैसौ आयौ तैसौ जाइहै ।
करि लै सुकृत यह वरिया न आवै फेरि
सुन्दर कहत पुनि पीछे पछिताइहै ॥ २२ ॥

वावरौ सौ भयौ फिरै वावरी ही वात करै
वावरे ज्यौं देत वायु लागत वौरानौ है ।
माया कौ उपाइ जानै माया की चातुरी ठानै
माया मैं मगन अति माया लपटानौ है ॥
जोवन कौ मदमातौ गिनत न कोऊ नातौ
काम वस कामिनी कै हाथ ही विकानौ है ।
अति ही भयौ वेहाल सूझत न माथै काल
सुन्दर कहत ऐसौ वोर कौ दिवानौ है ॥ २३ ॥

झूठौ धन झूठौ धाम झूठौ कुल झूठौ काम
झूठी देह झूठौ नाम धरि कैं वुलायौ है ।
झूठौ तात झूठी मात झूठे सुत दारा भ्रात
झूठौ हित मानि मानि झूठौ मन लायौ है ॥
झूठौ लैन झूठौ दैन झूठै मुख वोलै वैन
झूठै झूठै करि फैन झूठ ही कौं धायौ है ।
झूठही मैं ये तौ भयो झूठ ही मैं पचि गयौ
सुन्दर कहत सांच कवहूं न आयौ है ॥ २४ ॥

---

(२२) वल्ला=वुदवुदा । वरियां=विरिया, समय, मुहूर्त्त ।

(२३) देत वायु=वकवाद करै । वौरानू=पागल हुआसा । वोर को=अन्य और कोई ।

(२४) "झूठ" शब्द की पुनरावृत्ति वड़ी चतुराई से की है । इससे क्षर,

दीर्घाक्षरी

झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगै झूठा दौरा
झूठा वंध्या झूठा छोरा झूठा राजारानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठै धंधा लाया
झूठा मूवा झूठा जाया झूठा याकी बानी है॥
झूठा सोवै झूठा जागै झूठा झूझै झूठा भाजै
झूठा पीछै झूठा लागै झूठै झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा षाया झूठा पीया
झूठा सौदा झूठै कीया ऐसा झूठा प्रानी है॥ २५॥

झूठ सौं वंध्यौ है लाल ताही तें ग्रसत काल
काल विकराल व्याल सबही कौं षात है।
नदी को प्रवाह चल्यो जात है समुद्र मांहि
तैसैं जग कालहि के मुख मैं समात है॥
देह सौं ममत्व तातैं काल कौ भै मानत है
ज्ञान उपजै तैं वह कालहू विलात है।
सुन्दर कहत परब्रह्म है सदा अखंड
आदि मध्य अन्त एक सोई ठहरात है॥ २६॥

नाशवान, वृथा, अनित्य, नश्वर, आडम्बर, दम्भ, कपट आदि अर्थ लेना=जहां जैसा ठीक हो।

(२५) इस छंद में भी 'झूठ' शब्द की पुनरुक्ति उस ही ढंग पर, परंतु कुछ अधिक चतुराई से है। इस में सारे वर्ण गुरु हैं इस से शब्दालंकार का चित्रकाव्य है। छोरा=छोड़ा, मुक्त हुआ। झूझै=लड़ै। सब जगत् स्वप्न की तरह मिथ्या है।

(२६) लाल=प्यारा यह ताने के तौर पर शब्द है। बच्चा, पूत। व्याल=सर्प काल हू विलात है=ब्रह्म में दिक्, काल, कारण, गुण स्वभावादि कुछ नहीं। ब्रह्मप्राप्ति से काल को जीत लिया जाता है। सोही ठहरात है=जिस का आदि, मध्य और

इंदव

काल उपावत काल पपावत काल मिलावत है गहि मांटी।
काल हलावत काल चलावत काल सिपावत है सब आंटी॥
काल बुलावत काल भुलावत काल डुलावत है बन घाटी।
सुन्दर काल मिटै तब ही पुनि ब्रह्म विचार पढै जब पाटी॥ २७॥

॥ इति काल चितावनी को अंग ॥ ३ ॥

देहात्म विछोह को अंग (४)॥

इन्दव

वे श्रवना रसना मुख वैसेहि वैसेहि नासिक वैसेहि अंपी।
वे कर वे पग वे सब द्वार सु वे नख सीस हि रोम असंपी॥
वैसें हि देह परी पुनि दीसत एक विना सब लागत पंपी।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह 'बोलत हौ सु कहां गयौ पंपी'॥ १॥

बोलत चालत पीवत पात सु सींचत हौ द्रुम कौं जैसें माली।
लेतहु देतहु देपत रीझत तोरत तान बजावत ताली॥
जामहिं कर्म विकर्म किये सब है यह देह परी अब ठाली।
सुन्दर सो कतहू नहिं दीसत पेल गयौ इक पेल सौ प्याली॥ २॥

अंत नहीं सो ही आदि, मध्य और अंत अर्थात् सदा और सर्वदा विराजमान, नित्य विभु है।

(२७) गहि मांटी=पकड़ कर रेत खेत, नाश, कर देता है। आंटी=पेच, प्रपंच के ढंग। पाटी=पाटी पढ़ना, प्रारम्भिक दीक्षा विद्यार्थियों की तरह गुरु से पावै, प्रवेश की शक्ति प्राप्त करै, ज्ञान में परिपक्व हो जावै।

(देहात्म विछोह) (१) अंपी=आंख, नेत्र। असंपी=असंख्यात, बहुत। पंपी=खोखला, कंकाल। पंपी=पक्षी।

(२) ठाली=चेष्टा रहित। सूनी। प्याली=खिलाड़ी।

मात पिता जुवती सुत बंधव लागत हैं सब कौं अति प्यारौ।
लोग कुटंब परौ हित रापत होइ नहीं हम तें कहु न्यारौ॥
देह सनेह तहां लग जानहुं बोलत है मुख शब्द उचारौ।
सुन्दर चेतनि शक्ति गई जब बेगि कहै घर मांहिं निकारौ॥ ३॥
रूप भलौ तब ही लग दीसत जौं लग बोलत चालत आगै॥
पीवत पात सुनै अरु देपत सोइ रहै उठिकैं पुनि जागै॥
मात पिता भइया मिलि बैठत प्यार करै जुवती गर लागै।
सुन्दर चेतनि शक्ति गई जब देपत ताहि सबै डरि भागै॥ ४॥

मनहर

कौन भांति करतार कियौ है शरीर यह
पावक कै मध्य देषौ पानी कौ जमावनौ।
नासिका श्रवन नैंन वदन रसन बैन
हाथ पाव अंग नख शिख कौ बनावनौ॥
अजब अनूप रूप चमक दमक ऊप
सुन्दर शोभित अति अधिक सुहावनौ।
जाही क्षन चेतना सकति जब लीन होइ
ताही क्षन लगत सबनि कौ अभावनौ॥ ५॥
मृत्तिका कौ पिंड देह ताही मैं युगति भई
नासिका नयन मुख श्रवन बनाये हैं।

---

(३) उचारौ=उच्चारण। मांहिं=अन्दर से बाहर। (मांहिं से)।

(४) आगै=अगाड़ी सामने। गर लागै=गले लगैं, आलिंगन करें। डरि=डर कर।

(५) पावक=अग्नि, जठराग्नि पेट में। नासिका=पानी की बूंद में इतने सुघड़ आकार कैसे बन जाते हैं, यह आश्चर्य है। ऊप=ओप, सफाई, पालिश। अभावनो=असुहावना, घृणित, बुरा।

सीस हाथ पाव अरु अंगुली विराजमान
अंगुली के आगै पुनि नख ऊ लगाये हैं॥
पेट पीठि छाती कंठ चिबुक अधर गाल
दसन रसन बहु वचन सुहाये हैं।
सुन्दर कहत जब चेतना शकति गई
वहै देह जारि बारि छार करि आये है॥ ६॥

देह तौ प्रगट यह ज्यौं की त्यौंहीं जानियत
नैंन के झरौंपे मांहि झांकत न देपिये।
नाक के झरौंपे मांहि नैकु न सुवास लेत
कान के झरौंपे मांहि सुनत न लेपिये॥
मुख के झरौंपे मैं वचन न उचार होत
जीभ हू कौ पट रस स्वाद न बिशेपिये।
सुन्दर कहत कोउ कौंन विधि जानै ताहि
कारौ पीरौ काहू द्वार जातौहू न पेपिये॥ ७॥

माइ तौ पुकारि छातो कूटि कूटि रोवत है
बाप हू कहत मेरौ नन्दन कहां गयौ।
भइया कहत मेरी बांह आज दूरि भई
बहन कहत मेरै बीर दुःख है दयौ॥
कामिनी कहत मेरौ सीस सिरताज कहां
उनि ततकाल हाथ मैं सिंधौरा है लयौ।

---

(६) विराजमान=शोभित, प्रस्तुत।

(७) झरोपे=बैठ कर देखने का स्थान, इंद्रिय। पट्रस=छह रस-मीठा, कडुवा खारी, चरपरा, कसायला, खट्टा,। नाना प्रकार के स्वाद। कारौ पीरौ=किसी भी रंग या आकार का। ताहि=उस चेतनशक्ति को।

सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहिं जान सकै
बोलत हुतौ सु यह छिन मैं कहा भयौ ॥ ८ ॥
रज अरु वीरज कौ प्रथम संयोग भयौ
चेतना सकति तव कौन भांति आई है।
कोउ एक कहै वीज मध्य ही कियौ प्रवेश
किनहूंक पंच मास पीछै कै सुनाई है॥
देह कौ विजोग जव देपत ही होइ गयौ
तव कोउ कहौ कहां जाइ कै समाई है।
पण्डित ऋृपीश्वर तपोश्वर मुनीसुर ऊ
सुन्दर कहत यह किनहुं न पाई है॥ ९ ॥
तव लौं हि क्रिया सव होत है विविधि भांति
जव लग घट माहिं चेतन प्रकाश है।
देह कें अशक्त भयें क्रिया सव थकि जात
जब लग स्वास चलै तव लग आश है॥

---

(८) नन्दन=पुत्र। सिंधौरा=सिन्दूर आदि (नारेल वा मेंहदी) जिसको लगाकर वा लेकर सती स्मशान को सती होने को जाती थी। बालत हुतौ=जो बोलता था सो-वह चेतन शक्ति जिससे बोलने आदि की क्रियाएं शरीर में फुरती हैं। चेतन और जड़ का विवेक इन अवस्थाओं के देखने और उन पर विचार से ही उपजता है। मृतक शरीर और जीवित शरीर की परस्पर की संज्ञा और लक्षणों से चेतन के प्रभाव का प्रक्षेप मन और बुद्धि पर बहुत कुछ होता है।

(९) मृतक को देख कर नाना प्रकार की कल्पना बुद्धिमान लोग करते हैं। उन ही का कुछ वर्णन है। परन्तु निदान सच्चा किसी से नहीं होता, और न हुआ, कि जिससे निश्चय-पूर्वक और निःसंदेह निर्णय मिल सके। जीवात्मा का इस पुद्गल में कैसे और किधर से तो प्रवेश होता है, और मर जाने पर इस शरीर में से किधर होकर निकल कर कहां जाता है? इत्यादि शंकाएं सदा से सव विचारशील पुरुषों को

स्वासऊ थक्यौ है जब रोवन लगे हैं तब
सब कोऊ कहै यह भयौ घट नाश है।
काहू नहिं देष्यौ किहिं चोर कौन कहां गयौ
सुन्दर कहत यह वडोई तमाश है॥ १० ॥

देह तौ स्वरूप तौंलौ जौलौं है अरूप मांहिं
सब कोउ आदर करत सनमान है।
टेढी पाग बांधि बार बार ही मरोरै मूंछ
बांह उसकारै अति धरत गुमांन है॥
देश देश ही के लोक आइकैं हजूर होहिं
बैठि करि तपत कहावै सुलतांन है॥
सुन्दर कहत जब चेतना सकति गई
उहै देह ताकी कोउ मानत न आंन है॥ ११ ॥

॥ इति देहातम विछोह कौ अंग ॥ ४ ॥

होती आई है। परन्तु सच्चा भेद किसी को नहीं मिला। और शास्त्र, पुराण, दर्शन हैं जिनमें अपने २ ढंग पर युक्ति प्रमाण द्वारा अपना निश्चित पक्ष सिद्ध किया है। परन्तु परस्पर विरोध आता है। और संदेह बना रह जाता है।

(११) अरूप=रूप रहित जीवात्मा तत्व। आत्मा के कोई आकार न होने से इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता है। इस ही लिये समझाने को आकाश तत्व का और लोह पिंड में ताप का वा पुष्प में सुगन्ध का, वा दूध में घृत का, वा चंबुक में वा अन्य पदार्थों में आकर्षण शक्ति का, दृष्टान्त दे देते हैं। परन्तु उस चिदात्म परम तत्व का कुछ भी ज्ञान या आभास यथार्थरूप में नहीं हो पाता है। इतने सत्य और नित्य और स्वयम् सिद्ध पदार्थ का साधारणतया केवल अनुमान या अटकल से ही कुछ ज्ञान मान लिया जाता है। केवल वेदांत के ज्ञानियों वा राजयोग के सिद्धोंको आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान होना शास्त्रों में माना गया है।

अथ तृष्णा को अंग (५) ॥

इंदव

नैननि की पल ही पल मैं क्षण आध घरी घटिका जु गई है।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि सांझ गई तब राति भई है॥
आज गई अरु कालिह गई परसौं तरसौं कछु और ठई है।
सुन्दर ऐसें हि आयु गई "तृष्णा दिन ही दिन होत नई है" ॥ १ ॥

दुर्मिला

कन ही कनकौं बिललात फिरै सठ जाचत है जन ही जन कौं।
तन ही तन कौं अति सोच करै नर पात रहै अन ही अन कौं॥
मन ही मन की तृष्णा न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं।
छिन ही छिन सुन्दर आयु घटी कबहूं न गयौ बन ही बन कौं ॥ २ ॥

इन्दव

जौ दस बीस पचास भये सत होहि हजारनि लाप मगैगी।
कोटि अरब्ब परब्ब असंषि पृथीपति हौंन की पाह जगैगी॥
स्वर्ग पताल कौं राज करौ तृसना अधिकी अति आगि लगैगी।
सुन्दर एक सन्तोष बिना सठ "तेरी तौ भूष न क्यौंहुं भगैगी" ॥ ३ ॥
लाष करोरि अरब्ब परब्बनि नीलि पदम्म तहां लग पाटी।
जोरि हि जोरि भण्डार भरे सब और रही सु जिमी तर दाटी॥

(१) जाम=एक पहर। जुग जाम=दो पहर, 'तृष्णा' को 'तृषणा' पढ़ो छंद पूर्त्तिके लिये।

(२) कन=दाना, अन्न। बिललात=चिल्लाता, रोता पुकराता। 'तृष्णा' को 'तृषणा' पढ़िये छंद हित। बन में=त्यागी होकर एकांत वास।

(३) मगैगी=मंगैगी-चाही जायगी। पाह= (अप्रशस्त शब्द)-प्यास, चाह 'आगि…' जैसे जितना ईंधन डालो उतनी बढ़ती है। वैसे ही तृष्णा, अधिक प्राप्ति से अधिक बढ़ती है। इस आग को शमन करने वा बुझानेवाला एक संतोष ही है।

तौहु न तोहि सन्तोष भयौ सठ सुन्दर तैं तृष्णा नहिं काटी।
सुकृत नाहिं न काल सदा सिर मारिकें थाप मिलाइहै माटी ॥ ४ ॥
भूप लिये दशहूं दिश दौरत ताहि तैं तू कबहूं न अघैहै।
भूप भण्डार भरैं नहिं कैसैंहु जो धन मेरु कुबेर लौं पैहै ॥
तूं अब आगैं हि हाथ पसारत ताहि तैं हाथ कछू नहिं ऐहैं।
सुन्दर क्यौं नहिं तोष करैं नर पाइ हि पाइ कतोइक पैहै ॥ ५ ॥
भूप नचावत रङ्क हि राज हि भूप नचाइ कैं विश्व विगोई।
भूप नचावत इन्द्र सुरासुर और अनेक जहां लग जोई ॥
भूप नचावत है अध ऊरध तीनहुं लोक गनैं कहा कोई।
सुन्दर जाइ तहां दुख ही दुख ज्ञान विना न कहूं सुख होई ॥ ६ ॥
पेट पसार दियौ जित ही तित तैं यह भूप कितीयक थापी।
वोर न छोर कछू नहिं आवत मैं बहु भांति भली विधि मापी ॥
देषत देह भयौ सब जीरण तूं निति नौतन आहि अद्यापी।
सुन्दर तोहि सदा समझावत "हे तृष्णा अजहूं नहिं धापी" ॥ ७ ॥
तीनहुं लोक अहार कियौ फिरि सात समुद्र पियौ सब पानी।
और जहां तहां ताकत डोलत काढत आंषि डरावत प्रानी ॥
दांत दिषावत जीभ हलावत याहि तें मैं यह डायनि जानी।
सुन्दर पात भयें कितनें दिन "हे तृष्णा अजहूं न अघानी" ॥ ८ ॥

---

(४) घाटी=घाटा, घाटी, कमी (अप्रशस्त शब्द)। दाटी=गाड़ दी। काटी=मारी, कम किई।

(५) तोष=संतोष।

(६) विगोई=बदनाम किया, भांडा।

(७) थापी=रची । मापी=जांचा, निश्चय किया। नौतन=नूतन, नई। अद्यापी=अबतक।

(८) डाइन=डाकिन, बहुत खानेवाली दुष्टा। अघानी=धापी, तृप्त हुई।

पाव पताल परे गये नीकसि सीस गयौ असमान अघेरौ।
हाथ दशौं दिशि कौं पसरै पुनि पेट भरे न समुद्र सुमेरौ॥
तीनहुं लोक लिये मुख भीतरि आंपिहु कान वधे चहुं फेरौ।
सुन्दर देह धस्यौ अति दीरघ "हे तृष्णा कहुं छेह न तेरौ"॥ ९॥
वादि वृथा भटकै निशि वासर दूरि कियौ कवहूं नहिं धोषा।
तूं हतियारिनि पापिन कोटनि सांच कहूं मति मानहिं रोषा॥
तोहि मिल्यौ तवतें भयौ वन्धन तूं मरि है तव ही होइ मोषा।
सुन्दर और कहा कहिये तुहि "हे तृष्णा अवतौ करि तोषा"॥ १०॥
क्यौं जग मांहिं फिरै झप मारत स्वारथ कौं न परीजिहिं जोलै।
ज्यौं हरिहाइ गऊ नहिं मानत दूध दुह्यौ कछु सो पुनि ढोलै॥
तूं अति चञ्चल हाथ न आवत नीकसि जाइ नहीं मुख वोलै।
सुन्दर तोहि कह्यौ वर केतक "हे तृष्णा अव तूं मति डोलै"॥ ११॥
तै कोउ कांन धरी नहिं एकहु वोलत वोलत पेट हि पाक्यौ।
हौं कोउ वात वनाइ कहूं जवतैं तव पीसत ही सव फाक्यौ॥
केतक द्यौस भये परमोधत तैं अव आगै हि कौं रथ हांक्यौ।
सुन्दर सीप गई सव ही चलि "हे तृष्णा कहि कैं तोहि थाक्यौ"॥ १२॥

---

(९) परै=आगे। अघेरौ=आगे (पंजावी में अग्गे को अग्घे भी वोलते हैं) वहुत आगे (जैसे वड़े से वड़ेरो) वधे=वढ़े, विशाल हो गये।

(१०) हतियारिनि=हत्यारी, घातिनि। पापिन,कोटनि=पापिनी, और कुट्टिनी। वा, कोट्यानुकोटि पापों की करनेवाली।

(११) झप मारत=वृथा काम करता हुआ। हरिहाई=हरे को चर कर हरे को दौड़नेवाली। ढोलै=ढुला दै, आखती होकर झट दुहानी पटका दे। नहीं मुख वोलै=चुपचाप सटक जाय।

(१२) पेट पाक्यो=पेट पकना, उकता जाना, थक जाना। पीसतै फाकना=वड़े पहिले तेल पी जाना, अधीरता से कार्य्य सिद्धि से पूर्व ही कार्य्य के फल के लिये

तूं हि भ्रमाइ प्रदेश पठावत बूडत जाइ समुद्र जिहाजा।
तूं हि भ्रमाइ पहार चढावत वादि वृथा मरि जाइ अकाजा॥
तैं सब लोक नचाइ भली विधि भांड किये सब रङ्क रु राजा।
सुन्दर तोहि दुखाइ कहौं अब "हे तृष्णा तोहि नैकु न लाजा"॥ १३॥

॥ इति तृष्णा को अंग ॥ ५ ॥

अथ अधीर्य उराहने कौ अंग (६)॥

इन्दव

पांव दिये चलनें फिरनें कहुं हाथ दिये हरि कृत्य करायौ।
कान दिये सुनिये हरि कौ जस नैंन दिये तिनि माग दिपायौ॥
नाक दियौ मुख सोभत ता करि जीभ दई हरि कौ गुन गायौ।
सुन्दर साज दियौ परमेस्वर पेट दियौ परि पाप लगायौ॥ १॥
कूप भरे अरु वाय भरे पुनि ताल भरे वरषा ऋतु तीनौं।
कोठि भरे घट माट भरे घर हाट भरे सब ही भरि लीनौं॥

लालायित होकर उसे बिगाड़ देना। परमोधत=प्रबोधन, सावचेत, जाग्रत करते २।
आगे रथ हांकना=पहिले ही दौड़ा देना।

(१३) भांड किये=फजीहत की, किरकिरी कर दी, प्रतिष्ठा बिगाड़ दी। दुखाइ कहौं=कड़ी कहूं, तीखी सुनाऊं। कटती कहूं। क्योंकि तैंने संसारियों का बड़ा अकाज किया है।

अधीर्य उराहना=अधीरता के लिये उलाहना-उपालम्भ-देना। अधीर होकर अधीरता उत्पन्न करनेवाले कारणों के पैदा कर देने वा देने के लिये ईश्वर को बुरा भला कहना, शिकायतें करना। इस अंग में भूख और पेट की ही शिकायतें हैं।

(१) माग=मार्ग, रास्ता। पाप लगायौ=पाप लगाना, आफत पैदा करना, जीव को झंझट कर देना।

पन्दक पास वुषार भरै परि पेट भरै न वडौ दर दीनौं।
सुन्दर रीतौ हि रीतौ रहै यह कौन षडा परमेश्वर कीनौं ॥ २ ॥

मनहर

किधौं पेट चूल्हा किधौं भाठी किधौं भार आहि
जोई कछु झौंकिये सु सब जरि जातु है।
किधौं पेट थल किधौं वांवी किधौं सागर है
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है
षांव षांव करै कहुं नैकु न अघातु है।
सुन्दर कहत प्रभु कौंन पाप लायौ पेट
जवतैं जनम भयौ तब ही कौ षातु है ॥ ३ ॥

विग्रह तौ विग्रह करत अति वार वार
तनु पुनि तनुक न कबहुं अघायौ है।
घट न भरत क्यौंहीं घट्यौई रहत नित
शरीर निराइ मैं तौ कछुव न पायौ है॥
देह देह कहत ही कहत जनम वीत्यौ
पिण्ड पिण्ड काजै निश दिन ललचायौ है।
पुदगल गिलत गिलत न तृपत होइ
सुन्दर कहत वपु कौन पाप लायौ है ॥ ४ ॥

---

(२) वांय=बावड़ी। कोठि=कोठी अनाज की। माट=बड़ा मटका। पंदक=चंडा गढ़ा। षास=अनाज की बड़ी खाई। वुषारी=बुखारी, खड़की। दर=दरवाजा, दरार, दरीदा फटा हुआ रखना। षड़ा=खड्डा, गढ़ा।

(३) किधौ=या तो, कहीं, क्या यह। भार=भाड़।

(४) विग्रह=लड़ाई, तकाजा। तनु=शरीर। तनुक न=थोड़ा सा भी नहीं। निराइ=निनाण किया हुआ, खाली हुआ अर्थात् भूखा का भूखा होकर। देह देह=दो,

पाजी पेट काज कोतवाल कौ आधीन होत
कोतवाल सु तौ सिकदार आगै लीन है।
सिकदार दीवान कै पीछै लग्यो डोलै पुनि
दीवान हू जाइ पतिसाह आगै दीन है॥
पातिसाह कहै या पुदाइ मुझै और देइ
पेट ही पसारै नहिं पेट वसि कीन है।
सुन्दर कहत प्रभु क्यौं हुं नहिं भरै पेट
एक पेट काज एक एक कौ आधीन है॥ ५॥

तैंतौ प्रभु दीयौ पेट जगत नचायौ जिनि
पेट ही कै लिये घर घर द्वार फिर्‌यौ है।
पेट ही कै लिये हाथ जोरि आगै ठाडौ होइ
जोइ जोइ कह्यो सोइ सोइ उनि कर्‌यौ है॥
पेट ही कै लिये पुनि मेघ शीत घाम सहै।
पेट ही कै लिये जाइ रनु मांहिं मर्‌यौ है।
सुन्दर कहत इन पेट सब भांड किये
और गैल छूटी परि पेट गैल पर्‌यौ है॥ ६॥

पेट सो न बली जाकै आगै सब हारि चले
राव अरु रंक एक पेट जीति लिये हैं।
कोउ घाव मारत विदारत है कुंजर कौं
ऐसैं सूर वीर पेट काज प्रान दिये हैं॥
यंत्र मंत्र साधत अराधन मसान जाइ
पेट आगै डरत निडर ऐसैं हीये हैं॥

देवो, दो। पिंट पिंट=यह शरीर वात वात के लिये। पुदगल=शरीर। गिलत=भोजन के गास निगलने निगलाते (खा खा कर) वपु=शरीर।

(५) पाजी=पियादा, सिपाही। सिकदार=फौजदार के रुतबे का अफसर।

(६) रनु=रण, संग्राम।

देवता असुर भूत प्रेत तीनौं लोक पुनि
सुन्दर कहत प्रभु पेट जेर किये हैं ॥ ७ ॥

प्रात ही उठत सब पेट ही की चिंता सब
सब कोऊ जात आपु आपुने अहार कौं।
कोउ अन्न पात पुनि आमिष भषत कोउ
कोउ घास चरत चरत कोउ दार कौं ॥
कोऊ मोतीफल कोऊ वास रस पय पान
कोऊ पौंन पीवत भरत पेट भार कौं।
सुन्दर कहत प्रभु पेट ही भ्रमाये सब
पेट तुम दियौ है जगत हौन ष्वार कौं ॥ ८ ॥

इन्दव

पेट हि कारण जीव हतै वहु पेट हि मांस भषै रु सुरापी।
पेट हि लै करि चौरी करावत पेट हि कौं गठरी गहि कापी ॥
पेट हि पासि गरे मंहि डारत पेट हि डारत कूप हु वापी।
सुन्दर काहे कौं पेट दियौ प्रभु "पेट सौ और नहीं कोउ पापी" ॥ ९ ॥

औरन कौं प्रभु पेट दिये तुम तेरै तौ पेट कहूं नहिं दीसै।
ये भटकाइ दिये दश हूं दिशि कोउक रांधत कोउक पीसै ॥
पेट हि कारन नांचत है सब ज्यौं घर ही घर नाचत कीसै।
सुन्दर आपु न षाहु न पीवहु कौंन करो इन ऊपर रीसै ॥ १० ॥

---

(७) जेर=आधीन (फा०)

(८) आमिष=मांस। दार=दाल, दला अन्न। मोती फल=मुक्ता फल, जैसे हंस मोती ही खाता है। ष्वार=(फा०) खराब करने को, जलील करने को।

(९) सुरापी=मदिरा पिई। कापी=काटी, गंठकटापन किया। पासि गरे मंहि डारत=ठग लोग गले में रस्सी डाल आदमियों को मार कर लूटकर जमीन में गाड़ देते थे (देखो तांतिया भील का किस्सा) वापी=बावड़ी।

(१०) कीसै=बंदर। रीसै=रोस, क्रोध।

मनहर

काहे कौ काहु कें आगें जाइ कै आधीन होइ
दीन दीन वचन उचार मुख कहते।
जिनकै तौ मद अरु गरब गुमान अति
तिनकै कठोर बैन कबहुं न सहते॥
तुम्हरे हिं भजन सौं अधिक ले लीन अति
सकल कौं त्यागि कै एकंत जाइ गहते।
सुन्दर कहत यह तुमही लगायौ पाप
"पेट न हुतौ तौ प्रभु बैठि हम रहते"॥ ११॥

पेट ही के वसि रंक पेट ही के वसि राव
पेट ही के वसि और पान सुलतांन है।
पेट ही के वसि योगी जंगम संन्यासी शेप
पेट ही के वसि वनवासी पात पांन है॥
पेट ही के वसि ऋषि मुनि तपधारी सब
पेट ही के वसि सिद्ध साधक सुजांन है।
सुन्दर कहत नहिं काहू कौ गुमान रहै
पेट ही के वसि प्रभु सकल जिहांन है॥ १२

॥ इति अधीर्य उराहने कौ अंग ॥ ६ ॥

अथ विश्वास कौ अंग (७)॥

इन्दव

होहि निचिंत करैं मत चिंत हिं चंच्च दई सोई चिंत करैगौ।
पांव पसारि पर्यौ किन सोवत पेट दियौ सोइ पेट भरैगौ॥

---

(११) गहते=ग्रहण कर-एकांत वासी बने रहते। बैठे रहते=परिश्रम और भागदौड़ इतनी न करनी पड़ती। बैठे २ भजन किया करते।

(१२) गुमान=घमंड, गर्व।

जीव जिते जलके थल के पुनि पाहन में पहुंचाइ धरैगो।
भूपहि भूप पुकारत है नर सुन्दर तूं कहा भूप मरैगो॥ १॥
धीरज धारि विचार निरन्तर तोहि रच्यो सुतो आपु हि ऐहैं।
जंतक भूप लगी घट प्रांण हि तेतक तूं अनयासहि पै हैं॥
जो मन मैं तृष्णा करि धावत तौ तिहुं लोक न पात अघैहै।
सुन्दर तूं मति सोच करै कछु चंच दई सोइ चूंनि हु दैहैं॥ २॥
नेंकु न धीरज धारत है नर आतुर होइ दशौं दिश धावै।
ज्यौं पशु पेंचि तुडावत बंधन जौ लग नीर न आव हि आवै॥
जानत नाहिं महामति मूरप जा घरि द्वार धनी पहुंचावै।
सुन्दर आपु कियो घढि भाजन सो भरि है मति सोच उपावै॥ ३॥
भाजन आपु घढ्यो जिनि तौ भरिहैं भरिहैं भरिहैं भरिहैं जू।
गावत है तिनके गुन कौं ढरिहैं ढरिहैं ढरिहैं ढरिहैं जू॥
सुन्दरदास सहाइ सही करि हैं करि हैं करि हैं करि हैं जू।
आदि हु अंत हु मध्य सदा हरि हैं हरि है हरि हैं हरि हैं जू॥ ४॥
काहे कौं दौरत है दश हू दिशि तूं नर देपि कियो हरि जू को।
वैठि रहै दुरिकैं मुख मूंदि उघारि कैं दांत पवाइ है टूको॥

---

(२) ए हैं=आवेगा, पोषण करने को विना ही बुलाये दया करके आये विन नहीं रहैगा अवश्य ही। अनयास=अनायास, विना परिश्रम, स्वयम् ही स्वतः। चूनि=चून, आटा (भोजन को)।

(३) जौ लग=जबतक। जा घरि द्वार=आप ही ले जाकर घर के दरवाजे तक। धनी=धणी, स्वामी। घढि=घड़ कर, बना कर। भाजन=बरतन, शरीर।

(४) "भरि" आदि शब्दों की पुनरुक्ति अर्थ और प्रयोजन को बलवान करने को निश्चय दृढ़ाने को है। ढरि=दयार्द्र होंगे। कृपा करैंगे। सही=निश्चय।

गर्भ थकै प्रतिपाल करी जिन होइ रह्यौ तब तूं जड मूकौ।
सुंदर क्यौं बिललात फिरै अब राषि हृदै बिसवास प्रभू कौ ॥ ५ ॥

जा दिन तें गर्भवास तज्यौ नर आइ अहार लियौ तब ही कौ।
पात हि पात भये इतने दिन जानत नांहि न भूंछ कहीं कौ ॥
दौरत धावत पेट दिपावत तू सठ कीट सदा अंन ही कौ।
सुंदर क्यौं बिसवास न राषत सो प्रभु विश्व भरै कबही कौ ॥ ६ ॥

पेचर भूचर जे जल के चर देत अहार चराचर पौषै।
वे हरि जू सब कौं प्रतिपालत जो जिहिं भांति तिसी विधि तोषै ॥
तूं अब क्यौं बिसवास न राषत भूलत है कत धोषै हि धोषै ॥
तोहि तहां पहुंचाइ रहे प्रभु सुंदर बैठि रहै किन ओषै ॥ ७ ॥

मनहर

काहे कौं बघूरा भयौ फिरत अज्ञानी नर
तेरै तौ रिजक तेरै घर बैठैं आइहै।
भावै तूं सुमेर जाहि भावै जाहि मारू देश
जितनौक भाग लिप्यो तितनौंई पाइहै ॥
कूप मांझ भरि भावै सागर कै तीर भरि
जितनौक भांडौ नीर तितनौं समाइहै।

---

(५) कियौ=काज किया हुआ, करतब। गर्भ थकै=गर्भवास से लगाकर। मूकौ=मूक, बिना वाणी।

(६) गर्भ शब्द ग्रभ पढ़ा जाना चाहिये, गण के ठीक करने को। भूंछ=बेडौल, मूर्ख। कीट=कीड़ा। सो प्रभु=वह प्रभु ऐसा है कि, उस ऐसे प्रभु का जो कि, कबही कौ=न जाने किस काल से, सदा ही से जिस को हम अब के पैदा हुये क्या जान सकते हैं।

(७) तोषै=तुष्ट, प्रसन्न हो। तहां पहुंचाइ=जहां तू है वहीं भोजन पहुंचावेगा अवश्य। ओषै=ओट में, किसी स्थान में।

ताही तें संतोप करि सुंदर विश्वास धरि
जिन तौ रच्यो है घट सोई अमराइहै ॥ ८ ॥

काहे कौं करत नर उद्यम अनेक भांति
जीवनौ है थोरौ तातें कल्पना निवारिये।
साढे तीन हाथ देह छिनक में छूटि जाइ
ताके लिये ऊंचे ऊंचे मंदिर संवारिये॥
माल हू मुलक भये तृपति न क्यौंही होइ
आगै ही कौं प्रसरत इंद्री क्यौं न मारिये।
सुंदर कहत तोहि बावरे समझि देषि
"जितनीक सोरि पांव तितने पसारिये" ॥ ९ ॥ *

काहे कौं फिरत नर दीन भयो घर घर
देपियत तेरौ तौ अहार एक सेर है।
जाकौ देह सागर मैं सुन्यौ सत जोजन कौ
ताहू कौं तौ देत प्रभु या मैं नहिं फेर है॥
भूषौ कोउ रहत न जानिये जगत मांहिं
कीरी अरु कुंजर सबनि हीं कौ दे रहै।
सुंदर कहत तूं विश्वास क्यौं न राषै शठ
वार वार संमुझाइ कह्यौ केती वेर है ॥ १० ॥

---

(८) बघूरा=भभूला पवनका, भूत प्रेत। अमराइ=अमर, अटल, विन घट बढ़ के होता है।

* यह ९ वां छंद मूल (क) वा (ख) पुस्तकों में नहीं है। अन्य पुस्तकों में मिला सो यहां लिख दिया है।

जितनीक सौर=सौड़, तौशक, जितनी सी बड़ी हो उतने ही पांव पसारना उचित है, अधिक बढ़ाना कुछ फल नहीं देता है (मुहाविरा)।

(१०) दे रहै=देता रहता है।

तेरे तो अधीरज तूं आगिली ही चित करै
आज तौ भस्यौ है पेट कालिह कैसी होइहै ।
भूपौ ही पुकारै अरु दिन उठि पातौ जाइ
अति ही अज्ञानी जाकी मति गई पोइ है ।
ताकौं नहि जानै शठ जाकौ नाम विश्वम्भर
जहां तहां प्रगट सबनि देत सोइ है ।
सुंदर कहत तोहि वाकौ तौ भरोसौ नांहि
एक विसवास विन याही भांति रोइ है ॥ ११ ॥

देषियौं सकल विश्व भरत भरनहार
चूंच कै समान चूंनि सबही कौं देत है ।
कीट पशु पंषि अजगर मच्छ कच्छ पुनि
उनकै न सौदा कोऊ न तौ कछु पेत है ॥
पेट ही कै काज रात दिवस भ्रमत सठ
मैं तौ जान्यौ नीकैं करि तूंतौ कोऊ प्रेत है ।
मानुष शरीर पाइ करत है हाइ हाइ
सुन्दर कहत नर तेरे सिर रेत है ॥ १२ ॥

तूं तौ भयौ बावरौ उतावरौ फिरत अति
प्रभु कौ विश्वास गहि काहे न रहतु है ।
तेरौ तो रिजक है सु आइ है सहज मांहि
यौंहि चिंता करि करि देह कौं दहतु है ॥
जिनि यह नख शिख साजि कै संवास्यो तोहि
अपने किये की वह लाज कौं वहतु है ।

---

(११) सोइ है=वह ही (देता) है ।

(१२) रेत=धूल, मिट्टी । सिर धूल देना (मुहाविरा है) धिक्कार देना ।

काहे कौं अज्ञानी कछु सोच मन मांहिं करै।
भूपौ तूं कदे न रहै सुन्दर कहतु है॥ १३॥
जगत मैं आइ तैं विसार्‍यौ है जगतपति
जगत कियौ है सोई जगत भरतु है।
तेरै चिंता निश दिन औरई परी है आइ
उद्यम अनेक भांति भांति के करतु है॥
इत उत जाइकैं कमाइ करि ल्याऊं कछु
नैकु न अज्ञानी नर धीरज धरतु है।
सुन्दर कहत एक प्रभु कौ विश्वास विन
वादि कै वृथा ही सठ पचि कै मरतु है॥ १४॥

॥ इति विश्वास को अंग ॥ ७ ॥

अथ देह मलीनता गर्व प्रहार कौ अंग, (८) ॥

मनहर

देह तौ मलीन अति वहुत विकार भरे
ताहू मांहिं जरा व्याधि सव दुःख रासी है।
कवहूंक पेट पीर कवहूंक सिर वाहि
कवहूंक आंपि कांन मुख मैं विथासी है॥
औरऊ अपने रोग नख शिख पूरि रहे
कवहूंक स्वास चले कवहूंक पासी है।

---

(१३) दहतु है=जलाता है, दुःख पाता है। वहतु है=निवाहता है। सुन्दर कहतु है=यह कहना उस सुन्दरदास का है, जिसको अपने निज के अनुभव से संतोष की महिमा निश्चित हो चुकी है।

(देह मलीनता) देहकी मलिनता की ओर विचार को खैंचकर देह के अभिमान का निवारण करते हैं। यहां देह जड़ और अनित्य वस्तु को क्षणिक न समझ कर मनुष्य भूले रहता है और इस पर भी घमंड रखता है, विवेक शून्य वन जाता है।

ऐसौ या शरीर ताहि आपनौं कै मानत है
सुन्दर कहत या मैं कौन सुखवासी है ॥ १ ॥
जा शरीर मांहिं तूं अनेक सुख मांनि रह्यौ
ताही तूं विचारि यामैं कौन बात भली है ।
मेद मज्जा मांस रग रगनि मांहिं रकत
पेट हू पिटारी सी मैं ठौर ठौर मली है ॥
हाडनि सौं मुख भर्‌यौ हाड ही के नैंन नांक
हाथ पांव सोऊ सब हाड ही की नली है ।
सुन्दर कहत याहि देषि जिनि भूलै कोइ
भीतरि भंगार भरि ऊपर तें कली है ॥ २ ॥

इंदव

हाडकौ पिंजर चाम मढ्यौ सब, मांहिं भर्‌यौ मल मूत्र विकारा ।
थूक रु लार परै :मुख तें पुनि व्याधि वहै सब और हु द्वारा ॥
मांस की जीभ सौं पाइ सबै कछु ताहि तें ताकौ है कौन विचारा ।
ऐसे शरीर में पैसि कै सुन्दर कैसैक कीजिये सुच्य अचारा ॥ ३ ॥
थूक रु लार भर्‌यौ मुख दीसत आंषि मैं गीज रु नाक मैं सेढौ ।
औरऊ द्वार मलीन रहै नित हाड के मांस के भीतरि वेढौ ॥

इसी से उस निराधार मिथ्या भ्रम को दूर कर विवेक की स्थापना मलिन काया में ग्लानि को उत्पन्न कर के, करते हैं ।

(१) 'भरे' का सम्बन्ध आगे के चरण में 'ताहूमाहिं से है। जरा=बुढ़ापा । व्याधि=काया क्लेश, दुःख । रासी=समूह । सिर वाहि=मांथा पकड़ कर । वा शिरमें दर्द । बिथासी=व्यथा रोगका दुःख सा । पूरि रहे=भरे हैं । शरीर रोग का आगार है ।

(२) रकत=रक्त,रुधिर । मली=मैल । भंगार=भाकस, तुच्छ पदार्थ ।

(३) व्याधि वहै=रोगका दुःख चलता है, होता है । सुच्य=शौच, शुद्धि ।

ऐसै शरीर मैं वास कियौ तब एक से दीसत बांभन ढेढौ।
सुन्दर गर्व कहा इतने पर "काहे कौं तूं नर चालत टेढौ" ॥ ४ ॥
जा दिन गर्भ संयोग भयौ जब ता दिन वून्द छिपाहुति तांही।
द्वादश मास अधौ मुख भूलत बूडि रह्यौ पुनि वारस मांहीं ॥
ता रज वीरज की यह देह सु तू अब चालत देषत छांहीं।
सुन्दर गर्व गुमान कहा सठ आपुनि आदि विचारत नांहीं ॥ ५ ॥

॥ इति देह मलीनता गर्व प्रहार को अंग ॥ ८ ॥

अथ नारी निंदा को अंग (९) ॥

मनहर

कामिनी कौ देह मानौं कहिये सघन वन
उहां कोऊ जाइ सु तौ भूलि कैं परतु है।
कुंजर है गति कटि केहरि कौ भय जामैं
बेनी काली नागनीऊं फन कौं धरतु है ॥
कुच है पहार जहां काम चोर रहै तहां
साधिकै कटाक्ष बान प्रान कौं हरतु है।
सुन्दर कहत एक और डर अति तामैं
राक्षस वदन पांऊं पांऊं ही करतु है ॥ १ ॥

---

(४) गीज=गीड़, आंख का मैल। सेढौ=सीट, नाक का मैल। वेढ़ौ=वखेड़ा, झाड़-झंकड, वीहड़। वन, जंगल। बाभन=ब्राह्मण। ढेढौं=ढेढ, अंत्यज।

(५) छिपाहुति तांही=छिपा हुआ था उस स्थान (प्रद) में। द्वादश मास=अवधि प्रायः नौ महीनें की है, परन्तु प्रसंग से १२ महीने कहे हैं। वा रस मांहिं=रज और रक्त मिले तरल पदार्थ में-जो उस मिजगा की खूराक होती है। देखत छांहीं=अपने शरीर की छाया देख-देख गर्व करता हुआ।

(नारी निंदा-छंद १) इस छन्द में स्त्री के शरीर को एक भयानक घने जंगल

विष ही की भूमि मांहिं विष के अंकूर भये
नारी विष वेलि बढी नख शिख देषिये।
विष ही के जर मूल विष ही के डार पात
विष ही के फूल फर लागे जू विशेषिये॥
विष के तंतू पसारि उरझाये आंटी मारि
सब नर वृक्ष पर लपटी ही लेपिये।
सुन्दर कहत कोऊ एक तरु बचि गये
तिन कै तौ कहुं लता लागी नहीं पेषिये॥ २॥

उदर में नरक नरक अधद्वारनि मैं
कुचन मैं नरक नरक भरी छाती है।
कंठ में नरक गाल चिबुक नरक बिंब
मुख नैं नरक जीभ लार हू चुचाती है॥
नाक में नरक आंषि कांन में नरक बहै
हाथ पांव नख शिख नरक दिषाती है।
सुन्दर कहत नारी नरक को कुंड यह
नरक में जाइ परै सो नरक पाती है॥ ३॥

से उपमा देकर रूपक बांधा है। वेनी=केश की बंधी हुई चोटी। फन=झूमका जो चोटी के ओर पर लटकाया जाता है उसको 'डोरी' भी कहते हैं। यही सांपनी का फण है मानों। राक्षस बदन=राक्षस का सा भक्षण-शील मुख, जिसके देखने से ही कामी पुरुष शिकार हो जाता है, यही उसका खांऊं खाऊं पना समझिये।

(२) नारी को विषवृक्ष वा बेल वा विषकन्या कहा है। जर=जड़। फर=फल तंतू=भुजाएं। एक तरु=संतजन।

(३) बिम्ब=होंठ, बिम्बफल समान लाल कोमल मीठे। चुचाती=टपकती।

(३) दिषाती है=दिखलाई देते हैं। नरक-पाती=नरक-गामी। (पाती=पड़नेवाला)।

कामिनी कौ अंग अति मलिन महा अशुद्ध
रोम रोम मलिन मलिन सब द्वार हैं।
हाड मांस मज्जा मेद चाम सौं लपेट राषै
ठौर ठौर रकत के भरेई भंडार हैं॥
मूत्र ऊ पुरीप आंत एक मेक मिलि रही
और ऊ उदर मांहिं विविध विकार हैं।
सुन्दर कहत नारी नख शिख निंद रूप
ताहि जे सराहैं तेतौ वडेई गंवार हैं॥ ४॥

कुण्डलिया

रसिक प्रिया रस मंजरी और सिंगार हि जानि।
चतुराई करि वहुत विधि विषै वनाई आंनि॥
विषै वनाई आंनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नख शिख नारी॥
ज्यौं रोगी मिष्टान पाइ रोगहि विस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जुतौ रसिक प्रिया धारै॥ ५॥

---

(४) निंद रूप=निंदा के योग्य आकार वा शरीर वाली। निंद्य-रूपा।

(५) रसिक-प्रिया=महाकवि केशवदासजी का रचा रसकाव्य वा नायिकाभेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। केशवदासजी का समय १६१२ से १६७४ तक का है। रसिक प्रिया ग्रन्थ के सिवा इनका रचा "नखशिख" भी है। सुन्दरदासजी ने इन के रसग्रन्थों पर कटाक्ष ही नहीं किया है वरन रसिकता का पूर्ण खण्डन कर दिया है। रसमंजरी-संस्कृत का रसकाव्य ग्रन्थ। इस ही का अनुवाद 'सुन्दर शृंगार' काव्य है जिसका नामोल्लेख यहां सुन्दरदासजी ने किया है। आगरानिवासी सुन्दर कविने यह ग्रन्थ संवत् १६८८ में बनाया था। भाषा में रसमंजरी उस समय या पहिले का कोई ग्रन्थ नहीं जाना गया। विषै वनाई आनि=विषय (रसिकता) को लेकर सुन्दररूप दे दिया जो वास्तव में महाविष हैं। स्त्रीलिंग क्रिया में चिंत्य है। इसका झुकाव उक्त

रसिक प्रिया कै सुनत ही उपजै वहुत विकार।
जो या मांही चित्त दे वहै होत नर प्वार॥
वहै होत नर प्वार वार तौ कछुव न लागै।
सुनत विषय की वात लहरि विष ही की जागै॥
ज्यौं कोइ ऊंघै हुतौ लही पुनि सेज बिछाई।
सुन्दर ऐसी जांनि सुनत रसिक प्रिया भाई॥ ६॥

॥ इति नारी निंदा कौ अंग॥ ९॥

अथ दुष्ट कौ अंग (१०)॥

मनहर

आपनै न दोष देषै परके औगुन पेषै
दुष्ट कौ सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसैं काहू महल संभारि राप्यौ नीकै करि
कीरी तहां जाइ छिद्र ढूंढत फिरतु है॥
भोर ही तें सांझ लग सांझ ही तें भोर लग
सुन्दर कहत दिन ऐसें ही भरतु है।
पाव के तरोस की न सूझै आगि मूरष कौं
और सौं कहत सिर ऊपर वरतु है॥ १॥

ग्रन्थों की ओर भी हैं जिनमें प्रथम दो स्त्रीवाची है। धारै=पढै विचारै और उसमें रत हो जाय।

(६) ऊंघै=ऊंघतो। "ऊंघै छोर बिछायौ लाध्यो" प्रसिद्ध कहावत है। रसिकों को ऐसा वा ऐसे रसिकता के ग्रन्थ मिल जांय फिर करेला और नीम चढा। वावलो वाई भूतों खदेडो हो जाय।

(१) तरोस=तले, नीचे (जैसे पडोस। न सूझै...अपना दोष तो आप कों दीखै नहीं दूसरों का दोष दिखाता फिरै। (मुहाविरे हैं)।

इन्दव

घात अनेक रहैं उर अंतर दुष्ट कहै मुख सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्याघ्र हि त्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥
ऊपर तें छिरकै जल आनि सु हेठ लगावत जारि अंगीठी।
या महिं क्रूर कछू मति जानहुं सुन्दर आंपुनि आंषिन दीठी॥ २॥

आपुन काज संवारन कं हित और कौ काज विगारत जाई।
आपुन कारज होउ न होउ बुरौ करि और कौ डारत भाई॥
आपुहु पोवत औरहु पोवत षोइ दुवों घर देत वहाई॥
सुन्दर देपत ही वनि आवत दुष्ट करै नहिं कौंन बुराई॥ ३॥

ज्यौं नर पोपत है निज देह हि अन्न विनाश करै तिहिं वारा।
ज्यौं अहि और मनुष्य हि काटत वाहि कछू नहिं होइ अहारा॥
ज्यौं पुनि पावक जारि सवै कछु आपुहु नाश भयौ निरधारा।
त्यौं यह सुन्दर दुष्ट सुभाव हि जानि तजौ किन तीन प्रकारा॥ ४॥

सर्प डसै सु नहीं कछु तालक वीछु लगै सु भलौ करि मांनौ।
सिंह हु षाइ तौ नांहि कछू डर जौ गज मारत तौ नंहिं हांनौ॥
आगि जरौ जल वूडि मरौ गिरि जाइ गिरौ कछु भै मति आंनौ।
सुन्दर और भले सव ही दुख दुर्जन संग भलौ जिनि जांनौ॥ ५॥

॥ इति दुष्ट कौ अंग ॥ १० ॥

---

(२) व्याघ्र=चीता। "अधिक नवत है ढींकली, चीता, चोर, कमान"। पीठी=पीठ (पीठताकना दूसरे से दगा करना।) हेठ लगावत···"आग लगाकर पानी को दौड़ना"। (३) तीन प्रकार के पिशुन यहां वर्णन किये हैं जो उत्तम, मध्यम, कहे जा सकते हैं। (४) अन्न=अन्य, दूसरा मनुष्य। तिहिं वारा=तत्काल, तुरन्त। सवै कछु···दूसरे के सर्वस्व का और अपना भी नाश। इस में तीनों प्रकार के दुष्टों के उदाहरण दिये हैं।

(५) तालक=तअलुक (अ०) लगाव, कुछ नुकसान का खयाल (मत करो)

अथ मन को अंग (११)॥

मनहर

हटकि हटकि मन रापत जु छिन छिन
सटकि सटकि चहुं वोर अव जात है।
लटकि लटकि ललचाइ लोल वार वार
गटकि गटकि करि विप फल पात है॥
झटकि झटकि तार तोरत करम हीन
भटकि भटकि कहुं नैकुं न अघात है।
पटकि पटकि सिर सुन्दर जु मानी हारि
फटकि फटकि जाइ सुधौं कौन वात है॥ १॥

पल ही में मरि जात पल ही में जीवत है
पल ही में पर हाथ देपत विकांनौं है।
पल ही में फिरै नव खंडहु ब्रह्मण्ड सब
देप्यौ अनदेप्यौ सुतौ यातै नहिं छांनौं है।
जातौ नहिं जानियत आवतौ न दीसै कछु
ऐसी सी वलाइ अब तासौं पर्‌यौ पांनौं है।

हानौं=हानि। इस छंदमें दुष्ट पुरुष के संसर्ग को अन्य महादुःखों और नाशक कर्मों वा कारणों से भी बहुत हानिकारक बताया है। अर्थात् दुष्ट का संसर्ग कभी नही करना चाहिये।

(११ वां अंग) मन के अंग में मन के लक्षण, स्वभाव, शक्ति, अवगुण, गुण महिमा सब वर्णन किये गये हैं। यह महान् शक्ति, मनुष्य के शरीर में है। यह आत्मा का प्रतिभास है। इस से बुरा होना चाहो बुरा हो लो, भला होना चाहो भला होलो। "मन एव मनुष्याणां कारणम् बंधमोक्षयोः"। इसही से बंधन और इसही से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। (देखो भागवत् एकादश स्कंध भिक्षु गीता)।

(१) हटकि=रोककर, मना करके। सटकि=सटसे निकल जाता है)।

सुन्दर कहत याकी गति हू न लषि परै
"मनकी प्रतीति कोऊ करै सो दिवांनौं है" ॥ २ ॥

घेरिये तो घेर्‌यो हू न आवत है मेरो पूत
जोई परमोधिये सु कान न धरतु है।
नीति न अनीति देषै शुभ न अशुभ पेषै
पल ही मैं होती अनहोती हु करतु है॥
गुरु की न साधु की न लोक वेद हू की शंक
काहू की न मानै न तो काहू तें डरतु है।
सुन्दर कहत ताहि धीजिये सु कौंन भांति।
"मन को सुभाव कछु कह्यौ न परतु है" ॥ ३ ॥

काम जब जागै तब गनत न कोऊ साष
जानै सब जोई करि देषत न माधी है।
क्रोध जब जागै तब नैकु न संभारि सकै
ऐसी विधि मूलकी अविद्या जिनि साधी है।

कि=बड़े चाव से लचक २ कर। लोल=चञ्चल। तार तोरत=एकाग्रता लगी हुई विगाड़ देता है। करमहीन=मंदभागी। पटकि सिर=सिर मार कर, बहुत कर। फटकि=फटकारे से, वेबसी वा वेपरवाही से। सुधौं=इस तरह की, इस की (यह क्या बात है, अर्थात् अचरज है)।

(२) मरि जात=वृत्तिरहित, वश में आजाता है। पर हाथ=प्रेमवश होकर रे पुरुष वा स्त्री में जा बैठता है। अनदेख्यो=इसकी विशालता ऐसी हैं कि स्वप्न वा योगदृष्टि से अज्ञात पदार्थ भी जान सकता है। पानौं पर्‌यो=पाला पड़ना, म पड़ना।

(३) मेरो पूत="म्हारो बेटो" यह (रजवाड़ी भाषा में) तर्क भरी बोली। इसमें कुछ जबरदस्तपने, अवशता आदि का भाव है। कान न धरतु=सुनता ीं। होती अनहोती=सुकर्म, अकर्म। सहज वा असम्भव।

लोभ जब जागै तब त्रिपत न क्यौंहूं होइ
सुन्दर कहत इनि ऐसै हि मैं पाधी है।
मोह मतवारौ निश दिन हि फिरत रहै
"मन सौ न कोऊ हम देष्यौ अपराधी है" ॥ ४ ॥

देषिबे कौं दौरै तो अटकि जाइ वाही वोर
सुनिबे कौं दौरै तो रसिक सिरताज है।
सूंघबे कौं दौरै तो अघाइ न सुगंध करि
पाइबे कौं दौरै तो न धापै महाराज है॥
भोग हू कौं दौरै तो तृपति नहीं क्यौं हूं होइ
सुन्दर कहत याहि नैकहूं न लाज है।
काहू को कह्यो न करै आपुनी ही टेक परै
"मन सौ न कोऊ हम जान्यो दगाबाज है" ॥ ५ ॥

देषै न कुठौर ठौर कहत और की और
लीन जाइ होत हाड मांस ऊ रगत मैं।
करत बुराई सर औसर न जानै कछु
धका आइ देत राम नाम सौं लगत मैं॥
वाहे सुर असुर बहाये सब भेष जिनि
सुंदर कहत दिन घालत भगत मैं।

---

(४) साप=सम्बन्ध, रिश्तेदारी। मा धी=माता वा युवती। महापाप की मति होने से विवेकशून्यता का वर्णन है। मूल की अविद्या=मूला माया, वा घोर मूर्खता। पाधी=खाया, ग्रहण किया। अर्थात् लोभवश ही लीन अलीन का विवेक जाता रहता है।

(५) महाराज=बड़ा जबरदस्त बलवान (यह तर्क से कहा है) टेक परैं=हठ करैं। दगाबाज=बेईमान, धोखेबाज, दुष्ट।

और ऊ अनेक अंतराय ही करत रहै
"मन सौ न कोऊ है अधम या जगत मैं" ॥ ६ ॥

जिनि ठगे शंकर विधाता इन्द्र देव मुनि
आपनौ ऊ अधपति ठग्यौ जिनि चन्द है।
और योगी जंगम संन्यासी शेष कौंन गनै
सब ही कौं ठगत ठगावै न सुछन्द है॥
तापस ऋपीश्वर सकल पचि पचि गये
काहू के न आवै हाथ ऐसौ या पै वंद हैं।
सुंदर कहत वसि कौंन विधि कीजै ताहि
"मन सौ न कोऊ या जगत मांहि रिन्द है" ॥ ७ ॥

रङ्क कौं नचावै अभिलाषा धन पाइवे की
निश दिन सोच करि ऐसैं ही पचत हैं।
राजाहि नचावै सब भूमि ही को राज लेव
औरउ नचावै कोई देह सौं रचत हैं॥
देवता असुर सिद्ध पन्नग सकल लोक
कीट पशु पंपी कहु कैसैं के वचत हैं।
सुंदर कहत काहू संत की कही न जाइ
"मन कै नचाये सब जगत नचत हैं" ॥ ८ ॥

---

(६) लीन=लिप्त, अवज्ञा न करै। सर औसर=वक्त वे वक्त, समय कुसमय। धका आइ देत=हटा देता है-जब भगवान में भक्ति की लगन होने लगती है तब। वाहे=हानि पहुंचाई। वहाये=काली धार डुबो दिये। अर्थात् सन्मार्ग से हटाकर कुमार्ग में लगा रिये। दिन घालत=(मुहाविरा) दुःख पहुंचाता है। अंतराय=विघ्न।

(७) अधिपति=स्वामी-मनका स्वामी चन्द्रमादेव है। या पै वंद हैं=इसके पास ऐसे पेच हैं। अर्थात् बड़ा चलाक है। रिंद (फा०)=बदमाश, शैतान। असल में रिंद फकीर अवधूतको कहते हैं। (८) नचावै=जैसे वाजीगर वंदर को

इन्दव

केतक द्यौस भये संमुझावत नंकु न मांनत है मन भौंदू।
भूलि रह्यौ विषया सुख मैं कछु और न जानत है सठ दौंदू॥
आंपि न कांन न नाक विना सिर हाथ न पांव नहीं मुख पौंदू।
सुन्दर ताहि गहै कोउ क्यौं करि नीकसि जाइ वडौ मन लौंदू॥ ९॥

दौरत है दश हूं दिश कौं सठ वायु लगी तव तें भयौ वैंडा।
लाज न कान कछू नहि रापत शील सुभावकि फोरत मैंडा॥
सुंदर सीप कहा कहि देइ भिदै नहि वांन छिदै नहि गैंडा।
लालच लागि गयौ मन वीपरि वारह वाट अठारह पैंडा॥ १०॥

स्वान कहूं कि शृगाल कहूं कि विडाल कहूं मन की मति तैसी।
ढेढ कहूं किधौं डूम कहूं किधौ भांड कहूं कि भंडाइ दे जैसी॥

नाच नचावै। अपने वश में करके जो चाहे सो ही भला बुरा काम करावै। संसारी जाल में फंसाये रक्खै।

(९) भौंदू=मूर्ख। दौंदू=दोदा एक कव्वा होता है, इस अर्थ में नीच वा-और न जानत है शठ दौंदू=अन्य कार्य (तत्कार्य) करना जानता नहीं। वा-तोंदू तुंद फुलानेवाला पिटभर, रुडखव्वा, निठल्ला। पौंदू=पूंद, चूतड़, अधोभाग शरीर का वा पौंदा सी गर्दन। लौंदू=लौंडा, चालाक। वा लौंदा-मक्खन के समान चिकना वा फिसलना जो हाथ में से खिसक जाय।

(१०) वैंडा=वंट, वावरा भांड, टेढ़ा, अक्कड़ बांका। मैंडा=मेर खेतकी, मर्यादा, हद्द। भिदै नहिं वांन=वांण से भेदन के योग्य नहीं। छिदै नहीं गैंडा=गैंडे की ढाल शस्त्र से नहीं कट सकती, कटै वहीं फिर भर जाती और वैसी ही हो जाती है। अकाट्य, अच्छेद्य। गयो मन वीपरि=मन बिखर गया, नाना मार्ग वा तरफ चला गया, काबू से बाहर हो गया। वारह वाट= (मुहाविरा) बेकाबू, कपूत, नालायक निकल गया। अठारह पैंडा=और भी बढ़कर बिगाड़ हो गया। नष्ट भ्रष्ट। "वारह वाट अठारह पैंडा"—यह अकेला भी मुहाविरा है अर्थ बिगड़ा वा बिगाड़। तितर

चौर कहूं वटपार कहूं ठग जार कहूं उपमा कहुं कैसी।
सुन्दर और कहा कहिये अव या मन की गति दीसत ऐसी॥ ११॥
कै वर तूं मन रंक भयौ सठ मांगत भीप दशौं दिश डूल्यौ।
कै वर तैं मन छत्र धर्यौ सिर कामिनि संग हिंडोरनि भूल्यौ॥
कै वर तूं मन छीन भयौ अति कै वर तूं सुख पाइर फूल्यौ।
सुंदर कै वर तोहि कह्यौ मन कौंन गली किहिं मारग भूल्यौ॥ १२॥
इन्द्रिनि के सुख चाहत है मन लालच लागि भ्रमैं सठ यौं हीं।
देपि मरीचि भर्यौ जल पूरन धावत है मृग मूरष ज्यौं हीं॥
प्रेत पिशाच निशाचर डोलत भूष मरे नहिं धापत क्यौं हीं।
वायु वघूर हिं कौंन गहै कर सुंदर दौरत है मन त्यौं ही॥ १३॥
कौन सुभाव पर्यौ उठि दौरत अंमृत छाडि चचोरत हाडै।
ज्यौं भ्रमकी हथिनी द्रग देपत आतुर होइ परै गज पाडै॥
सुंदर तोहि सदा संमुभावत एक हु सीष लगै नहिं रांडै।
वादि वृथा भटकै निश वासर रे मन तूं भ्रमवौ किन छांडै॥ १४॥

वितर। "मनही के घाले गये वहि घर वारह वाट"। "नई जवानी वारह वाट"। "हवा लगी संसार की हो गया वारह वाट" : मोह को आदि लेकर वारह मार्ग।

(११) स्वान=श्वान, कुत्ता। श्रृगाल=स्यार, श्याल। विड़ाल=विलाव, विल्ली। ढेढ=नीचातिनीच पुरुष। डूम=खुशामदी। भांड=प्रशंसा से मांग खाने वाला। भंडाइ दे=दूसरों की भांडणी भांडै, बुराई करै।

(१२) कै वर=कितनी वेर। डल्यौं=(रा०) डुला, फिरा। पाइर=(रा०) पाकर। फूल्यो=फूला न समाया अंग में। कौन गली (भूल्यो। किहि मारग भूल्यौ=मार्ग भूलना, किस गली जाना=रास्ता भूलकर वेराह होना, गुमराह होना। (मुहाविरे है)। (१३) मरीचि=मरीचिका, मृगतृष्णा का जल। प्रेत—उनकी तरह। कर=हाथ में।

(१४) चचोरत=निचोरता, चूसता है (मु०)। भ्रमकी=वनावटी, धोखेकी। रांडै=सीख रांड नहीं लगती। अथवा रांडका के सीख नहीं लगती।

है सब कौ सिरमौर ततक्षिन जौ अभि अंतर ज्ञान बिचारै।
जौ कछु और विषै सुख बंछत तौ यह देह अमौलिक हारै।
छाडि कुबुद्धि भजै भगवंत हि आपु तिरै पुनि औरहि तारै।
सुंदर तोहि कह्यौ कितनी वर तूं मन क्यौं नहि आपु संभारै॥ १५॥
जौ मन नारिकी वोर निहारत तौ मन होत हैं ताहि कौ रूपा।
जौ मन काहु सौं क्रोध करै जब क्रोधमई होइ जात तद्रूपा॥
जौ मन माया हि माया रटै नित तौ मन बूडत माया के कूपा।
सुन्दर जौ मन ब्रह्म विचारत तौ मन होत है ब्रह्मस्वरूपा॥ १६॥

मनहर

कबहूं के हंसि उठै कबहूं कै रोइ देत
कबहूं बकत कहुं अंत हू न लहिये।
कबहूंक पाइ तौ अघाइ नहिं काही करि
कबहूंक कहै मेरै कछु नहिं चहिये॥
कबहूं आकाश जाइ कबहूं पाताल जाइ
सुन्दर कहत ताहि कैसैं करि गहिये।
कबहूंक आइ लागै कबहूं उतारि भागै
"भूत के से चिन्ह करै ऐसौ मन कहिये"॥ १७॥
कबहूं तौ पांप कौ परेवा कै दिपावै मन
कबहूंक धूरि के चांवर करि लेत है।

---

(१५) और (१६) में मन को वास्तविक वस्तु ब्रह्मस्वरूप की ओर ध्यान दिलाया गया है। 'तद्रूपा में तकार द्वित्व नहीं होगा। जिस पदार्थ को अनुभव करै वही या उस जैसा हो जाना यह आत्मा की शक्ति है यह एक दार्शनिक सिद्धान्त है और बहुत अंश में सत्य है, और शास्त्रों में जगह २ इसका वर्णन है और सिद्धि का यही हेतु है।

कबहूं तौ गोटिका उछारत आकाश वोर
कबहूंक राते पीरे रङ्ग श्याम सेत है॥
कबहूं तो आंव कौ उगाइ करि ठाडौ करै
कबहूं तो सीस धर जुदे करि देत है।
बाजीगर कौ सो ख्याल सुन्दर करत मन
सदाई भ्रमत रहै ऐसो कोऊ प्रेत है॥ १८॥

कबहूंक साध होत कबहूंक चोर होत
कबहूंक राजा होत कबहूंक रङ्क सौ।
कबहूंक दीन होत कबहूं गुमांनो होत
कबहूंक सूधौ होत कबहूंक वंक सौ॥
कबहूंक कामी होत कबहूंक जती होत
कबहूंक निर्मल होत कबहूंक पंक सौ।
मन कौ स्वरूप ऐसौ सुन्दर फटिक जैसौ
कबहूंक सूर होत कबहूं मयंक सौ॥ १९॥

---

(१८) पांप को परेवा=एक पांख हाथ में दिखलाकर हथ फेरी से उसका पक्षी बना कर दिखावै। इस छन्द में मन की बाजीगरी की सी कलाएं दिखाकर समझाया है। धूरि के चांवर=धूल की चुटकी के चावल बना देता है। गौटिका=गोली आकाश में उड़ा देता है। और नाना प्रकार के रङ्ग बदल देता है और उनकी हेर फेर कर देता है। आंव—सूखी गुठली को मिट्टी में गाडकर जल छिड़क कर आम का रोंख उगा देता है। सीस धर...किसी पुरुष को कटा दिखा देता है, उसका सिर अलग, धड़ अलग। ऐसा आख्यान तुजुक जहांगीरी में लिखा है और सुना भी जाता है। प्रेत भूत भी ऐसे चहन दिखा देता है, छलावा होकर अनेक अद्भुत भयानक बातें कर देता है। बाजीगर और भूत-प्रेत जगह २ भटका करते हैं। इससे वहां प्रेत को बाजीगर के साथ बताया है।

(१९) गुमानी=घमंडी। फटिक=बिल्लोर जिनके पास जो रङ्ग लाया जाय वैसा ही रङ्ग का हो जाता है। सूर=सूर्य।

हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर कौ पान किधौं
ध्वजा कौ उडान कहौं थिर न रहतु है।
पानी कौ सौ घेरि किधौं पौंन उरझेर किधौं
चक्र कौ सौ फेरि कोऊ कैसें कै गहतु है॥
अरहट माल किधौं चरषा कौ घ्याल किधौं
फेरि पात वाल कछु सुधि न लहतु है।
धूम कौ सौ धाव ताकौ राषिवे कौ चाव ऐसौ
मन कौ सुभाव सु तौ सुन्दर कहतु है॥ २०॥

सुख मानै दुख मानै सम्पति विपति मानै
हर्ष मानै शोक मानै मानै रङ्क धन है।
घटि मानै वढि मानैं शुभ हू अशुभ मानै
लाभ मानै हानि मानै याही तें कृपन है॥
पाप मानै पुन्य मानै उत्तम मध्यम मानै
नीच मानै ऊंच मानै मानै मेरौ तन है।
स्वरग नरक मानै वन्ध मानै मोक्ष मानै
सुन्दर सकल मानै तातै नांउं मन है॥ २१॥

---

(२०) पानी को सो घेरि=भँवर। अहर नदी का। उरझेर=वघूरा, भभूला। घ्याल=फिरने की घटना, वा चरखी जिसका वालकों का खिलौना होता है। धूम को सो धाव=धुंवां आग से निकल कर ऊंची उठ फैलती है और फिर विलायमान हो जाती है वैसे। राषिवे को चाव=इसका सम्बन्ध धुवां से होतो यह अर्थ हो कि धुवां रोक रखना जैसा कठिन है वैसे ही मन का रोकना है। और जो इसका सम्बन्ध मन के वर्णित लक्षणों और स्वभावों के साथ हो तो यह अर्थ हो कि मनको वश करने की लालसा एक साधारण वात नहीं है। क्या ऐसे दुर्दम मनरूपी प्रवल पिशाच को कैद करने का चाव है, क्या इसका चाव? यह प्रश्न करने से अभिप्राय खुलेगा। ऐसा स्वभाव मनका है, आप इसको मामूली न जानें।

(२१) इस में "मन" इस शब्द की व्युत्पत्ति को दिखाते हैं कि मन यह

नाम इसको क्यों दिया गया ? रङ्क=दीन, दरिद्र । धन=धनाढ्यता । मानैं मेरो तन है=मन शरीर से पृथक् होने पर भी शरीर में ममता होना अज्ञान है । यही अविवेक और इनको पृथक २ मानना ही विवेक है । नाउं=नाम (यह) मन यह नाम क्यों है, इसका कारण बताया है मन शब्द सं० मनस् का भाषारूप है । और मन

शब्द की "मन्यते अनेन इति मनः मन् करणे असुन्"-यह व्युत्पत्ति हैं । जिस से मानने का काम हो, जो मानने का कारण वा साधन वा ओजार हो, सो ही मन । वैशेषिक शास्त्र में मन को संकल्प विकल्प रूपी अणु (जो अत्यन्य सूक्ष्म और देखने में न आवै) शक्ति, आत्मा से पृथक् कहा है, क्योंकि इस को द्रव्य माना गया है और आत्मा द्रव्य नहीं है । संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, वियोग, परत्व, अपरत्व, संस्कार-ये आठ इस के गुण कहे हैं । ज्ञान और कर्म दोनों धर्म इस में हैं । यह अंतःकरणचतुष्टय का एक विभाग वेदांत में हैं-मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार । परन्तु योग में मन ही का नाम चित्त कहा है । जैन और बौद्ध शास्त्रों में मन को छठी इंद्रिय कहा गया गया है । उपनिषदों में मन का बहुत वर्णन है । मन को इंद्रियों का राजा और रथी और प्रेरक और ब्रह्म ही कहा है । इत्यादि यों शास्त्रों में मन के सम्बन्ध में भांति २ का विचार हुआ है । यह आभ्यन्तर शक्ति है जिसके गुण, कर्म, लक्षण, धर्म आदि से जैसा ज्ञानियों का प्रतीत हुआ वैसा ही लिखा है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह हमारे अन्दर एक महान् शक्ति है । इसका एक लोक वा राज्य वा पृथक् अधिकार मानना उचित है । चार शरीरों-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और प्रत्यक्—से यह एक शरीर वा लोक का राजा वा स्वयम् लोक है । चार कोशों अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय-में यह एक कोश कहा गया है । इसमें बनाने वा सृष्टि करने की शक्ति है । पुराणों में ब्रह्माजी मन से और ब्रह्माजी के मन से प्रथम सृष्टि हुई । उसही को मानसिक सृष्टि कही जाती है । सातों महर्षि, आदि पितृ, और चार मनु मानसिक सृष्टियों यथा गीता में (१०।६) भी कहा है । स्थूल देह की सृष्टि का क्रम पीछे से हुआ । अनेक दार्शनिक विद्वान् सृष्टि को मनोमय—ईश्वर शक्ति-भगवान् के मन से प्रादुर्भूत मानते हैं । इस ही से वेंदांत में इस सृष्टि वा प्रकृति को स्वप्न भी कहा है । मन से ऊपर (इस ही का एक गुण) विवेक बुद्धि,

जोई जोई देषै कछु सोई सोई मन आहि
जोई जोई सुनै सोई मन ही कौं भ्रम है।
जोई जोई सूंघै जोई पाई जौ सपर्श होइ
जोई जोई करै सोऊ मन ही कौं क्रम है॥
जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै
जहां जहां जाइ सोई मन ही कौ श्रम है।
जोई जोई कहै सोई सुन्दर सकल मन
जोई जोई कल्पै सु मन ही को ध्रम है॥ २२॥

एक ही विटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देषियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु कौं अनादि काल मूल है॥
दश च्यारि लोक लौं प्रसरि जहां तहां रह्यौ
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है॥ २३॥*

शुद्ध बुद्धि है। उसका साधन द्वारा प्रभाव वा बल बढ़ाने से मन की वृत्तियां वा चंचलता रोकने से आत्मा का स्वरूप प्रत्यक्ष वा सिद्ध होने लगता है। यह सब को सम्मत है।

(२२) क्रम=विधान, कर्म। अनुरागै=अनुराग वा चाव करके ग्रहण करै ध्रम=धर्म, वास्तविक स्वभाव। कल्पै=संकल्प-विकल्प करै।

* छंद २३ वां चित्रकाव्य भी है। देखो चित्रकाव्य के चित्र।

(२३) विटप=वृक्ष। विश्व=संसार। संसार में घटाव बढाव केवल वृक्ष के पत्तों, फूलों और फलों के समान बताया है, ऐसे ही जन्मांतर है। शास्त्र में (गीता १५।१-३।) सृष्टि को अश्वत्थ (पीपल) इसही कारण से कहा है। और

तौ सौ न कपूत कोऊ कतहूं न देपियत
तौ सौ न सपूत कोऊ देपियत और है॥
तूही आप भूलि महा नीच हूं तें नीच होइ
तूं ही आपु जाने तें सकल सिर मौर है॥
तूं ही आपु भ्रमै तव भ्रमत जगत देपै
तेरै थिर भये सब ठौर ही कौ ठौर है।
तूं ही जीव रूप तूं ही ब्रह्म है आकाशवत
सुन्दर कहत मन तेरी सब दौर है॥ २४॥
मन ही के भ्रम तें जगत यह देपियत
मन ही कौ भ्रम गये जगत विलात है।
मन ही के भ्रम जेवरी मैं उपजत सांप
मन के विचारें सांप जेवरी समात है॥

इसका मूल (अनादि काल ब्रह्म) है अनादि काल। चोदह लोक—(सात ऊपर के) भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक। (सात नीचे के) अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल। अध=नीचे। ऊरध=ऊपर। ऊंच नीच सापेक्षता से ही है असल में नहीं है। सूक्ष्म=इंद्रियगोचर न हो, मन बुद्धयादिक परमात्मा तक। स्थूल=इंद्रियगोचर, पंच तत्व और उन से बने पदार्थ। सत=तीनों काल में रहै। असत्य=जो विगड़ै, वदलै, वा नाश हो। अक्षर और क्षर। सद्वाद के प्रवर्त्तक रामनुजादि। असद्वाद के चार्वाकादि वा वेदांत भी। (यह चित्रकाव्य है।)

(२४) इस छंद में मन से सम्बोधन करके वहुत उत्तम रीति से मन को समझाया है और वहुत तत्व की वातैं कही है। मन को आत्मा का वेटा कहा है। अवगुण में प्रवृत्त होनेसे पुत्र भी कुपुत्र कहाता है और सद्गुणी होने से सुपुत्र वैसे ही यह मन विषयादि से हटकर अहंकार को मिटा कर परमात्मतत्व अपने पिता का अनुयायी और आज्ञावर्त्ती हो जाय तो इस की सपूताई है। नहीं तो कूपताई। आपु

मन ही के भ्रमतै मरीचिका कौ जल कहै

मन ही कें भ्रम सींप रूपौ सौ दिपात है।

सुन्दर सकल यह दीसै मन ही कौ भ्रम

"मन ही कौ भ्रम गये ब्रह्म होइ जात है" ॥ २५ ॥

मन ही जगत रूप होइ करि विसतर्यौ

मन ही अलप रूप जगत सौं न्यारौ है।

मन ही सकल घट व्यापक अखण्ड एक

मन ही सकल यह जगत पियारौ है॥

मन ही आकाशवत हाथ न परत कछु

मन के न रूप रेप वृद्ध ही न वारौ है॥

सुन्दर कहत परमारथ विचारै जब

"मन मिटि जाइ एक ब्रह्म निज सारौ है" ॥ २६ ॥

॥ इति मन कौ अंग ॥ ११ ॥

जानते=अपना असली स्वरूप जान लेने से-अर्थात् 'अहं ब्रह्मास्मि"—मैं आत्मा ही हूं। स्थिर भये=चंचलता छुट कर एकाकार हो जाने से। आकाशवत=आकाश समान सर्वव्यापी और अलिप्त और अतिसूक्ष्म। मन, जीव होकर, जीव फिर ब्रह्म हो जाय-यह क्रम है।

(२५) यहां तीन दृष्टान्त वेदांतसे दिये हैं:—(१) रज्जुसर्प का (२) रजत शुक्ति का (३) मृगमरीचिका का यह तीनों अध्यास वाद से सम्बन्ध रखते हैं। वेदांत सूत्र में अ० ३ पाद ३-५ तथा शांकरभाष्य के उपोद्घात में विस्तार से है। अध्यास ही का भ्रम कहते हैं।

(२६) मन ही जगत रूप=यह जगत मनोमय सृष्टि है। ईश्वर का एक विचार मात्र यह सकल संसार है। फिर, यह मन सकल स्थूल प्रपंच से पृथक् है, क्योंकि यह सूक्ष्म है इसका स्वभाव, धर्म, गुण स्थूल प्रकृत्ति से भिन्न है। प्रपंच दृष्ट यह अदृष्ट। सकल घट व्यापक=यहां मन को आत्मस्वरूप मानकर सर्वव्यापक कहा। "मनो वै ब्रह्म" (श्रुति)

अथ चाणक को अंग (१२)॥

मनहर

जोई जोई छूटिवे कौ करत उपाइ अङ्ग
सोई सोई दृढ करि वन्धन परत है।
जोग जज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि और
झंपापात लेत जाइ हिंवारै गरत है॥
कानऊ फराइ पुनि केशऊ लुंचाइ अङ्ग
विभूति लगाइ सिर जटाऊ धरत है।
विनु ज्ञान पाये नहिं छूटत हृदै की ग्रन्थि
सुन्दर कहत यौं ही भ्रमि कै मरत है॥ १॥

पियारो=प्यारा, प्रिय। आत्मा आनन्दस्वरूप है। सत, चित, आनन्द प्राप्त तीन गुणोंमें आनंद गुण कथित है, यहां। रूप रेष=(महाविरा) आकार रहित। आकार रेखाओं का विकार होता है। रेखा परमाणुओं का विकार है। अतः सूक्ष्म से स्थूल का वनना प्रतीत होता है। मन मिटि जाइ=यहां मन के संकल्प विकल्पात्मक स्वभाव वा धर्म से प्रयोजन है। जव अंतःकरण की वृत्ति होती रह जाय, साधन, समाधि वा प्रेमाभक्ति आदि—विधानों से, तव परमात्म स्वरूप का अपरोक्ष अनुभव हो जाता है। निज सारौ=निज सार "राम नाम निजसार है काया मोक्ष करंत" इत्यादि में निजसार का प्रयोग है। असल, अपना, सारतत्व वा स्वरूप। यही सव साधनों का परम फलस्वरूप सिद्धि और यही मोक्ष वा मुक्ति है। इस मन के अंग को श्री दादूदयालजी की वाणी के अंग १० मन के अङ्ग से मिलाने से और भी अधिक आनन्द होगा। अन्य महात्माओं-रज्जवजी की वाणी १५२ का अङ्ग। यही सुन्दरदासजी की साखी में मनका अङ्ग। जगजीवणजी की वाणी में। कवीरजी की वाणी में। इत्यादि।

(चाणक को अङ्ग) (१) चाणक=कोरड़ा, ताजियाना, चपेटिका। चितावन

निर्मात्रिक (उक्त)

जप तप करत धरत व्रत जत सत
मन वच क्रम भ्रम कपट सहत तन।
वलकल वसन असन फल पत्र जल
कसत रसन रस तजत वसत वन॥
जरत मरत नर गरत परत सर
कहत लहत हय गय दल वल घन।
पचत पचत भव भय न टरत सठ
घट घट प्रगट रहत न लपत जन॥ २॥
जोग करै जाग करै वेद विधि त्याग करै
जप करै तप करै यूं ही आयु पूटि है।
यम करै नेम करै तीरथऊ व्रत करै
पुहमी अटन करै वृथा स्वास टूटि है॥
जीवे को जतन करै मन में वासना धरै
पचि पचि यों ही मरै काल सिर कूटि है।

इस में अनेक प्रकार वेप और रूढंग को वृथा, और ज्ञान ही को सर्वोत्तम कहा है। हृदै की ग्रन्थि=दिल की घुंडी। मन की कसक। संदेह, संशय। भ्रमि के मरत है=अनेक प्रकार के विध-विधान, मतमतांतर, पठनपाठन, ढूंढ तलाश, इधर-उधर के शास्त्र सिद्धांत आदि को ढूंढते फिरने से सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होवै नहीं, उलटा मिथ्या ज्ञान होने से अपनी आत्मा को मारना है। वृथा ही पचकर मरना है।

(२) कट का 'कपट' छंद के लिये बनाना पड़ा। वलकल=छाल। वसन=वस्त्र। असन=भोजन। रसन=जिह्वा। घटघट''=ईश्वर सर्वव्यापी सब पदार्थों में विद्यमान है, तो भी उसको यह अज्ञ मनुष्य नहीं जान लेता है अनेक कठिन उपाय और तपादि साधना करने पर भी प्राप्त नहीं कर सकता। अर्थात् ज्ञान के बिना ईश्वर प्राप्ति नहीं है।

औरऊ अनेक विधि कोटिक उपाइ करै
सुन्दर कहत विनु ज्ञान नहिं छूटि है ॥ ३ ॥
वुद्धि करि हीन रज तम गुन छाइ रह्यौ
वन वन फिरत उदास होइ घर तें।
कठिन तपस्या धरि मेघ शीत घाम सहै
कन्द मूल पाइ कोऊ कामना के डरतें॥
अति ही अज्ञान और विविधि उपाइ करै
निज रूप भूलि करि वँधै जाइ परतें।
सुन्दर कहत मूंधी वोर दिश देषै मुख
हाथ मांहि आरसी न फेरै मूढ करतें॥ ४ ॥
मेघ सहै शीत सहै शीश परि घाम सहै
कठिन तपस्या करि कन्द मूल पात है।
जोग करै जज्ञ करै तीरथऊ व्रत करै
पुन्य नाना विधि करै मन मैं सिहात है॥
और देवी देवता उपासना अनेक करै
आंवन की हौंस कैसैं अकडोडे जात है।
सुन्दर कहत एक रवि के प्रकाश विन
जैंगनै की जोति कहा रजनी विलात है॥ ५ ॥

---

(३) 'वेद विधि'—इसका सम्वन्ध 'जाग करै' से है षूटी=वीती, चली गई। पुहमी=पृथ्वी। अटन=भ्रमण। स्वास टूटी=जीवन के स्वास योंही चले गये। सिर कूटि=मांथे पर प्रहार करैगा। अर्थात् मार देगा।

(४)मूंधी वौर=उलटी तरफ। दर्पण की पीठ (प्राचीन काल का फौलादी आइना)।

(५) हौंस=हविस, चाह। अकडोडे=आक की पाडी (फल)। जैंगने=जुगनू, खद्योत, आग्या, पटवीजना।

"आप ही के घट में प्रगट परमेश्वर है
ताहि छोडि भूलै नर दूर दूर जात है।
कोई दौरै द्वारिका कौ कोई काशी जगन्नाथ
कोई दौरै मथुरा कौ हरिद्वार न्हात है॥
कोई दौरै बद्रीनाथ विषम पहाड चढै
कोई तौ केदार जात मन में सिहात है।
सुन्दर कहत गुरुदेव देहि दिव्य नैंन
दूर ही के दूरवीन निकट दिषात है"॥ ६ ॥*

कोऊ फिरै नागै पाइ कोऊ गूदरी बनाइ
देह की दशा दिषाइ आइ लोक धूर्यौ है।
कोऊ दूधाधारी होइ कोऊ फलाहारी तोय
कोऊ अधोमुख भूलि झूलि धूम घूट्यौ है॥
कोऊ नहि पाहि लौंन कोऊ मुख गहै मौंन
सुन्दर कहत यौंहीं वृथा भुस कूट्यौ है।
प्रभु सौं न प्रीति मांहि ज्ञान सौं परचै नाहि
"देषौ भाई आंधरैनि ज्यौं वजार लूट्यौ है"॥ ७ ॥

---

(६) आप ही के घट में=अपने ही शरीर भीतर। हृदय में। अन्तरात्मा अपने अन्दर ही विराजमान है। इस प्रकार परब्रह्म की सत्ता का मानना दादूदयाल के पंथधारियों का प्रधान मत है। और नानक, कबीर, रैदास, आदि इस मर्म के पहुंचवान साधुओं का तथा वेदांत का यही परम सत्य दृढ निश्चय है।

* ६ छन्द (क) (ख) पुस्तकों में नहीं है। अन्य पुस्तकों में है सो वहां से उद्धृत किया गया है। (७) धूर्यो=धूर्त्यो, धूर्त्तता की, छल किया। घूट्यो=घूंट २ कर पीया। भुस कूट्यो=भुस्सी कूट कर अन्न निकालने के लिये वृथा उद्योग करना। आंधरै नै बाजार लूट्यो=अंधा बाजार, को कैसे लूटमार करे? अर्थात् असम्भव बात वा अनहोनी कार्यवाही करना।

इन्दव

आसन मारि सँवारि जटा नख उज्जल अङ्ग विभूति चढाई।
या हम कौं कछु देइ दया करि घेरि रहै वहु लोग लुगाई॥
कोउक उत्तम भोजन ल्यावत कोउक ल्यावत पान मिठाई।
सुन्दर लै करि जात भयौ सव मूरष लोगनि या सिधि पाई॥ ८॥

ऊरध पाइ अधोमुख ह्वै करि घूंटत धूंमहि देह झुलावै।
मेघहु शीतहु घाम सहै सिर तीनहु काल महा दुख पावै॥
हाथ कछू न परै कवहूंकन मूरष कूकस कूटि उडावै।
सुन्दर वंछि विषै सुख कौं "घर वूडत है अरु झांझण गावै॥ ९॥

ग्रेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि पेह लगाइ कै देह संवारी।
मेघ सहे सिर सीत सह्यौ तनु धूप समै जु पञ्चागनि वारी॥
भूप सही रहि रूंष तरै परि सुन्दरदास सहे दुख भारी।
डासन छाडि कैं कांसन ऊपर "आसन मार्यौ पै आस न मारी" ॥ १०॥

जौ कोउ कष्ट करै वहुभांतिनि जाति अज्ञान नहीं मन केरौ।
ज्यौं तम पूर रह्यौ घर भीतरि कैसैंहु दूर न होत अन्धेरो॥

---

(८) इस में कपटवेश धूर्त साधु का वर्णन है। या=हे! 'लैकरि जात भयो=माल मता लेकर चल दिया। अर्थात् उन मूर्ख भक्तों का सर्वस्व हरण कर तीन तेरह हो गया। या=यह।

(९) झांझण गावै=मारवाड़ में खुशी का एक गीत होता है। उधर घर वरवाद हो रहा है और इधर उनको कुछ चिंता ही नहीं। निश्चिंत होकर रागें अलापते हैं। अर्थात् वड़े ही असावधान वा वेफिक्र हो रहे हैं। अर्थात् मनुष्य देह पाकर आयुष्य वहुमूल्यवान को वृथा खोते हैं, हरिभजन नहीं करते।

(१०) डासन=विछौना (संसार सुख) कांसन=कांस के मोटे घास पर। आसन मार्यो=आसन लगाया, योगाभ्यास किया। आस=आशा तृष्णा, कामना।

लाठिनि मारिये ठेलि निकारिये और उपाइ करै बहुतेरौ।
सुन्दर सूर प्रकाश भयो तब तौ कतहूं नहिं देषिय नेरौ॥ ११॥
धार बह्यौ पग धार ह्यौ जल धार सह्यौ गिरिधार गिर्‌यौ है।
भार संच्यौ धन भारथ हू करि भार लयौ सिर भार पर्‌यौ है॥
मार तप्यौ बहि मार गयौ जम मार दई मन तौ न मर्‌यौ है।
सार तज्यौ पुट सार पढ्यौ कहि सुन्दर कारिज कौंन सर्‌यौ है॥ १२॥
कोउ भया पय पान करै नित कोउक पात है अन्न अलौंना।
कोउक कष्ट करैं निसवासर कोउक बैठि कै साधत पौंना॥
कोउक वाद विवाद करैं अति कोउक धारि रहै मुख मौंना।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु सिद्ध भयो नहिं दीसत कौंना॥ १३॥
कोउक अङ्ग बिभूति लगावत कोउक होत निराट दिगम्बर।
कोउक स्वेत कषाइक वोढत कोउक काथ रंगै बहु अम्बर॥
कोउक वल्कल सीस जटा नख कोउक वोढत हैं जु वघम्बर।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु ये सब दीसत आहि अडम्बर॥ १४॥
कोउक जात पिराग बनारस कोउ गया जगनाथ हिं धावै।
को मथुरा बदरी हरिद्वार सु कोउ भया कुरषेत हि न्हावै॥
कोउक पुष्कर ह्वै पञ्च तीरथ दौरिइ दौरि जु द्वारिका आवै।
सुन्दर वित्त गड्यौ घर मांहिं सु बाहिर ढूंढत क्यौं करि पावै॥ १५॥

---

(१२) यह चित्रकाव्य है। पग=खड्ग। ह्यौं=मारा गया। गिरिधार=पहाड़ का किनारा। भार=(१) बहुत (२) बोझ (३) भाड़। मार=कामदेव। मार=ताड़ना पिटना। पुट=खोट।

(१५) पंचतीरथ=पांचतीर्थ एक स्थान में-यथा कुशावर्त्त, बिल्व। वित्त गड्यो=हृदय में प्रविष्ट परमात्मा बाहर ढूंढने से क्या मिले। केश्वर, नीलपर्वत, कनखल, हरिद्वार।
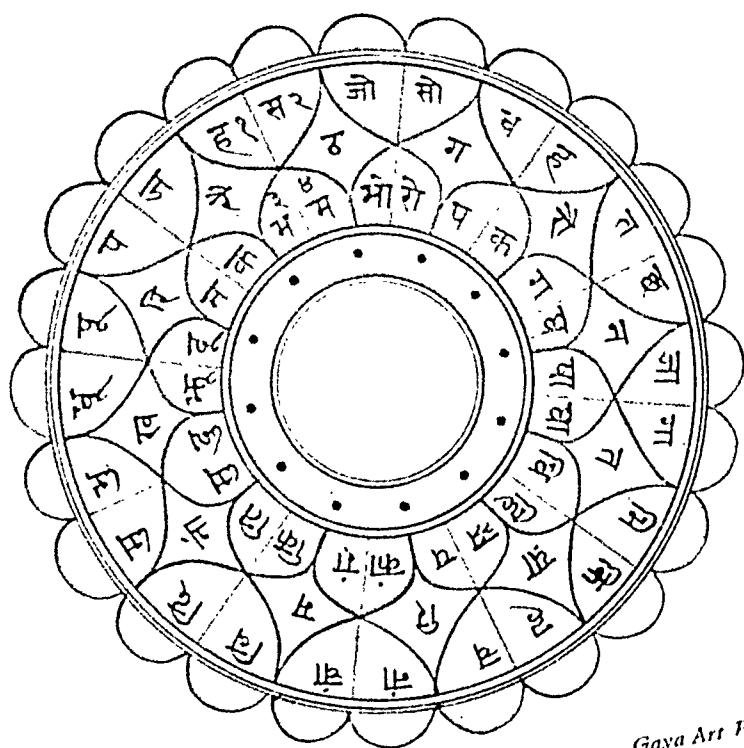
Gaya Art Press, Cal.

Engraved & printed by

(१३) कंकण बंध पोहला १

डुमिला छन्द

हट जोग धरों तन जात भिया, हरि नाम विनां मुख धूरि परें ।
मट सोग हरों छन गात किया, चरि चांम दिनां भुप भूरि जरें ॥
भट भोग परों गन पात धिया, अरि काम किनां सुख झूरि मरें ।
मट रोग करों घन घात हिया, परि रांम तिनां दुख दूरि करें ॥१३॥

———o———

[इसके पढ़ने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

न्यू राजस्थान प्रेस

कंकण बन्ध (१)

पढ़ने की विधिः—

कंकण के भीतर विभाग इस प्रकार हैं कि ऊपर की बड़ी पंखड़ियों के और नीचे की छोटी पंखड़ियों के दो २ टुकड़े हैं। और इन टुकड़ों के चार २ (दो पिछलों और दो पहिलों) के बीच में चौकोर से घर बन गये हैं। अब छन्द के चारों चरणों के आद्य अक्षरों पर १-२-३-४ के अङ्क रख दिये गये हैं और ये अक्षर बड़ी छोटी पत्तियों के टुकड़ों में पास २ लिखे हुए हैं। यह भी ध्यान में रहे कि छन्द का प्रत्येक शब्द दो २ अक्षरों का है। (१) चौकोर घर के १२ अक्षर चारों पंखड़ियों के टुकड़ों के अक्षरों के साथ चार २ बेर पढ़े जाते हैं। (२) प्रथम चरण यों पढ़ना चाहिए—ह (बड़ी पांखड़ी के प्रथमार्ध का अक्षर) ठ (चौकोर घर के अक्षर) के साथ पढ़ें। इसही प्रकार आगे सब युग्माक्षरों के ग्यारहों शब्द पढ़ें। प्रत्येक चरण में बारह २ शब्द दो २ अक्षरों के होने से पढ़ना सहज है। (३) द्वितीय चरण इस प्रकार पढ़ें—स (बड़ी पंखड़ी के द्वितीयार्ध का अक्षर) के साथ ठ (पास के चौकोर घर के अक्षर) को पढ़ें। इसही प्रकार आगे के ग्यारहों शब्द। (४) तृतीय चरण यों पढ़िये—भ को ठ के साथ (जो छोटी पांखड़ी के प्रथमार्ध का अक्षर, चौकोर घर के अक्षर हैं) पढ़ें। और आगे के ग्यारहों शब्द इसही ढंग से। (५) चतुर्थ चरण पढ़ने की विधि यह है—म (छोटी पांखड़ी के द्वितीयार्ध के अक्षर) को ठ (उसही) के साथ पढ़कर आगे ११ शब्दों को यों ही ॥

———o———

आगै कछू नहिं हाथ पर्यौ पुनि पीछै विगारि गये निज भौंना ।
ज्यौं कोउ कामिनि कन्तहि मारि चली संग और हि देषि सलौंना ॥
सोउ गयौ तजिकैं ततकाल कहै न वनै जु रही मुख मौंना ।
तैसेंहि सुन्दर ज्ञान विना सव छाडि भये नर भांड कै दौंना ॥ १६ ॥
ज्यौं कोउ कोस कर्यौ नहिं मारग तेलकलै घर मैं पशु जोये ।
ज्यौं वनिया गयौ वीस के तीस कौं वीस हु मैं दशहू नहिं होये ॥
ज्यौं कोउ चौवे छवे कौं चल्यौ पुनि होइ दुवे दुइ गांठि के पोये ।
तैसेंहि सुन्दर और क्रिया सव राम विना निहचै नर रोये ॥ १७ ॥
जो कोउ राम विना नर मूरष औरन के गुन जीभ भनैगी ।
आनि क्रिया गढतें गड़वा पुनि होत है भेरि कछू न वनैगी ॥
ज्यौं हथफेरि दिषावत चांवर अन्त तौ धूरि की धूरि छनैगी ।
सुन्दर भूल भई अतिसै करि "सूते की भेंसि पडाइ जनैगी" ॥ १८ ॥

---

(१६) भौंना=भवन, घर । घर विगड़ना (मुहाविरा) हाथ पड़ना (मुहाविरा) भांड के दौंना=दूसरों की वुराई कर अल्पलाभ (दौंने के वरावर) पाना । घणी विगाड़ थोड़ी पाना । सव भ्रष्ट कर पछताना । प्रसाद को उच्छिष्ट करना । यह एक आख्यायिका से सम्वन्ध रखता है ।

(१७) तेलकलै=तेल कल (घांणी या कोल्हू) में । जाये=जोते, जोड़े । घांणी के वैल चक्कर ही लगाया करते हैं परन्तु मंजिल नहीं काटते, वैसे ही संसार चक्र में मनुष्य भ्रमता रहता है परन्तु इस चाल से परमार्थ के रस्ते में आगे नहीं वढ सकता । उसका सव भ्रमण वृथा ही है । वीस के तीस कौं=वीस रुपये के तीस रुपये के नफे के लिये व्यापार करने को गया । अर्थात् लोभ करके जन्म गमाया सचा लाभ भगवत्प्राप्ति का नहीं हुआ । उलटी हानि हुई । होये=हुये । चौवे···छवे. दुवे—(प्रसिद्ध मुहाविरा कहावत) "चौवेजी छव्वे होने चले पर दुव्वे के सांसे पड़े ।

(१८) गडवा···गडवा से भेर होना (मुहा०) कुछ का कुछ हो जाना ।

होइ उदास विचार विना नर भेह तज्यो वन जाइ रह्यौ है।
अम्बर छाडि वधम्बर लै करि कै तप कौं तन कष्ट सह्यौ है॥
आसन मारि सवासन ह्वै मुख मौंन गही मन तौ न गह्यौ है।
सुन्दर कौन कुबुद्धि लगी कहि या भवसागर मांहि वह्यौ है॥ १९॥
भेष धर्‌यौ परि भेद न जानत भेद लहे विनु पेद हि पैं हैं।
भूपहि मारत नीन्द निवारत अन्न तजे फल पत्रनि खैहैं॥
और उपाइ अनेक करैं पुनि ताहि तें हाथ कछू नहिं ऐहैं।
या नर देह वृथा सठ खोवत सुन्दर राम विना पछितैहैं॥ २०॥
आपने आपने थान मुकाम सराहन कौं सब वात भली है।
यज्ञ व्रतादिक तीरथ दान पुरान कथा जु अनेक चली है॥
कोटिक और उपाइ जहां लगते सुनि कैं नर बुद्धि छली है।
सुन्दर ज्ञान विना न कहूं सुख भूलन की वहु भांति गली है॥ २१॥
कोउक चाहत पुत्र धनादिक कोउक चाहत बांझ जनायौ।
कोउक चाहत धात रसायन कोउक चाहत पारद पायौ॥
कोउक चाहत जन्त्रनि मन्त्रनि कोउक चाहत रोग गमायौ।
सुन्दर राम विना सब ही भ्रम देपहु या जग यौं डहकायौ॥ २२॥

गडवा=छोटा लोटा। भेर=बड़ा नरसिंघा बाजा। सूते की=गाफिल की। पड़ा जनना दूसरे चालाक ने पाड़ी को चुराकर पाड़ा ला धरा। संसार में सावधानी से ईश्वर भजना।

(१९) उदास=विरक्त। सवासन=वासना सहित, वासना वा कामना को न त्यागकर रसवर्ज वा रसरहित न होकर।

(२०) विन पेद=क्लेश वा श्रम किये विना ही। ज्ञान मार्ग से सहज ही।

(२१) गली=मार्ग।

(२२) डहकायौ=धोखा खाया। बहकावट में पड़ गया। भ्रमग्रस्त हो गया।

काहेकौं तूं नर भेष बनावत काहे कौं तू दश हू दिश डूलै।
काहे कौं तू तन कष्ट करै अति काहे कौं तू मुख तें कहि फूलै॥
काहे कौं और उपाइ करै अब आंन क्रिया करि कैं मति भूलै।
सुन्दर एक भजे भगवंत हि तौ सुखसागर मैं नित झूलै॥२३॥

॥ इति चाणक्य को अंग ॥ १२ ॥

अथ विपरीत ज्ञानी को अंग (१३)॥

मनहर

एक ब्रह्म मुख सौं बनाइ करि कहत है
अन्तहकरन तौ विकारनि सौं भर्यौ है।
जैसें ठग गोवर सौं कूपौ भरि रापत है
सेर पांच घृत लैकैं ऊपर ज्यौं कर्यौ है॥
जैसें कोउ भांडे मांहि प्याज कौं छिपाइ रापै
चीथरा कपूर कौ लै मुख बांधि धर्यौ है।
सुन्दर कहत ऐसें ज्ञानी है जगत मांहि
तिन कौं तौ देपि करि मेरो मन डर्यौ है॥१॥
देह सौं ममत्व पुनि गेह सौं ममत्व सुत
दारा सौं ममत्व मन माया मैं रहतु है।

---

(२३) डूलैं=डोलै, फिरै, भ्रमता रहै। फूलै=गर्व करै। सुखसागर=ब्रह्मानंद का समुद्र वा लोक। झूलै=हिलोर लेवै। मग्न हो जाय। (प्राचीन काल में धनवान, अमीर व राजाओं की स्त्रियां पलंगों पर लटके हुओं पर झूला करती थी। अब भी किसी २ देश में यह रिवाज है।

(विपरीत ज्ञानी का अङ्ग) (१) कूपो=सीदड़ा, भांडा। ऐसें ज्ञानी=इस प्रकार कपटी व दम्भी ज्ञानी। कपटी साधु वा कपटमुनी।

थिरता न लहै जैसैं कंदुक चौगान मांहिं
कर्मनि कै वसि मार्यौ धक्का कौं वहतु है ॥
अंतहकरन मुतौ जगत सौं रचि रह्यौ
मुख सौं बनाइ बात ब्रह्म की कहतु है ।
सुन्दर अधिक मोहि याही तें अचंभौ आहि
भूमि पर पर्यौ कोऊ चन्द कौं गहतु है ॥ २ ॥

मुख सौं कहत ज्ञान भ्रमैं मन इन्द्री प्रांन
मारग के जल में न प्रतिबिंब लहिये ।
गांठि में न पैका कोऊ भयौ रहै साहूकार
बातनि ही मुहर रुपैया गनि गहिये ॥
स्वपनै में पंचामृत जीमि कै तृपति भयौ
जागे तें मरत भूप पाइवे कौं चहिये ।
सुन्दर सुभट जैसैं काइर मारत गाल
"राजा भोज सम कहा गांगो तेली कहिये" ॥ ३ ॥

संसार के सुपनि सौं आसक्त अनेक विधि
इन्द्री हू लोलप मन कबहूं न गह्यौ है ।

---

(२) कंदुक=गेंद । धक्का कौं वहतु है=धक्के खाता फिरता है । बे ठिकाना है । चंद कौं गहतु है=चांद को पकड़ता है, बालक की तरह सरीह असम्भव बात करता है ।

(३) मारग के जल=बहता जल । पैका=दमड़ी, पैसा कौड़ी । "पैका नांही गांठड़ी" (दादू बाणी अंग १३। सा० १११-११२) । मारत गाल=बड़े बोल बोलना, बकवाद करना । राजाभोज गांगोतेली—यह प्रसिद्ध कहावत है "कहां तो राजाभोज और कहां गांगातेली" । राजाभोज की होडाहोडी उज्जैन में एक गांगातेली ने भी दानव्यवस्था की थी । वहां उसका स्मारक भी बताते हैं । परन्तु वास्तव में यह पराजित "गांगेय तैलंग" राजा था जिसका जिक्र इतिहास में अनुसंधान से लिखा गया है ।

कहत है ऐसे मैं तौ एक ब्रह्म जानत हौं
ताहि तें छोडि कै शुभ कर्मनि कौं रह्यौ है ॥
ब्रह्म की न प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गये
दहुंन तें भ्रष्ट होइ अध बीच वह्यौ है।
सुन्दर कहत ताहि त्यागिये स्वपच जैसें
याही भांति ग्रन्थ में वशिष्टजी हू कह्यो है ॥ ४ ॥

ज्ञान की सी वात कहै मन तौ मलीन रहै
वासना अनेक भरी नैकु न निवारि है।
जैसें कोऊ आभूपन अधिक वनाइ राख्यौ
कलीई ऊपर करि भीतरि भंगारि है ॥
ज्यौं हीं मन आवै त्यौं हीं पैलत निशंक होइ
ज्ञान सुनि सीप लयौ ग्रन्थन विचारि है।
सुंदर कहत वाकै अटक न कोऊ आहि
जोई वासौं मिलै जाइ ताहि कौ विगारि है ॥ ५ ॥

हंस स्वेत वक स्वेत देपिये समान दोऊ
हंस मोती चुगै वक मकरी कौं पात है।
पिक अरु काक दोऊ कैसें करि जाने जांहि
पिक अंव डार काक करंक हि जात है ॥
सिंधौ अरु फटक पपान सम देपियत
वह तौ कठौर वह ज़ल मैं समात है।

---

(४) स्वपच=श्वपच, चांडाल। ग्रन्थ में=योगवशिष्ट वेदांत ग्रन्थ। वशिष्टजी-योगवाशिष्ट ग्रन्थ में वाल्मीकिजीने वशिष्ट मुनि और श्रीरामचन्द्र का सम्वाद वर्णन किया है। इसमें ऐसे मिथ्या ज्ञानी को त्याज्य लिखा है।

(५) भंगारि=भरती, कालवूत।

सुंदर कहत ज्ञानी बाहिर भीतर शुद्ध
ताकी पटतर और बातनि की बात है॥ ६ ॥

॥ इति विपरीत-ज्ञानी को अंग ॥ १३ ॥

अथ वचन विवेक को अंग (१४) ॥

मनहर

जाकै घर ताजी तुरकीन कौ तवेला बंध्यौ
ताकै आगै फेरि फेरि टटुवा नपाइये।
जाकै पासा मलमल सिरी साफ ढेर परे
ताकै आगै आंनि करि चौसई रपाइये॥
जाकौं पंचामृत पात पात सब दिन बीते
सुन्दर कहत ताहि रावरी चपाइये।
चतुर प्रवीन आगै मूरप उचार करै
"सूरज कै आगै जैसैं जैंगणां दिपाइये"॥ १ ॥

एक वांणी रूपवंत भूपन वसन अंग
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है।
एक वांणी फाटे टूटे अंबर उढ़ाये आंनि
ताहू मांहि विपरीति सुनियत तैसी है॥
एक वांणी मृतक हि बहुत सिंगार किये
लोकनि कौं नीकी लगैं संतनि कौ भैसी है।

(६) पिक=कोयल। करक=करक, मुर्दा पस्त। पटतर=समानता, बराबरी।

(१) ताजी=अरब देश का घोड़ा। तुरकीन=तुरकिस्तान का घोड़ा। पासा=बढ़िया कपड़ा। सिरी=उत्तम वस्त्र। साफ=उच्चप्रकार का रेशमी वस्त्र। चौसई=गजी, मोटा कपड़ा। नपाइये=कुदाइये, चाल चलवाइये। जैंगणा=जुगनूं, खद्योत, आग्या। (देखो "जैंगणां की जोत"...)।

सुन्दर कहत वांणी त्रिविधि जगत मांहि
जानै कोऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है ॥ २ ॥

राजा कौ कुंवर जौ स्वरूप कै कुरूप होइ
ताकौं तसलीम करि गोद लै पिलाइये ।
और काहू रैति कै स्वरूप होइ सोभनीक
ताहू कौं तौ देषि करि निकट वुलाइये ॥
काहू कै कुरूप कारौ कूवरौ ह्वै अंगहीन
वाको वोर देषि देषि माथौ ई हलाइये ।
सुन्दर कहत वाके वाप ही कौ प्यार होइ
यौं ही जानि वांनी कौ विवेक ऐसै पाइये ॥ ३ ॥

वोलिये तौ तव जव वोलिवे की सुधि होइ
न तौ मुख मौंन करि चुप होइ रहिये ।
जोरिये ऊ तव जव जोरिवौ ऊ जांनि परै
तुक छंद अरथ अनूप जामैं लहिये ॥
गाइये ऊ तव जव गाइवे कौ कंठ होइ
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिये ।
तुकभङ्ग छन्दभङ्ग अरथ मिलै न कछु
सुन्दर कहत ऐसी वानी नहिं कहिये ॥ ४ ॥

एकनि के वचन सुनत अति सुख होइ
फूल से झरत हैं अधिक मन भांवने ।
एकनि के वचन अशम मानौ वरपत
श्रवण कै सुनत लगत अलपांवने ॥

---

(२) जाकै जैसी=जिसको जैसी आती है वैसी ।

(३) तसलीम=(अ०) मुजरा, प्रणाम । सोभनीक=वहुत सुंदर । प्यार=प्यारा, प्रिय ।

(४) ऊ=भी । जानि परै=जाना जाय, ज्ञात हो ।

एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप
करत मरम छेद दुख उपजांवने ।
सुन्दर कहत घट घट में वचन भेद
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनांवने ॥ ५ ॥
काक अरु रासभ उलूक जब बोलत हैं
तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौं ।
कोकिला रु सारौ पुनि सूवा जब बोलत है
सब कोऊ कान दे सुनत रव रौन कौं ॥
ताहि तें सुवचन विवेक करि बोलियत
यौंहि आंक बाक बकि तोरिये न पौन कौं ।
सुन्दर समुझि कैं वचन कौं उच्चार करि
नांहीं तर चुप ह्वै पकरि बैठि मौन कौं ॥ ६ ॥
प्रथम हिये विचारि ढीम सौ न दीजै डारि
ताहि तें सुवचन संभांरि करि बोलिये ।
जानै न कुहेत हेत भावै तैसी कहि देत
कहिये तौ तब जब मन मांहि तौलिये ॥
सब ही कौं लागै दुःख कोऊ नहिं पावै सुख
बोलिकैं वृथा ही तातें छाती नहिं छोलिये ।
सुन्दर समुझि करि कहिये सरस बात
तब ही तौ वदन कपाट गहि पोलिये ॥ ७ ॥

---

(५) अशम=पत्थर । अलपावने=असुहावने । भद्दे । बुरे ।

(६) रासभ=गधा । उलूक=उल्लू । सारौ=मैंना । रव=शब्द । रौन=रमनीक आक बाक=अक बक, ऐण्ड बैंड । तोरियन पौन को=(पौन तोड़ना=जोर से बोलना) बकवाद न कीजिये ।

(७) छाती नहिं छोलिये=(छाती छोलना=कर्णकटु, असह्य बोलना)

और तौ वचन ऐसे बोलत है पशु जैसें
तिनके तौ बोलिबे में ढङ्गहू न एक हैं।
कोऊ राति दिवस वकत ही रहत ऐसें
जैसी विधि कूप में वकत मानौं भेक हैं॥
विविधि प्रकार करि बोलत जगत सब
घट घट मुख मुख वचन अनेक हैं।
सुन्दर कहत तातें वचन विचारि लेहु
"वचन तौ उहै जामें पाइये विवेक हैं"॥ ८॥

जैसें हंस नीर कौ तजत है असार जानि
सार जानि क्षीर कौं निरालौ करि पीजिये।
जैसें दधि मथत मथत काढि लेत घृत
और रही यही सब छाछि छाडि दीजिये॥
जैसें मधु मक्षिका सुवास कौं भ्रमर लेत
तैसें ही व्यवरि करि भिन्न भिन्न कीजिये।
सुन्दर कहत तातें वचन अनेक भांति
"वचन में वचन विवेक करि लीजिये"॥ ९॥

प्रथम ही गुरु देव मुख तें उचार कर्यौ
वेई तौ वचन आइ लगे निज हीये हैं।
तिन कौ विवेक करि अंतहकरन मांहि
अति ही अमोल नग भिन्न भिन्न कीये हैं॥

दुःखद वाणी न कहिये। वदन कपाट=मुंह के कंवाड, होंठ। उचारणार्थ मुंह खोलना।

(८) इस छंद में पदान्त को पूर्व सवैये की रीति दिखाने को रख दिया है। भेक=मेंडक।

(९) पीजिये=पी लेता है। भ्रमर=और भौंरा। व्यवरि करि=छेद वा विभाग कर करके। भिन्न भिन्न चतुराई से उचारण करके। अथवा मुख से।

आपु कौ दरिद्र गयौ पर उपकार हेत
नग हि निगलि कैं उगलि नग दीये हैं।
सुन्दर कहत यह बांनी यौं प्रगट भई
और कोऊ सुनि करि रंक जीव जीये हैं॥ १० ॥

वचन तें दुरि मिलै वचन विरुद्ध होइ
वचन तें राग बढै वचन तें दोष जू।
वचन तें ज्वाल उठै वचन शीतल होइ
वचन तै मुदित वचन ही तें रोष जू॥
वचन तें प्यारौ लगै वचन तें दूरि भगै
वचन तें मुरझाइ वचन तें पोष जू।
सुन्दर कहत यह वचन कौ भेद ऐसौ
वचन तें बंध होइ वचन तें मोष जू॥ ११ ॥

वचन तें गुरु शिष्य बाप पूत प्यारौ होइ
वचन तें बहु विधि होत उतपात है।
वचन तें नारी अरु पुरुष सनेह अति
वचन तें दोऊ आपु आपु मैं रिसात है॥
बचन तें सब आइ राजा कै हजुर होंहि
वचन तें चाकर ऊ छोडि कै परात है।
सुन्दर सुवचन सुनत अति सुख होइ
कुवचन सुनत हि प्रीति घटि जात है॥ १२ ॥

---

(१०) इस छन्द में सुन्दरदासजी अपनी रचनाओं को अपने गुरु श्रीदादूदयाल की वाणी का अनुकरण कहते हैं। रङ्क जीव=दीन लोग, संसारी जन। जिये हैं=सुख पाये वा अज्ञानरूपी काल से बचे।

(११) दुरि=दूर कर, वा डर कर, कृपा वा सहानुभूति करके मिलै, मेल करैं।

(१२) रिसात=रीस वा रोष करते हैं। परात हैं=दूर चले जाते हैं।

एक तौ वचन सुनि कर्म ही में वहि जांहि
करत वहुत विधि स्वर्ग की उमेद है।
एक है वचन दृढ़ ईश्वर उपासना कै
तिन मैं तौ सकल ही वासना कौ छेद है ॥
एक है वचन तामैं एक ही अखंड ब्रह्म
सुन्दर कहत यौं वतायौ अंत वेद है।
वचन अनेक ही प्रकार सव देषियत
वचन विवेक किये वचन मैं भेद है ॥ १३ ॥

वचन तैं योग करै वचन तैं यज्ञ करै
वचन तैं तप करि देह कौं दहतु है।
वचन तैं वंधन करत है अनेक विधि
वचन तैं त्याग करि वन मैं रहतु है ॥
वचन तैं उरझि रु सुरझै वचन ही तैं
वचन तैं भांति भांति संकट सहतु है।
वचन तैं जीव भयौ वचन तैं ब्रह्म होइ
सुंदर वचन भेद वेद यौं कहतु है ॥ १४ ॥

॥ इति वचन विवेक को अंग ॥ १४ ॥

---

(१३) छंद है=(ईश्वर में)कामना का ह्रास वा नाश है। एक ही अखंड ब्रह्म=तत्वमस्यादि वाक्य वेदांत के वचन एक अद्वैत ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं।

(१४) इस छन्द में वह अन्यत्र 'वचन' शब्द से सुवचन, दुर्वचन, दोनों से प्रयोजन हो सकता है। अधिकारी और कारण भेदसे ऐसा होना संसार में अनुभव सिद्ध है। यह भाव उदाहरणों से स्पष्ट हो सकते हैं। यथा—कुटिल स्त्री के दुर्वचन से या राज्य वा सम्पत्ति के नष्ट हो जाने से भी योगी होते हैं तथा ईश्वर प्राप्ति वा सिद्धि पाने के हेतु भी योगी होते हैं। इस ही प्रकार प्रकार अन्य में जान लेना। गुरु के उपदेश को भी 'वचन' शब्द का अर्थ सर्वत्र ही प्रथम ले सकते हैं तथा शत्रु

अथ निर्गुण उपासना को अंग (१५) ॥

इन्दव

ब्रह्म कुलाल रचौ वहु भाजन कर्मनि कै वसि मोहि न भावै ।
विष्णु हु संकट आइ सहै प्रभ काहु कौं रक्षक काहु संतावै ॥
शंकर भूत पिशाचनि के पति पानि कपाल लिये बिललावै ।
याहि तें सुन्दर त्रीगुन त्यागि सु निर्मल एक निरंजन ध्यावै ॥ १ ॥

मित्र वा जनसाधारण के को भी । जसे मालिन की वोली "सूवा चूका" को सुनकर वा "कीया था कुछ काज कौ—सर्यो न एको काज (दादूवाणी १०।३४।) को सुनते ही रज्जवजी त्यागी हो गये । इत्यादि । उरझि=उलझ जाय बंध जाय । बंधन के विषयों में लगा देने वाले उपदेश से बंधन का विचार और कर्म होता है । सुरझि=सुलझ जाय । छुट वा मुक्त हो जाय । मोक्ष साधन की विधि वतानेवाले उपदेश से जीव मुक्त हो जाता है । अथवा व्यवहार पक्षमें कैद हो जाय, बांध लिया जाय, कठिनाइयों में पड़ जाय । वा शुभ सुन्दर वचन वा स्तुति वा खुशामद वा हितवाक्य से कैद आदि से छुटकारा पा जाय । इत्यादि । संकट—जैसे 'दशरथ' महाराज ने कैकेई महाराणी को वचन देकर, वा 'हरिश्चन्द्र' महाराज ने विश्वामित्र को वचन देकर महा दुःख भोगे । जीव भयो=भेद भाव सिखावन वा उपदेश से संसार और द्वैत होता है । अपने आपको भिन्न जीवरूप समझ कर ईश्वर से न्यारा समझता है । यही जीव होना है । वेद यों—"सवज्रवाक्यो यजमानं हनंति" इत्यादि । वाणी भेद का वर्णन प्रसिद्ध है । (महाभाष्य पतंजलि कृत) सदा शुभ बोलने का वेद में उपदेश है ।

(निर्गुण उपासना अङ्ग) (१) ब्रह्म=ब्रह्मा । कुलाल=कुम्हार । वह ब्रह्मा कर्मों के वश रहते हैं । विष्णु संकट=सुरासुर संग्राम में युद्ध कर राक्षसों को मारते और सज्जन भक्तों की रक्षा करते हैं । राम कृष्णादि अवतार धारण करके भी ।

कोटिक बात बनाइ कहै कहा होत भया सब ही मन रंजन।
शास्त्र संमृति वेद पुरान बपानत है अतिसै लुक अंजन ॥
पानी में बूडत पानी गहे कत पार पहूंचत है मति भंजन।
सुन्दर तौ लग अंधे की जेवरी जौं लौं न ध्याय है एक निरंजन ॥ २ ॥
मंजन सो जु मनोमल मंजन सज्जन सो जु कहै गति गुभ्भै।
गञ्जन सो जु इन्द्री गहि गंजन रंजन सो जु बुझावै अबुभ्भै ॥
भंजन सो जु भर्यो रस मांहि विदुज्जन सो कतहूं न अरुभ्भै।
व्यञ्जन सो जु बढ़ै रुचि सुन्दर अंजन सो जु निरंजन सुभ्भै ॥ ३ ॥
जा प्रभु तें उतपत्ति भई यह सो प्रभु है उर इष्ट हमारै।
जो प्रभु है सब के सिर ऊपर ता प्रभु कौं हम हू सिर धारैं ॥
रूप न रेष अलेष अखण्डित भिन्न रहै सब कारिज सारै।
नाम निरंजन है तिन कौ पुनि सुन्दर ता प्रभु कैं बलिहारैं ॥ ४ ॥

पानि=पाणि हाथ में बिललावै=भिक्षार्थ शब्दकरै। वा महाकालरूप हो रुधिर से खप्पर भरने को वचन उचारै। त्रिगुन=सत-रज-तम (त्रिगुण)।

(२) भया=हो गया। लुक अंजन=भुरकी डालना। पानी गहे=पानी में पड़े, डूबना फल है बिना नाव व केवट के तिर कर पार उतरना कठिन है। मति भंजन=मूर्ख। अंधे की जेवरी=जिस रस्सी को पकड़ कर अंधा चलता है। गाडरी प्रवाह। "अंधेन नीयमाना यथांधाः।"

(३) गुम्भै=गुह्य, रहस्य, आत्मरहस्य। गंजन=दमन। बुझावै=समझावै। अबुम्भै=अबुद्ध, बिना समझा, अज्ञात। भंजन=(यहां) भाजन, पात्र। विदुज्जन=विद्वज्जन, पंडितजन। अरुझ्झै=उरझै, रुकै। सुझ्झै=सूझै, अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त हो।

(४) अंजन=मलवाला, स्थूल, निरञ्जन न हो सो, इंद्रियगोचर, क्षर। अच्युत=अक्षर, निरञ्जन, नित्य, त्रिकालाबाधित। ब्रह्म निराकार। सिर ऊपर। सर्वश्रेष्ठ इष्टदेव। छाया=माया को छाया के साथ तुलना करते हैं। छाया दीखवे मात्र है, वस्तु नहीं है।

जो उपजैं बिनसै गुन धारत सो यह जानहु अञ्जन माया।
आवै न जाइ मरै नहिं जीवत अच्युत एक निरंजन राया॥
ज्यों तरु तत्व रहै रस एक हि आवत जात फिरै यह छाया।
सो परब्रह्म सदा सिर ऊपर सुन्दर ता प्रभु सौं मन लाया॥ ५॥
जौ उपज्यौ कछु आइ जहां लग सो सब नास निरंतर होई।
रूप धर्यौ सु रहै नहिं निश्चल तीनिहुं लोक गनै कहा कोई॥
राजस तामस सात्विक जो गुन देषत काल ग्रसै पुनि वोई।
आपु हि एक रहै जु निरंजन सुन्दर के मन मानत सोई॥ ६॥
देवनि कै सिर देव विराजत ईश्वर कै सिर ईश्वर कहिये।
लालनि कै सिर लाल निरंतर पूवन कै सिर पूत्र सु लहिये॥
पाकनि कै सिर पाक सिरोमनि देषि विचारि उहै दृढ़ गहिये।
सुन्दर एक सदा सिर ऊपर और कछू हम कौ नहिं चहिये॥ ७॥
शेष महेश गनेश जहां लग विष्णु विरंचिहु कै सिर स्वांमी।
व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनावृत बाहरि भीतर अन्तरयामी॥
वोर न छोर अनन्त कहैं गुन याहि तैं सुन्दर है घन नांमी।
ऐसौ प्रभू जिन कै सिर ऊपर क्यौं परि है तिनकी कहि पांमी॥ ८॥

॥ इति निर्गुण उपासना को अंग॥ १५॥

---

(६) रूप धर्यौ=नाम रूपधारी सब प्रकृति के पदार्थ। निश्चल=स्थिर।

(७) पाक (फा०)=पवित्र, निर्मल निर्लेप। एक=एक अद्वितीय ब्रह्म।

(८) अनावृत=अनावर्त्तित, नित्यमुक्त, अजन्मा, अविनाशी। अंतरयामी=अंतर्यामी, आभ्यंतर शक्तियों को नियंत्रण करनेवाला। "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया" (गीता १८।६१) घन नामी=बहुत नामवाला। अनन्त ईश्वर के अनन्त ही नाम। पाँमी=कचाई, कमी, घाटा।

अथ पतिव्रत को अंग (१६) ॥

इन्दव

आनकि वोर निहारत ही जैसें जात पतिव्रत एक ग्रती कौ ।
होत अनादर ऐसी हि भांति जु पीछै फिरै पुनि सूर सती कौ ॥
नैकहि मैं हरवो होइ जात पिसै अध बिन्द ज्यौं जोग जती कौ ।
राम हृदै तैं गयें जन सुन्दर "एक रती विन एक रती कौ" ॥ १ ॥
जो हरि कौ तजि आन उपासत सो मति मन्द फजीहति होई ।
ज्यौं अपनै भरतार हि छाडि भई विभचारिनि कामिनि कोई ॥
सुन्दर ताहि न आदर मांन फिरै विमुखी अपनी पति पोई ।
वूडि मरै किनि कूप मँझार कहा जग जीवत है सठ सोई ॥ २ ॥
एक सही सब कै उर अन्तर ता प्रभु कौं कहि काहि न गावै ।
संकट मांहि सहाइ करै पुनि सो अपनौं पति क्यौं विसरावै ॥
चारि पदारथ और जहां लग आठहुं सिद्धि नवै निधि पावै ।
सुन्दर छार परौ तिनि कै मुख जो हरि कौं तजि आंनहिं ध्यावै ॥ ३ ॥

(पतिव्रत को अङ्ग ।) (१) अन्य=अन्य, पराया । पीछे फिरै=पीठ दिखावै, भाग जाय । सूर सती=शूर वीर । तथा साधुसंत भक्तजन । हरवो=हलका, अधम, गिरा हुआ । पिसै=पतन होय । जोग जती=योगी । एक रती विन=रती जो वीर्य वा सती का सत उसके नहीं रहने से । एक रती कौ=एक रत्ती भर, बहुत हलका, हीन पतित "एक रती विन पाव रती को" भी मुहाविरा है ।

(३) सही=स्वयं सिद्ध, निश्चय करके, निःसन्देह । चारि पदारथ=पुरुषार्थ चतुष्टय-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । आठहुं सिद्धि=आठ सिद्धियां-अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, नवनिधि=नो निधियां-पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, वर्च ।

पूरन काम सदा सुखधाम निरञ्जन राम सिरज्जन हारौ।
सेवक होइ रह्यौ सब कौ नित कुंजर कीट हि देत अहारौ॥
भंजन दुःख दरिद्र निवारन चिंतकरै पुनि संझ संवारौ।
ऐसै प्रभु तजि आंन उपासत सुन्दर है तिन कौ मुख कारौ॥ ४॥

होइ अनन्य भजै भगवंत हि और कछू उर मैं नहिं राषै।
देविय देव जहां लग हैं डरि कै तिन सौं कहुं दीन न भाषै॥
योग हु यज्ञ ब्रतादि क्रिया तिन कौं नहिं तौ सुपनै अभिलाषै।
सुन्दर अमृत पान कियौ तब तौ कहि कौंन हलाहल चाषै॥ ५॥

मनहर

काहे कौ फिरत नर भटकत ठौर ठौर
डागुल की दौर देवी देव सब जांनिये।
योग यज्ञ जप तप तीरथ ब्रतादि दान
तिन हूं कौं फल सोऊ मिथ्याई वषांनिये।
सकल उपाय तजि एक राम नाम भजि
याहि उपदेश सुनि हृदै मांहि आंनिये।
ताही तें संमुझि करि सुन्दर विश्वास धरि
और कोउ कहै कछु ताकी नहिं मांनिये॥ ६॥

पति ही सौं प्रेम होइ पति ही सौं नेम होइ
पति ही सौं क्षेम होइ पति ही सौं रत है।
पति ही है यज्ञ योग पति ही है रस भोग
पति ही है जप तप पति ही कौ यत है॥

---

(४) संझ=सांझ। संझ संवारौ=नित्य। 'अमृत खाते जहर क्यों खांय' (मुहाविरा)। (५) में है।—"अमृत पान कियो"

(६) डागुलों की दौर="क्या बुनियाद" क्या विरता। अर्थात् ये क्षुद्र हैं। ईश्वर महान् है। (मुहाविरा)।

पति ही है ज्ञान ध्यान पति ही है पुन्य दान
पति ही तीरथ न्हांन पति ही कौ मत है।
पति बिन पति नांहिं पति बिन गति नांहिं
सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है ॥ ७ ॥

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान
मणि बिन अहि जैसैं जीवत न लहिये।
स्वांति बूंद के सनेही प्रगट जगत मांहिं
एक सींप दूसरौ सु चातक ऊ कहिये ॥
रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोवर मैं।
ससि कौ सनेही ऊ चकोर जैसे रहिये।
तैसैं ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि
और कछु देषि काहू वोर नहिं बहिये ॥ ८ ॥

॥ इति पतिव्रत को अंग ॥ १६ ॥

---

(७) यह छन्द और ८ वां छन्द अति विख्यात हैं। पातिव्रत धर्मका मानो चरम सिद्धांत सूत्र है। क्षेम=रक्षा, क्षेम-कुशल। रत=अनुरक्त। वा आनन्द। यत=यतीत्व। मत=धर्म। स्त्री सहधर्मिणी होती है। पति नांहिं= प्रतिष्ठा नहीं रहती। लाज गाल।

(८) यह कितना सुन्दर और मनको मुदित कर देनेवाला छन्द है। सनेही=प्रेमी।

(८) वोर=तरफ। बहिये=जाइये, फिरिये, झुकिये। सुन्दरदासजी का यह पतिव्रत धर्म वर्णन भाषा-साहित्य में अनुपम रत्न है। नैतिक सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक किसी भी अर्थ में लगाकर देखिए, कैसा प्रभावदायक और चमत्कारी मिलेगा।

अथ बिरहनि उराहने को अंग (१७) ॥

मनहर

प्रिय को अंदेसौ भारी तोसौं कहौं सुनि प्यारी
यारी तोरि गये सुतौ अजहूं न आये हैं।
मेरै तौ जीवन प्रांन निश दिन उहै ध्यान
मुख सौं न कहूं आंन नैंन झर लाये हैं॥
जब तें गये बिछोहि कल न परत मोहि
तातें हूं पूछत तोहि किन बिरमाये हैं।
सुन्दर बिरहनी कै सोच सपी बार बार
हम कौं बिसारि अब कौन के कहाये हैं॥ १ ॥

हम कौं तौ रैनि दिन शंक मन मांहि रहै
उनकी तौ बातनि मैं ठीक हू न पाइये।
कबहूं संदेसौ सुनि अधिक उछाह होइ
कबहूंक रोइ रोइ आंसुनि बहाइये॥
औरनि कै रस बस होइ रहे प्यारे लाल
आवन की कहि कहि हम कौं सुनाइये।

(अंग १७ वां) "बिरहनि उराहना"—पतिप्रेमा स्त्री, अपने प्यारे पति को विरह में उनके न आने पर वा अन्य प्रेमी जानकर दुःखी होकर उलहना, प्रतारक प्रेमपने व्यथामये वचन अनायास ही निकालती है। वैसे ही भगवत्प्रेमी जन अपने प्यारे ध्येय परमात्मा की अप्राप्ति में विरहाकुल हो उलहना भरे वचन उच्चारण करते हैं।

(१) अंदेसौ=अंदेशा, चितचिंता, विस्मय। बिछोहि=छोड़कर (इकार से किया हुई)। बिरमाये=विलंबाये, रोक रखे।

सुन्दर कहत ताहि काटिये जु कौंन भांति
जु तौ रूप आपनेई हाथ सौं लगाइये ॥ २ ॥

मोसौं कहै औरसी ही वासौं कहै और सो ही
जासौं कहै ताही के प्रतीति कैसें होत है ॥
काहू को समाप करै काहू सौं उदास फिरै
काहू सौं तौ रस वस एक मेक पोत है ॥
दगावाजी दुविध्या तौ मन की न दूरि होइ
काहू के अन्धेरौ घर काहू के उदोत है ॥
सुन्दर कहत जाकै पीर सो करै पुकार
जाकै दुख दूरि गयौ ताकै भई वोत है ॥ ३ ॥

हीये और जीये और लीये और दीये और
कीये और कौनऊ अनूप पाटी पढे हैं।
मुख और बैन और नैंन और सैन और
तन और मन और जन्त्र मांहिं कढे हैं ॥
हाथ और पांव और सीसहू श्रवन और
नख शिख रोम रोम कलई सौं मढे हैं।
ऐसी तौ कठौरता सुनी न देपी जगत में
सुन्दर कहत काहू वज्र ही के गढे हैं ॥ ४ ॥

---

(२) सुनाइये=सुनाते हैं (पाते, पत्र वा समाचार से) जुतौ=जो तो। लगाइये=लगाया (रोपा और बढ़ाया) हुआ।

(३) समाप=समोख, संतोष, आश्वासन। पोत=ओत प्रोत, हिलामिला। जिसे पति (परमात्मा) प्राप्त नहीं उस विरही (स्त्री वा भक्त) के घर (हृदय) अंधेरा (ज्ञान का अभाव) है। जिसे मिल गया उसके प्रकाश है। पीर=पीड़ा व्यथा। जिसको दुःख होय सोही पुकारता है, अन्य नहीं। विरह वेदना प्रभुभक्त की दशा। वोत=शांति, आराम (रा०) (४) अनूप पांठ पढे=अद्भुत शिक्षा पाई है।

भई हौं अति बावरी बिरह घेरी बावरी
चलत ऊंचौ बावरो परौंगी जाइ बावरी।
फिरत हौं उतावरी लगत नहीं तावरी
सु वाही कौं बतावरी चल्यौ है जात तावरी॥
थके हैं दोउ पांवरी चढ़त नहिं पावरी
पियारौ नहिं पावरी जहर बांटि पावरी।
दौरत नहिं नावरी पुकारि कै सुनावरी
सुन्दर कोउ नावरी डूबत रापै नावरी॥ ५॥

॥ इति बिरहनि उराहने कौ अंग ॥ १७ ॥

अथ शब्दसार को अंग (१८)॥

मनहर

भूल्यौ फिरै भ्रम तें करत कछु और और
करत न ताप दूरि करत संताप कौं।

जंत्र मांहि कढ़े=किसी कल में होकर निकले हैं। अर्थात् न्यारा ही रङ्ग-ढङ्ग हो गया है। गढ़े=बने। घड़े गए।

(१७) बावरी=(१) बावली, दिवानी (बिरहसे)। (२) बावड़ी, वापी (अपघात करूंगी) ताव=श्वास (ऊंचा सांस आ रहा है, विरह के दुःखसे) बाव=वायु, बघूला, (विरह का प्रबल झोंका)। उतावरी=उतावली जलदी (पिया ढूंढने में) तावरी=तावड़ी, धूप (देहाभिमान नहीं है) बताव+री=बतादे हे सखी! जात ताव+री=ताव जाना, अवसर खोना। (शीघ्र ढूंढकर बता दे, फिर न जाने मिलै या न मिलै। यह मनुष्य के पाने का अवसर ईश्वर प्राप्ति का अब ही है, फिर वही चौरासी भरमना तयार है)। पावरी=(१) दोनों पग+हे सखी (२) पांव चलते २ सूज गये सो पांवड़ी (वा जूता) भी इन में नहीं समाता। (३) मिलै+सखी। (४) पिलादे। नावरी=(१) पहुंची, जा लिया। (२) सुनाव+री,

दक्ष भयौ रहै पुनि दक्ष प्रजापति जैसैं
दैत परदक्षणा न दक्षणा दे आप कौं ॥
सुन्दर कहत ऐसैं जानैं न जुगति कछु
और जाप जपै न जपत निज जाप कौं ।
वाल भयौ युवा भयौ वय वीतें वृद्ध भयौ
वप रूप होइ कै विसरि गयौ वाप कौं ॥ १ ॥

इन्दव

पांन उहै जु पीयूष पिवै नित दान उहै जु दरिद्र हि भानै ।
कांन उहै सुनिये जस केशव मान उहै करिये सनमानैं ॥
तान उहै सुरतान रिझावत जान उहै जगदीश हि जानै ।
वान उहै मन वेधत सुन्दर ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै ॥ २ ॥
सूर उहै मन कौं वसि राषत कूर उहै रन मांहि लजै है ।
त्याग उहै अनुराग नहीं कहुं भाग उहै मन-मोह तजै है ।
तज्ञ उहै निज तत्वनि जानत यज्ञ उहैं जगदीश जजै है ॥
रक्त उहै हरि सौं रत सुन्दर गत्त उहै भगवंत भजै है ॥ ३ ॥

चिल्लाकर आवाज दे, हेला पाड़े । (३) नाव+री=नवका । (४) नाव+री=नांव नाम, हे सखी ।

(अंग १८) (१) भ्रम=उपाधि, अज्ञान । जो यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति है वोह ती भ्रमवश करता नहीं जिससे मोक्ष मिले । ताप=तप त्याग, वैराग्य । जिससे ससार के तीनों ताप निवृत हो जांय । दक्ष=चतुर (अभिमत्त, अहंकार भरा) दक्ष प्रजापति ने निज अभिमान से शिव पार्वती का अनादर किया, तव शिवजी ने उसका मस्तक काटकर यज्ञविध्वंस कर दिया, वैसे ही यहाँ अहंकार से मत्त होकर आत्माका अनादर (अज्ञान) होने से अपना नाश होता है, मोक्ष नहीं मिलती । मनुष्य देह का पाना ही यज्ञ का सजाना है । परदक्षणा=प्रदक्षणा, परकम्मा । दक्षणा=दक्षिणा, उपकार में दान अर्थात् बाहरी कर्मों का ढोंग तो करता है, अन्तरात्मा में ढूंढकर स्वरूप की प्राप्ति

चाप उहै कसिये रिपु ऊपर दाप उहै दलकारि हि मारै।
छाप उहै हरि आप दई सिर थाप उहै थपि और न धारै॥
जाप उहै जपिये अजपा नित पाप उहै निज पांप विचारै।
बाप उहै सब कौ प्रभु सुन्दर पाप हरै अरु ताप निवारै॥ ४॥

भौंन उहै भय नाहि न जा महि गौंन उहै फिरि होइ न गौंना।
बौंन उहै बमिये विषया रस रौंन उहै प्रभुसौं नहि रौंना॥
मौंन उहै जु लिये हरि बोलत लौंन उहै सब और अलौंना।
सौंन उहै गुरु सन्त मिलै जब सुन्दर शंक रहै नहि कौंना॥ ५॥

कार उहै अविकार रहै नित सार उहै जु असार हि नाणै।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर नीति उहै जु अनीति न भाणै॥
तन्त उहै लगि अन्त न टूटत सन्त उहै अपनौ सत राणै।
नाद उहै सुनि वाद तजै सब स्वाद उहै रस सुन्दर चाणै॥ ६॥

का उपाय करके ब्रह्म की प्राप्ति नहीं करता है। पर+दक्षणा=इससे यह अर्थ भी हो सकता है कि अपना आपा नहीं ढूढ़ता पैसे की करता फिरता है।

(१) बुड्ढा हुआ तब आयुष्य का अन्त आया, अब कुछ करने का अवसर ही नहीं रहा। बप रूप=(१) बाप (बड़ा) होने का भाव होनेसे अभिमानी हो गया। अथवा (२) निज आत्मा को न साध कर वपु (शरीर) के रूप के भाव ही में रहा। बाप=ईश्वर। इस सारे अङ्ग के छन्दों में शब्दों के आद्यवर्णों वा प्रतिध्वनित शब्दों से भिन्न चमत्कारी अर्थ निकाल कर चमत्कारी ही रीतिसे वर्णन किया है। ये शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों प्रकार से सिद्ध होते हैं। जैसे बप और बाप। पान पीयूष पीवै। (२) सुरतान=सुल्तान, बादशाह। ईश्वर। (३) रन=विषयों के साथ लड़ाई। भाग=भागना। तज्ञ=तत (ब्रह्म) को जाननेवाला (जो अज्ञ न हो) जजै=याचै। (४) दल्कारि=लल्कार कर। पाप=जाति। आपा, निजस्वरूप। (५) सौन=सौंण, शगून। कौना=कोई भी नहीं। (६) कार=काम। वा मर्यादा। उस्वास=कुंभक। यहां प्राणायाम और प्रत्याहार आदि से अभिप्राय है।

स्वास उहै जु उस्वास न छाडत नाश उहै फिरि होइ न नासा ।
पास उहै सत पास लगै, जम-पास कटै प्रभु कै नित पासा ॥
वास उहै गृह वास तजै बन वास नहीं तिहिं ठाहर वासा ।
दास उहै जु उदास रहै हरिदास सदा कहि सुन्दरदासा ॥ ७ ॥
श्रोत्र उहै श्रुति सार सुनै नित नैंन उहै निज रूप निहारै ।
नाक उहै हरि नाक हि राषत जीभ उहै जगदीस उचारै ॥
हाथ उहै करिये हरि कौ कृत पांव उहै प्रभु कै पथ धारै ।
सीस उहै करि स्याम समर्पन सुन्दर यौं सब कारज सारै ॥ ८ ॥
सोवत सोवत सोइ गयौ सठ रोवत रोवत कै वर रोयौ ।
गोवत गोवत गोइ धर्यौ धन पोवत पोवत तैं सब पोयौ ॥
जोवत जोवत वीति गये दिन वोवत वोवत लै विष वोयौ ।
सुन्दर सुन्दर राम भज्यौ नहिं ढोवत ढोवत बोझ हि ढोयौ ॥ ९ ॥
देपत देपत देपत मारग बूझत बूझत बूझत आयौ ।
सूझत सूझत सूझि परी सब गावत गावत गोविन्द गायौ ॥

---

(७) सत पास=सच्ची वा सत्यकी गांठ वा फांसी । नाश=आपा मरना । होइ न नाशा=ब्रह्मस्वरूप बन जाय । अमर हो जाय ।

(८) श्रुतिसार=वेदांत के सिद्धान्त । निजरूप=आत्मा का स्वरूप । हरि नाक हि राखत=प्रभु या प्रभु भजन ही को सर्वोपरि वा प्रतिज्ञा की परमावधि समझै । नाक रखना मुहाविरा है-टेक रखना, नीची न आने देना, बात को निबाहना । धारै=सिधारै । स्याम=स्वामी, ईश्वर । अमर हो जाय ।

(९) सोवत=आलस्य में गाफिल रहकर जीवन खोया । रोवत=प्रपंच में ग्रस्त हाय धोड़ा करता फिरा । गोवत=बकवाद करता रहा । धन=वीर्य वा जीवन, मनुष्य देह मिलने का अर्थ । बोवत=विषयों का विषरूपी बीज जीवनरूपी भूमि में डाला । सुन्दर=सर्वोत्कृष्ट आनन्दस्वरूप परमात्मा । बोझ ही ढाया=थोथी बेगार सी ही करता रहा । शरीर धार कर मानों हम्माली ही की, कुछ परम लाभ नहीं पाया ।

सोधत सोधत सुद्ध भयौ पुनि तावत तावत कंचन तायौ।
जागत जागत जागि पर्‌यौ जब सुन्दर सुन्दर सुन्दर पायौ ॥ १० ॥

॥ इति शब्दसार को अंग ॥ १८ ॥

अथ सूरातन को अंग (१६) ॥

मनहर

सुणत नगारै चोट विगसै कंवल मुख
अधिक उछाह फूल्यौ माइ हूं न तन मैं।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहिं धीर धरै
काइर कंपाइमान होत देपि मन मैं ॥
टूटिकै पतंग जैसें परत पावक मांहिं
ऐसें टूटि परै बहु सांवत के गन मैं।
मारि घमसांण करि सुन्दर जुहारै स्याम
सोई सूर वीर रुपि रहै जाइ रन मैं ॥ १ ॥
हाथ मैं गह्यौ है पर्ग मरिवे कौं एक पग
तन मन आपनौ समरपन कीनौं है।
आगै करि मीच कौं पर्‌यौ है डाकि रन वीच
टूक टूक होइ कै भगाइ दल दीनौं है ॥

---

(१०) कंचन तायो=आत्मारूपी स्वर्ण को ज्ञान की आग से वा तप से तपा कर निर्मल किया। जागि पर्‌यो=मोह निद्रा को हटा कर अपने निजस्वरूप को जान लिया। सुन्दर (१)=कवि। सुन्दर (२)=अच्छी रीति से, उत्तम साधन द्वारा। सुन्दर (३)=आनन्द स्वरूप परमात्मा।

(सूरातन को अङ्ग) (१) सूरातन=शूरवीरता। तन=शरीर के भीतर काम आदिक शत्रुओंसे यम नियमादि ज्ञानवीरों द्वारा लड़कर विजयी रहना। विगसै=खिलै प्रसन्न होवे, जैसे कंवल खिल जाय। माइं=मावै, समावै। सांगि=लोह दंड, भारी

पाइ लौंन स्याम कौ हरामपोर कैसैं होइ
नामजाद जगत मैं जीयौ पन तीनौं है।
सुन्दर कहत ऐसौ कोऊ एक सूर वीर
सीस कौं उतारिकैं सुजस जाइ लीनौं है ॥ २ ॥

पांव रोपि रहै रन मांहि रजपूत कोऊ
हय गय गाजत जुरत जहां दल है।
वाजत झुझाऊ सहनाई सिंधू राग पुनि
सुनत ही काइर की छूटि जात कल है॥
झलकत वरछी तरछी तरवारि वहै
मार मार करत परत पलभल है॥
ऐसे जुद्ध मैं अडिग सुन्दर सुभट सोई
'घर मांहि सूरमा कहावत सकल है" ॥ ३ ॥

असन वसन वहू भूपन सकल अङ्ग
संपति विविधि भांति भर्यौ सव घर है।
श्रवन नगारौ सुनि छिनक मैं छोडि जात
ऐसैं नहिं जानै कछु आगैं मोहि मर है॥

भाला। वा लंबी गदा। सावंत=सामंत, योद्धा। जुहारै=सलाम करै, लड़कर फतह करके प्रणाम करै।

(२) आगे करि मीच=मौत को सामने रखकर, अर्थात् मौत से न डर कर। टूक टूक होइ कैं=लड़ने में घावों पूर होकर वा न्योछावर होकर। नाम जाद='नामजादिक', प्रसिद्ध। सीस कौं उतारि=विना सिर-कमधज ही-लड़ै। सीस उतारना=आपा मारना।

(३) झुझाऊ=रणवाद्य, रणसींगा। सिंधुराग=सिंधुड़ा, राग जो लडाईमें सहनाई में गाई जाती है। वीर राग। कल=कला, विखर जाती है। पल भल=खलवली घवराहट, उत्पात।

मन में उछाह रन मांहिं टूक टूक होइ
निरभै निशंक वाकै रंच हू न डर है।
सुन्दर कहत कोऊ देह कौ ममत्व नांहि
"सूरमा कै देपियत सीस विन धर है" ॥ ४ ॥

जूझिवे कौं चाव जाकै ताकि ताकि करै घाव
आगै धरि पाव फिरि पीछैं न संभारि है।
हाथ लीये हथियार तीक्षण लगायौ धार
वार नहिं लागै सब पिशुन प्रहारि है॥
वोट नहिं रापै कछु लोट पोट होइ जाइ
चोट नहिं चूकै सीस रिपु कौ उतारि है।
सुन्दर कहत ताहि नंकु नहि सोच पोच
"ऐसौ सूरवीर धीर मीर जाइ मारि है" ॥ ५ ॥

अधिक अजान-बाहु मन में उछाह कीये
दीयें गज-गाह मुख वरषत नूर है।
काढै जब करवाल वाल सब ठाडे होहिं
अति विकराल पुनि देपत करूर है॥
नैंक न उसास लेत फौज में फिटाइ देत
पंत नहिं छाडै मारि करै चकचूर है।
सुन्दर कहत ताकी कीरति प्रसिद्ध होइ
"सोई सूरवीर धीर स्याम कै हजूर है" ॥ ६ ॥

---

(४) मर=मरण, मौत। धर=धड, कमधज।

(५) पिशुन=शत्रु (काम, क्रोध, लोभ मोह आदिक) प्रहारि=मारे। सोच पोच=शंका या डर और कायरता। मीर=अफसर (होकर) नायक दल का (होकर) यहां काम (या क्रोधधिक में से कोई प्रधान शत्रु)।

(६) अजान बाहु=आजानु बाहु, महावीर पुरुष। गजगाह=बखतर पहने।

ज्ञान कौ कवच अङ्ग काहू सौं न होइ भंग
टोप सीस झलकत परम विवेक है।
तीन्हे ताजी असवार लीयें समसेर सार
आगें ही कौ पांव धरै भागणें की टेक है॥
छूटत वंदूक वांण वीतै जहाँ घमसांण
देषिकें पिशुन दल मारत अनेक है।
सुन्दर सकल लोक मांहि ताकौ जै जै कार
"ऐसौ सूर वीर कोऊ कोटिन में एक है"॥ ७॥

सूर वीर रिपु कौ निमूनौ देषि चोट करै
मारै तव ताकि करि तरवारि तीर सौं।
साधु आठौं जांम वैठौ मन ही सौं युद्ध करै
जाके मूंह माथौ नहिं देषिये शरीर सौं॥
सूर वीर भूमि परै दौर करै दूरि लौं
साधु शून्य कौं पकरि राषै धरि धीर सौं।
सुन्दर कहत तहां काहू के न पाव टिकैं
"साधु कौ संग्राम है अधिक सूरवीर सौं"॥ ८॥

करवाल=तलवार, खड्ग। वाल सव ठाड़े होंहि=शूरवीरता चढ़नेके वक्त शूरवीरों के शरीर के वाल, दाढ़ी मूंछ आदि के मोर की छत्री तरह खड़े हो जाते हैं। करूर=क्रूर, रोसभरे। फिटाइ देत=हटादेता है। खेत=रणक्षेत्र, मैदान लडाई का।

(७) तीन्हे=तेज, (तीक्ष्ण का रूपान्तर) वा तेज दोडवाले (तीर्ण का रूपान्तर)। समसेर सार=सार जातिके लोहे की तलवार। टेक=प्रतिज्ञा (न भागने की दृढ़ प्रतिज्ञा)। घमसांण=तुमुल युद्ध।

(८) निमूनो=प्रत्यक्ष आकार वाला, ढङ्ग। अधिक=मनुष्यों से लड़नेवाले वीरों की अपेक्षा, विना सिरपैर वाले मन और कामादि गुप्त शत्रुओं से लड़नेवाला, ज्ञानी संयमी संत बढ़कर है।

पँचि करडी कमांण ज्ञान कौ लगायौ वांण
मार्यौ महाबली मन जग जिनि रान्यौं है।
ताके अगिवांणो पंच जोधा ऊ कतल कीये
और रह्यौ पर्यौ सब अरि दल भान्यौं है॥
ऐसौ कोऊ सुभट जगत में न देपियत
जाकै आगै कालहूसौ कंपि कै परान्यौं है।
सुन्दर कहत ताकी सोभा तिहूं लोक मांहिं
"साधु सौ न सूरवीर कोऊ हम जान्यौं है" ॥ ९ ॥

काम सौ प्रबल महा जीते जिनि तीनौं लोक
सुतौ एक साधु के विचार आगै हार्यौ है।
क्रोध सौ कराल जाकें देपत न धीर धरैं
सोउ साधु क्षमा कै हथ्यार सौं विदार्यौ है॥
लोभ सौ सुभट साधु तोप सौं गिराइ दियौ
मोह सौ नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्यौ है।
सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर
ताकि ताकि सबहि पिशुन दल मार्यौ है॥ १० ॥

मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारे
इन्द्री हूं कतल करि कीयौ रजपूतौ है।
मार्यौ मय मत्त मन मार्यौ अहंकार मीर
मारे मद मच्छर ऊ ऐसौ रन रूतौ है॥

---

(९) जग जिनि रान्यौं है=जिन्होंने संसार के माया प्रपंच को रणमें मारा है वा उससे रणमें राजा समान संग्राम करके जीता है। पञ्च जोधा=पाँचों विषय पाँचों इन्द्रियों के। भान्यौं=मारा। अगिवांणी=अगाऊ, मुखिया, अफसर। सुभट=महावीर। परान्यौं=भाग गया।

(१०) तोप=संतोष।

मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ
सब कौं प्रहारि निज पदई पहूंतौ है।
सुन्दर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूरबीर
वैरी सब मारि कै निचिन्त होइ सूतौ है॥ ११॥

कियौ जिनि मन हाथ इन्द्रिनि कौं सब स.थ
घेरि घेरि आपने ई नाथ सौं लगाये हैं।
और ऊ अनेक वैरी मारे सब युद्ध करि
काम क्रोध लोभ मोह पोदि कैं वहाये हैं॥
किये हैं संग्राम जिनि दिये हैं भगाइ दल
ऐसै महा सुभट सुग्रन्थनि मैं गाये हैं।
सुन्दर कहत और सूर यौंही पपि गये
"साधु सूर वीर वेई जगत मैं आये हैं"॥ १२॥

महामत्त हाथी मन राष्यौ है पकरि जिनि
अति ही प्रचण्ड जामैं वहुत गुमान है।
काम क्रोध लोभ मोह वांध्यै चारौं पाव पुनि
छूटनै न पावै नैंक प्राण पीलवान है॥
कबहूं जो करै जोर सावधान सांझ भोर
सदा एक हाथ मैं अंकुस गुरु ज्ञान है।

---

(११) मय मत्त=मदोन्मत्त। अपनी "मय" में (मौज ही में) मस्त रहने वाला। स्तौ=झुंझार, रुपनेवाला। पहूंतौ=पहुंचा।

(१२) मन हाथ=मन को वश में कर लिया। साथ=सहित। नाथ=स्वामी, ईश्वर। इन्द्रियों सहित मन को परमात्मा के ध्यान में लगा दिया। अपने पक्षमें, विजय करके, लाकर। औरऊ=जो ईश्वरके पक्षमें न आये उनको मार डाले। पपि=मर गये, नाश हो गये। जगत में आये=उनही का जगत में जन्म लेना सफल है। और आये सो वृथा ही आये।

सुन्दर कहत और काहू के न वसि होइ
'ऐसौ कौन सूर वीर साधु के समान है"॥ १३ ॥

॥ इति सूरातन को अंग ॥ १९ ॥

अथ साधु को अंग (२०) ॥

इंन्दव

प्रीति प्रचण्ड लगै परब्रह्म हि और सबै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध ह्रदै मति होइ सु निर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जीकौ॥
गोष्ठि रु ज्ञान अनन्त चलै तहं सुन्दर जैसें प्रवाह नदी कौ।
ताहि तें जानि करै निसवासर "साधु कौ संग सदा अति नीकौ"॥ १ ॥
जो कोउ जाइ मिलै उन सौं नर होत पवित्र लगै हरि रिङ्ग।
दोप कलंक सबै मिटि जात जु नीच हु आइ कैं होत उतंगा॥
ज्यौं जल और मलीन महा अति गंग मिलें होइ जात है गंगा।
सुन्दर सुद्ध करै ततकाल सु "है जग माहिं बडौ सतसंगा"॥ २ ॥

---

(१३) इस छन्द में मन को हाथी कह कर रूपक बान्धा है। काम आदिक चार पांव जिसके। प्राण उसके ऊपर महावत। अंकुश, उसके लिए, गुरु का दिया ज्ञान। 'सुन्दर कहत...वसि होइ' यह पादांश मन का विशेषण है। 'ऐसा...' इस का सम्बन्ध प्रथम पादांश में 'जिनि' शब्द से है। अर्थात् जिन्होंने मन हाथी को बांध वश किया ऐसे साधु।

(साधु को अङ्ग २०) (१) 'साधु को संग सदा अति नीकौ' यह पादांश छन्द के प्रारम्भ में बोल कर पढ़ा जाता है-सवैये की चाल इस ही प्रकार होती है। जीकौ=जीव का। जीव और ब्रह्म में भेद बुद्धि मिट जाय। जीव ब्रह्म है यह ज्ञान हो जाय। गोष्ठि=सत्संग साधु मंडली का। ज्ञान का विचार।

(२) होत पवित्र=ज्ञान विवेक के साबुनसे धुलकर साफ हो जाय तब उसपर ब्रह्मज्ञान का रंग अच्छा चढ़ै। उतंगा=उत्तुंग, अत्यन्त ऊंचा। गंग मिले=गंगामें मिल जाने से।

ज्यौं लट भृङ्ग करै अपनै सम ता सनि भिन्न कहै नहिं कोई।
ज्यौं द्रुम और अनेक हि भाँतिनि चन्दन की ढिंग चन्दन वोई॥
ज्यौं जल क्षुद्र मिलै जब गंग हि होत पवित्र उहै जल सोई।
सुन्दर जाति सुभाव मिटै सब "साधु के संग तें साधु ही होइ"॥ ३॥
जो कोउ आवत है उनकें ढिंग ताहि सुनावत शब्द संदेसौ।
ताहि कें तैसि हि ओषद लावत जाहि कें रोग हि जानत जैसौ॥
कर्म कलंकहि काटत हैं सब सुद्ध करै पुनि कंचन तैसौ।
सुन्दर वस्तु विचारत है नित संतनि कौ जु प्रभाव है ऐसौ॥ ४॥
जो परब्रह्म मिल्यौ कोउ चाहत तौ नित संत समागम कीजै।
अन्तर मेटि निरन्तर ह्वै करि लै उनकौं अपनौ मन दीजै॥
वै मुख द्वार उचार करैं कछु सो अनयास सुधा रस पीजै।
सुन्दर सूर प्रकासत है उर और अज्ञान सबै तम छीजै॥ ५॥
जा दिन तें सतसंग मिल्यौ तब ता दिन तें भ्रम भाजि गयौ है।
और उपाइ थके सब ही जब संतनि अद्वय ज्ञान दयौ है॥
पोति पवारि हि क्यौं कर छूवत एक अमोलिक लाल लयौ है।
कौन प्रकार रहै रजनी तम सुन्दर सूर प्रकास भयौ है॥ ६॥
संत सदा सब कौ हित वंछत जांनत है नर बूडत काढैं।
दे उपदेश मिटाइ सबै भ्रम लै करि ज्ञान जिहाज हि चाढैं॥

---

(३) क्षुद्र=छोटा, हीन (मलीन वा नदी-नाला)।

(४) वस्तु=परमात्म वस्तु परम तत्व। विचारत=मनन व निदिध्यासन।

(५) अन्तर=बीचका भेदभाव। कपट।

(६) पोति=काचकी पोत (मोती जैसे छोटे दाने)। पवार=सफेद वा खाके दाने। अथवा फैंकने योग्य। अथवा कठोर, हीन-"सुआसु नाक कठोर पँवारी। वह कोमल तिल पुहुप संवारी" (जायसी) कर=हाथ (से मत छू-अर्थात् दूर रख)।

ये विषया सुख नाँहि न छाडत ज्यौं कपि मूठि गहै सठ गाढैं।
सुन्दर यौं दुख कौं सुख मानत हाट हि हाट विकावत आढैं ॥ ७ ॥
सो अनयास तिरै भवसागर जो सतसंगति मैं चलि आवै।
ज्यौं कणिहार न भेद करै कछु आइ चढै तिहिं नाव चढावै॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हू शूद्र मलेछ चण्डाल हि पार लंघावै।
सुन्दर वार कछू नहिं लागत या नर देह अभै पद पावै॥ ८ ॥
ज्यौं हम पाँहि पिवैं अरु वोढहिं तैसैंहि ये सब लोग वषानैं।
ज्यौं जल मैं ससि के प्रतिबिंब हि आप समा जल जन्त प्रवानैं॥
ज्यौं पग छांह धरा परि दीसत सुन्दर पंषि उडै असमानैं।
त्यौं सठ देहनि के कृत देषत संतनि की गति क्यौं कोउ जानैं॥ ९ ॥
जौ षपरा कर लै घर डोलत मांगत भीष हि तौ नहिं लाजै।
जौ सुख सेज पटंबर अंबर लावत चन्दन तौ अति राजै॥

---

(७) बूडत काढैं=डूबता है यह जानते हैं तो (तुरत) उसे बाहर निकालें। चाढैं=चढालें। गाढैं=गाढी करके, दृढ़। हाट ही हाट=एक हाट से दूसरी हाट पर। आढैं=आढत द्वारा। अर्थात् संसार बाजार है वहां सुख दुःख कर्म्मोंका व्यापार सा है। किसी के लाभ वा नफा किसी के हानि वा घाटा होता है। कर्मफल अनिवार्य हैं।

(८) कणिहार=कर्णधार, खेवटिया। लंघावै=उतारै।

(९) वषानैं=साधारण अज्ञ लोगों को संतों की वास्तव गति का तो ज्ञान नहीं उनके रहन-सहन को भी अपना सा ही जानते हैं। आप सम=अपने समान ही चान्द के प्रतिबिंबों के आकारों को मच्छ-कच्छ समझते हैं कि वे भी मच्छ-कच्छ ही हैं। पग छांह=पक्षी की छाया पृथ्वी पर पड़ै उसही को पक्षी का भ्रम करै। देहन की कृति⋯शरीरों के कर्म्मों को साधारण समझते हैं परन्तु संतों के कर्म्म असंग होते हैं, वे कर्म्मों में लिप्त नहीं होते हैं, उनके कर्म दीखने मात्र हैं। उनकी गति अगाध है।

जौ कोउ आइ कहै मुख तें कछु जानत ताहि बयारि हि बाजै।
सुन्दर संसय दूरि भयो सब "जो कछु साधु करै सोइ छाजै" ॥ १० ॥
कोउक निंदत कोउक बंदत कोउक आइकै देत है भक्षन।
कोउक आइ लगावत चन्दन कोउक डारत धूरि ततक्षन ॥
कोउ कहै यह मूरप दीसत कोउ कहै यह आहि विचक्षन।
सुन्दर काहु सौं राग न द्वेष सु "ये सब जानहुं साधु के लक्षन" ॥ ११ ॥
तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई।
राज मिलै गज बाज मिलै सब साज मिलै मन वंछित पाई ॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधि लोक मिलै बइकुण्ठ हुं जाई।
सुन्दर और मिलै सब ही सुख दुल्लभ संत समागम भाई ॥ १२ ॥

मनहर

देव हू भये तें कहा इन्द्र हू भये तें कहा
विधि हू के लोक तें बहुरि आइयतु है।
मानुष भये तें कहा भूपति भये तें कहा
द्विज हू भये तें कहा पार जाइयतु है ॥
पशु हू भये तें कहा पक्षी हू भये तें कहा
पन्नग भये तें कहौ क्यौं अघाइयतु है।
छूटिबे कौ सुन्दर उपाइ एक साधु सङ्ग
जिनि की कृपा तें अति सुख पाइयतु है ॥ १३ ॥

---

(१०) पपरा कर=खप्पर को हाथ में (लेकर) बयार हि बाजै=पवन बाज गई, उसके चित्तपर संस्कार नहीं होने पाता। कहे सुने का वे बुरा नहीं मानते हैं, न हर्ष मानते हैं। (११) ततक्षन=तत्क्षण, उसी समय। विचक्षन=ज्ञानी।

(१२) बइकुंठ=विष्णुलोक। दुल्लभ=दुर्लभ, कठिनता से मिलने वाला।

(१३) यह छन्द सुन्दरदासजी का बहुत प्रसिद्ध है। आइयतु आदि क्रियाएं निश्चय बोधके निमित्त हैं। "ऐसा होता ही है"।

इन्द्रानी शृङ्गार करि चन्दन लगायौ अङ्ग
वाहि देपि इन्द्र अति काम वस भयौ है।
शूकरी हू कर्दम के चहले मैं लोटि करि
आगै जाइ शूकर कौ मन हरि लयौ है॥
जैसौ सुख शूकर कौं तैसौ सुख मघवा कौं
तैसौ सुख नर पशु पंपिन कौं दयौ है।
सुंदर कहत जाकै भयौ ब्रह्मानन्द सुख
सोई साधु जगत मैं जन्म जीति गयौ है॥ १४॥

धूलि जैसौ धन जाकै सूलि से संसार सुख
भूलि जैसौ भाग देपै अंत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई सांप जैसौ सनमान
वड़ाई हू वीछनी सी नागनी सी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ विधिलोक
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी
सुन्दर कहत ताहि वन्दना हमारी है॥ १५॥

काम ही न क्रोध जाकै लोभ ही न मोह ताकै
मद ही न मच्छर न कोउ न विकारी है।

---

(१४) कर्दम=कादा, कीच। चहले=चहल में, कीचड़ की मिट्टी में। मघवा=इन्द्र।

(१५) यह १५ वां छन्द सुन्दरदासजी ने वनारसीदासजी जैन कवि आगरे वालों को लिखा था, जिसके उत्तर में वनारसीदासजीने एक छन्द भेजा था जो "समयसार नाटक" में ८ वीं अध्याय का छन्द ५६ वाँ है:—"कीच सो कनक जाकै··· ताहि वंदत वनारसी"। (देखो भूमिका)।

दुख ही न सुख मानै पाप ही न पुन्य जानै
हरप न सोक आनै देह ही तें न्यारौ है ॥
निंदा न प्रशंसा करै राग ही न दोप धरै
लैंन ही न दैंन जाकै कछु न पसारौ है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति
ऐसौ कोउ साधु सु तौ रामजी कौ प्यारौ है ॥ १६ ॥

आठौं यांम यम नेम आठौं यांम रहै प्रेम
आठौं यांम योग यज्ञ कियो बहु दांन जू।
आठौं यांम जप तप आठौं यांम लियो व्रत
आठौं याम तीरथ मैं करत है न्हांन जू ॥
आठौं यांम पूजा विधि आठौं यांम आरती हू
आठौं यांम दंडवत समरन ध्यांन जू।
सुन्दर कहत तिन कियौ सब आठौं यांम
"सोई साधु जाकै उर एक भगवांन जू" ॥ १७ ॥

जैसैं आरसी कौ मैल काटत सिकल करि
मुख मैं न फेर कोऊ वहै वाकौ पोत है।
जैसैं वैद नैंन मैं सलाका मेलि शुद्ध करै
पटल गये तें तहां ज्यौंकी त्यौंही जोत है ॥
जैसैं वायु वादर वपेरि कैं उडाइ देत
रवि तौ अकाश मांहिं सदाई उदोत है।
सुंदर कहत भ्रम क्षिन मैं विलाइ जात
"साधु ही कैं संग तें स्वरूप ज्ञान होत है" ॥ १८ ॥

---

(१६) वें के लिये भी यही कहा जाता है ।। अंत की=मौत की । सांप=सर्प या शाप । पसारौ=फैलाव, आडंबर, प्रपंच ।

(१७) आठों याम=आठों पहर, रात दिन, निरन्तर । (१८) आरसी=आइना,

मृतक दादुर जीव सकल जिवाये जिनि
वरषत वांनी मुख मेघ की सी धार कौं।
देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लवलेश
निशि दिन करत है ब्रह्म ही विचार कौं॥
औरऊ सन्देहनि मिटावत निमेष मांहिं
सूरज मिटावत है जैसैं अन्धकार कौं।
सुन्दर कहत हंस वासी सुख सागर के
"सन्तजन आये हैं सु पर उपकार कौं" ॥ १९ ॥
हीरा ही न लाल ही न पारस न चिंतामनि
औरऊ अनेक नग कहौ कहा कीजिये।
कामधेनु सुरतरु चन्दन नदी समुद्र
नौकाऊ जिहाज बैठि कबहूंक छीजिये॥
पृथ्वी अप तेज वायु व्योम लौं सकल जड
चन्द सूर सीतल तपत गुन लीजिये।

शीशा (पहिले जमानों में फौलाद के दर्पण बनते थे, उन पर मोरचा आ जाया करता था उसको सिकलगर साफ करते थे)। पोत=मोरचा, दाग। पहल=परदा मैलका।

(१९) मृतक दादुर=मरे मैंडक। गर्मियों में पानी सूखने से मैंडक मछली आदिक सूख जाते हैं। बारिशमें वर्षा की अमी से तर होकर जी उठते हैं। इसही तरह माया के वश होकर विषय की ताप से जीव जो सूख कर मृतक (पतित) हो जाते हैं वे संतजनों की ज्ञानोपदेश की अमृत वर्षा से सजीव वा ज्ञानी और ब्रह्मानन्द को पा कर सुखी हो जाते हैं। स्वारथ न लवलेश=निःस्वार्थ उपदेश देते हैं। आजकल के वैतनिक अध्यापकों और स्वार्थी प्रोफेसरोंकी सी तरह नहीं। निर्लोभी संतों का ढङ्ग निराला है। निमेष=पल में। संदेहनि=सब शंकाओंको।

सुन्दर विचारि हम सोधि सब देपे लोक
"सन्तनि के सम कहो और कहा कीजिये" ॥ २० ॥
जिनि तन मन प्रान दीनो सब मेरे हेत
औरऊ ममत्व बुद्धि आपुनी उठाई है।
जागतऊ सोवतऊ गावत है मेरे गुन
मेरोई भजन ध्यान दूसरी न काई है॥
तिनके मैं पीछे लग्यौ फिरत हौं निश दिन
सुन्दर कहत मेरो उनतें बड़ाई है।
वे हैं मेरे प्रिय मैं हौं उनको आधीन सदा
"सन्तनि की महिमा तो श्रीमुख सुनाई है" ॥ २१ ॥
प्रथम सुजस लेत सील हू सन्तोष लेत
क्षमा दया धर्म लेत पापतें डरत हैं।
इन्द्रिनि कौं घेरि लेत मनहूं कौं फेरि लेत
योग की युगति लेत ध्यान लै धरत हैं॥
गुरु कौ वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत
आतमा कौं सोधि लेत भौ जल तरत हैं।

---

(२०) इस छन्द में संतों के समान वा बराबरी करने के योग्य पदार्थों को ढूंढ कर लिखा है कि संतों को किसकी उपमा दी जा सकै वा किसके साथ तुलना की जाय ? उनको हीरा आदि बहुमूल्य मणि कहैं, वा चिंतामणि ही कहैं, वा कामधेनु, कल्पवृक्ष, चन्दन का वृक्ष, वा समुद्र का जहाज वा पञ्चतत्व, वा सूरज-चांद इत्यादि संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जंचा कि जो संतों की समानता के लिये उपयुक्त समझा जाय। अर्थात् संतों का दर्जा बहुत ऊंचा है।

(२१) संतजनों वा अनन्यभक्तों की महिमा (भागवत आदिक ग्रन्थों में) भगवान ने अपने मुखारविंद से वर्णन की है। भक्तों को अपने आप से भी बड़ा कहा है। काई=और कुछ।

सुन्दर कहत जग सन्त कछु लेत नांहिं
"सन्तजन निश दिन लेवौई करत हैं" ॥ २२ ॥

सांचौ उपदेश देत भली भली सीप देत
समता सुबुद्धि देत कुमति हरत हैं।
मारग दिखाइ देत भाव हू भगति देत
प्रेम की प्रतीति देत अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म में चरत हैं।
सुन्दर कहत जग सन्त कछु देत नांहिं
"सन्तजन निश दिन देवौई करत हैं" ॥ २३ ॥

जगत व्यौहार सब देपत है ऊपर कौं
अन्तहकरण कौं न नैंक पहिचांनि है।
छाजन कै भोजन कै हलन चलन कछु
और कोऊ क्रिया कै तौ सोइबौ वर्षांनि है॥
आपुनेई गुननि आरोपत अज्ञानी नर
सुन्दर कहत तातें निन्दाई कौं ठांनि है।

---

(२२) पापते डरत है=(अर्थात्) पुन्य को लेते हैं। भौ जल तरत हैं=जगत समुद्र से पारंगतता लेते हैं। कहत जग=लोग तो ऐसा कहते हैं—परन्तु उनका कहना ठीक नहीं। संतों का लेना सिद्ध है। यहाँ व्याज स्तुति है।

(२३) कुमति हरत है=(अर्थात्) सुमति देते हैं। प्रतीति=निश्चय। अभरा भरत है=अपूर्ण को पूर्णता देते हैं। ब्रह्म में चरत हैं=ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करा के ब्रह्मानन्द लोक में विचरने की शक्ति देते हैं। इस छन्द में संतजनों को मालदार होना सिद्ध किया है। संतजन तो त्यागी हुआ करते हैं फिर उनके पास देने को कहाँ। परन्तु दातव्यता का, अलंकार की चातुरी से, आरोप कर दिया है।

भाव मैं तो अन्तर है राति अरु दिन कौ सौ
"साधु की परीक्षा कोऊ कैसैं करि जानि है" ॥ २४ ॥

कूप मैं कौ मैंडुका तौ कूप कौं सराहत हैं
राजहंस सौं कहै कितौक तेरौ सर है।
मसका कहत मेरी सर भरि कौंन उडै
मेरै आगै गरुड की कितीयक जर है॥
गुवरैंडा गोली कौं लुढाई करि मानै मोद
मधुप कौं निन्दत सुगन्ध जाकौ घर है।
आपुनी न जानै गति सन्तनि कौ नाम धरै
सुन्दर कहत देषौ ऐसौ मूढ नर है ॥ २५ ॥

कोऊ साधु भजनीक हुतो लयलीन अति
कबहू प्रारब्ध कर्म धका आइ दयौ है।
जैसैं कोऊ मारग मैं चलतै आंपुटि परै
फेरि करि उठै तब उहै पन्थ लयौ है॥
जैसैं चन्द्रमा की पुनि कला क्षीण होइ गई
सुन्दर सकल लोक द्वितिया कौ नयौ है।
देव कौ देवातन गयौ तो कहा भयौ वीर
पीतरि कौ मोल सुतौ नांहिं कछु गयौ है ॥ २६ ॥

(२४) ऊपर के छन्द ९ से इस छन्द का अभिप्राय कुछ-कुछ मिलता सा प्रतीत होता है। ऊपर कौं=साधारण मनुष्य संतोंके वाहर के व्यवहार ही को देख सकते हैं उनके अन्तरङ्ग की भावनाओं-ज्ञान भक्ति ब्रह्मनिष्ठता योगशक्ति आदि को—नहीं जान सकते। मूर्ख लोग इसके अधिकारी ही नहीं हैं। इसको आगे के। (२५) वें छन्द में उदाहरणों से दरसाते हैं। मसका=मच्छर। सरभरि=बराबर जर=जड़ (क्या बुनियाद) औकात।

(२६) आंखुटि=ठोकर खाकर। (किसी कर्म वा आचरण में चूक) द्वितीया

उही दगाबाज उही कुष्टी जु कलङ्क भर्यौ
उही महापापी वांकें नख शिख कीच है।
उही गुरुद्रोही गो ब्राह्मण कौ हननहार
उही आतमा को घाती हिंसा वाकै बीच है॥
उही अघ कौ समुद्र उही अघ कौ पहार
सुन्दर कहत वाकी बुरी भांति मीच है।
उही है मलेछ उही चण्डाल बुरे तें बुरौ
"सन्तनि की निन्दा करैं सुतौ महा नीच है" ॥ २७ ॥

परि है वज्रागि ताकै ऊपर अचांनचक
धूरि उडि जाइ कहुं ठौहर न पाइ है।
पीछै कैऊ युग महानरक मैं परै जाइ
ऊपर तें यमहू की मार बहु पाइ है॥
ताकै पीछै भूत प्रेत थावर जंगम योनि
सहैगौ संकट तब पीछै पछिताइ है।
सुन्दर कहत और भुगतै अनन्त दुख
"संतनि कौं निंदै ताकौ सत्यानाश जाइ है" ॥ २८ ॥

को नयो है=वह संत फिर वैसा ही उज्ज्वल तपश्चर्या से हो जाता है। उसको सब दोज के चांद को देख हर्षित व प्रणाम करते व पूजते हैं वैसे भाव करने लगते हैं। देव को देवातन=देवता का देवता पन अथवा देवालय (जा नहीं सकता, वह थोड़ी देर को विकृत प्रतीत होता है फिर वैसा का वैसा) पीतरि कौ मोल=सोने का सोनापन गया तो क्या पीतल का भी मोल गया। अर्थात् उसकी असलियत कुछ रहती है ही। (मुहाविरे हैं)।

(२७) सन्तजनों की निन्दा से मनुष्य महापातकी हो जाता है। अतः सन्तों की निन्दा नहीं करनी चाहिये।

(२८) के छन्द में भी वही सन्तनिन्दा के बुरे फल को कहा है।

ताहि कूं भगति भाव उपजि हैं अनायास
जाकी मति सन्तन सौं सदा अनुरागी है।
अति सुख पावै ताके दुख सब दूरि हौंहिं
औरऊ काहू की जिनि निन्दा मुख त्यागी है॥
संसार की पासि काटि पाइ है परम पद
सतसंग ही तें जाके ऐसो मति जागी है।
सुन्दर कहत ताकौ तुरत कल्यान होइ
सन्तन को गुन गहै सोई बड़भागी है॥ २६॥

योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रतादि दान
साधन सकल नहिं याकी सरभरे हैं।
और देवी देवता उपासना अनेक भांति
संक सब दूरि करि तिन तें न डरे हैं॥
सब ही के सिर पर पांव दे मुकति होइ
सुन्दर कहत सो तो जनमें न मरे हैं।
मन वच काय करि अन्तर न रापै कछु
संतन की सेवा करै सोई निसतरे हैं॥ ३०॥

॥ इति साधु को अंग ॥ २० ॥

---

(२९) यहां सन्तों की भक्ति करके उनसे लाभ उठाने की प्रशंसा है। सन्तों में जो गुण हैं वह ग्रहण करना ही उत्तम है। उनमें कोई अवगुण नहीं होते हैं जो दिखाई देते हैं वे मन्दबुद्धिजनों का दृष्टिदोष मात्र है और उनकी बुरी भावना है। सन्तों को सदा शुद्ध और निर्दोष समझना ही अच्छी बात है।

(३०) सन्तजन परमात्मतत्व और अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति कराके भक्तजनों का निस्तारा (मोक्ष) करा देनेवाले होते हैं। इसलिये उनकी सेवा शुश्रूषा करने से ही अत्यन्त लाभ हो सकता है। उनसे अन्तर (कपट आदि) नहीं रखना। शुद्ध-

अथ भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग (२१)॥

इन्दव

बैठत राम हि ऊठत राम हि बोलत राम हि राम रह्यौ है।
जीमत राम हि पीवत राम हि धीमत राम हि राम गह्यौ है॥
जागत राम हि सोवत राम हि जोवत राम हि राम लह्यौ है।
देतहु राम हि लेत हु राम हि सुन्दर राम हि राम कह्यौ है॥ १॥

श्रोत्र हु राम हि नेत्र हु राम हि वक्त्र हु राम हि राम हि गाजै।
सीस हु राम हि हाथ हु राम हि पाव हु राम हि राम हि साजै॥
पेट हु राम हि पीठ हु राम हि रोम हु राम हि राम हि बाजै।
अन्तर राम निरन्तर राम हि सुन्दर राम हि राम विराजै॥ २॥

भूमि हु राम हि आपु हु राम हि तेज हु राम हि वायु हु रामैं।
व्यौम हु राम हि चन्द हु राम हि सूर हु राम हि शीत न घामैं॥
आदि हु राम हि अन्त हु राम हि मध्य हु राम हि पुंस न वामैं।
आज हु राम हि काल्हि हु राम हि सुन्दर राम हि म्हांमंहि थामैं॥ ३॥

भाव से मुमुक्षुता और जिज्ञासा करनी चाहिये। वे मतमतान्तरों के आडम्बरों और झंझटों की उपेक्षा करते हुए सरल सहज विधि से बेड़ा पार कर देंगे। अतः सन्त सेवा कर्तव्य है। (साधु लक्षण के लिये देखो दादूपद १६४। तथा साधु का अंग)

(भक्ति ज्ञान मिश्रित अंग २१) (१) रह्यौ है=बरतता रहता है। धीमत= ध्याते हुये ('धीमहि' का रूपान्तर है)। जोवत=देखते हुये।

(२) गाजै=गर्जना करै, उच्च शब्द से रटै। बाजै=गुंजारै, शब्द करै (रोम रोम से राम धुन लागै)।

(३) शीत न घामैं=शीतोष्ण का दुःख भक्तिभाव में नहीं व्यापै। पुंस न वामैं=स्त्री पुरुष में समभाव रक्खै अर्थात् सबको ईश्वरस्वरूप से भावना में लावै, भेद न समझै। म्हां में (रजवाड़ी) हमारे अन्दर। थांमें (रजवाड़ी) तुम्हारे अन्दर।

देप हु राम अदेप हु राम हि लेप हु राम अलेप हु रामैं।
एक हु राम अनेक हु राम हि शेप हु राम अशेप हु तामैं॥
मौन हु राम अमौन हु राम हि गौन हु राम हि भौन हु ठामैं।
बाहिर राम हि भीतरि राम हि सुन्दर राम हि है जग जामैं॥ ४॥
दूरि हु राम नजीक हु राम हि देश हु राम प्रदेश हु रामैं।
पूरब राम हि पच्छिम राम हि दक्षिन राम हि उत्तर धामैं॥
आगें हु राम हि पीछै हु राम हि व्यापक राम हि है वन ग्रामैं।
सुन्दर राम दशौं दिशि पूरत स्वर्ग हु राम पताल हु तामैं॥ ५॥
आप हु राम उपावत राम हि भञ्जन राम संवारन रामैं।
दृष्टि हु राम अदृष्टि हु राम हि इष्ट हु राम करै सब कामैं॥
वर्ण हु राम अवर्ण हु राम हि रक्त न पीत न स्वेत न स्यामैं।
शून्य हु राम अशून्य हु राम हि सुन्दर राम हि नाम अनामैं॥ ६॥

॥ इति भक्ति ज्ञान मिश्रित को अंग ॥ २१ ॥

---

(४) देप लेप...=दृष्ट-अदृष्ट, लक्षित अलक्षित। शेप अशेप=नेति नेति कहते, बचे सो अवशिष्ट ब्रह्म। अशेप, सकल, चराचर में व्याप्त। गौन=गमन, गति, स्पन्दन क्रिया का मूलभूत। जग जामैं=जिसमें जगत है वही ब्रह्म है।

(५) नजीक=(फा०) नजदीक, पास (अपने अन्दर ही)। प्रदेश=परदेश, दूर देश। पताल हु तामैं=पाताल जो है उसमें भी।

(६) उपावत=उत्पन्न करता, सिरजता है। भंजन=नाश करनेवाला। संवारन= संवारनेवाला, रक्षा वा पालन करनेवाला। दृष्टि=देखने की शक्ति जिससे उसका साक्षात्कार होता है। अदृष्टि=वह अवस्था जिसमें साक्षात्कार न हो। शून्य में समाधि। करै सब कामैं=सर्व कार्य का आदि कारण। अनामैं=अनामय, निर्मल। अथवा जिसका कोई नाम नहीं हो सकता, क्योंकि निर्गुण है।

(अंग २१ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त)

अथ विपर्यय शब्द को अंग (२२)॥

सवईया॥

श्रवन हु-देषि सुने पुनि नैनहु, जिह्वा सूंघि नासिका बोल।
गुदा पाइ इन्द्रिय जल पीवै, बिन ही हाथ सुमेर हि तोल॥
ऊंचे पाइ मूंड नीचे कौं, बिचरत तीनि लोक मैं डोल।
सुन्दरदास कहै सुनि ज्ञानी, भली भांति या अर्थ हि पोल॥ १॥

(विपर्यय अंग २२) (१) विपर्यय=उलटा, जो सुनने में असंभव, असंगत वा बेढंगा जान पड़ै परन्तु अर्थ उसका गहरा और चमत्कारी निकलै। ऐसा शब्द कबीरजी, गोरषनाथजी, दादूजी, रज्जबजी आदि संतों ने भी कहा है। हमको दो हस्तलिखित टीकाएं तथा पं० पीताम्बर जी अहमदाबादवालों की मुद्रित टीका मिली उनके आधार पर तथा जो हमको संतों से, ग्रन्थोंसे अथवा अपने निज के विचार से अर्थ अवभासित हुआ तदनुसार टीका टिप्पणी जहां आवश्यक वा उचित जानी देते हैं। न्यूनाधिक को पंडितजन व महात्मा लोग सुधार लैं।

हस्तलिखित उभय टीका (१ ली टीका)---(यह टीका सांकेतिक है) श्रवण=सुरत। नैन=निरत। सूंघि=रामरस। बोल=जाप। गुदा पाय=अपानपौन। इन्द्रिय जल पीवै=विषैजल पीवै। हाथ=हेत। सुमेर=अहंकार। ऊंचो पाय=ऊंचो ब्रह्म पायो। मूंड नीचे=तब सब को मस्तक नम्र भयो। (२ री टीका)—"श्रवण सुणनों नाम सुरति सौं शुभाशुभ विचार वारंवार अवलोकन करणां सोई देषणां। निरति सौं सर्वकार्य अकार्य का निरणां करणां सोई सुणनों। जिह्वा सौं रामराम रटि करि सुषस्वाद की प्राप्ति सोई सूंघणों। नासिका द्वारि सासोसास जपधुनि करणी सोई बोलणां। गुदास्थाने आधारचक्र मध्ये अपान वाय कौं थिर करणां सोई पावणां। भजन करि संयमता सौं इंद्रियां का विकार जीतणां सोई इन्द्रिय जल पीवणां। हाथों विना केवल विवेक सौं मेरु नाम अहंकार है ताकों तोलणां जो जितनाक दुख होवै है सो सर्व एक अहंकार के आसिरै है, यों विचार करणां सोई तोलणां। ऊंचे—यों विचार कीयां ऊंचा

परमेश्वरजी सो पाया तब सर्व का मुंड नाम मस्तक नीचे कों नाम: सर्व का मस्तक आपकों नयवा लगि जावै। तब तीनलोक में इच्छाचारी हुवा विचरो, कहीं अटकै नहीं। सुन्दरदासजी कहैं हो ज्ञानी पुरुष याका अर्थ कों भलीभांति करि पोल, नाम विचारो। सर्व कल्याण साधन सिद्धांत याही में है" ॥ १ ॥

पीताम्बरजी की टीकाः—"श्रोत्र द्वारा निकसी जो अंतःकरण की वृत्ति। ता वृत्तिरूप श्रवण करि गुरुके मुख सें महावाक्य के अर्थ कूं ग्रहण करिके। अंतर्मुखताते देखे। कहिये प्रत्यक् अभिन्न-ब्रह्मस्वरूप कूं साक्षात् अपरोक्ष जाने। नेत्रद्वारा निकसी जो अंतःकरणकी वृत्ति। ता वृत्तिरूप चक्षु करि सुने। कहिये ब्रह्म औ, आत्मा की एकतारूप महावाक्यके अर्थ कूं ग्रहण करै। मधुरादिक षट्रसनतें विलक्षण स्वरूपानंद रसकूं आस्वादन करनेवाली जो अंतःकरण की वृत्ति। ता वृत्ति रूप जिह्वा करि। अंतःकरणरूप कमल को निर्वासनिकता सुगंधिकूं सूंघै। कहिये अनुभव करै। उपनिषद रूप पुष्पन के ज्ञानरूप मकरंद कूं ग्रहण करनेवाली अंतःकरण की वृत्तिरूप नासिका करि बोलै। कहिये मनन करनेके वास्तै पूर्व अभ्यास किये शास्त्रन के शब्दन का सूक्ष्म उच्चारण करै। अथवा निदिध्यासन करनेके वास्ते "सोऽहं ॐ। ब्रह्मैवाह। असंगोऽहं। निष्प्रपंचोऽहं।" इत्यादिक शब्दन का मनमें सूक्ष्म जप करै। बाधित अनुवृत्ति युक्त रागद्वेषादि वासनारूप गुदा करि खाय। कहिये प्रारब्धकर्म तें मिले हुवे अनुकूल सुख वा दुःख का अनुभव करै। भोक्ता, भोग्य औ भोग कूं मिथ्या जानि के, जो कामनाका जय है तिसरूप लिंग इन्द्रिय करि "मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, औ आत्मा हूं" इस निश्चयरूप जल कूं पीवै। स्थूल औ सूक्ष्म प्रपंच कार्यरूप शिखर वाला मूल-अज्ञानरूप जो सुमेर पर्वत है। ताकूं हाथ बिन ही तौलै। कहिये स्वरूप में विवेचन करिके मिथ्या जानै।—"मैं सर्वत्र व्यापक हूं" ऐसा जो अंतःकरण का निश्चय। औ वैराग्य विवेकादि करि ब्रह्मरूप प्रदेश में गमनरूप जो निश्चय है, तिन दोनूं निश्चयरूप पगन कूं ऊंचे कहिये मुख्य राखिकै। ज्ञान हुये पीछे भी व्यवहार काल में बाधित हुआ जो अहंकार फुरता है। सो सर्व संघातमें मुख्य होने ते तिसरूप मुंडी नीचे कूं। कहिये अमुख्य राखिके तीनलोक में विचरत डोल। कहिये जहां जहां गति होवै तहां तहां स्वच्छन्द हुआ विचरै।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि हे ज्ञानी! इस सवैये के अर्थ

कूं सुनि। भले प्रकार करि खोलो। जैसे किसी अनेक पदार्थन सहित ग्रह के द्वार कूं ताला लगा होवै। ताकूं खोलतें वे सर्वपदार्थ प्रगट दृष्टि में आवैं हैं। तैसे याके खोलनेसे मोक्षोपयोगी पदार्थ दृष्टि आवैंगे। या में यह रहस्य है:—इस पद्यमें मुक्त पुरुष के लक्षण कहे हैं। सोही मुमुक्षु के साधन हैं। या तें तिस अर्थ कूं प्रगट करने में मुक्त कूं प्रसन्नता औ मुमुक्षु कूं उक्त साधनों की प्राप्ति में परम लाभ होवैगा" ॥ १ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—पंच ज्ञानेंद्रियां मनके आश्रित हैं। राजयोग और हठयोग से जब मन वश में हो गया तो श्रवणादिक इन्द्रियोंके अंतर्मुख हो जाने से उनके वहिर्मुख (स्थूल) कार्य जिस तरह योगी चाहै कर सकता है। उनके कार्यों में उलट-पुलट, लोम-विलोम से अन्तरात्मा के ज्ञान में कुछ भी भेदभाव, वा हानि नहीं हो सकती। हठ्योगी गुदा द्वारा गणेशक्रिया या वस्ति और उड्डियान साधन की सिद्धि से जितना चाहै जल वा दूध गुदासे चढ़ा ले सकता है। ऐसेही इन्द्रिय (लिंग) से जल, दुग्ध, घृत खींच सकता है। ऊंचे पांव से शीर्षासन प्रयोजन है। अथवा उर्द्ध रेता होना भी। खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाने पर गगनगामी होकर स्थूल वा सूक्ष्म शरीरसे लोकान्तर में भ्रमण वा प्रवेश करता है। यह उभय योग मार्गों से सिद्धियोंके अनुसार अर्थ है। साधारण पुरुषों को योगियों की क्रियाएं असंभव और उल्टी (विपरीत) प्रतीत होती है। इसही से विपर्यय कहा जाता है। जो उक्त दोनों टीकाओंमें अर्थ दिये हैं वे वेदांतादि के पक्ष से उत्तम हैं। सुन्दरदासजी ने १२ वर्ष योग साधन किया था। वे योग की सब बातों से भलीभांति अभिज्ञ थे। वेदांत के भाव के साथ योग का भी अभिप्राय था। बिनही हाथों के सुमेर तोलना ज्ञानी की अन्तरात्मा में बिशाल विराट् विश्व प्रपंच की असारता का मिथ्यात्व सिद्ध होना ही अन्तःकरण की वृत्ति में (जहां कोई हाथ वा ताखड़ी बाट नहीं हैं) भासजाना ही तोलना है। यह ज्ञानी की सहज वृत्ति है। साधारण पुरुष को असंभव वा विपरीत सा जान पड़ता है।—स्वयम् सुन्दरदासजी ने निजरचित 'साषी' में (२० वां अङ्ग) ५० साखियां ही हैं जो विपर्यय के वर्णन में हैं। हम उपर्युक्त मिलती विपर्यय का साखी देते हैं। और अन्य महात्माओं की वाणियों से भी देते हैं। जिस से विपर्यय

लिखने वा कहने का प्रमाण अन्यत्र से भी प्राप्त हो और यह ज्ञात हो कि इस ढङ्ग की उक्ति महात्माजनों में एक प्रथा सी थी। अध्यात्मलोक की बातें साधारण पुरुषों को अटपटी सी प्रतीत होती हैं। उनके वास्तविक अभिप्राय के जानने पर बड़ा ही आनंद मिलता है। विपर्यय के समझने के ऊपर सुं० दा० जीने स्वयम् कहा है कि—"सुंदर सब उलटी कही समझैं संत सुजांन। और न जानैं बापुरे भरे बहुत अज्ञान"। ५०। प्रथम छंद विपर्यय पर साखी में इतनाही आया है—"नीचे को मूंडी करै तब ऊंचे कौं पाइ"। १।

*नोट—(इस विपर्यय के अङ्ग में) यह छंद मात्रिक सवैया है, जिसको "वीर सवैया" कहते हैं। १६+१५=३१ मात्रा का अन्त में गुरु लघु ऽ। होते हैं।—दादूजी की साषी १३५—"सब घट श्रवनां सुरतिसौं सब घट रसना वैन। सब घट नैंनां हो रहे दादू विरहा ऐन"।—तथा—"दादू सबै दिसा सो सारिषा, सबै दिसा मुख वैन। सबै दिसा श्रवणहुं सुनैं, सबै दिसा कर नैन"। २१४ अङ्ग ४। श्यामचरणदासजी—"औघट घाट बाट जहँ बाँकी उस मारग हम जांई। श्रवण विनां बहुवांणी सुनिये, बिन जिह्वा स्वर गावैं। विनां नैन जहँ अचरज दीखै, विनां अंग लपटावैं। विना नासिका वास पुष्प की, विनां पांव गिरि चढ़िया। विनां हाथ जहँ मिलो धायके, विन पाधा जहँ पढ़िया।"—(भक्तिसागरादि पृ० २४६)।—इस श्या० च० दा० जीके पदको सवैया ४ में भी लगाना।—जनगोपालजी-"नैन विनां निरषै सब रूपा। वैन विनां गावै सब भूपा। अङ्गहि विना संग सो करै। धरणी विनां चाल पग धरै। १२०। देव विन देव पत्र विन पूजा। जल विन निर्मल भाव नहिं दूजा। धुंनि विन सबद ज्योति विन दीपग चंदसूर गमि नांही। १२१।—चरन विनां निरत वहं कीजे। रसना विन गुन गावैं। श्रवनां विनां सुनै सो वानी। विनही सिरकै नावैं। १२२।—(मोह विवेक से)।—कबीरजी का पद—"विन चरणन को दहुं दिशि धावैं, विन लोचन जग सूझै"। (बीजक शब्द १)। तथा—"करचरण विहूनां राजै। कर विनु बाजै श्रवण सुनैं विनु श्रवणैं श्रोता सोई। इन्द्रिय विनु भोग स्वाद जिह्वा विनु, अक्षय पिंड विहूनां। बीजु बिनु अंकुर पेड़ विनु तरुवर, विनु फूले फल फलिया''ससि विनु द्वात कलम विनु कागज, विनु अक्षर सुधि सोई। सुधि विनु सहज ज्ञान विन ज्ञाता, कहै

अन्धा तीनि लोक कौं देषै वहिरा सुनै वहुत विधि नाद।
नकटा वास कमल की लेवै गूंगा करै वहुत संवाद॥
टूंटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद।
जो कोउ याकौ अर्थ विचारै सुन्दर सोई पावै स्वाद॥ २॥

कबीर जन सोई।" (बीजक शब्द १६)।—तथा—"बिनु पग तरुवर चढ़िया"—उक्त)।

(२)—हस्त लि० १ टीकाः—अंधा=अन्तर्दृष्टी। वहिरा सुनै—जगत के आरुवाक सूं रहित दस प्रकार अनहद सुनै। नकटा=लोकलाज रहित। वास—ब्रह्म सुगंध ले। गूंगा—जगत मन सौं अबोल। टूंटा=क्रिया रहित। पर्वत=पाप। पंगुल=गति रहित। नृत्य=ध्यान। अहलाद=हर्ष॥ २॥

हस्त लि० २ री टीकाः—अंधा, संसार व्यवहार की तरफ सौं अन्तर्दृष्टि। सो तीन लोक कौं देषै, यथार्थ जैसा झूंठ सांच, सार असार कौं जांणैं, असार त्यागि सार ग्रहण करै। वहिरा-जगत वाद-विवाद रहित निश्चल चित्त होय अन्तरश्रुति दश प्रकार का अनहद नाद कौं सुनैं। नकटा-नाम लोक लाज कुल कांनि रहित निसंक होवै, सो ब्रह्म कमल की वास लेवै, ब्रह्मानन्द रस स्वाद कौं पावै। गूंगा-जगत संबंधी वकवाद सौं रहित होय तब वहुत प्रकार को संवाद नाम ब्रह्मनिरूपण करै। टूंटा-कायक, वायक, मानस तीन स्थान की विरथा क्रिया रहित। सो पकरि नाम पुरुषार्थ करिके परवत नाम अति भारी पापन को उठावै दूरि करै। पंगुल-नाम गुण विकार चपलता रहित। गुणातीत संत। सो निरत नाम अत्यन्त प्रवीणता सौं भगवत ध्यान मैं अत्यन्त आनन्द हरप कौं पावै॥ २॥

पीताम्बरी टीकाः—"मैं आत्मा हूं" इस निश्चय करि अहंता और ममतारूप दो नेत्रन के संबंध तें रहित ज्ञानीरूप जो अंधा। सो जाग्रत, स्वप्न, औ सुषुप्तिरूप तीनलोक कूं ब्रह्मचेतन रूप करि प्रकाशै। अथवा लोक शब्द का अर्थ प्रकाश होने तें वाह्य सूर्यादिक प्रकाश कूं, औ मध्य नेत्रादिक इंद्रियन के प्रकाश कूं, औ अन्तरबुद्धि रूप प्रकाश कूं, अंतःकरण-वृत्ति-उपहित साक्षिरूप करि देखै। कहिये प्रकाशै है—
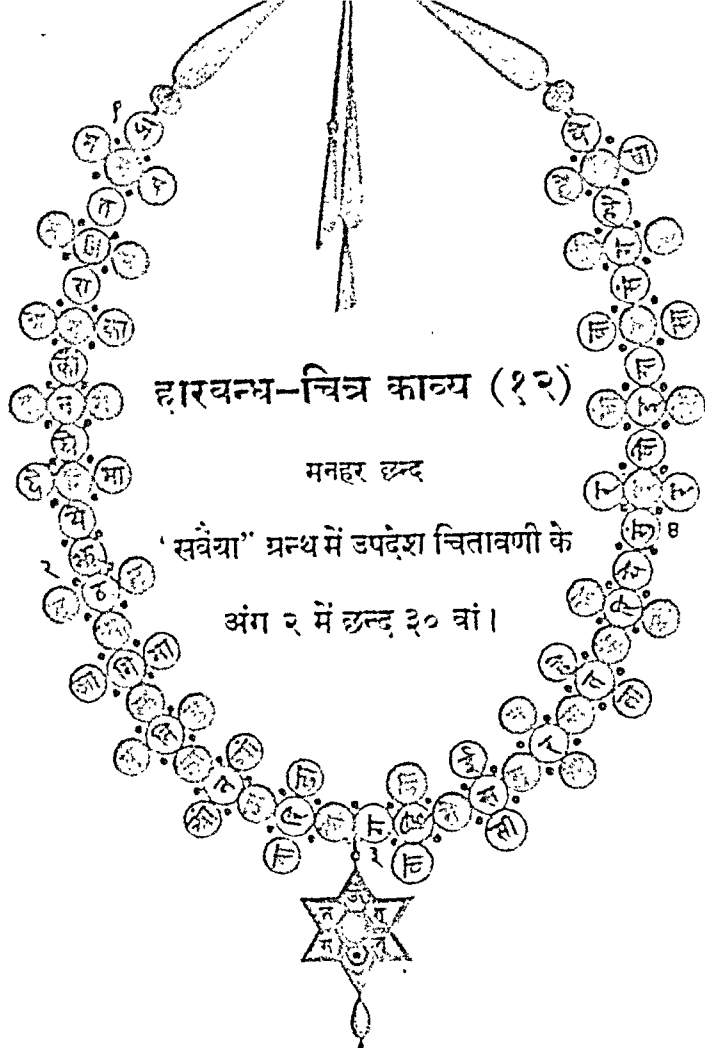
Engraved & printed by *Gaya Art Press, Cal.*

जग मग पग तजि सजि भजि राम नाम, काम कौंन तन मन घेरि घेरि मारिये।
सूट मूट हट त्यागि जागि भागि सुनि पुनि, गुनि ज्ञान आंन आंन वारि वारि डारिये ॥
गाहि ताहि जाहि सेस ईस सीस सुर नर, और बात हेत तात फेरि फेरि जारिये।
सुंदर दरद खोइ धोइ धोइ बार बार, सार संग रंग अंग हेरि हेरि धारिये ॥३०॥

इसके पढ़ने की विधिः—

हार की प्रथम पचनगी के प्रथम नग में जो 'ज' अक्षर है वहां से प्रारंभ करें। मध्य के नग के अक्षर के साथ उन 'ज' को फिर बांई ओर के 'म' को फिर दाहिनी ओर के 'प' को मिलाकर पढ़ें। आगे नीचे के पांचवें अक्षर 'त' को दूसरी पचनगी के अक्षरों के साथ पूर्ववत् [illegible] इसी प्रकार। दूसरा चरण छठी पचनगी से। तीसरा ११ वीं से। चौथा १६ वीं [illegible] [illegible] है॥

श्रोत्रेंद्रिय के संबंध तें रहित जो ज्ञानीरूप वैरा। सो लौकिक औ शास्त्रीय भेद करि नाना प्रकार के शब्दन का वहुत विधि नाद सुनै है।—नासिका इन्द्रिय के संवंध तें रहित ज्ञानीरूप जो नकटा सो कमलादिक अनेक पदार्थन की वास लेवै है। वाक् इन्द्रिय के संवंध तें रहित ज्ञानीरूप जो गूंगा, सो नाना प्रकार के लौकिक औ वैदिक शब्दन करि वहुत संवाद करै है —हस्त इन्द्रिय के संवंध तें रहित ज्ञानीरूप जो ठुंठा महान कृत्यरूप पर्वत पकरि के उठावै, कहिये आरंभ करिके वाकी समाप्ति करै है। पादेन्द्रिय के संवंध तें रहित ज्ञानीरूप जो पंगु, सो यथा इच्छा पृथिवी पर नृत्य, कहिये गमन करि अति अल्हाद कूं पावै है। सुन्दरदासजी कहै हैं कि, या सवैये के अर्थ कूं जो कोई मुमुक्षु पुरुष विचारै, सोई जीवन्मुक्तिरूप स्वाद पावै, कहिये श्रेष्ठ सुख का अनुभव करै ॥ २ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:--सुं० दा० जीकी साखी—"अन्धा तीनौं लोक कौं सुदर देखै नैन। वहिरा अनहद नाद सुनि अतिगति पावै चैन"। २। "नकटा लेत सुगंध कौं यह तो उलटी रीत। सुन्दर नाचै पंगुला गूंगा गावै गीत" । ३। दादूजी का पद ३०७—"देखत अन्धे अन्ध भी अन्धे।···वोलत गूंगे गूंग भी गूंगे"। तथा दादूजी का पद २६९—"श्रवण विन सुनिवो। विन कर वैन वजाइये।—विन रसना मुख गाइये"। तथा दादूजी का पद २३४ में—"वोल्त गुंगे गुंग वुलाये"। "अपंग विचारे सोई चलाये"।—तथा दादूजी का पद २१३—"पांगलो उजाया लाग्यौ"।—तथा—"जिभ्या विहूंणौं गाये"।—पुनः दादूजी का पद २११—"विनही लोचन निरषि। श्रवण रहित सुनि सोई। विनही मारग चलै चरण विन। विनही पाऊं नाचै निस दिन। विन जिभ्या गुण गावै"।—दादूजी की सापी २८। अङ्ग ४।—"दादू विन रसना जहं वोल्यिे तहं अन्तरजामी आप। विन श्रवणहुं सांईं सुनै जे कछु कीजे जाप"। (यह व्याख्या है विपर्यय की) दादूजी की साखी—"दादू नैंन विन देखिवा, अङ्ग विन पेखिवा, रसन विन वोलिवा नैंन सेतो। श्रवण विन सुंणिवा, चरण विन चालिवा, चित्त विन चिंतवा, सहज एतो"। (१९४। अङ्ग ४।)—तथा दादूजी की साखी—"विन श्रवणहुं सव कुछ सुनैं, विन नैंनहु सव देखै। विन रसना मुख सव कुछ वोलै, यहु दादू अचिरज पेखै"। २१६। अङ्ग ४।—पुनः—"जिभ्याहींणे कीरति गाई"—(पद ७१।)—

कुंजर कौं कीरी गिलि बैठी सिंघ हि पाइ अघानौ स्याल।
मछरी अग्नि मांहिं सुख पायौ जल मैं हुती बहुत बेहाल॥
पंगु चढ्यौ पर्वत कै ऊपर मृतक हि देषि डरानौ काल।
जाकौ अनुभव होइ सु जानै सुन्दर ऐसा उलटा ख्याल॥ ३॥

हरिदासजी निरंजनी की साखी—"अन्धा को सब सूझै"। १। बहरै सब कुछ सुनिया। ३। "पंगुल मार्ग अगम का लाधा"। २।—(योग मूल सुख भोग)। कबीरजी का शब्द—"बिन करताल पखावज बाजैं, बिन रसना गुन गावै। गावनहार के रूप न रेखा, सतगुरु मिलै बतावै'। (शब्दावली। भेदबानी। २६ में)।—तथा—"तीनलोक ब्रह्मण्ड खंड में, अन्धरा देख तमासा। पंगला मेर सुमेर उड़ावै, त्रिभुवन मांहीं डोलै। गूंगा ज्ञान विज्ञान प्रकासै, अनहद बांनी बोलै"। (शब्दावली। भाग २ शब्द २१ से)।—तथा—"बिन जिह्वा गावै गुन रसाल, बिन चरनन चालै अधर चाल। बिन कर बाजा बजै बैन, निरख देख जहां बिनां नैंन।—(शब्दावली भाग २। होरी १९।)—तथा "बिन कर ताल बजाय, चरन बिन नांचिये"। (श० होली ४।) तथा पद—"पंडित होइ सु पद हि बिचारै मूरिष नांहि न बूझै। बिन हाथनि पांइनि बिन काननि, बिन लोचन जग सूझै। बिन मुख खाइ चरन बिन चालै, बिन जिभ्या गुण गावै। आछै रहै ठौर नहिं छाड़ै, दह दिसि ही फिरि आवै। बिन ही तालां ताल बजावै, बिन मंदल षट ताला। बिनही सबद अनाहद बाजै, तहां निरतत (है) गोपाला। बिना चौलन बिना कंचुकी, बिनहि संग संग होई। दास कबीर औसर भल देष्या, जानैंगा जन कोई॥ (क० ग्रं०। पद १५९।) ।—श्रीगुरु गोरषनाथजी का बचन-अदेष देषिबा बिचारिबा, अदृष्टि राषि बाचिया। पाताल की गंगा ब्रह्मांड चढ़ाइबा तहां नृमल बिमल जल पीया। (शब्दी गोरषनाथजी की। २।)।—तथा—"अजर जरंता, अकल कलंता, जमराजीता, आप अजीता। उलटायी गंगा, भीतरि अंगा, भेद भुवंता।—जिभ्या विण गीता, वेद भ्रुणंता, सूता रमता, सांभलता"। १२। (गो० छंद)।—तथा—"अनहद सबद म्रदंगा बाजै, तहं पंगुला नांचण लागा (गो० पद ३८)॥ २॥

ह० लि० १ टीका:—कुंजर=काम। कीरी=बुद्धि। सिंघ=संसै। स्याल=जीव।

मछरी=मनसा । अग्नि=ब्रह्म अग्नि । जल (मैं हुती)=काया । पंगु=पूर्णातीत । मृतक=आपा अहंकार जीता । काल डरानो=जीवन मृतक सेती काल डसौ ॥ ३ ॥

ह० लि० २ री टीकाः—कुंजर-जो अतिवली मदोन्मत्त हस्ती की नांई काम । ताकौं कोरी नाम अति सूक्ष्म जो विवेकवती बुद्धि सो गिलि बैंठी नाम जीति बैठी । अहो ! आश्चर्य सवल कौं निवल जीति बैठा, इहि विपर्यय । सिंघ नाम अति गति बलवंत जन्म-मरण भय को दाता जीव का ग्रासक जो संसो ताकौं पहली कर्माधीन अतिकायर स्यालरूपी जो जीव हो सो, अव गुरुसंत शास्त्र उपदेश भजन ध्यान पुरुषार्थ करि ज्ञान कौं पाय सवल होय ता संसा कौं पायो नाम जीत्यो तृप्त हुवो । मछरी नाम मनसा सो जल नाम जलवुंद की काया ताका विकारां में, वहुत वेहाल नाम दुखी होती, सो अव अग्नि नाम सर्वदुख कर्मन को दाहक ब्रह्माग्नि ज्ञानाग्नि, ताकौं पाय वहोत सुप आनन्द पायो । पंगु नाम जो हलन-चलन गति है सो सर्व कामनाके आसरे है, सो कामना मिटि गई, तव निश्चल हुआ । 'अव पावा थिति पाकरी आंगन भया वदेश' । इति । सो ऐसो जो संत मन वा । परवत—नाम अत्यन्त ऊंचा कठिन आपा अभिमान, ता ऊपरि चढ्या नाम जीत्या, मोक्ष मार्ग में प्रवर्त्तमान हुआ । मृतक नाम ज्यूं मृतक शरीर कूं कोई सुख दुख विकार व्यापै नहीं त्यूं जीवते कौं नहीं व्यापै वाको नाम जीवत मृतक है । ऐसो संत को देषि के डरानों नाम काल भी ता संत सों सदा डरता रहै है । 'काल सज्या दे जगत कौं' । इति । तहां 'काल प्रचण्ड को दण्ड मिट्यो' । इति । ता विपर्यय वाणी का पाठ कोंण जांणै तहां कहै हैं 'जाकौं अनुभव होय सो जाणैं' । अनुभव नाम सांख्यांतकार ज्ञान । अथवा भलै प्रकार शब्द, शास्त्र, विवेक ज्ञान होय सो जाणैं ॥ ३ ॥

पीताम्बरी टीकाः—अनंत वासना करि युक्त मनरूप जो हस्ति (कुंजर), ताकूं सूक्ष्म विचारवाली अंतर्मुख बुद्धिरूप कीरी, ताकूं प्रथम अविवेक करि जीवभाव पाया हुआ आत्मरूप स्याल । खाय अपानो-कहिये गुरुकी कृपा सें अपने में उक्त आभास का त्यागकरि के परमात्मानंद कूं पाया—जिज्ञासावाली साभास बुद्धिरूप जो मछरी तानें संचित कर्मरूप तृण के दाहक ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि (ता) मांहि सुख पायो । कहिये निरतिशयानंद कूं पाया । सो प्रथम अज्ञानकाल में संसाररूपी जल में तड़ुव

बेहाल हुती। कहिये दुःखी थी।—स्वर्गादिक लोकमें और इस लोक में गमन औ आगमन की इच्छारूप चरणन तें रहित तीव्र वैराग्यवान् मुमुक्षुरूप जो पगु। सो प्रपंच तें पर चिदाकाशरूप पर्वत के ऊपर चढ्यो। कहिये स्थित भयो।—देहेन्द्रियादि संघातके अभिमान तें रहित दग्ध पटवत् देहाभिमान से रहित, औ अध्यास की निवृत्तिवाले जीवन्मुक्तरूप जो मृतक। ताकूं देखि के काल डरानों, कहिये भयभीत हुआ। यहां श्रुति प्रमाण है:—"परमात्मा के भयकरि मृत्यु भी दौड़ता है"। औ ज्ञानी ब्रह्मरूप होने तें काल का भी काल है। यातें काल कूं ज्ञानी का भय संभवै है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि जो कोई अनुभवी कहिये ज्ञानी होय सो (सु) यह अज्ञानीजनों की दृष्टिकरि विपरीत औ आश्चर्यकारक ऐसा उलटा ख्याल, कहिये विषय जानै ॥ ३ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सु० दा० जी की साखी—"कीड़ी कुंजर कौं गिलै स्याल सिंह कौं पाइ। सुन्दर जल तैं मच्छली दौरि अग्नि मैं जाइ"। ४। दादू जी का पद २१३—"कीड़ी ये हस्तीये विडार्यो तेन्हैं वैठी पाये।—रज्जबजी का पद ५। आसावरी "कीड़ी कुंज मार गरास्यो"—रज्जब पद ५ (आसावरी)—"मूसे मीनी खाई"—पद २ (आसा०) मच्छी मध्य समुद समाना"।—"पंगुल पर चढि धाये"।—हरिदासजी निरंजनी की साखी—"अज्या सिघ सूं झूझै" (१)—"मीन मकर कूं खावण लागी" ।४।—"मृतक जमकूं दई सांसना"।६।—(योग मूल सुखयोग)।—श्यामचरणदासजी "चीते को मारि मृग नखसिख खाय गयो, बाघनी को मारि बोक सिंह कों ग्रसैगो। बिल्ली को मारि चूहे प्रेम को नगारो दियो, दादुर हु पांच सर्प मारि के वसैगो"।—(भक्तिसागरादि-पृ०२१२-१३)।—गुरु अर्जुनदेवजी—"गोको चारे सारदूल। कौड़ी का लख हूवा मूल। बकरी को हस्ती प्रतिपालै"—(राग रामकली ग्रन्थ साहिब में गुरु अर्जुनदेवजी का पद।)।—कबीरजी का पद—"चींटी के पग हस्ती बांधें, छेरी बीगै खायौ"। (बीजक, पद ५२ से)।—तथा—"नित उठ सिंह स्यार सों जूझै। कबिरक पद जन बिरला बूझै"। (बी० पद ९५ से) ।—तथा—'चींटी के मुख हस्ति समान"। बी० पद १०१ में)।—श्रीकबीर शब्द—"पानी बिच मीन पियासी, मोहि सुन सुन आवै हांसी"। (शब्दावली। २९।)।—तथा—"उलट

बुंद हि मांहिं समुद्र समानौ राई मांहिं समानौ मेर।
पानी मांहिं तुंविका बूडी पाहन तिरत न लागी वेर॥
तीनि लोक मैं भया तमासा सूरय कियौ सकल अंधेर।
मूरप होइ सु अर्थ हि पावै सुंदर कहै शब्द मैं फेर॥ ४॥

स्यार सिंघ को खाय"। (शब्दावली। ३१ में।)।—तथा पद—"एक अचंभा देखारे भाई। ठाढा सिंघ चरावै गाई।···जलकी मछली तरवर व्याई, पकड़ि बिलाई मुरगै खाई"। (कबीर ग्रन्थावली। पद ११ से)।—तथा—"अचरज एक देखु ससारा, सुनहां खेदै कुंजर असवारा। ऐसा एक अचंभा देखा, जंबुक केहरि सूं लेखा" (क० ग्र०। पद १४५ में)।—तथा—"उलटि स्याल स्यंघ कूं खाइ, तब यहु फूलै सब वनराइ"। (क० ग्र०। पद ३४९ से)।—गोरषनाथजी—"डूंगरि मंछाजलि सूसा"। (गो० पद ५ में)।—तथा—"वांझकेरा वालड़ा पंगला तरवर चढ़ियां। (गो० पद २० में)।—तथा—"गावड़ी का मुख में वाघुला व्याइला।" (गो० पद २१ में)॥ ३॥

ह० लि० १ टीका:—बूंद=आत्मा, दूजी काया समुद्र=परमात्मा दूजो ब्रह्म माया। राई=भक्ति। मेर=मन। पानी=प्रेम। तुंविका=काया पाहन=हृदय तिरो=कोमल हुवो। सूरज=ज्ञान। अंधेर=पदार्थ का अभाव। मूरप=संसार कानी सूं मूर्ख। अर्थ=ब्रह्म॥ ४॥

ह० लि० २ री टीका:—बूंद नाम जलबूंद की काया। यद्वा बूंद तुल्य अति लघुजीवात्मा। तामैं अति अपार विस्तीर्ण अति बड़ा समुद्र नाम ब्रह्म सो समाना। भजन ध्यान सों एकता कों प्राप्त हुआ। राई नाम अति सूक्ष्म जो भगवंत-भक्ति, तामैं अतिविस्ताररूप संकल्पात्मक जो मन, मेर पर्वत सदृश, सो समायो, नाम सर्व संकल्प छोडिकैं भक्ति में अखंड लीन हुवो। पानी नामप्रेम तामैं तुंबिका नाम कड़वी सर्व विकारयुक्त महाकटुकरूप काया तूंबड़ी, सो डूबी रोम रोम में महाप्रेम सूं मगन होय शुद्ध हुई। पाहन तुल्य अति कठोर जो अभक्त हृदो सो भगवत-प्रेम कों पाय। तिरतां नाम कोमल शुद्ध होतां वार न लागी। जहां प्रेम होवैगो तहां ही कोमलता

होवैंगी। तीन लोक में एक बड़ो तमासो नाम आश्चर्य हुवो कहा हूवो। जो सूर्य रूप प्रकाशमान ज्ञान सोही अंधारो कीयो, इह तमासो। अंधारो कहा—ज्ञानरूप प्रकाश नें विद्यमान संसार को अभाव कीयो। सूरप होय सो अर्थ नाम याके सिद्धांत कों पावैं। शब्द में फेर नाम कल्याण मारिग में अति प्रवीन पुरुष जगत व्यवहार में अप्रवर्ती होवैं योही फेर ॥ ४ ॥

पीताम्बरी टीकाः—"भ्रांतिकरि भिन्नभासमान जीवरूपी बूंदहि मांहि ब्रह्मरूप समुद्र समानो। एकता कूं प्राप्त भयो।—मैं ब्रह्म हूं ऐसी सूक्ष्म वृत्तिरूप राई मांहि शरीररूप शिखर सहित अज्ञानरूप मेरु (पर्वत) समानो कहिये मिथ्यापने के निश्चयरूप अथवा तीनकाल में अभाव निश्चयरूप बाधको विषय भयो।—पानी संसार समुद्र के चौराशी लक्ष योनिजन्य दुःखरूप पानीमांहि देहादि अभिमानवाली अज्ञानी की बुद्धिरूप तुंबिका जन्मादिक के प्रवाह में डूबी कहिये दब गई। शुद्धस्वरूप के अहंकाररूप जो पाहन कहिये पत्थर है ताका "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा आकार है, औ अज्ञानी कूं अतिभारी लगै है, सो पूर्वोक्त जल के ऊपर सालिग्राम की न्याईं तरत बेर न लागी, कहिये जा क्षण में वह शुद्ध अहंकार उदय हुआ, तिसी क्षणमें जीवन्मुक्ति की प्राप्ति भई। "अहंब्रह्मास्मि" निश्चयरूप तत्वज्ञान ने सर्वजगत का अभाव किया। ताका तीनलोकमें तमासा भया कहिये आश्चर्य भया। यामें हेतुयुक्त रहस्य कहैं हैः—जब ज्ञानरूप सूरज उदय होवै है, तब कारण सहित सर्वजगत (जो अज्ञानी की दृष्टि में प्रत्यक्ष सत्यभासै है औ ज्ञानी की दृष्टि में असत्य भासै है, तिस) का अभाव होवै है। सोई सकल अंधेरा कियो ऐसे सिद्ध होवैं हैं। यहां श्रीमद्भगवद्गीता का प्रमाण कहैं हैं:—"जो सर्वभूतन की रात्रिरूप ब्रह्म है तामें ज्ञानी जागै है। औ जिस जगत में भूत (प्राणी) जागते हैं, सो ज्ञानी की रात्रि है"। ऐसे दूसरे अध्याय में कह्या है। ज्ञानी संसार ते विमुख होवै है, यातें तिस मार्ग में सो मूरख कहिये है। ऐसा जो होय सु उक्त अर्थ कूं पावैं। सुन्दरदासजी कहै हैं कि ऐसें शब्द में फेर है, अर्थ में नहीं" ॥ ४ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—दोनों ही टीकाओंके अर्थ, अपने २ स्थानों में ठीक ही हैं। परंतु आपस का तो कुछ अन्तर है ही। परन्तु साधारण रीति से अर्थ ऐसा भी

होता है:—संसाररूपी माया का समुद्र अतिसूक्ष्म आत्मारूपी बूंद में ज्ञान होते ही लोप हो गया। और 'राई के ओल्हे पर्वत' ऐसी कहावत प्रसिद्ध है। उसके अनुसार गुरु वा शास्त्र के बताये हुए बारीक ज्ञान की सैन प्राप्त होने से भारी अज्ञान का पहाड़ (जो मेरु के समान अज्ञता के हृदय बीच बसता वा जमा हुआ था) गायब हो गया। तूंबड़ी के छिलके में हवा भरी रहने से तिरती है। इस देहमें अभिमान (अज्ञान) रूपी वायु भरी थी सो उपदेश के ठोंसे से छिद्र होकर निकली और ज्ञानरूपी जल (आत्मज्ञान) उसमें भर गया सो उस जलरूपी ज्ञान में गरक हो गई डूब गई। जीवात्मा परमात्मा में लीन हो गया। अज्ञान के बोझसे बुद्धि भारी अथवा कैड़ी थी सो (रामनाम वा ज्ञान के प्रताप से) हलकी व कोमल होकर संसार समुद्र पर से तिर गई। और अर्थ समीचीन है। गीता में भी भगवान ने एक प्रकार का विपर्यय ही कहा है। "या निशा सर्वभूतानां…(इत्यादि) गीता २।६९। और इस श्लोक पर शांकरभाष्य वा अन्य भाष्य वा टीका देखें।—इसपर सु० दा० जी की साखी—"समद समानौं बुन्द में, राई माहिं मेर। सुन्दर यह उलटी भई, सूरय कियौ अन्धेर"। ५।—रज्जब पद २ (आसावरी)—"पर्वत उड़ा पंख थिर बैठा"।—हरिदासजी निरंजनी की साखी—"समद बून्द में माया"। २।—"मूरख पण्डित की गति पाई"। ३। (योग मूल सुख भोग)।—तथा—"तिल में मेर समाना"। (उक्त)।—तथा—"तन पांणी में भीजे नांहीं।—(उक्त)।—कबीरजो का पद—"पाहन फोरि गंग इक निकसी, चहुंदिसि पानी पानी। तेहिं पानी दुइ पर्वत बूड़े दरिया लहर समानी"। (बीजक शब्द १) तथा—"बिन पवनें जहँ पर्वत उड़ै। जीव जन्तु सब बिरछा बुड़ै॥ धरती उलटि अकाश हि जाई। चींटी के मुख हस्ति समाई॥ सूखे सरवर उठैं हिलोल। बिनु जल चकवा करैं किलोल॥ बैठा पण्डित पढ़ै पुरान। बिन देखे का करैं बखान॥ कहै कबीर जो पद को जान। सोई सन्त सदा परमान"॥ (बी० शब्द १०१)।—तथा—"अन्धे आंखी सूझै। (बी० शब्द १११)।—गोरषनाथजी का पद—"अष्टकुल पर्वत जल बिन तिरिया, अद्बुद अचम्भा भारी"। (गो० पद ३ में)।—तथा—"तिल के नाकैं त्रिभुवन साध्या, कीया भाव बिधाता"। (गो० पद ४ में)।—तथा—"लाकड़ डूबै सिल तिरैं, देषंतां जुग जाइ। ऊंटे प्रनाले

मछरी बुगला कौं गहि पायौ मूसै पायौ कारौ साप।
सूवै पकरि बिलइया पाई ताकें मुये गयौ संताप॥
बेटी अपनी मा गहि पाई बेटै अपनौ पायौ बाप।
सुंदर कहै सुनहुं रे संतहु तिनकौं कोउ न लागौ पाप॥ ५॥

बहि गयौ, सुसलौ पीलि न माइ"। (गो० पद ५ में)।—तथा—"चींटी का नेत्र में गजेन्द्र समाइला"—(गो० पद २१ में)।—तथाच—"मगरी का पांणी कुई आवै, उल्टो चरचा गोरष गावै"। (गो० पद ३९ से)॥ ४॥

ह० लि० १ टीका:—मछली=मनसा। बगुला=दम्भ। मूसा=मन। कारो सांप=संसै। सूवा=प्राण। बिलाई=दुर्मति। बेटी=बुद्धि। मा=माया। बेटा=ज्ञान। बाप=ईरषा।

ह० लि० २ री टीका:—मछरी नाम मनसा तानें बगला नाम ऊपर सौं ऊजरो ९८ मांहिसों मैला ऐसो दम्भ। ताको गहि पायो नाम जीति जमासों उठायो दूरि निवार्यो। मूसो नाम मन तानें सांप नाम संसो सर्पको गरसन करि रह्यो तासों सांप संसै पाया सकल जग। इति। सो संसाररूपी सांप मनरूपी मूसें ने खायो। इहो विपर्यय। मनमूसो क्यूं। छानें छानें अनेक मनोरथां फिरि आवै यों मूसो। सूवो नाम अति चपल प्राणात्मा तानें पकरि करि अति पुरुषार्थ करिकैं बिलाई नाम ईरषा खाई दूरि करी ता बिलाई का नाश हूवां सर्व सन्ताप गया, परम आनन्द हुआ।—बेटी नाम निरवासिनी बुद्धि तानें अपनी मा नाम माया ममता वा जासो बुद्धि उपजी वाही माया, मा, वाही कौं खाई, नाम वाही माया ममता कौं दूरि करी। बेटो नाम ज्ञान जा सरीर में उपज्यो वाही वपु, सरीर कौं खायो, फेरि उत्पत्ति होय नहीं, जन्म मरण रहित कीयो। कोउ न लागौ पाप—जो माय बाप खायां वा मार्यां जो पाप होइ सो इहां नहीं है। इह विपर्यय शब्द को विचार कीयां अत्यन्त आनन्द पुन्य सुख का दाता है॥ ५॥

पीताम्बरी टीका:—निष्काम-उपासनायुक्त बुद्धिरूप मछरी ने अपने से विरोधी चित्त के विक्षेपनामक दोषरूप बगले कूं अभ्यास के बलतें गहि खायो कहिये नाश कियो। पापरूप वस्त्रन कूं कतरनेवाला शुद्ध मनरूप जो मूसा है, तिसनें अपने से

विरोधी चित्त के मल नामक दोषरूप कारो सांप खायो कहिये नाश कियो। सुवे—जाकी विवेकरूप चंचु है। शम औ दमरूप दो पाद हैं। उपरति औ तितिक्षारूप दो पक्ष हैं। श्रद्धा औ समाधानरूप दो नेत्र हैं। वैराग्यरूप पेट है। औ मुमुक्षतारूप पुन्छ है। ऐसे अन्तःकरणरूप सूवे ने इस लोक औ परलोक की इच्छारूप विलारी पकरि खाई। कहिये निवृत्ति करी। ताके मुवे सन्ताप गयो कहिये तिस इच्छा के नाश हुवे, ज्ञान के प्रतिबन्धक संसार के क्लेश की निवृत्ति भई। वेटी—अन्तःकरण की वृत्तिरूप परिणाम कूं प्राप्त भई जो अविद्या, तिस करि ब्रह्मविद्या की उत्पत्ति होवै है। ऐसे ब्रह्मविद्या की माता अविद्या, औ पुत्री विद्या सिद्ध होवै है। तिस विद्या तें अविद्या का नाश होवै है, ऐसे वेटी अपनी मा गहि खाई। वेटे—ज्ञान हुवे पीछे इच्छानुसार निर्विकल्प अभ्यास करि मन का निग्रह होवै है। तदनन्तर मन की अनंत वासना का नाश होवै है। ऐसे वासनाक्षयरूप वेटे, मनरूप अपनो वाप खायो। सुन्दरदासजी कहैं हैं—हो सन्तो सुनो! मछरी नें वगला कूं खायो, मूसे ने कारो साप खायो, सूवे ने विलारी खाई, वेटी ने अपनी माता खाई, औ वेटे ने अपनो वाप खायो। तातें तिनकूं कोउ पाप न लाग्यो ॥ ५ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः— सुं० दा० जीकी साखी—“मछली वुगला कौं ग्रस्यौ, देषहु याके भाग। सुन्दर यह उलटी भई, मूसैं पायौ काग”। ६।—रज्जव पद ५ (आसावरी)—“मूंसैं मीनी खाई”।—“मूंसैं पायौ कारो सांप”।- हरिदासजी निरञ्जनी—“मूंसै दौड़ि विलाई पकड़ी” (२)।—“चिड़े पिचाणों खाया” (२)।—गुरु अर्जुनदेवजी का पद—“दीसत मांस न खाय विलाई। महा कसाव छुरी सट-पाई”।—(ग्रन्थ साहिब—पांचवां महाला)।—कबीरजी का पद—“उदधि मांहि ते निकसी छांजरि चौड़े गेह करायो। मैंडुक सर्प रहै यक संगै, विल्ली स्वान वियाही।... मच्छ अहेरा खेलै। (बीजक पद ५२ से।)।—तथा—“गैया तो नाहर को खायो, हरिना खायो चीता। कागा लपरे फांदिकै, वटेर ने वाज जीता॥ मूंसा तो मंजारे खायो, स्यारै खायो स्वानां। आदि को उपदेश जु जानै तासूं वैसे वानां॥ एकै तो दादुर सौ खायो, पांचौं जे भुवंगा॥ कहैं कबीर पुकारिके, हैं दोऊ यकसंगा”। (वी० पद १११)।—तथापद—“ऐसा अदभुत मेरे गुर कथ्या, मैं रह्या उभेषै। मूंसा

देव मांहि तें देवल प्रगट्यौ देवल मंहिं तैं प्रगट्यौ देव।
शिष्य गुरुहि उपदेशन लागौ राजा करै रंक की सेव॥
वंध्या पुत्र पंगु इकु जायौ ताकौ घर पोवन की टेव।
सुंदर कहै सु पण्डित ज्ञाता जो कोउ याकौ जानै भेव॥ ६ ॥

हस्ती सौं लड़ै, कोइ विरला पेपै॥ मूंसा पैठा वांवि में, लारै सांपणि धाई। उलटि मूंसै सांपणि गिली, यहु अचिरज भाई॥ चींटी परवत ऊपण्यां, लै राष्यौ चौड़ै। मुरगा मिनकी सूं लड़ै, झल पाँणीं दौड़ै॥ सुरही चूंपै बच्छ तलि, बच्छा दूध उतारै। ऐसा नवल गुणीं भया, सारदूल ही मारै॥ भील लुक्या वन बीझ मैं, ससा सर मारै। कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि विचारै"॥—(क० ग्रं०। पद १६१)।—गोरखनाथजी का पद—"गोरप वालड़ा सतगुर वांणींजी। जीवता न परण्यां तेन्हैं आगी न पांणीं जी॥ कीली दूझै भैंस विरौले, सासूड़ी पालणैं वहूड़ी हिंडौलै। कोइल मारी अंवलो वास्यौ, गगन मछलड़ी बुगली ग्रास्यौ। करसण याकौ रषवालौ पाधौ, चरिगया ग्रघला पारधी वांधौ। सींगी नादै जोगी पूरा, गोरप परण्यां जहां चंद न सूराजी"॥ (गो० पद ३७)।—तथा—"मूंसा के सवद विलाई नासै, कउवा की टाली पीपल वासै"। (गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीका:—देव=परमेश्वर। देवल=शरीर। देवल=शरीर पुनः। देव=परमेश्वर पुनः। शिष्य=चित्त। गुरु=मन। राजा=रजोगुण वा मन। रंक=जीव। वंध्या=आत्मा वा बुद्धि। पुत्र=ज्ञान गुणातीत। घर=शरीर॥ ६॥

ह० लि० २ री टीका:—देव जो परमेश्वरजी सर्व को कारणरूप, तामैंसौं स्वइच्छा संसार उत्पत्ति द्वारा, देवल शरीर प्रगट्यो उत्पन्न हुवो। अब वा देवल ही मैं, गुरु शास्त्र संत उपदेश विवेक सौं, देव परमेश्वरजी की प्राप्ति हुई। शिष्य चित्त। सो शिष्य क्यूं? जो पहली मनरूपी गुरु के आधीन आज्ञावर्ती हो, सो अब अपना विवेक बलकौं पाय गुरु रूप होय अति बलवंत ताही मनकौं शुद्ध शिक्षादितैं शिष्य बनाय आपकै वसि में लावण लाग्यो। राजा नाम रजोगुण वा मन, सो अज्ञान अवस्था में बलवंत होय कै आपका स्वरूप ज्ञानरूपी धन करि हीन रंक जो जीव ताकौं आपका हुक्म सौं कर्मा मैं प्रेरकै चलावै हो। अब वोही जीव गुरु उपदेश विवेक बल कौं

प्राप्त हुवो, तब वोही राजागुण मनजीव की सेवा करने लागो। वंध्या नाम बुद्धि।
वंध्या क्यूं ? जो सर्वगुण विकार वृत्ति उत्पत्ति-रहित महानिर्मल शुद्ध, ताकै एक पुत्र
नाम ज्ञान पुत्र हूवो। सो पंगुल क्यूं ? सर्वगुण रहित एक रस। घर-जा शरीर रूपी
घर में उपज्या ता घरको पोवण की टेव, अर्थात् ज्ञान उपज्यो तब जन्म-मरण रहित
हूवो। सोई पंडित ज्ञानी है जो याका अर्थ का भेव नाम सिद्धांत कूं जाणें नाम निश्चै
निरणें करै ॥ ६ ॥

पीताम्वरी टीका:—सर्व का अधिष्ठान औ कूटस्थ आत्मा रूप (जो) देव
(ता) मांहि तें देहरूप देवल प्रगट्यो, कहिये साक्षी विषे, स्वप्न की न्यांई, भ्रांति
से प्रतीत भयो। तिस देहरूप देवल मांहि सत् शास्त्र औ सद्गुरु के वोध (कराने)
ते (पूर्व अज्ञान काल में जो प्रगट नहीं था सो) सो आत्मा रूप देव प्रगट्यो, कहिये
स्व-स्वरूपकरि अपरोक्ष (प्रगट) भयो। शिष्य—पूर्व अविवेक कालमें प्रवल मनरूप
गुरु की शिक्षा कूं माननेवाला सभास अंतःकरण सहित विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है
सो जीवरूप शिष्य विवेक काल में ब्रह्मविद्या कूं पायके, तिस मनरूप गुरुहि उपदेशन
लाग्यो, कहिये शिक्षा करिके सूधे मार्ग में प्रवृत्ति करावने लाग्यो। पूर्व अज्ञानकाल में
अपने अधिष्ठान कूटस्थकूं आप दवाय के, अवस्था सहित तीन देहरूप नगरीन का
अभिमानरूप राज्य के करनेवाला जो अहंकाररूप राजा। सो जीवभावरूप कंगालता
कूं पाया हुवा आत्मारूप रंक की—ज्ञानकाल में ब्रह्मभाव कूं प्राप्त हुवा जो आत्मा
ताके वश हुआ, 'मैं देहादिक हूं' इस आकार कूं छोडिके 'मैं ब्रह्म हूं' इस आकाररूप
धारणा की सेव करै है। राजसी औ तामसी वृत्ति रूप आसुरी संपदा से रहित सात्विकी
वुद्धिरूप वंध्या (माता) ने ज्ञानरूप इक पंगु पुत्र जायो कहिये वहिर्मुखवृत्ति रूप
पगनतें रहित पुत्र उत्पन्न कियो। सो कैसो है ? जाकी उक्त वुद्धिरूपी माता है, शुद्ध
अहंकाररूप पिता है, रागादि वृत्तिरूप भगिनिआं हैं, कर्मरूप भाई है, जगतरूप दादा
है, औ अज्ञानरूप परदादा है। ताकूं इस संघात (शरीर) रूप घर खोवन की टेव
पड़ी है। अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे और कुछ रहै नहीं। सुन्दरदासजी कहते हैं कि जो
कोई याको भेव कहिये अभिप्राय जानै। सो पुरुष पंडित ज्ञाता कहिये श्रोत्रिय औ
ब्रह्मनिष्ठ है ॥ ६ ॥

कमल मांहिं तें पानी उपज्यौ पानी मंहिं तें उपज्यौ सूर।
सूर मांहि सीतलता उपजी सीतलता मैं सुख भरपूर॥
ता सुख कौ क्षय होइ न कबहूं सदा एकरस निकट न दूर।
सुन्दर कहै सत्य यह यौं हीं या मैं रतो न जानहु कूर॥ ७॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"गुरु शिष के पायनि पर्यौ, राजा हूवो रंक। पुत्र बांझ कै पंगुलै, सुंदर मारी लंक"। ८।—रजब पद ४ (आसावरी)—"मूरति मांहि देहुरा आया"।—कबीरजी का पद—"दिव बिन देहुरा, पत्र बिन पूजा, बिन पंखां भंवर बिलंबिया"।—"बांझ का पूत बाप बिना जाया, बिन पांऊं तरवरि चढिया"। (क० ग्रं०। पद १५८)।— गोरषनाथजी का पद—"बाझँ बेटो जनमियो, नैंणं पुरषन दीठो"। (गो० पद ५)।—तथा "बारा बरसै बांझि ब्याई। हाथ पग टूटा"। (गो० पद २१ में)।—

ह० लि० १ टीकाः—कमल=हृदय। पानी=प्रेम। सूर=ज्ञान (प्रेम से ज्ञान उपजा)। सूर=ज्ञान से ब्रह्मानन्द शांति उपजी॥ ७॥

ह० लि० २ री टीकाः—कमल नाम हृदा कमल तामें ऊजल संस्कार करि पाणी नाम प्रेम उपज्यौ। पाणी नाम प्रेम सहित भक्ति तामें सूर नाम सूररूप सर्व अज्ञान नाशक ज्ञान प्रकाश हूवो। अर्थात, ज्ञान उत्पत्ति का साधक प्रेमा भक्ति ही मुख्य है। अवर गौण है। वा सूररूप ज्ञान प्रकाश मैं सीतलता नाम सर्वताप-रहित ब्रह्मानन्द-स्वरूप की प्राप्ति से शांति उपजी। ता शांति रूपी सीतलता में बाह्यभ्यंतर निर्विकार भरपूर नाम परिपूर्ण सुख रह्यो है। वा ब्रह्मानन्द प्राप्ति के सुख को नाश किसी काल में भी न होवै। वो सुख कैसाक है, जो सदाकाल एकरस परिणाम रहित अविनाशी है। पुनः कैसाक है नैड़ान दूर सर्वत्र वोही है। या मैं वेद-पुराण श्रुति स्मृति संत साधु सर्व प्रमाण हैं किंचित्मात्र भी कूर नाम मिथ्या मति मानौं। तथा "अक्षयानन्दम्" श्रुतेः॥ ७॥

पीताम्बरी टीकाः—च्यारि साधनरूप पांखुरी सहित अंतःकरणरूप कमल मांहिं ते तत्त्वं पद के अर्थ के शोधनरूप शुद्धतावाला, श्रवणरूप वेगवाला, मनरूप लहरी-

हंस चढ्यौ ब्रह्मा के ऊपर गरुड चढ्यौ पुनि हरि की पीठि।
वैल चढ्यौ है शिव के ऊपर सौ हम देष्यौ अपनी दीठि॥
देव चढ्यौ पाती के ऊपर जरप चढ्यौ डाइनि परि नीठि।
सुन्दर एक अचम्भा हूवा पानी माँहिं जरै अङ्गीठि॥ ८॥

वाला, औ असंभावना सहित, विपरीत भावनावाला, मल का नाश करनेवाला निदिध्यासनरूप पानी उपज्यो, कहिये उत्पन्न भया। तिस निदिध्यासनरूप पानी मांहिं ते स्व-स्वरूप के अनुभवरूप सूर उपज्यौ, कहिये सूर्य उत्पन्न भयो। तिस ज्ञानरूप सूर (सूर्य) माहिं ते कार्य सहित अविद्या की निवृत्तिरूप शीतलता उपजी। औ शीतलता में सुख भरपूर, कहिये तिसतें परिपूर्ण ब्रह्मानंद सुख की प्राप्त होवै है। तो ब्रह्मरूप नित्य औ निरतिशय सुख को क्षय कबहूं न होइ, कहिये तिस सुख का किसी काल में नाश नहीं होवै। काहेतें, यह ब्रह्मसुख सदा एकरस है। औ सर्वकाल अपना आप है। तातैं निकट कहिये नजदीक, औ न दूर कहिये देशकाल का अन्तरायवाला नहीं है। सुंदरदासजी कहते हैं कि यह वार्ता यूंही कहिये उक्त रीति सें सत्य है। या में रती कहिये रंच मात्र भी कूर कहिये असत्य न जानहुं ॥ ७॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जी की साखी—"कमल मांहिं पाणी भयौ, पांनी माँहिं भांन। भांन माँहिं शशि मिल गयौ, सुंदर उलटौ ज्ञान"। ९।—गुरु अर्जुनदेवजी का पद—"सूखे काठ हरे चलूल। ऊंचे थल फूले कमल अनूप"।—(ग्रंथसाहब ५ वां महाला—राग रामकली।)।—

ह० लि० १ टीकाः—हंस=जीव। ब्रह्मा=रजोगुण। गरुड=ज्ञान। हरि=सतोगुण। वैल=शरीर। शिव=तमोगुण। देव=जीव। पाती=प्रकृति। जरप=मन। डाइन=मनसा। पानी=काया। अंगीठ=ब्रह्मअग्नि॥ ८॥

ह० लि० २ टीका—हंस नाम जीव, सो ब्रह्मा नाम ब्रह्मारूप रजोगुण, ता परि चढ्यौ नाम गुरु संत शास्त्र विवेक सों वाकों जीत्यो। गरुड नाम अति वेग वलवंत सर्व दुःख फर्म जयकारी ज्ञान, सो हरि नाम जो विष्णु सम्बन्धी सतोगुण ताकों जीत्यो। वैल जो अज्ञता जडतारूप वपु नाम शरीर तामैं पुरुषार्थ करिकैं शिवरूपी

जो तमोगुण ता परि चढ्यो नाम जीत्यो। सो इह विपर्ययरुप व्यवहार सिद्धांत हम देष्यो विवेक दृष्टि सों। देव नाम सदा देदीप्यमान चेतन जीव, सो पाती नाम अंतःकरण को प्रकृति ता परि चढ्यौ नाम सर्व प्रकृति जीती। जरप पर डायन चढै यह रीति है, परन्तु इहां विपरीति है—जरप ओ संकल्पात्मकरूप मन सो डायन नाम अत्यन्त पदार्थों की लालसा संकल्पों की कारणरूप मनसा ताकूं जीती। इन सर्व साधना को फल सिद्धांत कहे हैं। सुन्दरदासजी कहै हैं एक बड़ा अचंभा देष्या। सो कहा? पानी नाम जल बूंद की काया तामैं अंगीठ नाम सर्वदुःख कर्म विकार वासना को दाहक ब्रह्मानन्द स्वरूप प्राप्तिरूप साक्षात् ज्ञानाग्नि प्रकाश हूवो अर्थात् ब्रह्मानन्द स्वरूप प्राप्त हूवा॥ ८॥

पीताम्बरी टीकाः—सात्विकी वृत्ति सहित मनरूप हंस सो रजोगुणरूप ब्रह्मा के ऊपर चढ्यो। कहिये ताकूं जीत लियो। पुनि निर्गुण ब्रह्म के अभ्यास युक्त मनरूप गरुड सो सतोगुणरूप हरि (विष्णु) की पीठ पर चढ्यो कहिये तिसकूं जीति लियो अर्थात् निर्गुण स्थिति कूं प्राप्त भयो। रजोगुण की वृत्ति सहित मनरूप बैल तमोगुणरूप शिव पर चढ्यो है कहिये ताकूं जीत लियो है। सो हमने अपनी दीठ, दृष्टि करि, देष्यो। सो ऐसेः—रजोगुण की वृद्धि तें तमोगुण का पराजय होवै है। इत्यादिक अभ्यास काल में हमने अनुभव किया है। स्वप्रकाश आत्मचैतन्यरूप देव, देहादिक अनात्म संघातरूप पाती—तुलसी पत्रादिक (सेवा की सौंज) के ऊपर चढ्यो। याका अर्थ यह हैः—जैसे पूजनकाल में पत्रादि सामग्री तें देव की मूर्त्ति का आच्छादन होइ जावै है तातें सो देखने में नहीं आवै है, पूजन समाप्ति पीछे जब पत्रादि सामग्री कों उतारि के नीचे पृथिवी पर डाल देवैं तब देव स्पष्ट देखिये हैं। तैसे अज्ञानकाल में देहादिक अनात्म संघात के अभिमान तें आत्मा कूं आवरण होवै है, तातें सो अप्रसिद्ध रहै है। औ ज्ञानकाल में जब आवरण निवृत्त होइ जावै है तब स्वप्रकाश आत्मा का स्व-स्वरूप करि आविर्भाव होवै है। विवेकरूप मनरूप जरप (एक जात का जंगली जानवर होवै है जाकी पीठ पर चढि के डाकिनी सवारी करै है सो) विषयाकार वृत्तिरूप डायनि कहिये डाकिनी के पर नीठ कहिये अच्छी तरह सें चढ्यो, कहिये ज्ञान की सहायता सें प्रबल होय के वृत्ति कूं जीत लीनी। सुन्दरदासजी कहै हैं कि एक अचंभा,

कपरा धोबी कौं गहि धोवै माटी वपुरी घरै कुम्हार।
सुई विचारी दरजिहि सींवै सोना तावै पकरि सुनार॥
लकरी वढई कौं गहि छीलै पाल सु वैठी धंवै लुहार।
सुन्दरदास कहै सो ज्ञानी जो कोउ याकौ करै विचार॥ ६॥

आश्चर्य, हूवा। सो कहे हैं:—दैवी सम्पति के वलतें शीतल अंतःकरणरूप पानी मांहि अंगीठ, कहिये इस लोक के औ परलोक के शुभाशुभ कर्म के फल की दाहक औ ब्रह्मानंद की प्रकाशक, ब्रह्मज्ञानरूप अग्नि जरै है कहिये होवै है॥ ८॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जी की साखी—"ब्रह्मा ऊपरि हंस चढ़ि, कियौ गगन दिसि गौंन। गरुड़ चढ्यौ हरि पीठि पर, सुंदर मानैं कौंन। १५। वृषभ भयौ असवार पुनि, सुंदर शिव पर आइ। डाइंण ऊपरि जरप चढ़ि, भली दई दौराइ" ।१६। हरिदासजी निरंजनी की साखी—"पांणी मांहीं अगनी प्रकटी"। ४। (योग मूल सु० योग)।—श्यामचरणदासजी का पद—"वैल चढ्यौ शंकर के ऊपर, हंस ब्रह्म के शीश। सिंह चढ्यौ देवी के ऊपर, गुरु ही की वखशीश। नाव चढी केवट के ऊपर, सुत की गोदी माय" ।शब्द ७। पृ० ४१८। (भक्तिसागरादि) ।—तथा—"जिहिं घर अग्नि जलै जल मांहीं" (उक्त पृ० ३४६)।—कवीरजी के पद १११ वीजक में—"पानी में पावक जरै"।—गोरषनाथजी—"उलटि गंगा चलै, धरणि अंवर भरै, नीर में पैठिके अगनि जारै। (गो० ज्ञान चौतीसा।)।—तथा—"पानी में दौं लागी" (गो० पद ५ में)।—तथा—"कांमणीं जलै अंगीठी तापै, वीन्चि वैसंदर थरथर कांपै"—(गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीकाः—कपरा=काया। धोवी=मन। मांटी=मनसा। कुम्हार=प्राण। सुई=सुरत। दरजी=जीव। सीवैं=जीव—ब्रह्म की एकता करैं। सोना=सुमरन। सुनार=मन। लकरी=लै (लय)। वढ़ई=कर्म। पाल=काया वा स्वास। लुहार=जीव वा मन॥ ९॥

ह० लि० २ टीकाः—कपरा नाम काया तासौं वण्या जो भजन सतसंग शुभ-कर्म तिनां सों धोवी जो मन सो निर्मल हूवा। मन धोवी क्यूं करि? 'मन निर्मल तन

निर्मल भाई' मांटी जो मनन अरु प्राणायामरूप अभ्यास सो कुम्हार सो वा मन कों घरै है। क्यों ? जो यो प्राण है सो सर्व वृतियां को उत्पादक है। क्रियाशक्ति द्वारा करि प्राणादि करि भजन क्रिया की सिद्धि होवै है। सुईरूप अतितीक्षण जो सुरति सो दरजी जो जीव ताकी शक्ति सों सुईरूपी सुरति अपने कार्य में प्रवर्त्त होवै है। ता अपना प्रेरक जीव ताकूं सीवै नाम ब्रह्म में एकता करै है। अथवा भ्रांतिअलंकार भी है। सुई सुरति ताकूं जीव दरजी सीवै ब्रह्म में लगावै। इत्यर्थः। सोना नाम अति निर्मल निर्विकार स्मरन सो सुनाररूप जो मन जाकै आसिरै स्मरन वैन सो सोना। वा मन सुनार कूं तावै नाम शुद्ध करै। 'मन मंजन हरि भजन है प्रगट प्रेम की सीर'। लकरी जो लय ताको भगवत के विषै लगाइलै, सो वढई नाम कर्म ताकूं छीलै नाम दूरि करै कर्म वढई करि। जो वढई नाम पाती सो अनेक घाट घडै, यों कर्म भी चौरासी का देहां का अनेक घाट घडै, तासों वढई। पाल नाम काया वा स्वास सो लुहार नाम जीव वा मन ताकूं भ्रमावै है, प्राण वायु कै आसरै मन की चंचलता होवै है, प्राण थिर कर्‌यां मन थिर होवै है। 'स्वास मनोरथ वचन करि मन की जीवनि तीन'। याको विचार नाम याका अर्थ को जो सिद्धान्त ताकूं विचारि करि धारै, वाको नाम ज्ञानी है ॥ ९ ॥

पीताम्बरी टीकाः- चिदाभास सहित मनरूप कपरा (वस्त्र) जो, पूर्व अज्ञान दशा में पुन्यरूप धोवी सें पापरूप मल दूर करने के वास्तै, धोया जाता था। सो अव ज्ञानदशा में आप धोवी कूं गहि (पकरि के) धोवै कहिये "मैं अकर्ता हूं औ असंग हूं" ऐसे शुद्ध निश्चय तें पापपुण्य ते निर्लेप रहै है। आत्मा के सन्मुख भई अंतरवृति वुद्धिरूप माटी। जो पूर्व अविद्याकाल में वाह्यवृत्तिमय मनरूप कुम्हार के वस भई। तिसकरि अनात्माकार होने रूप आप घड़ाती थी। सो अव विद्या दशा में वपरी कहिये स्वरूपाकार होने रूप कार्य में प्राप्त होय के मनरूप कूंभारन अनात्म पदार्थ सें विमुख करि घड़ै, कहिये अपने में अंतर्भाव करै है। वुद्धि में जो सूक्ष्म विचार होवै है सो वुद्धि के वृत्तिरूप परिणाम कूं पावै है सो वृत्ति भी सूक्ष्म होवै है, यातें ताकूं सूई कही है। सो विचारी कहिये गरीवरी है। काहेतें, सो जिस ओर इस कूं ले जावै उस ओर वह चली जावै है। जैसे अज्ञानकाल में जब देहाभिमान होवै है औ

तिसकरि विषयन में वासना होवै है तब मानों तिसी धागे के वलकरि "मैं देह हूं औ मैं कर्ता-भोक्ता संसारी जीव हूं" इसी तरफ चली जावै है। तहां चलानेवाला चिदाभास सहित अहंकार है सोई मानों दर्जी है तिस के वश होय रहै है। सोही ज्ञानकाल में जब स्वरूप का साक्षात्कार होवै है, तब तिसके वलतें तिस चिदाभास सहित अहंकार (जीव) रूप दर्जीहि ब्रह्म सें मिलाय देवै है, सोई मानों सीवै है। बुद्धि उपहित साक्षी जो आत्मा है सो स्वभाव तें ही अति शुद्ध है तातें सो ही मानों सोना है। सो पूर्व संसार दशा में अज्ञान के वश तें चिदाभासरूप सुनार के अधीन था। तिस के कर्तृत्व औ भोक्तृत्वादिक धर्म अपने में आरोप कर लेता था, त्रिविधताप-युक्त संसाररूप अग्नि में तापता था। औ अनेक दुःखन कूं सहता था। सो ज्ञानरूप अग्नि में पाप-पुण्य सुख-दुःख औ गमन-आगमनरूप मल कूं जलावने के वास्तै चिदाभासरूप सुनार कूं पकरि कहिये अपने में कल्पित जानि के तावै कहिये शुद्धता के निश्चय तें अधिष्ठानरूप आप में समावेश करै है ॥ ८ भागत्यागलक्षणा करि लक्ष्य का ज्ञान होवै है। सो लक्ष्य शुद्ध चेतन कूं कहै हैं, तिसका विवेचन करनेवाली जो बुद्धि है सोई मानों लकरी है। औ जो मायाकरि सर्व प्राणीन कूं अंतःकरण में प्रेरणा करै है औ तिन के कर्मानुसार फल भोग देवै है। ऐसा जो माया उपाधिवाला ब्रह्मचेतन है (ईश्वर) सोई मानों बढई (सुतार—खाती) है। ताकूं गहि कहिये कूटस्थ आत्मा में अभिन्न निश्चय करि कै छीलै, कहिये मिथ्या माया उपाधि तें रहित करै है। जो सर्व पदार्थ में ब्रह्म भाव करि निरंतर स्मरण होवै है। ता (निरोध) कूं राजयोग में प्राणायाम कहै हैं। तिस प्राणायाम-युक्त जो बुद्धि है सोई मानों खाल कहिये धमनी है। औ उक्त प्राणायाम के अभ्यास में प्रवृत्ति करावनेवाला जो मन है सोही मानों लुहार है, तिस लुहार कूं सु कहिये वे खाल वैठी कहिये स्थित भई हुई धमैं कहिये वश करै है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि जो कोई या (विपर्यय कथन के सिद्धांतरूप अर्थ कूं) को यथार्थ विचार करै कहिये विचार द्वारा निश्चय करै सो पुरुष ज्ञानी है ॥ ९ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"धोवी कौं उज्जल कियौ, कपरें वपुरें धोइ। दरजी कौं सीयौ सुई, सुन्दर अचिरज होइ। १०। सोनै पकरि

जा घर मांहिं बहुत सुख पायौ ता घर मांहिं बसै अब कौंन।
लागी सबै मिठाई खारी मीठौ लग्यौ एक वह लौंन॥
पर्वत उडै रुई थिर बैठी ऐसौ कोउक बाज्यौ पौंन।
सुन्दर कहै न मांनै कोई तातें पकरि बैठि मुख मौंन॥ १०॥

सुनार कौं, काढ्यौ ताइ कलंक। लकरी छील्यौ बाढई, सुन्दर निकसी वंक"। ११। कबीरजी का शब्द—"सांई दरजी का कोई मरम न पावा। पानी की सुई पवन का धागा। अटमास नव सीवत लागा। (शब्दावली। ९।) गोरषनाथजी का पद— "कायागढ भीतरि धोवणिरांणीं। कपड़ा धोवै अवधू बिन सिल पांणीं"। (गो० पद ३४)।

ह० लि० १ टीकाः—घर=काया। सुख=विषय सुख। मिठाई=विषय स्वाद। लौंन=नांम। परवत=पाप तथा आपो अहंकार। रुई=आतमा। अथवा गरीबी। पौंन=ज्ञान॥ १०॥

ह० लि० २ टीकाः—जा कायारूपी घर में अज्ञान अवस्था में बहुत सुख मान्यौं हो। अब ज्ञान अवस्था प्राप्ति मैं कौंन वास करै, कौंन सुख मानैं, विवेकी कोई भी सुख नहीं मानैं। अज्ञान अवस्था मैं जो अति मीठा प्रिय विषै विकार हा, सो अब ज्ञान अवस्था में सर्व बिरस होइ गया। आदि मैं आरंभकाल मैं लवनरूप भगवत-भजन सोई एक मीठा लागा—'पाती विरियां खारा लागै मीठा लागै मोड़ा सा'। ऐसो कोई आश्चर्य आनन्दस्वरूप ज्ञान आंधीरूप पवन बाज्यो, अंतःकरण मैं उत्पन्न हूवो, जासों पाप आपो अहंकाररूप पर्वत बड़ा हा सो उड़ि गया, रुई नाम नम्रता सो थिर बैठी नाम थिर हुई। सो या अति आनन्द विवेकरूपी वार्त्ता को कोंण मानै, कोंण को कहिये, किसी को भी कहण ज्यूं है नहीं (यातें) मौंन ही बड़ी बात है॥१०॥

पीताम्बरी टीकाः—अज्ञानकाल में इस शरीर विषे तादात्म्य अध्यास होवै है यातैं यह शरीर सुखरूप भासै है, तातैं सोही मानों ग्रह (घर) है। ऐसे जा घर (शरीर) मांहि संसार-सम्बन्धी बहुत-विषय-सुख पायो। ता घर मांहिं विवेक-युक्त ज्ञान हुवे पीछे अब कौन बसै, कहिये अब तादात्म्य अध्यास कौन करै। भाव यह

है:—तौलौं तादात्म्य अध्यास है तौलौं शरीर में सुख भासै है, औ ज्ञान हुवे पीछे भासै नहीं।—इस लोक-सम्बन्धी माला-चंदन-स्त्री आदिक सुख हैं, औ परलोक-सम्बन्धी जो अप्सरा अमृतपानादिक सुख हैं। तिस सुख के भोगरूप (ही) मानों मिठाई है। सो भोगरूप मिठाई विवेक औ वैराग्य करिके खारी लागी, कहिये विरस प्रतीत भई। जब जिज्ञासा होवै नहीं तब ब्रह्मस्वरूप अप्रिय भासै है। औ भाव विना रसवाला पदार्थ भी विरस प्रतीत होवै है। यातैं यद्यपि ब्रह्मस्वरूप मधुर-रस-वाला सर्व कूं प्रिय है तथापि अज्ञानकाल में क्षार-रस-वाला कहिये अप्रिय भासै है, सोई मानों लौंन है। सो ज्ञानकाल में वह एक ही ब्रह्मरूप लौन मीठो लग्यो, कहिये परमानन्दरूप प्रतीत भयो। अज्ञानकाल में शरीर के विषे जो अहंकार होवै है औ तिसकरि वहिर्मुख मन होवै है सो देह अहंकार अथवा वहिर्मुख मनही मानों पर्वत है। सो जिसकरि उडै कहिये निवृत्त होवै है। औ अज्ञानकाल में अभिमानते रहित जो वृत्ति होवै है, अथवा जो अंतर्मुख वृत्ति होवै है सो वृत्ति ही मानों रुई है। सो जिस करि थिर वैठी, ऐसी कौउक पौन कहिये आत्मज्ञानरूप पवन वाज्यो कहिये चलने लग्यो—सुंदरदासजी कहै हैं कि यह आश्चर्य करनेवाली वात कोई अज्ञानी-जन मानै नहीं, तातैं मौन पकरि वैठिये कहिये अनधिकारी के पास यह गोप्य अनुभव खोलिये नहीं॥ १०॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—"जाघर मैं बहु सुख किये, ता पर लागी आगि। सुंदर मीठी नां रुचै, लौन लियौ, सब त्यागि। १२। सुंदर पर्वत उड़ि गये, रुई रही थिर होइ। बाव बज्यौ इहिं भांति कौ, क्यूंकरि मानै कोइ" ।१३। तथा—"मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ, करवो लग्यौ मीठ। सुंदर उल्टी वात यह, अपने नैननि दीठ"। ४६।—कवीरजी का पद—"घर जाजरौ वलींडो टेढौ, औलौती डराई। मगरौ तजौं प्रीति पाषे सूं, डांडी देहु लगाई।" (कवीर ग्रंथावली में पद २२)।—तथा—"मीठी कहा जाहि जो भावै"—(क० ग्रं० पद १४७ में)।—गोरषनाथजी "संतो सिला अलौंनी कहिये, जिनि चीन्हीं तिनि मीठी"। (गो० श०। १९६ से) तथा—"लूंण कहै अलूणां बाबा, घृत कहै मैं लूपा"। गो० पद ३८)।—

रजनी मांहिं दिवस हम देष्यौ दिवस मांहिं हम देषी राति।
तेल भर्यौ संपूरन तामैं दीपक जरै जरै नहिं वाति॥
पुरुष एक पानी मंहिं प्रगट्यौ ता निगुरा की कैसी जाति।
सुन्दर सोई लहै अर्थ कौं जो नित करै पराई ताति॥ ११॥

ह० लि० १ टीका:—रजनी=निवृत्ति (अवस्था)। दिवस=ब्रह्मनिष्ठा। दिवस और राति=प्रवृत्ति और अज्ञान। तेल=स्नेह (ब्रह्मानन्द) दीपक जरै=ज्ञान प्रकाशमान होवै। वाति=ब्रह्मानन्दवृत्ति। पुरुष=परब्रह्म। पानी=प्रेम। निगुरा=ब्रह्म। पराई=जगत मिथ्या की। ताति=निंदा॥ ११॥

ह० लि० २ री टीका:—रजनी नाम निवृत्ति तामैं दिवस नाम ब्रह्मनिष्ठा नाम प्रकाशमान ज्ञान देष्यो। दिवस नाम जो प्रवृत्तिधर्म तामैं अज्ञानरूपी रात्रि देषी अर्थात जहां प्रवृत्ति होय तहां अज्ञान ही होय। तेल नाम स्नेह (अर्थात्) अत्यन्त सचिक्कण जो फेर छूटै नहीं ऐसो ब्रह्मानन्द रस पूरण जामैं ऐसो ज्ञानरूप दीपक प्रकाशमान है तामैं धाता ध्यानादिरूपा-वृत्ति नहीं प्रकाशै है ध्येयाकार अखंड ज्ञान प्रकाशमान है। यद्वा जामैं स्नेहरूपी तेल परिपूर्ण ऐसो जो प्राणरूपी दीपक जरै है शरीर मैं प्रकाशरूप वणि रह्यौ है सो परिणामरूप प्रकाशमान है। अरु वाती जो ब्रह्माकार वृत्ती सो अखंड एक रस प्रकासै है, नहिं जरै नाम नहीं खंडन होय है। पुरुष एक परमेश्वर परमात्मा पूर्णब्रह्म, सो पानी नाम प्रेमा-भक्ति तामैं प्रगट्यो नाम प्राप्त हूवो। निगुरा पाठांतर निगुना नाम त्रिगुनातीत परमात्मा की कैसी जाति न कोई जाति है अरु सर्व जातिरूप वोही है। याका अर्थ कौं सो (पुरुष) लहै जो पराई नाम आत्मचेतन सौं भिन्न देहादि संसार ताकी ताति नाम नित्य निंदा करै। क्यूंकरि करै? जगत् मिथ्या है यों करै॥ ११॥

पीताम्बरी टीका:—अज्ञानकाल में परब्रह्म ही मानों रात्रि है। काहेतें जो अज्ञानी होवै है सो कदे भी अपने कूं ब्रह्मरूप मानै नहीं, किंतु ब्रह्म तैं भिन्न मानै है। औ जो कोई कहै कि "तूं आत्मा ब्रह्मरूप है" तो सो सुनि के ताकूं बड़ा भय होवै है औ कहै है कि—"मैं तो कर्त्ता-भोक्ता, सुखी-दुखी, पाप-पुन्यवान जीव हूं

औ ईश्वर का दास हूं, मैं आत्मा हूं यह कैसे कह्या जावै ?" । यही मानों तिस रात्रि में भय है। औ जो "मैं आत्मा ब्रह्मरूप होवौं तो सो अपना स्वरूप मेरे कूं भासना चाहिये सो तो भासै नहीं। तातैं मैं आत्मा ब्रह्म नहीं हूं।" यही मानों रात्रि आवरण है। ऐसी पर-ब्रह्मरजनी मांहि ज्ञानकाल में हम दिवस देख्यो। काहेतें कि ज्ञानी अपने कूं ब्रह्मरूप मानैं हैं, औ 'अहं ब्रह्मास्मि' कहेते कछु डरैं नहीं, औ अपना शुद्ध सच्चिदानन्दरूप आत्मस्वरूप जैसा है तैसा देखै है। ऐसे तिस रात्रि कूं हम दिवस देख्यो है कहिये जान्यों है।+ ज्ञानी कूं परब्रह्म जैसा है तैसा भासै है, तामें पूर्वोक्त भय अथवा आवरण कछू नहीं होवै है। तातैं सो परब्रह्म ही मानों दिवस है। ता मांहि अज्ञानकाल में जगतरूप कार्य्य सहित अविद्या प्रतीत होती थी। तैसे ही ज्ञान-काल में भी प्रतीत होवै है। परन्तु इतना भेद है:—अज्ञानकाल में सत्यतापूर्वक प्रतीत होती थी, तैसे ज्ञानकाल में प्रतीत होवै नहीं। किन्तु दग्धपट की न्याईं बाधितानु-वृत्ति करि प्रतीत होवै है। ऐसे हम राति देखी है। देश, काल और वस्तु के परिच्छेद तैं रहित जो ब्रह्म है सो संपूर्ण व्यापक है, यही मानों संपूर्ण तेल भर्यो है तामें माया औ अविद्या उपहित जो साक्षी चेतन है सोही मानों दीपक है सो जरै है कहिये तिस माया औ अविद्या के कार्य्यरूप कज्जल कूं प्रकाशै है। वे माया औ अविद्यास्वरूप से जड़ औ परप्रकाश होने सैं सोही मानों बात कहिये बत्ती हैं, सो जरै नहीं कहि नाश होवै नहीं, काहेतैं सामान्य चेतन तिसका विरोधी नहीं है। जब विक्षेप-रहित शान्त अन्तःकरण होवै है तब एकाग्र अन्तरमुख वृत्ति होवै है, तिस वृत्ति का स्वरूप ही मानौं पानी है। ता पानी में एक कहिये सजातीय विजातीय औ स्वगत भेद-रहित पुरुष जो सर्व शरीररूप पुरिन में रहै है, औ अस्ति भाति प्रिय-रूप है, ऐसो ब्रह्मस्वरूप प्रगट्यो। जो पूर्व अज्ञान-कृत आवरण तैं ढक्यो थो सो सद्गुरु औ सत्शास्त्र के अनुग्रह ते आविर्भाव कूं पायो अपरोक्षानुभव को विषय भयो। उक्त परब्रह्म जो पुरुष है ताकूं ही इहां निगुण कहै है, काहे तें कि आप स्वतः जाननेवाला है औ ज्ञानरूप है ताकूं गुरु की अपेक्षा बनै नहीं। अथवा जो सत्वादिक तीन गुणन तैं वा रूपादिक चौबीस गुणनते रहित है तातें निगुणा (निर्गुण) है। ता (निर्गुणरूप) निगुरा की कैसी जात कहैं ?। कोई भी जात कही जावै नहीं।

काहे तें—अनेकन के मांही जो एक धर्म रहै है सो जाति कहिये है जैसे सर्व ब्राह्मणन के शरीरन में ब्राह्मणत्व जाति है। औ जैसे सर्व घटन में एक घटत्व जाति है—तिनकूं ब्राह्मणपना औ घटपना कहै है। सोही ब्राह्मणादिक मांही जाति है। ताके सजातीय विजातीय औ स्वगत ऐसे तीन भेद हैं। अथवा जैसे सत्वादिक तीन गुणन की वा रूपादिक चौबीस गुणन की गुणत्वजाति है, तैसे परब्रह्म की कोई भी जाति नहीं है। जहां जाति है वहां द्वैतता सिद्ध होवै है। "ब्रह्म तौ अद्वैत है" ऐसे श्रुति कहै है यातें ब्रह्म की कोई जाति कही जावै नहीं। तातें तिसकी कैसी जाति कहैं ?॥—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि जो मुमुक्षु पुरुष नित्त कहिये निरन्तर दीर्घकाल पर्यन्त। पराई कहिये सर्व तें पर श्रेष्ठ ब्रह्मस्वरूप की तात करै, कहिये श्रवणादि अभ्यास द्वारा तत्पर होय के चिन्ता कूं करै। अथवा अपने स्वरूप तें अन्य समष्टि व्यष्टिरूप स्थूल सूक्ष्म औ कारण प्रपञ्च की सदा असत् जड़ दुःखादिरूप चिन्ता कूं करै। सोही पुरुष ब्रह्म औ आत्मा की एकता के निश्चय (ज्ञान) रूप अर्थ कूं लहै। अथवा जन्म मरणादि बन्ध की निवृत्तिरूप औ परमानन्द की प्राप्तिरूप अर्थ (मोक्ष) कूं लहै कहिये प्राप्त होवै ॥ ११ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जी की साखी—"रजनी में दीसै दिवस, दिन में दीसै राति। सुंदर दीपक जलि गयौ रही विचारी बाति"। १७। तथा—"पर निंदा निश दिन करै, सुंदर मुक्ति हि जाइ"। २४।—दादूजी का पद ४०६—"दीपक जलै बाति बिन तेल" (अन्तरा ५ वां)।—तथा—"तंह अनहद बाजै अद्भुत पेल" (अंतरा ५ वां ही)।—कबीरजी का शब्द—"मोतिया बरसत रावरे देसवा दिन-राती। मुरली सबद सुनि मन आनन्द भयो, जोति बरै बिनु बाती"। शब्दावली। (भेदबानी। १० में)।—तथा—"बिन दीपक बरै अखंड जोत। पाप पुन्न नहिं लागै छोत। चंद्र सूर नहिं आदि अंत। तहं कबीर खेलै बसंत"। (शब्दावली। होली १९)।—तथा—"बिन दीपक उजियार, अगम घर देखिये"। (श० मंगल ४) तथा—"दीपक बिन ज्योति ज्योति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद गाया"। (क० ग्रं०। पद १५८ से)।—गोरषनाथजी—"बिन बैसंदर जोति बलत है, गुरपरसादें दीठी"। (गो० श० १९६ से)।—तथा—"अखंड दीपक बलै बिन बाती। जहां जोगेसुर थापना थापी। जा

उनयौ मेघ घटा चहुं दिश तें वर्षन लगौ अखंडित धार।
बूड़ौ मेरु नदी सब सूकी झर लागौ निश दिन इकसार॥
कांसा पर्यौ बीजली ऊपर कीयौ सब कुटंब संहार।
सुंदर अर्थ अनूपम याकौ पंडित होइ सु करै विचार॥ १२॥

दीपक के पुन्य न पापं। श्रवणासीस नहीं है हाथं। जो दीपक सोइ देखसी, यों कथंत श्री गोरषनाथं। ५। (गो० दयाबोध। ५।)।—

ह० लि० १ टीका:—उनयो=उमग्यो। मेघ=मन। घटा=मनसा। धार=भजन। मेरु=अहंकार। नदी=नवद्वार। झर=नांव। कांसा=काया। बीजली=मनसा। कुटंब=इन्द्रियां। अनूपम=उत्तम। १२।

ह० लि० २ री टीका:—मेघरूपी मन को प्रेम उमग्यो। घटा नाम की अतिगति ता उमंड चली। चहुंदिसतें, चहूं अतःकरणूते। ताकरि अखंड भजनरूपाधार बरखन लागी। जब झर लाग्यो नाम रात-दिन अखंड भजन की झरी लागी। तब मेरु नाम अति ऊंचो अहंकार, बूडि गयो नाम भजन जल में बूडि गयो, पोगयो। नदी नाम नदी की नांई अखंड प्रवाहरूप नवद्वारां का जो विषय तिन के प्रवाह की नदी सूकि गई नाम भजन के प्रताप ते निवृत्त होइ गई। कांसा काया शुभ-कर्म क्रिया-कर्म या आपका पुरुषार्थ करि बीजली जो मनसा तापरि पर्यो नाम मनसा को जीती। ताका जीतना करि निर्वासनिक हूवो। तासों सकल इंद्रियां की वृत्ति कौ संहार नास कीयो नाम सर्व निवृत्ति हुई। याको अर्थ अनूपम नाम श्रेष्ठ है। जो कोई पंडित विवेकी होवैगो सोई विचारैगो अर्थ को पावैगो अरु धारैगो॥ १२॥

पीताम्बरी टीका:—"ब्रह्मानन्द समुद्र में मग्न भया हुवा जगत में विचरनेवाला जो आत्मज्ञानी है। ताकूं ही इहां मेघ कह्या है। सो आनंदरूप जलकरि उनयो (उमग्यो) कहिये भर्यो है। जाकी स्वरूपाकारतारूप बादल की घटा छाई रही है। औ जो चैतन्यरूप आकाश में शरीररूप पर्वत की शिखरपर स्थिति है। सो परिपूर्ण ब्रह्मभावरूप चहुंदिशि में वच्यो कहिये रमने लाग्यो। औ तेलकी धारा की न्यांई निरंतर प्रवाहवाली जो अखंडित आनंदयुक्त अनेक वृत्ति है। सोई मानों जल की अनेक

धार है। तिनकरि वर्षन लाग्यो, कहिये व्यापक ब्रह्म को अनुभव करने लग्यो ॥—अहंकारादि जो जगत है ताकूं यहां मेरु कहे हैं। सो बूड्यो, कहिये तीनकाल में अभाव निश्चयावृत्तिरूप बाध को विषय भयो। औ बाह्य बाधित विषयाकार होनेवाली जो मन की अनेक वृत्तिआं है सोई मानो सब नदी हैं। सो सूकी कहिये विषयन में अभिनिवेशभूत वासनारूप जल तें रहित भई। ताको निशदिन (रात्रिदिवस) तिन नदीन के उर कहिये बीच में, प्रथम वृत्ति के अंत, औ द्वितीयवृत्ति के आदिक्षण के मध्यावस्था में केवल स्वरूपाकार होनेरूप इकतार (प्रवाह) लाग्यो ॥—ज्ञान हुवे पीछे जो परवैराग्य होवै है सोई मानो कांसा है। सो सूक्ष्म राजसी औ तामसी स्वभाववालो चंचल वुद्धिरूप बिजली ऊपर पड्यो। तिसने रागद्वेपलोभादि आसुरी संपदारूप सब कुटुंब को संहार कीनो, कहिये नाश कियो ॥—सुंदरदासजी कहैं हैं की, या (कथन) को जो अर्थ है, सो अनुपम कहिये सर्वोत्कृष्ट होने तैं उपमा रहित है। तातें जो पुरुष पंडित कहिये स्वरूपाकार अंतःकरणवाला ज्ञानी होय सु याके अर्थ का विचार करैं। और पुरुष विचार करी शकै नहीं ॥ १२ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जोकी साखी—"सुंदर वरिषा अति भई, सूकि गये नदि नार। मेर बूडि जल मैं रह्यौ, झर लागी इकसार। १८। कांसा पर्यौ पराकिदै, बिजली ऊपरि आइ। घर कौ सब टाबर मुवौ, सुंदर कही न जाइ"। १९। तथा—"सुंदर वरिषा अति भई, सूकि गई सब साप। नीव फल्यौ बहुभांति करि, लागे दाख्यौं दाप"। ४५। दादूजी की साखी—"ऐसा अचिरज देखिया बिन बादल वरिषै मेह"। ११४। अंग ४॥—कबीरजी का पद—"बिन जल बूंद परत जहँ भारी, नहिं मीठा नहिं खारा।... बिन बादर जहँ बिजुरी चमकै, बिन सूरज उजियारा"। (शब्दावली। ७। पग भेद बानी में।)—तथा—"गगनघटा घहरानी साधो। पूरब दिशि से उठी बदरिया, रिमझिम बरसत पानी। आपन आपन मेंडि सम्हारो, बह्यो जात यह पानी॥ मन के बैल सुरति हरवाहा, जोत खेत निरबानी। दुबिधा दूब छोल कर बाहर, बोवो नाम का धानी॥ बाली झार कूट घर लावै, सोई कुसल किसानी। पांच सखी मिलि कीन्ह रसोइयां, एक से एक सयानी। दोनों थार बराबर परसे, जेवैं मुनि अरु ज्ञानी॥ कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह पद है निरबानी। जो या पद को

वाड़ी मांहिं माली निपज्यौ हाली मांहि निपज्यौ षेत।
हंसहि उलटि स्याम रङ्ग लागौ भ्रमर उलटि करि हूवौ सेत॥
शशिहर उलटि राहु कौं ग्रास्यौ सूर उलटि करि ग्रास्यौ केत।
सुन्दर सुगरा कौं तजि भाग्यौ निगुरा सेती बांध्यौ हेत॥ १३॥

परचा पावै, ताको नाम विज्ञानी" ॥ (शब्दावली। भेदबानी १४।)—गोरषनाथजी का पद—"अगनि विन जलिया, अंवर विन जलहर भरिया"। (गो० पद २० मेंसे)। तथा—' नाथ बोलै अम्रत वाणी, वरसैगी कमलिया भीजैगा पांणी"। (गो० पद ३९ में)।

ह० लि० १ टीकाः—वाड़ी=काया। माली=जीव। हाली=जीव। खेत=काया। हंस=जीव। स्यामरग=रामरंग। भंवर=मन। शशिहर=मन। राहु=गुण। ग्रास्यो=ज्ञान। (पायो)। सूर=ज्ञान, दूजो पोन। केत=कर्म। सुगरा=संसार। निगुरा=ब्रह्म॥ १२॥

ह० लि० २ टीकाः—वाड़ी काया क्षेत्ररूप ता मांहिं मालीरूप क्षेत्रज्ञ जो जीव सो निपज्यो समरण साधन कर स्व-स्वरूप को प्राप्त हुवो। हाली जीव क्षेत्रज्ञरूप ताकी चेतन सत्ता करकैं खेत नाम क्षेत्ररूप शरीर सो निपज्यो नाम साधन सिद्धि कौं प्राप्त हुवो। हंस जो जीव सो माया रंग में मगन होय रह्यो हो ताकूं गुरु संत उपदेश करि कैं अब उलटि कैं स्यामरंग लाग्यो-स्याम जो अपना स्वामी अथवा घनश्याम मूर्ति श्रीरामजी ताको रंग लाग्यो। भ्रमर नाम काम-कर्म-कालिमायुक्त जो मन सो सेत नाम भगवत भजन सुमरन करि ऊजल हूवो। संकल्प आत्मक जो मन सोई है शशिहर नाम चंद्रमा तानैं राहु नाम आपकौं मलीन को करता जो तामसादि गुण ताकौं ग्रास्यो नाम निवृत्ति कीया तब शुद्ध हूवो। सदा प्रकाशमान, सोई सूर तानैं कर्म-कामनारूप केत सो दूर निवारन कर्यो केवल ज्ञान ही ज्ञान प्रकाशमान रह्यौ। सुगुरा संसार जो अन्य आधीन वर्तै ताकौं त्यागि करि भाग्यो नाम अत्यन्त विचार्यो, अरु निगुरा नाम जाके ऊपरि कोई भी नहीं सो ब्रह्म-स्वयं प्रकाश स्वाधीन तासौं स्नेह बांध्यो॥ १३॥

पीताम्बरी टीकाः—यह जो सृष्टि है सोई मानो वाड़ी है। ता वाड़ी माहीं चेतन परमात्मारूप माली निपज्यो। कहिये अज्ञान दशा के पक्ष में जीवभावकूं ग्रहण करिके जगत में अपने जन्मादिकूं मानि रह्यो है। अथवा सो चेतन परमात्मा ही ज्ञानकाल में विचार-द्वारा सर्वजगत में परिपूर्ण प्रतीत भयो ॥—अज्ञानदशा के पक्ष में मनरूप काष्ट के हल करि शुभाशुभ कर्मरूप बीज बोवने के वास्तै प्रवृत्तिरूप खेती कूं करनेवाला जो क्षेत्रज्ञ साक्षी चेतन है सोई मानो हलका खेडनेवाला हाली (कृषिकार) है। ता मांही शरीररूप खेत (क्षेत्र) निपज्यो कहिये नानाप्रकार के अनुकूल औ प्रतिकूल जो विषय हैं सो सब मानों तामें अन्य के वृक्ष हैं तिससे जो सुख-दुःखरूप फल उत्पन्न होवै है। सोई मानों अनाज के कन हैं। ऐसा जो क्षेत्र है सो "मैं कर्त्ता-भोक्ता हूं" इत्यादि भ्रम करि उत्पन्न भयो। अथवा ज्ञानदशाके पक्ष में अपनी उपाधि-भूत जो मन है सोई मानों हल है तिससे ही प्रवृत्ति औ निवृत्तिरूप खेती होवै है। तिसका प्रकाशक जो आत्मा है सोई मानों कृषिकार है। तामें क्षेत्र की न्याई सर्वजगत का आधार जो परमेश्वर है सो अभिन्न होय के प्रतीत भयो ॥—चिदाभास-रूप जो जीव है सोई मानों हंस ही है। काहेतें कि हंस पक्षी का श्वेतरंग होवै है। तैसे इहां जो विषय में आसक्ति है अथवा जो जगत के व्यवहार की प्रवृत्ति में उत्साह है सो यद्यपि विवेक दृष्टि से त्याज्य है तथापि अविवेक दृष्टि सें नीके लगैं हैं। ताते सोई मानो जीवरूप हंस का श्वेतरंग है। सो उलटि के कहिये विषयन में वैराग्य औ जगत के व्यवहार की प्रवृत्ति में उपरति (हुई) जो अज्ञानी की दृष्टि में श्यामरंग है सो लागो कहिये वैराग्य औ उपरतियुक्त कियो ॥—मनरूप जो भ्रमर है सो उलटि-करि कहिये निष्कामकर्म औ उपासना द्वारा मल-विक्षेप दोषरूप श्यामताकूं छोडिकरि शुद्धता औ एकाग्रतारूप श्वेत हूवो ॥—ज्ञान के प्रकाशरूप जो मन है सोई मानो शशिहर (चंद्र) है। तांने अज्ञानकृत राहु कूं उलटि ग्रास्यो कहिये नाश कियो। ज्ञानरूप ही मानो सूर (सूर्य) है तिसने प्रतिदिन उलटि कहिये घटिका दो घटिका वा यातें भी अधिक काल ब्रह्म का जो नियम से अभ्यास होवै है तिसते उत्तम भूमिका में स्थिति पायकरि दृष्ट दुःख की हेतु जो अज्ञानकृत विक्षेप की प्रतीति होवै है। सोई मानों केत (केतु) हैं। ताकूं ग्रास्यो कहिये दूर कियो ॥—सुंदरदासजी कहैं हैं

अग्नि मथन करि लकरी काढी सो वह लकरी प्रान अधार।
पानी मथि करि घीव निकार्यौ सो घृत पइये वारंवार॥
दूध दही की इच्छा भागी जाकौ मथत सकल संसार।
सुन्दर अब तौ भये सुपारे चिंता रही न एक लगार॥ १४॥

की जो सगुणवस्तु है सोई इहां सुगरा है। ताकूं पूर्वोक्त ज्ञानी तजिके भाग्यो कहिये दूर रह्यो। औ जो निर्गुणवस्तु है सोई मानो निगुरा है ता सेती ताने हेत बांध्यो कहिये ऐक्यभावरूप प्रेम कियो॥ १३॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"सुंदर माली नीपज्यौ, फल अरु फूल समेत। हाली के कोठा भरे, सूके वाड़ी खेत। २०। भ्रमर सु तौ उज्जल भयौ हंस भयौ फिरि स्याम। को जानैं केते भये सुन्दर उलटे काम"। २१।—दादूजी का पद—"मोहनमाली सहज समानां···। काया वाड़ी माँहैं माली···ता माली की अकथ कहांणी"। ३७१। हरिदासजी निरंजनी—"सींचत वाड़ी सब कुमलावै। काटत बहु फल लागा"। ५। (योग मूल सुख-योग)।—कबीरजी का शब्द—"चेला रहा सो चुन-चुन खाया, गुरू निरंतर खेला।···सुगरा होय सो भर-भर पीवै, नुगरा जाय पियासा" (शब्दावली। भेदवानी। २६ में से।)—तथा पद—"उलटी गंग संमुद्रहि सोपै, ससिहर सूर गरासै। नव ग्रिह मार रागिया वैठे, जल में व्यंब प्रकासै"। (क० ग्रं०। पद १६२ से)।—गोरपनाथजी—"गगनमंडल में औंधा कूवा, तहां अमृत का वासा। सुगरा होइ सो भरि-भरि पीवै, निगुरा मरै पियासा"। (गो० शब्दी २३।)।—गोरपनाथजी—"अमावसि के घरि झिल-मिलि चन्दा, पून्यूं के घरि सूरं। नाद के घरि व्यंद गरजै, वाजत अनहद तूरं"। (गो० शब्दी। ५५।)।—तथा—"पेड़ विहूना अमिला मोर्‌या, प्यंड विहूना माली"। (गो० श० १९५ से)।—तथा—"उलटै चंद राहु कौं ग्रहै, सूरज उलटि केतु कूं ग्रहै। ससिहार सूरज कौं ग्रहै, थिर रहै तत्त भांण जोगेसुर कहै" ।(गो० आत्मबोध)।—तथा—"उलटि जंतर धरै सिपर आसंण करै, कोटि सर छूटंति पाव नांहीं।···मैंण के दांतूं लोह धरि पीसिबा"। (गो० ग्या० बो०)।—

ह० लि० १ टीकाः—अग्नि=विरह अग्नि। लकरी=लय। पानी=प्रेम। घीव=ज्ञान। दूध-दही=कर्मकाण्ड। वा खाटामीठा भोग॥ १४॥

ह० लि० २ री टीका:—विरहरूप जो अग्नि ताको जो अतिगति उदै करना सोई मथन। ता करि उदै भई जो भगवत के विषै लयवृत्ति सोई लकरी काढी नाम लै सिद्ध करी जो बालै है सो प्राण नाम जीव कौं अति आनन्द की दाता आधाररूप है।—पानी जो प्रेम जासौं अंतस्करण द्रवीभूत होय जाय सो पानी ताको अत्यन्त-पणौं सोई मथणौं ता करि उत्पन्न हुवो ज्ञान सर्वसिरोमणी घीव वा घी कौं वारंवार खाइजै है नाम वा ज्ञानरस ही में अखंडलीन रहै है।—दूध जो शुभाशुभ-कर्म, दही नाम तिन कर्मन सूं उत्पन्न हुवा पाटा-खारा सुख-दुःखादि भोग तिनकी इच्छा भोगी, जा दही कौं सर्वसंसार मथत नाम भोगै है।—अब तो निहकाम होय सर्वप्रकार की कामनारूप चिंता गई सर्वप्रकार करि सुखी भये ॥ १४ ॥

पीताम्बरी टीका:—अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीन जो ताप हैं तिन करि सर्व अज्ञजीव जलैं हैं सो जलावनेवाली यह देहादि सृष्टि है सोई मानों अग्नि है। ताकों मथन कहिये "यह सब जगत मिथ्या है" इत्यादि निश्चय तें विवेचन करि लकरी काढो कहिये जैसे अग्नि का आधार काष्ट है तैसे इस सृष्टिरूप अग्नि का आधार संवित् (चेतन) है। सोई मानौं लकरी है ताकूं यथार्थ जानी सोई मानौ काढी है। सो वह लकरी प्राण का आधार है कहिये प्राणादि सर्व प्रपंच का अधिष्टान चेतन है।—२- यह असार नाम-रूपात्मक जो जगत् है सोई मानौ जल है ताकूं मथनकरि कहिये विवेचनकरि अस्ति भाति औ प्रियरूप ब्रह्मानन्द ही मानौ घीउ निकास्यो। अथवा मनरूप जो जल है ताकूं मथनकरि कहिये साधन-चतुष्टय संपन्न करि ब्रह्मानन्दरूप मोक्ष ही मानो घीउ निकास्यो। अथवा सत् शास्त्र ही मानौ पानी है ताकूं मथनकरि कहिये विचारकरि ज्ञानरूप माखन द्वारा ब्रह्मानंदरूपी घीउ निकास्यो कहिये प्रगट कियो। सो घृत वारवार खायो कहिये विचार-दशा में अपनो आप जानि के अनुभव कियो।—३- जाकूं सकल संसार मथत है संसारीजीव चाहकरि खोजते हैं ऐसे जो परलोक के भोग हैं सोई मानौ दूध है। औ इस लोक के जो भोग हैं सोई मानौ दही हैं तिनकी इच्छा भागी कहिये भंग हो गई।—४- सुंदर-दासजी कहैं हैं कि अब तो हम सुखारे कहिये परम आनंदित भये। औ एक लगार कहिये किंचितूमात्र भी चिंता न रही अर्थात् सर्वजन्मादि अनर्थ तें छूटे ॥ १४ ॥

पत्र माँहि झोली गहि राषै योगी भिक्षा मांगन जाइ।
जागैं जगत सोवई गोरप ऐसा शब्द सुनावैं आइ॥
भिक्षा फुरैं वहुत करि ताकौं सो वह भिक्षा चेलहि पाइ।
सुन्दर योगी युग युग जीवै ता अवधू की दूरि वलाइ॥ १५॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—काढी नाम भिन्न करली विवेक-बुद्धि के व्यापार से। "प्राणो वै ब्रह्म"—ब्रह्म प्राणस्वरूप है। आधार और आधेय का भाव यहां लेना। "घी सो घोट रखो घट भीतर"—ऐसे ब्रह्मानन्द घृत को निरंतर अनुभव करैं। दूध जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी संसाररूपी गाय से दूधरूपी कर्मफल निकाल उसके इच्छा का जावन देकर विकृत कर विरुत करदिया सो मायारूप संसार उसके विकारों सहित त्यागा गया, जिस संसार के कार्यों में संसारी-जीव निरंतर लिप्त रहते हैं। असंप्रज्ञात समाधि या अखंड ब्रह्मानंद की प्राप्ति ही में चिंता का अभाव और सुखारे होने का भाव है।—सुं० दा० जीकी साखी—"अग्नि मथनकरि नीकरी लकरी सहज सुभाइ। पानी मथि घृत काढियौ सो घृत सुंदर पाइ"। २२।—कबीरजी का शब्द—"सुन्न सिखर पर गइया ब्यायी, धरती छीर जमाया। माखन रहा सो संतन खाया, छाछ जगत भरमाया"। (शब्दावली। भेदवानी। २६ में)।—तथा पद—"अवधू कामधेन गहि बांधीरे। भांडा भंजन करै सवहिन का, कछू न सूझै आंधीरे॥ जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अमृत सरवै। कौंली घाल्यां बीडर चालै, ज्यूं घेरौं त्यूं दरवै। तिहिं धेन थैं इन्छा पूगी, पाकडि खूंटै बांधीरे। ग्वाडा मांहैं आनन्द उपनौं, खूंटै दोऊ फांधीरे। साई माई सास पुनि साई, साई याको नारी। कहै कबीर परम पद पाया, संतो लेहु विचारी॥ (क० ग्रं०। पद १५२।) ।—गोरपनाथजी का पद—'एक सु रंडिया लडती आई'—(गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १ टीकाः—पत्र=हृदो। झोली=गुणां की झकझोल। गहिराखै=रोकै। जोगी=जीव। भिख्या=ब्रह्म दर्शन। जागै=प्रवृत्ति में रहै। सोवई=समाधि में सोवै। गोरख=संत। भिक्षा फुरै=ब्रह्मदर्शन की चाह होवै। चेला=इंद्रिय॥ १५॥

ह० लि० २ टीकाः—पत्र नाम जो शुद्ध हृदो, तामें झोली नाम कर्मन की

नानाप्रकार को भकझोली गुणां की वा, सो राखी नाम रोकी। योगी जो जीव सो भिक्षा नाम ब्रह्मदर्शन मांगन जाय, नाम बाह्य-वृत्ति छोड़ अंतरनिष्ठ होणां सोई जावणां। योगी जब भिक्षा कों जाय तब-तब गोरख ऐसो शब्द करै या रीति है परपरा सों। अरु या जीव जोगी को यह शब्द 'जागै जगत सोवै गोरख' याको अर्थ यह जो संसार है सो प्रवृत्ति मार्ग में जागै है। नाम अत्यन्त सावधान होयके वर्त्तै है। अरु गोरख योगी है सो जगत मार्ग तरफ अचेत होयकरि ब्रह्मानन्द समाधि में सुख सोवै है सदाही ब्रह्मानन्द समाधि में लीन रहै है।—ता जीव योगीं कों वा ब्रह्म-दर्शनरूप भिक्षा बहुत फुरै नाम बहुत परिपूर्ण प्राप्ति होवै है।—योगी की भिक्षा कों चेला खाहि या रीति होवै है अरु योगी की भिक्षा चेला नें खाय चेला नाम इन्द्रियां की वृत्ति सो ब्रह्म-दर्शन जब हुवा तब उन वृत्तियां को अभाव होय गयो।—सो वो जीव योगी ब्रह्मानंद स्वरूप कों पाय जन्ममरण रहित होय करि सदा चिरंजीव होय कै सुखी हुवो। अवधूत नाम सर्वगुण इंद्रिय विकार रहित ता योगी की बलाय नाम आधिव्याधि कर्म-कालरूप विघ्न दूरि गया सर्व निवृत्ति होय गया ॥ १५ ॥

पीताम्बरी टीकाः साभास अंतःकरण सहित आत्मरूप जो ज्ञानी जीव है सोई मानौं योगी है। औ हृदयरूप पात्र है ता मांहि बुद्धिरूप झोली कूं गहि कहिये एकाग्रकरि राखैं कहिये अंतर्मुख करैं। औ निजानंद आविर्भाव है सोई मानौं भिक्षा है सो विचाररूप पगन करि मांगन जात है कहिये स्वरूपाकार होवै है।—२। अनंत संसारी जीवन का जो समूह है ताकूं यहां जगत कहिये हैं सो जागै कहिये कछुक कर्त्तव्य मानिके तामैं प्रवृत्ति करैं हैं। औ गो कहिये इन्द्रिय हैं ताकूं साक्षिता करि रख कहिये प्रकाशनेवाला जो आत्मस्वरूप है ताकूं यहां गोरख कहैं हैं, सो सोवई कहिये सर्व कर्त्तव्य रहित असंग ब्रह्मरूप होने तैं स्वमहिमा में ज्यूं का त्यूं विराजै है। औ जो शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि है तामें आइके "अहंब्रह्मास्मि" ऐसा शब्द सुनावैं है कहिये स्वरूप में स्थिति करने के वास्तै बहिर्मुखनकूं तिस वाक्यार्थ का अभ्यास करावैं है।—३। त्रिपुटीभानरहित अखंडब्रह्माकार अंतःकरण की वृत्ति की जो स्थिति (निर्विकल्प समाधि) है। सो इहां भिक्षा कही है। ताकूं कहिये ता वृत्ति की स्थिति के अर्थ पूर्वोक्त ज्ञानीरूप गुरु (पाठांतर 'करि' का) बहुत फिरै है कहिये

निर्दय होइ तिरै पशु घातक दयावंत बूडै भव मांहि।
लोभी लगै सबनि कौं प्यारौ निर्लोभी कौ ठाहर नांहि॥
मिथ्यावादी मिलै ब्रह्म कौं सत्य कहै ते जमपुर जांहि।
सुन्दर धूप मांहि सीतलता जलत रहै जे बैठे छांहिं॥ १६॥

तिसके अभ्यास की प्रबलतापूर्वक पुनः पुनः प्रवर्ते है। सो वहि भिक्षा मनरूप चेले ने खाइ। सो प्रकार यह हैः—जब मन की वृत्ति स्थिरता में लगै है तब सो एकाग्र होवै है। औ. ब्रह्मानंद—अनुभव-क्षण में तिस वृत्ति कूं अपने में लय करि लेवै है। भाव यह हैः—निर्विकल्प समाधि-काल में वृत्ति की प्रतीति होवै नहीं।—४. सुंदरदासजी कहैं हैं कि ऐसा जो योगी है सो जीवभाव कूं छोड़िकै अमर आत्मारूप होने तें युग-युग कहिये तीनूं काल में जीवै है। कहिये अविनाशी ब्रह्मरूप सें अवस्थित होवै है। औ ता ब्रह्मभूत अवधूत योगी की बलाइ कहिये जन्मादि अनर्थरूप आधिव्याधि दूर कहिये निवृत्त भई है॥ १५॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—पत्र मांहि झोली धरै जोगी, मांगै भीष। सोवै गोरष यौं कहै सुंदर गुरु की सीष। २३।—दादूजी का पद—"जागत सूते सोवत सूते"...। ३०७।—गोरपनाथजी—"माछिंद्रहसूता जोग जुगंता, जागै गोरष जुग सूता"। (गोरषनाथजीका छंद।)।

ह० लि० १ टीकाः—निर्दय=सूरवीर। पशु=इन्द्रियां। पशुघातक=इंद्रियजीत। दयावंत=इन्द्रिय पालक। लोभी=भजन का लोभी। मिथ्यावादी=जगत। धूप=इन्द्रिय कसणी। छांहि=इन्द्रिय भोग॥ १६॥

ह० लि० २ टीकाः—निर्दय नाम अति कठोर सूरवीर होय करि, जो श्रवणं विषयरूपी चारा में विचर रही इंद्रियवृत्ति पशु-पशु क्यूं?—पशु भी तृप्ति कोई मानैं नहीं। तिनां को घातिक नाम जीति मारि करि दूरि निवारै सो या संसार समुद्र कौं तिरै।—अरु दयावंत होय इन्द्रियरूप पशुन कौं विषयभोग भक्ष देकै पालै सो या भव में बूडै।—लोभी भजन को अति काठो होयकै लागै अनेक दुःख संकट विघ्न आय पड़ै लोभी छोड़ै नहीं सो सबकौं प्यारो लागै। प्यारा तीनों लोक में जाकै हिरदै नाम।

जाके भजन का लोभ दृढ़ता नाहीं ताकों कहूं भी ठाहर ठिकाणा सुख नांहीं ।—मिथ्या-वादी नाम जगत मिथ्या मिथ्या यों बोलै अखंड योंही जाणैं सो ब्रह्मकों मिलै । और जग-व्यवहार सों अभ्यास बांधि जगत कौं सत्य कहै सो यमपुर जांय ।—धूप नाम इन्द्रियों को कसणी देकैं ज़ीतणों तामें जन्मांतर पर्यंत सीतलता पाकर सुखी रहै ।—छांहि जो इन्द्रियां का विषयभोग तिनां को सुख मानि करि भोगणां सोई छाया बैठणां उनका फल जन्मांतर में जरबो करै नाम दुःखी ही रहै ॥ १६ ॥

पीताम्बरी टीकाः—जो पुरुष निर्दय कहिये अडिग-मनवाला होइ और इन्द्रिय-समूह वा राग-द्वेषादिकन के समूहरूप पशुन का घातक कहिये जीतनेवाला होइ । अथवा जो पुरुष सर्व देहादिक अनात्मवस्तु-समूतारूप पशु का घातक कहिये ज्ञानद्वारा मिथ्यापने का निश्चय करनेवाला । वा तीनकाल-अभाव का निश्चय करनेवाला होवै । सो पुरुष जन्मादि अनर्थरूप संसार-सागर कूं तरै है । कहिये उलंघन करै है ।—जो पुरुष दयावत कहिये इन्द्रियन कूं निग्रह करने में वा रागादिक जीतने में वा सकल अनात्मा के बाध करने में सिथिल (असमर्थ) होवै है सो पुरुष भव-सागर मांहि बूड़े कहिये जन्मादि अनर्थनकूं पावै है ।—जो पुरुष ब्रह्मानन्द लाभ में लोभी कहिये तिसी के परायण अभ्यासी होवै सो पुरुष सबन को प्यारो कहिये परमेश्वर की न्याईं पूजनीय लगै । जो पुरुष निर्लोभी कहिये उक्त लोभी तें विपरीत होवै ताकूं ब्रह्मानन्दरूप ठाहर कहिये स्थान नांहि मिलै । अर्थात् ताकूं परमानंद की प्राप्ति होवै नहीं ।—माया अविद्या औ तिनके कार्य जो स्थूल सूक्ष्म है ताकूं मिथ्या (असत्) कथन का जो वादी होवै सो ब्रह्मकूं मिलै कहिये प्राप्त होवै । औ जो मायादिकन कूं सत्य कहै ते यमपुर जांहि कहिये नरकादि दुःखन का अनुभव करै हैं ।—सुंदरदासजी कहैं हैं कि श्रवणादि साधन के अभ्यासरूप धूप मांहिं । वा ज्ञानरूप प्रकाश में शीतलता कहिये शांति होवै है । जो पुरुष श्रवणादि साधन के अनभ्यासरूप छांहि कहिये छाया में अथवा मूलाऽ अज्ञानरूप अप्रकाशस्वरूप छाया में बैठे कहिये आलसी होय के स्थित होवै सो पुरुष त्रिविध-ताप-रूप अग्नि में जरत रहै कहिये जलता ही रहै ॥ १६ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"जोई व्है अति निर्दई करै पशुन की घात । सुंदर सोई उद्धरै और बहे सब जात । २६" ।— कबीर पद—"धूप

माइ बाप तजि धी उमदानी हरपत चली पसम के पास।
बहू विचारी वड वपतावरि जाके कहे चलत है सास॥
भाई परौ भलौ हितकारी सब कुटंब कौ कीयौ नास।
ऐसी विधि घर बस्यौ हमारौ कहि समुझावै सुन्दरदास॥ १७॥

दाभ तें छांह तकाई मति तरवर सच पाऊं। तरवर मांहें ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ दुझाऊं। जे वन जलै त जलकूं धावै मति जल सीतल होई। जलही मांहिं अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई" —(क० ग्रं०। पद ११२ में)।

(दोनों हस्तलिखित टीकाओं के मीलान से यह निश्चय हो गया कि इनमें भेद नहीं है। एक तो संक्षिप्त है और दूसरी विस्तृत है। इसलिए अब आगे से दोनों को मिलाकर एक जगह करदी गई है।)

ह० लि० १-२ टीकाः—माय, माया ताको जो ममतास अरु बाप नाम वप शरीर ताका सुखन को अध्यास तिन सबन को छांडिकै जो याही शरीर में उपजी जो शुद्ध-बुद्धी सो उमदानी सो हरपयुक्त हुई थकी सो खसम नाम सर्वदा प्रतिपालनकर्त्ता परमात्मा पूर्णब्रह्म-पति ताके संगि चली नाम ताही में लीन हुई।—वहूबुद्धि बड़ी सभागणी सुलक्षणी शुभगुणयुक्त ता बुद्धि की प्रेरी सास नाम सुरति है सो चालै है ब्रह्मस्वरूप में लीन होवै है।—या बुद्धि को सहाईभूत जो ब्रह्मभाव वातें वाका सकल कुटुंब नाम जो इन्द्रियां की वृत्ति तिनको नाश करयो नाम सर्व दूरि निवारन करी। जो कुटुंब को नाश हुवा घर उजड़ै (परन्तु) यो घर वस्यो ये ही विपर्यय। या प्रकार घर वसो। घर ब्रह्म तामें हमारो वास सिद्धि हुवो॥ १७॥

पीताम्बरी टीकाः—इहां अविद्या कूं माइ (माता) कहैं हैं। औ जीव कूं बाप (पिता) कहैं हैं। ताकूं तजि (त्याग करिके) कहिये अविद्या औ जीव का बाध करिके धी (तिनकी पुत्री) कहिये जो संस्कारवाली बुद्धि की वृत्ति है। सो उमदानी (मदोन्मत्त भई) कहिये ध्येयाकार होने लगी। औ प्रत्यक् अभिन्न जो परमात्मा है सोई मानौं खसम (पति) है। ताके पास कहिये तदाकार होनेकूं हरपत चली अर्थात् परमात्माकूं अभिमुख भई।—विवेक-रहित जो बुद्धि है सोई मानौं सास (सासू)

है। काहेतें तिसीतें विवेक की उत्पत्ति हुई है तातें सो तिसकी माता है। विवेकयुक्त बुद्धि की वृत्ति है। सोई मानौ तिस विवेक की वहू (स्त्री) है। सो विचारी कहिये शांतिवाली है। औ वडि वख्तावरि कहिये स्वाधीन है। पराधीन नहीं है। यातें पूर्वोक्त सासू का कह्या नहीं मानें है। किंतु जाके कहे वे सास चलती है। अर्थात् विवेकयुक्त बुद्धि की वृत्ति में अविवेकता का प्रवेश होवै नहीं।—पूर्वोक्त विवेक कूं सहायता करनेवाला जो तत्वज्ञान है। सोई मानौ भाई (भ्राता) है सो खरो कहिये निश्चित है। भलो कहिये श्रेष्ठ है। औ हितकारी कहिये मुक्तिरूप कल्याण कूं करनेवालो है। तिसने अविद्या को औ ताके कार्य बुद्धि वा बुद्धिवृत्ति औ देहादिरूप सब कुटुंब को नास कीयो। कहिये वाध कियो है।—सुंदरदासजी कहि समुझावै हैं कि। ऐसी विधि कहिये इस प्रकार करि हमारो स्व-स्वरूप-रूपी घर वस्यो। अर्थात सत्रूप करि अवशेष रह्यो॥ १७॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—सुंदर समुझावै वहू सुनि हे मेरी सास। माई वाप तजि धी चली अपने पिय के पास। २७।— हरिदासजी निरंजनी— …"सास वहू के पागे लागैं"। २।—(योग मूल सुख भोग)।—कवीरजी का पद—"माई मैं दोनों कुल उजियारी। वारह खसम नेहर में खाये, सोरह खाये ससुरारी। सासु ननद मिलि पटिया बांधल, भसुरा परलो गारी। जारो मांग में तासु नारि की, सरिवर रची हमारी। जनां पांच कोखिया में राखौं, अरु राखौं दुइचारी। पारपरोसिनि करौं कलेवा संगहि वुधि महतारी। सहजैं वपुरी सेज विछायो, सूती पांउं पसारी।—(बीजक शब्द ६२)।—तथा—"सांईं के संग सासुर आई"। संग न सूती स्वाद न जान्यौं, गयो जोवन सुपने की नांईं। जनां चारि मिलि लगन सुधाई, जनां पांच मिलि मंडप छाई। सखी सहेली मंगल गावैं, दुख-सुख माथै हरदि चढ़ाई। नानारूप परी मन भांवरि, गांठि जोरि भई पति की आई। अरघे दै दै चली सुवासिन, चौकहि रांड भई संग सांईं। भयो वियाह चली विन दूलह, वाट जात समधी समुझाई। कहै कवीर हम गवनैं जैवें, तरव कंत लै तूर वजाई॥ (शब्दावली। १२)। तथा पद—"जेठी धीय सासरै पठऊ, ज्यौं वहुरिन आवै फेरी। लहुरी धीय सवै कुल खोयौ, तव ढिंग वैठन पाई। कहै कवीर भाग वपरी कौ, किलि किलि सवै चुकाई"।

परधन हरै करै पर निंदा पर धी कौं राषै घर मांहिं।
मांस पाइ मदिरा पुनि पीवै ताहि मुक्ति कौ संशय नांहिं॥
अकर्म ग्रहै कर्म सब त्यागै ताकी संगति पाप नसाहिं।
ऐसी करै सु संत कहावै सुंदर और उपजि मरि जाहिं॥ १८॥

(क० ग्रं०। पद २२) ।—तथा पद—"सेजैं रहौं नैंन नहिं देखौं, यहु दुख कासूं कहूं री॥ सासु की दूखी ससुर की प्यारी, जेठ कै तरस डरौं री। ननद सहेली गरब गहेली, देवर के बिरह जरौं री"॥ (क० ग्रं०। पद २३० से) ।—तथा पद—"अवधू ऐसा ग्यान विचारी। नां हूं परणीं नां हूं क्वारी, पूत जन्यौं द्यौ हारी। काली मूंड को एक न छांड्यौ, अजहूं अखन कँवारी"॥ (उक्त। पद २३१॥)

ह० लि० १, २ टीका:—परधन नाम परायो धन। पर जो विवेकी संत तिन को धन जो ज्ञान ताकों संतन का उपदेश करिके हृदा में धारण करै। परनिंदा नाम अनात्म देहादि ताकी निंदा, विनाशवंत है जड है मलीन है यों निंदा करै तो आसक्ति निवृत्त होय।—पर नाम विवेकी संत तिनकी धी कहिये जो निर्मल शुद्ध-बुद्धि ता बुद्धि कों अपना घर जो घट तामें राखै।—मांस नाम पदार्थों की ममता ताकों खाय नाम जीतै दूरि निवारै। अरु मदिरा नाम मोह जासों बावलो बेसुध होजाय ताकों ज्यूं-त्यूं पुरुषार्थ करि पीवै उपजण देवै नहीं। ऐसा पुरुषार्थ जो करै ता पुरुष के मुक्ति को संशय नहीं वह मुक्तिरूप ही है।—अकर्म नाम निरहंकारता वा ब्रह्मस्वरूप। कर्म नाम साहंकारता वा ब्रह्म व्यतिरिक्त संसार देहादि सो ता कर्म कों त्यागि के वा अकर्म को ग्रहण करै ऐसा पुरुष की संगति कर्यां सर्व पाप दूरि होवै।—जो ऐसा कार्य नहीं करते हैं उनका जन्म लेना वृथा है। ऐसा करते हैं वेही संत-महात्मा कहे जाने के योग्य हैं॥ १८॥

पीताम्बरी टीका:— पर कहिये जो संत-महात्मा पुरुष हैं तिनके ज्ञान वैराग्यादिक शुभगुणयुक्तरूप धन कूं हरै कहिये ग्रहण करिके अपने चित्तरूप भंडार में राखै। पर कहिये जो अहंकारादि जो जगतरूप अनर्थ हैं तिनकी निंदा करै कहिये तिनके असत् जड औ दुःखतादिकस्वरूप का कथन करै। पर कहिये जो सत् पुरुष हैं तिनकी

ज्ञानयुक्त जो श्रेष्ठ बुद्धि है। अथवा जो ब्रह्माकार बुद्धि है सोई मानो तिन (सत्पुरुषन) की तिय (स्त्री) है। ताकूं हृदयरूप घरमांहि राखै कहिये स्थित करै।—जैसे शरीर में मांस संपूर्ण रहै है तैसे ब्रह्म सर्वात्मा है औ सर्वत्र परिपूर्ण है। तिस स्वरूप का जो आनंद है सोई मानौ मांस है। ताकूं खाय कहिये अनुभव करै। परिपूर्ण स्वरूपानंद कूं सहायता करनेवाला जो ज्ञान-विचारादिक है ताकूं ही इहां मदिरा कहैं हैं। सो पुनि कहिये फिरि पीवै। कहिये स्मरण करै। जाके अमल में मदिरा-मदांध की न्याई देह की भी स्मृति रहै नहीं। ऐसे उक्त परधन जो हरै हैं परनिंदा करै हैं परकी स्त्री कूं (धी कूं) घर में राखै है। मांस खावै है। औ मदिरा पीवै है। ताहि मुक्ति को संशय नांहिं। कहिये सो मोक्षरूप ही है।—देहेंद्रियादि करि लौकिक व वैदिक कर्म करै। परन्तु "मैं आत्मा अकर्त्ता हूं" इस निश्चयरूप अकर्म ताको गहै कहिये ग्रहण करै है। अथवा जो अक्रिय ब्रह्म है ताकूं गहै कहिये "सोई मैं हूं" ऐसे निश्चयरूप अकर्म ताको ग्रहण करै है। औ मैं "पापी हूं पुन्यवान हूं" इस प्रकार के कर्म के अभिमान कूं छोडै। अथवा माया का कार्य जो देहादि जगत् है ताकूं दृढ मिथ्या निश्चय करै है। सोई मानौ सब कर्म त्यागै है। उक्त प्रकार करि जिसने अकर्मता का ग्रहण औ सब कर्म का त्याग किया है। ताकी संगत करि पाप नसांहि कहिये नाश होवै है।—सुंदरदासजी कहैं हैं कि जो ज्ञानी पुरुष ऐसी रहेणी करै सु सर्वजन करि वा शास्त्र करि संत कहावै। औ जो और अज्ञानी पुरुष हैं वारंवार उपजि के मरजांहि। कहिये जन्मधरिके मरण कूं पावैं हैं॥ १८॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—परधी लैकरि घर धरै परधन हरि-हरि पाइ। पर-निंदा निश दिन करै सुंदर मुक्तिहि जाइ। २४।—मांस भषै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध। जौ ऐसी करनी करै सुंदर सांई साध। २५।—श्रीकबीर पद—"मुइ पीवै ब्राह्मण मतवाला"—(कबीर ग्रंथावली में पद १०)—गोरखनाथजी का पद—"म्हारौ रे वैरागी जोगी, अहिनिस भोगी रे। जोगणि संग न छोडै रे"। (गो० पद ६)।

वढई चरपा भलौ संवार्यौ फिरनै लाग्यौ नीकी भांति।
वहू सास कौं कहि समुंझावै तूं मेरै ढिङ्ग बैठी काति॥
नैन्हौं तार न टूटै कबहूं पूनी घटै दिवस नहिं राति।
सुंदर विधि सौं वुनै जुलाहा पासा निपजै ऊंची जाति॥ १९।

ह० लि० १, २ टीकाः—वढई नाम जो गुरु। गुरु वढई क्यूं? जो घाट घड़िदे जासूं वढ़ई। "भाई रे भानि घड़ै गुरु मेरा" इति। चरखा जिज्ञासी का चित्त सो भलो संवार्यो नाम उपदेश देकर शुद्ध कीयो। सो नीकी भांति भले प्रकार करि फिरनैं लागो नाम वाह्य वृत्ति कौं छोडि करि अंतर्निष्ट हुओ।—वहु वुद्धि सास सुरति ताकौं यौं कह समझावै-हे सुरति तूं मेरे ढिगि हृदा भीतरि बैठिकरि निश्चल होइकरि काति नाम सुमरनरूपी आपनो कृत्य करि।—सो ऐसा काति जो अत्यन्त साधन सौं महासूक्ष्म सुमरन ताको तार जो अखंड वेग सो टूटै नहीं सदा एकरस रहै। तार पूंणीं के आसिरै होवै है जो पूंणी को अंत आवै तो तार को भी अंत आवै। इहां सुमरनरूपी तार की पूंणीं प्रीति है सो वा प्रीतिरूपा पूंणीं घटण पावै नहीं नाम अखंड एकरस निदूखणी लगी रहै।—ता शुद्ध सुमरनरूपी सूत कौं जीव जुलाहा वुंणै नाम निष्कामता सौं परमेश्वर मैं अर्पण करै तब खासा जाति अतिश्रेष्ठ भक्तिरुप वस्त्र निपजै, वा भक्ति कैसीक है, अति ऊंची, अति उत्तमा फलानुसंधान-रहिता॥ १९॥

पीताम्बरी टीकाः—सर्वज्ञ औ सर्वशक्तिमान जो ईश्वर है ताकूं ही इहां वढई कहिये सुतार कहैं हैं। काहेते कि जैसे सुतार काष्ट विषै अनेक-भांति के आकार करैं हैं तातैं सो तिन आकारन का कर्ता है। जो कार्य का कर्ता होवै सो ता कार्य कूं औ ताके उपादान कूं जानिके करै है। इहां रहटिया कार्य है औ काष्ट उपादान हैं तिन दोनों को सुतार जानैं है। तैसे ईश्वररूप सुतार माया के विषे अनेक रचना करैं हैं तातै सो तिस रचना का कर्ता है। औ तिस रचनारूप कार्य कूं औ ताके उपादान माया कूं जानैं है यातें सर्वज्ञ है। औ सर्व रचना करने में अद्भुत सामर्थ्यवाला होने ते सर्वशक्तिमान है। तिस ईश्वर ने मनुष्य शरीररूप कार्य उत्पन्न किया है सोई मानो चरखा कहिये रहटिया है। और सर्व शरीरन तें मनुष्य शरीर भलो सवार्यो

कहिये उत्तम बनायो है। सो नीकी भांति कहिये अच्छी तरह से फिरने लाग्यो। सो ऐसे:—पूर्वजन्म के शुभकर्मन तें अंतःकरण में उत्तम संस्कार हुवे हैं। तिनतें सत्संगादिक की प्राप्ति हुई है। औ सत्संगादि करि ज्ञान के साधनों में प्रवृत्ति भई है। तातें पुनः २ सोई अभ्यास लग्यो है।—तिस अभ्यासवाली जो बुद्धि है सो विवेकरूप पुत्र कूं जनें है। ता पुत्र की परिपक्व अवस्था हुवे तें ताका अद्वैत श्रुति के साथ सम्बन्ध करै है। सोई मानों वहू कहिये पुत्र की पत्नी है। सो पूर्वोक्त अभ्यासयुक्त वुद्धिरूप अपनी सास कों ऐसे कहि समुझावे है:—"तूं मेरे ढिंग (पास) बैठी कात"। कहिये लक्ष्य में स्थित होयके स्वरूप का अनुसंधान कर।—स्वरूप के अनुसंधानरूप जो स्मरण है। ताको प्रवाह ही मानों तार है सो कबहू न टूटै कहिये ता स्मरण का कदै भी भंग होवै नहीं। औ पूनी (रुई की पूनी) जो स्वरूपाकार वृत्ति है सो रात-दिन घटै नहीं कहिये अंतराय-सहित होवैं नहीं कहिये एकरस रहै है।—सुंदरदासजी कहैं हैं कि विधि सूं कहिये श्रवण मनन औ निदिध्यासनादिक ज्ञान के साधनों करि स्वरूप के साक्षात्काररूप जुलाहा कहिये कपड़ा बुनें। तब सो खासा निपजै कहिये सर्व अनर्थ की निवृत्ति औ परमानंद की प्राप्तिरूप शोभादायक होवै। याकूं ही मुक्ति कहैं हैं। सो मुक्ति दो प्रकार की है:—एक जीवन्मुक्ति। दूसरी विदेहमुक्ति। शरीर सहित कूं बंध-भ्रम का जो अभाव होवै है सो जीवन्मुक्ति कहिये है। औ ज्ञान तें अज्ञान की निवृत्ति होयके प्रारब्ध-भाग तें अनंतर स्थूलसूक्ष्म शरीराकार अज्ञान का जो चेतन में लय होवै है सो विदेहमुक्ति कहिये है। तिनमें विदेह-मुक्ति तो ज्ञानी कूं अवश्य होवै है। तैसे ही भ्रम के नाश-क्षण में जीवन्मुक्ति भी संभव है। परन्तु जो शरीर के प्रारब्ध के अधिक भोग के हेतु होवैं तौ प्रवृत्ति के बलतें जीवन्मुक्ति का आनंद प्राप्त होवै नहीं। सो भोगन की न्यूनता तें निवृत्ति के बल करि जीवन्मुक्ति के आनन्दरूप ऊंची जाति कहिये उत्कृष्ट प्रकार का बन्या है ॥ १९ ॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—बढई कारीगर मिल्यौ चरपा गढ्यौ बनाइ। सुंदर वहू सतेवरी उल्टो दियौ फिराइ। २८।—हरिदासजी निरंजनी की साखी—"सूत जुलाहा वणिया"। ३। (योग मूल सु० यो०।)।—कबीरजी का पद—"गज नो गज दस गज टन इसकी पुरिया एक बनाई।···भीनी पुरिया काम

घर घर फिरै कुमारी कन्या जनें जनें सौं करती संग।
वेस्या सु तौ भई पतिव्रता एक पुरुष के लागी अंग॥
कलियुग मांहिं सतयुग थाप्या पापी उदौ धर्म कौ भंग।
सुंदर कहै सु अर्थ हि पावै जो नीकै करि तजै अनंग॥ २०॥

न आवै जुलहा चला रिसाई"। (बीजक पद १५)।—तथा—"जो चरखा मरिजाय बढ़ैया नां मरी मैं कातौं सूत हजार चरखला नाँ जरै। बाबा ब्याह कराइदे अच्छा वर हित काह। अच्छा वर जो नाँ मिलैं तुम ही मोहि बियाह॥ प्रथमे नगर पहुंचते परिगो शोक संताप। एक अचंभौ देखौ हमने बेटी ब्याहै बाप॥ समधी के घर लमधी आया आये बहू के भाय। गौड़ चुल्ही ने दैरहे चरखा दियौ दिढ़ाय॥ देवलोक मरिजाहिंगे एक न मरै बढ़ाय। यह मन-रंजन कारने चरखा दियो दिढ़ाय॥ कहै कबीर संतो सुनो चरखा लखै न कोइ। जाको चरखा लखिपरो आवागमन न होइ"॥ (बीजक। शब्द ६८।)।—तथा शब्द—"चरखा नहीं निगोड़ा चलता॥ पांच तत्त का बना है चरखा, तीन गुनन में गलता। माल टूट तीन भया टुकड़ा टकवा होय गया टेढा। मांजत-मांजत हार गया है, धागा नहीं निकलता। मित्र बढ़ैया दूर बसतु है, किसके घर दे आया। ठोक्त-ठोक्त हार गया है, तौभी नहीं सम्हलता। कहै कबीर सुनौं भाई साधो, जले बिना नहिं छुटता"॥ (शब्दावली भाग २। भेद का २७।)।—तथा पद—"पाड बुणै कोली में बैठी, मैं खूंटा मैं गाडी। तांणै बांणै पड़ी अनवासी, सूत कहै बुणि गाढ़ो"। (कबीर ग्रंथावली में पद १० से)।—गोरषनाथजी का पद—"रहट बहत्र सालत्रा, सूलै कांटा भागा"। (गो० पद ५ में से)।—तथा—"बहू व्याई नै सासू जाई"। (और देखो वि० सवैया १७ भी)। (गो० पद ३९ में से)।

ह० लि० १-२ टीका:—कंवारी कन्या नाम (सतगुरु के) दृढ़ उपदेश बिना जिज्ञासी की कची जो बुद्धि-सो घर-घर फिरै नाम अनेक संत शास्त्रां की सभा संगति तामें जणें-जणें सों नाम अनेक मतमतांतरा सों लागती फिरै।—वेस्या नाम पदार्थों में बिचरिती फिरै ऐसी जो व्यभिचारिणी बुद्धि तानैं पति जो आपको प्रेरक पालक स्वामी ऐसा जो परमेश्वरजी ताको व्रत धारण कर्यो नाम वृत्तिनिवारि निश्चल होय

एक पुरुष परमात्मा सों ही लागी ।—कलियुग नाम मलीन कर्मों में लीन ऐसी जो काया तामें सतयुगरूप ज्ञान-ध्यान-सत्यधर्म थाप्यो नाम थिर कियो। तामें पापी नाम इन्द्रियों को मारनेवाला इन्द्रियजीत ताका उदै नाम वह सदा सुखी रहै। अरु धर्म नाम (साधारण) इन्द्रियों को पोषण ताको भंग नाम नाश (सो उसके हुए) सदा सुखी रहै ।—सुंदरदासजी कहै हैं—या का अर्थ कों सो पावै जो नीकै नाम मनसा-वाचा-कर्मणा भले प्रकार करि अनंग नाम काम कों तजै नाम त्यागै ॥ २० ॥

पीताम्बरी टीकाः- आत्मजिज्ञासा-वाली जो बुद्धि है सोई मानो कुमारी कन्या (कुमारिका) है। सो अनेक सत्पुरुषों अथवा ज्ञान के अष्टसाधनरूप अनेक जने-जने सूं संग कहिये प्रीति करती घर-घर फिरै है कहिये अनेक शास्त्रन में अथवा तीन शरीरन में तीन अवस्थाओं में औ पंचकोशन में विचार करने कूं प्रवर्तै है ।—जो ब्रह्माकार बुद्धि की वृत्ति है सोई मानों वेस्या है । जैसे वेस्या व्यभिचारिनी होवै है यातें एक पुरुष के आश्रय होवै नहीं । तैसे वृत्ति भी अस्थिर होवै है । तातें एक विषय के आकार रहै नहीं । ऐसे अज्ञानकाल में यद्यपि वृत्ति का चांचल्य देखिये है । तथापि ज्ञान हुये पीछे सो वृत्ति एकाग्र होवै है । जैसे वेस्या कूं भी किसी एक पुरुष के ऊपर प्यार होइ जावै है तो और सब पुरुषन का आश्रय छोड़िके तिसी के साथ लगी रहै है । तैसे वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब विषयन में प्रवृत्त नहीं होवै किंतु एक स्वरूप में ही स्थित होवै है । ऐसे वेस्या का औ वृत्ति का सादृश्य होने तें वृत्ति कूं वेस्या कही है। फिर जैसे वेस्या किसी एक पुरुष के वश होवै है तब ताका पातिव्रत भी सिद्ध होवै है । तैसे ही वृत्ति भी जब ब्रह्माकार होवै है तब ताकी एकाग्रता भी सिद्ध होवै है ।—इस हेतु तें ही मूल में सो तो पतिव्रता भई औ एक पुरुष के अग लागी ऐसे कह्या है ।—रजोगुण औ तमोगुण की वृत्तिरूप मलिनधर्मवाला जो मन है सोई मानों कलियुग है। काहेतें कि कलियुग में मलीनता की वृद्धि होवै है । तैसे ही मलीनता-युक्त मन होने तें कलियुग का औ मन का सादृश्य कह्या है । ता मांही विवेक, वैराग्य, क्षमा, धैर्य, उदारता आदि वृत्तिरूप श्रेष्ठधर्म-रूप ही मानों सतयुग थाप्यो । काहेतें कि सतयुग में श्रेष्ठ धर्मन की वृद्धि होवै है तातें श्रेष्ठ धर्म-रूप ही सतयुग कह्या है । तामें पापी का उदय होवै है । काहे तें कि जो नाश-

विप्र रसोई करनै लागौ चौका भीतरि वैठौ आइ।
लकरी मांहि चूल्हा दीयौ रोटी ऊपर तवा चढाइ॥
पिचरी मांहि हंडिया रांधी सालन आक धतूरा पाइ।
सुंदर जीमत अति सुख पायौ अवकै भोजन कियौ अघाइ॥ २१॥

करनेवाला होवै है सो पापी कहिये है। सर्व अविद्या का औ ताके कार्य का नाश करने-वाला। ज्ञान है तातें ताकूं ही पापी कहैं हैं। ता ज्ञानरूप पापी की पूर्वोक्त श्रेष्ठधर्म-रूप सतयुग में वृद्धि होवै है। औ धर्म को भंग होवै है काहेतें कि जातें रक्षा होवै सो धर्म कहिये है। अविद्या औ ताका रक्षक अविवेक है। ताका तिस सतयुग में नाश होवं है।—सुंदरदासजी कहते हैं कि जो पुरुष नीके करि (अच्छी तरह से) अनंग (कामदेव) कूं भजै (नोट—पीताम्बरजी ने तजै की जगह भजै ऐसा पाठ विपर्यय के चमत्कार वढ़ाने को किया) सो याका अर्थ पावै। याका भाव यह है:—जाका अंग नहीं है ताकूं अनंग कहै हैं। ऐसे कामदेव की न्याइं निरवयव जो ब्रह्म है ताकूं भजै कहिये जो निर्गुण उपासना करै सो अच्छी तरह सें मोक्षरूप अर्थ कूं पावै॥ २०॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—सुंदर सवही सौं मिली कन्या अपन कुमारि। वेस्या फिरि पतिव्रत लियौं भई सुहागिन नारि। २९।—कलियुग मैं सतजुग कियौ सुंदर उलटी गंग। पापी भये सु ऊवरे धर्मी हूये भंग। ३०।—कवीरजी का पद—"कुविजा पुरुष गले इक लागी, पूजि न मनकी साधा। करत विचार जन्म गो खीसा, ई तन रहल असाधा"। (वीजक शब्द ५८ में)।—तथा—"एक सुहागिन जगत पियारी, सकल जत जीव की नारी। खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै।—(क० ग्रं० पद ३७०।)।

ह० लि० १—२ टीका:—विप्र जो (वेदादि का ज्ञान प्राप्त) जीव सो परम शुद्ध हो सर्व कर्म काल को नारि अपने हित अपरस सौं जब रसोई करनै लागो नाम भाव-भक्ति करनै को लाग्यो तब चोका जो शुद्ध निर्विकार किया अंतःकरण चतुष्टय तामें आइकै वैठ्यो नाम निश्चल हुवो।—लकरी नाम लैं तामें चूल्हा नाम चित्त दीयौ

नाम लगायो निश्चल कीयो। रोटी जो रटणि ता ऊपर तामें तत्वज्ञान का तवा चढाया परमेश्वरजी सों रटणि लागी तब तत्वज्ञान प्राप्त हुवो। खिचरी जो भक्ति और ज्ञान की मिश्रता तामें हंडिया नाम काया सो रांधी नाम ता भक्ति-ज्ञान में लीनकरि शुद्ध करी। अरु ता खिचरी की साथि साल्न नाम साग सो आक धतूरारूप, पचना जिनका अतिकठिन, जो काम-क्रोधादि सो सब खाया नाम सर्व जीतकरि निवृत्त किया।— जीमत नाम इनको जीतितां अरु ज्ञानभक्ति की प्राप्ति होतां अति बड़ो सुख पायो नाम बहुत आनंद हुवो। अबकै या मनुष्यजन्म में आय अघाय नाम तृप्त होकरि भोजन कियो नाम भक्तिज्ञान सों कार्य सिद्ध कीयौ नाम भगवत् की प्राप्ति हुई ॥ २१ ॥

पीताम्बरी टीका:—जो शुद्ध अंतःकरणवाला जिज्ञासु जीव है सोई मानौं विप्र (ब्राह्मण) है। सो मोक्ष-सम्पादनरूप रसोई करने लाग्यो। तब विवेकादि चारिसाधन-रूप चोका के भीतर आइके बैठो। कहिये साधन-सम्पन्न भयो।—नानाप्रकार के जो अनेक कर्म हैं सोई मानौं अनेक लकरिआं हैं। ता माहिं ब्रह्मोपदेशरूपी चूल्हा दीयो। तिसने ज्ञानरूप अग्नि करि कर्मरूप लकरिआं जलाय डाली। तब प्रारब्ध फल की भोग्यतारूप रोटी के ऊपर कर्मवशात् होने के निश्चयरूप तवा कूं चढाइ दियो। अर्थात् जब ब्रह्मोपदेशजन्य ज्ञानतें सब कर्मन का नाश होवै है तब तिस ज्ञानी का ऐसा निश्चय होवै है:—"मैं अकर्त्ता हूं अभोक्ता हूं। जो शेष प्रारब्ध कर्म रहे हैं सो जौलौं भोगन का आयतन शरीर है तौलौं यथावत् भोग देहूं। ताकी चिंता मेरे कूं कर्त्तव्य नहीं"।—वैराग्यरूप जल, बोधरूप चांवल और उपशमरूप मूंग। इन तीनूं की मिश्रतारूप खिचरी है। ता मांही हंडिया कहिये भोगन विषे दीनता, सत्यता की भ्रांति औ प्रतीति आदि धर्मयुक्त समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म प्रपंचरूप जो माया है सो रांधी कहिये बाधित करी। औ अनेक रागद्वेषादि दुर्वासनारूप जो महा-उग्र कटुक—आक औ धतूरा हैं तिनका साल्न (शाक) बनाइ के खाइ कहिये जीति के।—सुन्दरदासजी कहे हैं कि कार्य-सहित अज्ञान की निवृत्तिरूप रसोई, वासना की निवृत्तिरूप शाक सहित जीमत कहिये अनुभव करिके अति सुख पायो कहिये परमानन्द की प्राप्ति भई। औ अबके कहिये इस मनुष्य-शरीर में ही ईश्वर, श्रुति, गुरु-औ स्व-अंतःकरण इन सर्व की कृपा से ज्ञान पाइके अघाइ कहिये संसार के भोगन की

तृष्णा करि रहिततारूप तृप्ति कूं पायके जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनंद का जो अनुभव है तद्रूप भोजन कियो। याका भाव यह है:—पूर्व अज्ञानकाल में अनेकदेह प्राप्त हुवे थे तिनमें विषयानंद का अनुभव तो बहुत किया है परन्तु स्वरूपानन्द का अनुभव कदै भी हुवा नहीं है। काहेतैं कि तिस काल में मूला अज्ञानरूप प्रतिबंध था। औ पश्चात् विदेह-मोक्ष में भी सर्वदुःखन की निवृत्ति पूर्वक निरावण, परिपूर्ण आनंदस्वरूप करि अवस्थित होवै है। परन्तु अस्तिव्यवहार की हेतु जो वृत्ति है ताका अभाव होने तैं जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द का अनुभव नहीं होवै है। यातें ज्ञानयुक्त देह में ही जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्दरूप विद्यानन्द का अनुभव होने कूं शक्य है। तातें सुखेच्छु विद्वान् करि विषयानंद कूं त्यागि के ब्रह्म-विचार द्वारा पूर्वोक्त आनन्द का अनुभव अवश्य कर्त्तव्य है। यद्यपि सुषुप्त्यादि में भी आनन्द तो है। तथापि सो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक नहीं है, तातैं विलक्षण सुख का हेतु नहीं है। जो निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक होवै सो विलक्षण आनन्द कहिये है। इस लक्षण की यह पदकृति है:—सुषुप्ति में जो आनन्द है सो आवरण रहित है। औ विषय में जो आनंद है सो निरावरण तो है तथापि विषय की प्राप्तिक्षण में जब अंतर-मुख वृत्ति होवै है तब तामें स्वरूपानन्द का प्रतिबिंब पड़ै है यातें परिपूर्ण नहीं किंतु एक-देश-वृत्ति होनेतें परिच्छिन्न है। तैसे ही पूर्णानंद तो अज्ञानी का स्वरूप भी है, तथापि सो निरावरण औ अभिमुख वृत्ति सहित नहीं। औ जो विदेहमुक्ति में निरा-वरण पूर्णानंद है सो सवृत्तिक नहीं किंतु अवृत्तिक है। यातें निरावरण, परिपूर्ण औ सवृत्तिक आनन्दरूप विलक्षणानन्द का लक्षण किये से कहूं भी अतिव्याप्ति आदि दोष नहीं है॥ २१॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जोकी साखी—"विप्र रसोई करत है चौकै काढीकार। लकरी मैं चूल्हा दियौ सुंदर लगी न बार। ३१।—रोटी ऊपर पोइकैं तवा चढ़ायौ आंनि। खिचरी मांहैं हंडिका सुंदर रांधी जांनि। ३२।—गोरषनाथजी का पद—"मगरी ऊपरि चूल्हौ धूंधावै, पोवणहारी कूं रोटी पावै"। (गो० पद ३९ में से)।

वैल उलटि नाइक कौं लायौ वस्तु मांहिं भरि गौंनि अपार।
भली भांति कौ सौदा कीयौ आइ दिसंतर या संसार॥
नाइकनी पुनि हरषत डोलै मोहि मिल्यौ नीकौ भरतार।
पूंजी जाइ साह कौं सौंपी सुंदर सिरतैं उतस्या भार॥ २२॥

ह० लि० १-२ टीका:—वैल भारवाहक जो अज्ञान-अवस्था में अहंकर्तृत्व-पणां को अभिमानी सर्वकर्मन को अधिकारी बणि रह्यो-सोजीव। तानैं नायक नाम जो अज्ञान-अवस्था में मुखिया बणि रह्यो जो मन ताकों लायो नाम विवेक कों पायकरि कर्तृत्वादिक का सर्व भार मनहीं के उपरि नाख्यों। 'मन उन्मेष जगत भयो बिन उन्मेष नसाइ' इति।—ऐसो निरभिमानी शुद्ध जीव तानैं वस्तु नाम परमेश्वर में भाव धारण कियो ता भावरूपी बस्तु में अपार गुण हैं शमदम संपति ज्ञान वाही सों सर्व-सिद्धि होवै है।—ससाररूपी दिशंतर देश नाम मनुष्य जन्म ताकों पायकरि भली-भांति का सौदा नाम परमेश्वरजी में भावभक्ति धारणारूप अति-श्रेष्ठ सौदा कोयो। नायकनी मनसारूप अंतःकरण की वृत्ति सो हर्षायमान हुई शुभकार्यों में वर्तै है। मो कों नीको नाम अतिश्रेष्ठ शुद्ध जो मन सो भर्त्तार मिल्यो नाम (मैंने) पायो। पूंजी नाम सर्व सौंज तन-मन प्राण सो साह परमेश्वरजी ताकों सौंपी समर्पण करी। तब सर्वभार जन्म-मरण कर्मफल सुख-दुःख शोक चिंता सर्व दूरि हुवा सुखी भयो, यों भार उतर्यो॥ २२॥

पीताम्बरी टीका:- साभास अंतःकरण-विशिष्ट चेतनरूप जो जीव है सोई मानों वैल (बलीवर्द) है। काहेतें कि कर्तृत्व, भोक्तृत्व, राग, द्वेष इत्यादिक जो अंतःकरण के धर्म्म हैं तैसे ही प्राण, इंद्रिय औ देह के जो धर्म्म हैं तिसरूप भार कूं अज्ञानकाल में उठाता था। यातें ताकूं वैल कह्या। तिसने उलटि के कहिये विचारद्वारा निजस्वरूप कूं जानिके पूर्व अविवेक काल में तादात्म्य-अध्यास करि जीव कूं अपने वश करिके वर्तावनेहारा जो स्थूल सूक्ष्म संघात है सोई मानों नायक है। ताकूं लायो कहिये अज्ञानकाल में अध्यास करि अंतःकरण, प्राण औ इन्द्रियन के धर्म जो जीवने अपने मान लिये थे सो ज्ञानकाल में यथायोग्य संघात के जानि लिये।—सर्व

का अधिष्ठान जो ब्रह्म है सोई मानों वस्तु है, ता मांहिं अपार (अगणित) गुण भरि, कहिये अपने-अपने जाति, सम्बन्ध औ क्रिया आदिक धर्मरूप जो पदार्थ हैं सो जिनमें भरे हैं, औ जो अहंकारादि अनात्मरूप कपड़े की बनी हैं । सोई मानो थैलियां हैं, सो पूर्वोक्त ब्रह्मरुप वस्तु में, जैसे साक्षी में स्वप्न के पदार्थ अध्यस्त हैं तैसे अध्यस्त जानें । या संसार ही मानो दिसंतर है । काहेतें कि यह जो संसाररूप देश है सो ब्रह्मरुप देशसे भिन्न है तातें देशांतर कह्या है । यामें आयके भलीभांति कौ सौदा कीयौ । सो सौदा यह हैः---जब ज्ञान की प्राप्ति होवै है तब सर्व-अनर्थ की निवृत्ति औ परमानंद की प्राप्ति होवै है याकूं ही मुक्ति वा मोक्ष कहै हैं, सोई मानों एक व्यापार है । तिसके निमित्त तें सर्व अनात्मरूप धनका त्याग किया औ परमानन्दरूप माल अपना करि लिया ।—दृढ निश्चय स्वरूप जो बुद्धि है सोई मानों नायकनी है सा पुनि हरषत डोलै कहिये फिरि आनन्द कूं प्राप्त भई, औ मुखसे कहने लगी कि मोहिनीको (श्रेष्ठ) भरतार (पति) मिल्यो । इहां वेदांत-सिद्धांतरूप पति कह्यो है सो निश्चय स्वरूप बुद्धि कूं प्राप्त भयो । मूल में जो पुनि शब्द है ताका अर्थ यह हैः— निश्चयस्वरूप बुद्धिरूप जो नायकनी है सो प्रथम जब द्वैत-सिद्धांत के आधीन भई थी तब तिसी पतिकरि आनंदित होइ रही थी । ताकूं जब (अब) अद्वैत-सिद्धांत-रूप पति की प्राप्ति भई तब पूर्व पति का त्याग करिके फिरि आनन्दवान भई । तिस अद्वैत-सिद्धांत-रूप साह (सांई=पति) कूं, तिसके पास जाइके अनंतवासना-रूप पूंजी सौंप दीनी । जातें जाका जीवन होवै सो ताकी पूंजी कहिये है । अनंत-कर्मन की वासना बिना बुद्धि की स्थिति होवै नहीं तातें सो बुद्धि की पूंजी कहिये जीवन है । सो ही अद्वैत-सिद्धांत-रूप ज्ञान की प्राप्ति भये तें बुद्धि सर्व वासना का त्याग करै है । काहेतें कि ज्ञान करि सर्व कर्मनका नाश होवै है । कर्मन का नाश भये ते तज्जन्य वासना का भी नाश होवै है । सोई मानों सौंपना है । पति कूं अपनी पूंजी देने का कारण दिखावै हैं—जौलौं बुद्धि में अनन्त वासना भरी थी तौलौं सो अपने चिदाभासरूप शिर पर बड़ो बोझो थो । सो भार सिरतैं उतर्या । कहिये चिदाभासरूप जीव कूं अपने स्वरूप के ज्ञानद्वारा सर्व वासना तें मुक्त कियो । ऐसे सुन्दरदासजी कहै हैं ॥ २२ ॥

वनिक एक वनिजी कौं आयौ परै तावरा भारी भैठि।
भली वस्तु कछु लीनी दीनी पैंचि गठिरिया वांधी ऐंठि॥
सौदा कियौ चल्यौ पुनि घर कौं लेपा कियौ वरीतर वैठि।
सुंदर साह पुसी अति हूवा वैल गया पूंजी मैं पैठि॥ २३॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—नाइक लादौ उलटि करि वैल विचारै आइ। गौन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ। ३५।—कबीरजी का पद—"वैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई।" (कबीर ग्रन्थावली पद ११ से)।—तथा—"मेरे जैसे वनिज सौं कवन काज, जहं मूल घटै सिरि वधै व्याज। नाइक एक वनिजारे पांच, वैल पचीस कौ संग साथ। नव वहियां दस गौंनि आहि, कसनि वहत्तर लागे ताहि। सात सूत मिलि वनिज कीन्ह, कर्म पयादो संग लीन्ह। तीन जगाती करत रारि, चल्यौ है वनिजवा वनिज झारि। वनिज खुटानौं पूंजी टूटि, घाटू दह दिसि गयौ फूटि। कहै कबीर यहु जनम वाद। सहजि समानूं रहो लाद"। (क० ग्रं०। पद ३८३।) [नोट—इस पद को आगे के सवैया २३ से भी मिलावें]—गोरपनाथजी का पद—"गाडि लै पड़वा वांधि लै पूंटा, चलैगा दमामा वाजैगा ऊंटा"। (गो० पद ३९)।—

ह० लि० १—२ टीका:—वनिक व्योपारीरूप जो जीव सो या संसाररूपी दिशान्तर में सुकृत भक्ति वनिजो को आयो तामें प्राचीन मलिन-कर्मन का फलहाणि जो काम क्रोधादिक सोई तावड़ो नाम धूप तपै भारी भैठि नाम अतिगति (भैर भट) तपै अर्थात् कछू शुभ कारिज में अवसाण आवण दे नहीं।—तथापि जिहिं तिहिं प्रकार पुरुषार्थ करिकैं भली वस्तु कछु लीनी-दीनी लीनी नांव लीया भजन कीया, दीनी भी शुभ उपदेश दीया। यों करि शुभगुण भक्तिरूप गठडिया पोट ऐंठि नाम काठी हृदा में दृढ करिकैं वांधी नाम सौंज को ठगाई नहीं।—सोदा नाम भजन ध्यान शुभगुणां कौ कीयो घर परमेश्वरजी तामें चल्यो भक्तिभाव करिकै। वरी नाम वटवृक्ष सो अति विस्ताररूप। वुद्धि ताके नीचे नाम वुद्धि में थिर होय करि लेखा नाम विचार कीयो भगवत् में चित्त लगायो।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि तव साह जो जीव

(या बात सौं) बहुत खुशी हुआ कि बैल जो वपु शरीर सो पूंजी जो परमेश्वरजी तामें पैठि गयो नाम पायो गयो। अर्थ यह जो परमेश्वरजी की प्राप्ति में जन्म मरण सर्व गया। इत्यर्थः ॥ २३ ॥

पीताम्बरी टीका:—जीवरूप ही मानों एक वनिक है सो इस संसाररूप प्रदेश में नाना प्रकार के कर्म-फलन के भोगरूप वनिजी करने कौं आयौ कहिये मनुष्य देह धारण कियो। तिस प्रदेश में त्रिविध तापरूप तावरा (धूप) परै था ताके वल तैं भारी भैंठ कहिये अतिशय तपने लग्यो।—साधन सहित जो ज्ञानरूप वस्तु है सो भली कहिये अत्युत्तम है। सो सद्गुरु औ सत्शास्त्रनरूप अन्य व्यापारिन तैं लीनी अर्थात ज्ञान पाया। इहां कछु शब्द का अर्थ ऐसे हैं:—उक्त सद्गुरु औ सत्-शास्त्रन-रूप अन्य व्यापारीन तें जो ज्ञानरूप वस्तु लीजिये हैं सो तिन द्वारा तत्व मस्यादि महावाक्यजन्य उपदेश करि अनुभव मात्र करिये है, कछु और वस्तु की न्याईं इस वस्तु का ग्रहण नहीं है। काहेतें कि आकारवाले पदार्थ का सम्यक्ता तें स्थूल शरीर करि ग्रहण होवै है। औ निराकार पदार्थ का तो सूक्ष्म शरीर करि तिसके अनुभव मात्र का ग्रहण होवै है। तातें सो कछु कहिये थोड़ा कह्या है। तैसे ही कछु वस्तु दीनी, सो वस्तु यह है:—तन-मन औ धनरूपी मानों द्रव्य है। तिस द्रव्यरूप कछु वस्तु सद्गुरु औ सत्-शास्त्ररूप व्यापारीन कूं दीनी; अर्थात् तन मन औ धन का अर्पन किया। इहां कछु शब्द का ऊपर की न्यांई ही अर्थ है। काहेते कि वास्तव करि तन-मन औ धन अर्पन नहीं होवै है किन्तु यह मिथ्या वस्तु होनेतें ताके अर्पन का व्यवहार होवै है। तातें कछु कह्या है।—उक्त वस्तु लेके ताकी षट् प्रमाणरूपी रस्सी करि खैंचि गठरिया बांधी। कहिये अबाधित अर्थ कूं विषय करनेवाला जो स्मृति से भिन्न ज्ञान (प्रमा) है ताका निश्चय किया। मूल में जो ऐंठि शब्द है ताका अर्थ यह है:- ऐंठि कहिये अच्छी तरह से विचार करिके प्रमाज्ञान का अंगीकार किया है। औ मूल में जो गठरिया शब्द है सो बहुवाचक है तातें तिस वस्तु की अनेक गठरियां कही चाहिये सो कहैं हैं:—प्रमा के कारण जो षट्-प्रमाण हैं सोई मानौं षट्-बन्धन हैं। तिनमें एक एक प्रमाणरूप बन्धन करि एक एक गठरी बांधी गई। काहेतैं—जैसे "चार्वाक" जो हैं सो एक प्रत्यक्ष प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करैं हैं।

"कणाद" औ सुगतमत के अनुसारी प्रत्यक्ष औ अनुमान इन दो प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करैं हैं। सांख्य-शास्त्र का कर्त्ता "कपिल" प्रत्यक्ष अनुमान औ शब्द इन तीन प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। न्याय शास्त्र का कर्त्ता जो "गौतम" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी औ उपमान इन चारि प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। पूर्व-मीमांसा का एकदेशी जा "भट्ट" का शिष्य "प्रभाकर" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान औ अर्थापत्ति इन पांच प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। औ पूर्व मीमांसक जो "भट्ट" है सो प्रत्यक्ष, अनुमान, शाब्दी, उपमान, अर्थापत्ति औ अनुपलब्धि इन षट् प्रमाण करि प्रमा सिद्ध करै है। तैसे पूर्व मीमांसक भट्ट की न्याईं जो षट्-प्रमाण करि प्रमा की सिद्धता है। सो वेदान्त शास्त्र में भी अंगीकार करी है। ऐसे एक एक प्रमाण करि जो प्रमा की सिद्धता है सोई मानों भिन्न गठरियां हैं।—उक्त ज्ञानरूप वस्तु का जीवरूप व्यापारी ने मोक्षरूप लाभ होने के वास्तै उक्त रीति सें सौदा किया। तब पुनि कहिये फेरि अपने पूर्वस्थानरूप घर कूं चल्यो अर्थात् सच्चिदानन्द लक्षणवाला जो ब्रह्म-स्वरूप है ताका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करने लाग्यो। औ वारि कहिये जो ब्रह्मानन्दरूप पानी है ताके तर कहिये निमग्नत्वरूप तले में बैठ के लेखा कियो। सो लेखा यह है:—श्रवण, मनन औ निदिध्यासन करि जब परमानन्दरूप मोक्ष होवै है, तब वह ज्ञानी विचार करै है कि पूर्वोक्त वस्तु का जो मैंने लेन देन किया, सो न तौ लेन है न कछु देन है। मैं जो तन, मन, धनरूप वस्तु दीनी तामें कछु वस्तुता नहीं है। तैसें ही जो ज्ञानरूप वस्तु लीनी सो मेरे सें कछु अन्य नहीं थी। तातें विचार किये तें न कछु दिया है न कछु लिया है।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि साह जो पूर्वोक्त जीवरूप वनिया है सो अति सुखी कहिये निरतिशय आनन्दवान हुवा। काहेतें कि देहादिक भार का उठानेवाला जो अहंकाररूप बैल था सो आत्मधनरूप पूंजी में पैठ गया। अर्थात् शरीरत्रय (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) के अभिमानरूप अनर्थ की निवृत्ति भई ॥ २३ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:— सुन्दरदासजी ने इस पर साषी नहीं कही।—गोरष-नाथजी का वचन—"तहां वणिज कराई, विण हट्टाई, माणिक लाधो संभाई। को राजाई, भेदों भाई, वाणिक पुत्रा विणजंता"। (गो० छन्द १६)

पहराइत घर मुस्यौ साह कौ रक्षा करनै लागौ चोर।
कोतवाल काठौ करि बांध्यौ छूटै नहीं सांझ अरु भोर॥
राजा गांव छोडि करि भागौ हूवौ सकल जगत मैं सोर
परजा सुखी भई नगरी मैं सुन्दर कोई जुलम न जोर॥ २४॥

ह० लि० १—२ टीका:—पहराइत जो आपका कार्य में सदा जागता तत्पर रहै आलसै नहीं ऐसा जो काम क्रोध इन्द्रिय इत्यादि जिना नैं साह नाम जीव ताको घर गुस्यां सर्व शुभ गुणां को नाश करि दियो। अर चोर जो परमेश्वरजी को नाम—"नारायणो नाम नरो नराणां प्रसिद्ध चौरः कथितः पृथिव्याम्" इति भारते—सो रक्षा करणै लागो शुभगुणां की।—कोतुवाल नाम अज्ञान काल में सर्व काम को कर्ता मन ताकौं काठो करि पकड्यो निश्चल कर्यो, सो चोर (परमेश्वर) कोतवाल (मन) को निश्चल रहै ऐसो कियो विकारां में वाकी प्रवृत्ति होय सकै नहीं।—राव राजा नाम रजोगुण हो सो गांव नाम हृदो वा काया ताकौं छोड़ि करि भाग्यो नाम निवृत्ति हुवो। इतनी वात हुई जब बनी तब वा पुरुष को संपूर्ण संसार में सोर हुवो नाम ता पुरुष को सर्व ससार में जस प्रवर्त्त हुवो।—प्रजा नाम दैवी-संपदा का गुण, क्षमा दयाशील संतोष, ये सर्व ही वा हृदा वा कायरूपी नगरी में सदा सुख सों बसै हैं, जुल्म न जोर, किसी प्रकार की उपाधि नहीं सदाकाल शांतवृत्ति आनन्द रहै हैं॥ २४॥

पी० टीका—जीवरूप शाह कहिये साहूकार है। ता शाहके अंतःकरणरूप परमें पहराइत (पहरा करने वाला) जो प्रवृत्ति का परिवार काम-क्रोधादिक सिपाही हैं। वे आत्मा-धन की चोरी करने के वास्तै घुसे। काहेतें जौलौं अज्ञानजन्य कामक्रोधादिक अंतःकरण में रहें हैं तौलौं वही चौकी करनेवाले सिपाई आत्मवस्तु और किसी कूं लेने देवैं नहीं हैं किन्तु आप तिस अंतःकरणरूप गृह में पैठिके वे आत्मधन अपने स्वाधीन करि ताकूं आवरणरूप पेटी में छिपाइ देवैं हैं। औ शील-क्षमादिक जो निवृत्ति का परिवार है सोई मानों चोर है। काहेतें, वे आत्मवस्तु कूं उन चौकीवालों सें ले करिके अपने स्वाधीन रखने कूं चाहते हैं।। सो आत्मधनयुक्त

अंतःकरणरूप गृहकी रक्षा करने लागे, अर्थात् पूर्वोक्त दुर्गुण कूं अंतःकरण तैं निकासि के आत्मा कूं अज्ञानकृत आवारणतैं रहित करने लागे।—इस बातकी जीवरूप साहूकार कूं खबर होते ही, सो अहंकार-रूप कोटवाल के पास फिरियाद करने कूं गयो औ कहने लग्यो कि मेरे धन की रक्षा करनेवाले जो काम-क्रोधादिक हैं वे सब मिलिके मेरे घर में चोरी करने लगे, औ जो शीलक्षमादिक इस धन की चोरी करनेवाले हैं सो रक्षा करने लगे। तिन दोनों पक्षन में अति कलह हुवा है सो कैसे निवृत्त होवैगा ? औ तिस कलह की शांति के वास्तै मेरे कूं क्या कर्त्तव्य है ? सो कृपा करिके कहिये। तब वो कोटवाल बोला कि—शील-क्षमादिक चोरन कूं निकासि देहु औ कामक्रोधादिक पहराइतन की रक्षा करहु। काहेतें, शील-क्षमादिकन के स्वाधीन जो आतमधन होवैगा तो इस धन करि नानाप्रकार के विषयसुख तेरे से भोग्या नहीं जावैगा, औ यह धन कामक्रोधादिकन के स्वाधीन रहैगा तौ वे सब विषयसुख भोगे जावेंगे। यह बात सुनिके वो जीवरूप साहूकार किसी साधुरूप वकील कूं पूछने लग्यो कि अब मेरे कूं क्या कर्त्तव्य है ? तब वे साधु निष्पक्षपात बुद्धि करिके कहने लगे कि कामक्रोधादिकन कूं अपने घरतें निकासि देहु औ शीलक्षमादिकन का अंगीकार करहु, क्यूंकि वे तेरे शत्रु हैं औ ये तेरे मित्र हैं। वे तेरी पूंजी का नाश करेंगे औ ये तेरी पूंजी की रक्षा करेंगे। औ अहंकाररूप कोटवाल है सो कामक्रोधादिकन का पक्ष करै है काहेतें कि तिनकी उत्पत्ति अहंकार तें हुई है। तातें पक्षपात करनेवाला जो कोटवाल है ताकूं ही शिक्षा करनी चाहिये। यह बात सुनते ही साहूकार क्रोधायमान होयके तिस मिथ्या अहंकार-रुप कोटवाल कूं सत्यतारूप काठौ करि बांध्यौ, कहिये काष्ट के बंधन में डाल दियो, औ ताके ऊपर सतसंगरूप पहरा-करनेवाला ऐसा मजबूत जमादार रक्खा कि वो तहां से सांझ अरु भोर (संध्या औ प्रातःकाल) आदि किसी समय में छूटै नहीं।—यह बात सुनिके देहादि संघात के अभिमान-रूप गाम (नगरी) कूं छोडिके मूलाज्ञानरूप राजा भाग्यो ताको सकल जगत में सोर हुवो। काहेतें कि वो अज्ञान फिर कितहूं देखने में आयो नहीं।—ऐसे उक्त प्रकार करि चोरन की न्यांई धन चोरने कूं पहराइत घरमें घुसे औ धनकी चोरी करनेवाले रक्षा करने लगे। औ गाम का कोटवाल साहूकार के हाथ तें बंधन कूं

राजा फिरै विपति कौ मार्‌यौ घर घर टुकरा मांगै भीप।
पाइ पयादौ निशि दिन डोलै घोरा चालि सकै नहिं वीप॥
आक अरंड की लकरी चूंपै छाडै वहुत रस भरे ईप।
सुंदर कोउ जगत मैं विरलौ या मूरप कौं लावै सीप॥ २५॥

पाया। सो वात सुनिके तहां का राजा गांव छोड़िके भाग गया। तव तिस नगरी मैं सव श्रेष्ठगुणरूप परजा सुखी भई। सुन्दरदासजी कहैं हैं कि न कोई जुल्म हुवा। न किसी का किसीपर जोर चल्या॥ २४॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुन्दरदासजी की साखी—"पहराइत घरकौं मुसै साह न जानै कोइ। चोर आइ रक्षा करै सुन्दर तव सुख होइ"। ३३।—"कोतवाल कौं पकरि के काठौ राष्यौ जूरि। राजा भाग्यो गांव तजि सुन्दर सुख भरपूरि"। ३४।—हरिदासजी निरंजनी—'साह चोर के मन्दिर पैठा। साह ग्रहै तजि भागा।"। ५। (योगमूल) कवीरजी का पद—"को अस करै नगर कोतवलिया। मास फैलाय गीध रखवलिया। मूस भो नाव मंजर कंडहरिया। सोवै दादुर सर्प पहरिया"। (वीजक पद ९५ से)।—गोरखनाथजी का पद—"ढूकिलै कूकर भूंसिलै चोर, काढै धणी पुकारै ढोर"। (गो० पद० ३९ से)

ह० लि० १-२ टीका:—राजा नाम जीव वा मन, सो विपत्ति नाम अनेक प्रकार की तृष्णारूप आपदा ताको मार्‌यो फिरै नाम चंचल हुवो रहै, घर-घर नवद्वार तिनां का विषय सुख तिनां को टुकरो किंचित्-मात्र जो अंश ताकी प्राप्ति होवै सोई टुकरो ताकौं मांगतो डोलै, फिरै नवद्वारा में जहां-तहां फिरै।—पाय पयादो नाम आपकी आपकौं संभाल नहीं रहै ऐसी तरह भोगां में अति आतुर चंचल होयके फिरै है। अरु वाको घोरा नाम शरीर जो शक्ति-हीन होय गयो तासौं एक पगमात्र चल्यो जाय नहीं तो पण मन तो अति चंचल ही रहै।—आक अरंड तुल्या··· लोक-परलोक में दुःखदायीरूप जो विषय विकार इन्द्रियां का भोग क्रोध-मोहादिक तिनही को अंगीकार करै यों या मन को स्वभाव है। अरु जो महा अमृतरूप या लोक परलोक में सुखदाई मिष्टरस-भर्‌या ईप तुल्य जो भगवत भजन ध्यानादि तिन कौं न

देखै ऐसो मलीन या मन को स्वभाव है।—ऐसो मूरख जो यह मन महा अज्ञमन को सीख देकरि शुद्ध करै ऐसा ऐसा पुरुष जगत में विरला है, ऐसे मनकों जीतनों अति कठिन है, जब भगवत् कृपा होय तब मन शुद्ध होय, तामें भगवत् कृपा के अर्थ भजन ध्यान अखंड करनों, यही उपाय है अवर नहीं ॥ २५ ॥

पीताम्बरी टीकाः– चेतन के प्रतिबिंब-युक्त जो मन है ताकों यहां राजा कहै हैं। सो आशा तृष्णा अभिलाषा औ कामनादि भेद करि भिन्न २ इच्छारूप विपत्ति (दुःख) को मार्यो चौदहभुवनरूप भिन्न २ ग्रहन में, अथवा दश-इन्द्रिय-रूप प्रति-ग्रह में, अथवा राज्यादि पदवी-रूप घर-घर में फिरै कहिये भटकै है। औ परिच्छिन्न विषयभोग-रूप टुकरा की भीष मांगै है।—शुभ औ अशुभ जो मनोभाव हैं सोई मानों दो पाँव हैं तिनके अनुसार नानाप्रकार की वृत्तिरूप गति करि निशि (स्वप्न में) दिन (जाग्रत में) पाइ पियादो डोलै है। अर्थात् स्थूल शरीररूप घोडा की सहायता नहीं मिलै है। काहेतैं कि मन में जो नानाप्रकार के संकल्पविकल्प-रूप भाव उत्पन्न होवै हैं। सो यद्यपि पूर्व-कर्मानुसार होवैं हैं तथापि सो सर्व फलके देनेवाले नहीं होवै हैं। मनोरथ मात्र होवैं हैं। जैसे किसी भिक्षुक के मन में ऐसा भाव होवै है कि 'नगरी का अधर्मी राजा मर जावै औ ताका राज्य मेरे कूं प्राप्त होवै तो मैं धर्मन्याय करूं'। यामें राजा के मरने की जो इच्छा है सो अशुभ है औ धर्मन्याय की इच्छा है सो शुभ है, परन्तु सो दोन्यूं होने कूं अशक्य हैं। जो क्रिया का होना है सो फल-रूप है। सुखदुःख के भोग कूं कर्म का फल कहैं हैं। सो कर्मफलरूप भोग यद्यपि शरीर करि होवैं है तथापि कर्मफल देनेवाले मनोरथन तें सो भोग होवै है। फल-रहित मनोरथन सें भोगरूप क्रिया होवै नहीं। औ मन में तो जाग्रत औ स्वप्न इन दोनूं अवस्था में अंतराय-रहित अनंत संकल्प-विकल्प होवै है। सो सब शरीर की क्रिया के हेतु नहीं हैं। ऐसे ज्ञान विना भटकत ही फिरता है। औ उक्त स्थूल शरीररूपी जो घोरा है सो निष्फल मनोरथन के बल करिक्रियारूप वीप (चाल) चालि नहीं सकै है। अर्थात् मन की न्यांई शरीर की गति नहीं होवै है।—पूर्वोक्त नानामनोरथ-जन्य जो वासना है सो…फलदायक नहीं होने तें रस-रहित हैं तातें ही तिनकूं आक औ अरंड की लकरियां कही हैं। सो चूसै है कहिये मनोराज्य करै है। औ ईश्वर की उपास-

पानी जरै पुकारै निश दिन ताकौं अग्नि बुझावै आइ।
हूं शीतल तूं तप्त भयौ क्यौं वारंवार कहै समुझाइ।
मेरी लपट तोहि जो लागै तौ तूं भी शीतल ह्वै जाइ।
कबहूं जरनि फेरि नहिं उपजै सुंदर सुख मैं रहै समाइ ॥ २६ ॥

नादि ज्ञान के साधनरूप बहुत रसभरे ईप (गंडा) कूं छांडे है कहिये त्यागै है।—सुंदरदासजी कहे हैं कि इस जगत में ऐसो कोऊ विरलो सत्पुरुष है जो या अज्ञानीरूप गूरप कों सीप (शिक्षा) लावै। अर्थ यह है:—पूर्वोक्त अस्थिर मनवाले कूं बोध होना कठिन है, काहेतैं कि चंचलमनवाले कूं उपासनादिक्रम तैं साधनद्वारा ज्ञान होने का संभव है। ताकूं साधन विना ज्ञान होवै नहीं। ऐसे जान के जो सत्पुरुष प्रथम साधन करावै औ पीछे बोध करै। ऐसा अद्भुत कृत्य ब्रह्मनिष्ठ औ श्रोत्रिय सें होवै है औरसे होवै नहीं, सो मिलना कठिन है। तातें ऐसे अज्ञानी कूं बोध करनेवाला विरला कह्या है ॥ २५ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुं० दा० जीकी साखी—सुंदर राजा विपति सौं घर-घर मांगै भीप। पाय पयादौ उठि चलै घोरा भरै न वीप। ३६।—इस पर जो ऊपर दोनों टीकाएं दी हुई हैं उनमें इसका अभिप्राय अच्छे प्रकार खोलकर दिया हुआ है। रजोगुण में जीव लिप्त रहै तब ही मोह-माया, विषयसंग, तृष्णा आदिक का बल अधिक रहता है। "रजोरागात्मकं विद्धि तृष्णासंग समुद्भवम्" (इत्यादि) (गीता में)।—लौकिक में भी 'राजेश्वरी सा नरकेश्वरी' ऐसी कहावत है। (नोट-छंद के तीसरे पद में 'बहुतर-सभरे' ऐसा पद विच्छेद से उच्चारण यति सहित होता है।) ॥

ह० लि० १—२ टीका:—पानी नाम प्रेम सो अंतःकरण में अतिगति प्रकासैं उदय होय प्रेम को जो अतिगति होणों वाही को नाम विरह वा विरह की तरली में रात-दिन अखंड पुकारै नाम आतुर होयकरि, तब वा प्रेमरूपी पाणी के वेग कों अग्नि बुझावै जो वा प्रेम तरली में ज्ञानरूपी अग्नि प्रगट होय नाम स्वरूप प्राप्त करिकै वा विरह अग्नि को निवारै।—वो ज्ञान प्रेम सों कहै हूंतो शीतल अरु तू तपत क्यूं भयो,

प्रेम तो सदा सुखरूप है तथापि लगनि में तपत रहे है तातैं बारुंवार ज्ञान प्रेम कों समझावै सो कहै है।—मेरी लपट तोहि लागै नाम जो ज्ञान उदये होय तो प्रेम भी शांतिरूप होय जाय, आदि में प्रेम अरु प्रेम तैं ज्ञान, ज्ञान के उदय से सर्व शांत शीतल होय जाय।—फेर प्राप्ति के अनंतर जन्म-मरण संसार-सम्बन्धी कोई प्रकार की जरनि नाम ताप उपजै नहीं सदा ब्रह्मानन्द सुख में समाय रहै ॥ २६ ॥

पीताम्बरी टीका:—अंतःकरण जो है सो स्वभाव तें ही स्वच्छ है, यातें ताकूं यहां पानी कह्या है। सो अंतःकरण संसार के त्रिविध ताप तें जरै है, तातें निशदिन कहिये निरंतर "मैं दुःखी, कंगाल, संसारीजीव हूं" ऐसे पुकारै है। अर्थात् अंतर में निश्चय करि जहां तहां कथन करै है। ताकूं कहिये तपायमान अंतःकरण जल कूं ज्ञानरूप अग्नि बुझावै आइ, कहिये तिन त्रिविध तापन कूं बाध करिके शांत करै है।—औ सो ज्ञानरूप अग्नि पूर्वोक्त अंतःकरणरूप जल कूं वारंवार समुझाइ के कहै है कि मेरी उत्पत्ति तुझतें हुई है, सो मैं तो शीतल शांत हूं, तूं क्यों तप्त भयो है ?। भाव यह है :—प्रथम जब मंद ज्ञान होवै है तब विचार उत्पन्न होवै है, सो ज्ञान तिस विचार करि बहिर्मुखन कूं बोध करै है।—यह जो संसार है सो मिथ्या है, औ तामें जो तीन ताप हैं सो भी मिथ्या हैं। औ सर्वत्र परिपूर्ण जो ब्रह्म है सो सत्य है, सोई मेरा रूप होने तें मेरे विषे संसार औ ताके तीनताप जेवरी में सर्प, शक्ति में रजत औ मरुस्थल में जल की न्यांई मिथ्या प्रतीत होवै हैं। ऐसी संशय विपरीत-भावना-रहित मेरी दृढ़ता-रूप लपट, श्रवण-मनन निदिध्यासनादि करि जौ तोहि लागै तौ तूं भी (अंतःकरण भी) पूर्वोक्त त्रिविधतापजन्य विक्षेप को नाश करि शीतल (शांत) व्है जाइ।—सुंदरदासजी कहै हैं कि एक बेर जो ज्ञानाऽग्नि करि अन्तःकरण-रूप जलकी तपत निवृत्त भई कि फेरि सो जरनी (तपत) कबहूं नहिं उपजै, अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे अपने निजस्वरूप आत्मा सें विमुख होवै नहीं। काहेतें कि अन्तःकरण ब्रह्म सुख में समाइ रहै है ॥ २६ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—यहां विपर्यय प्रत्यक्ष यह है कि पानी जो स्वभाव से शीतल होता है जलता (तप्त) कहा गया और अग्नि को शीतल कहा गया जो स्वभाव से तप्त और जलानेवाला है। जलानेवाली वस्तु कैसे शीतल करै ? और जल

पसम पर्यो जोरू कै पीछै कह्यौ न मानैं भौंडी रांड।
जित तित फिरैं भटकती यौंही तैं तौ किये जगत मैं भांड॥
तौ हू भूप न भागी तेरी तूं गिलि वैठी सारी मांड।
सुंदर कहै सीप सुनि मेरी अब तूं घर घर फिरबौ छांड॥ २७॥

तौ अग्नि को बुझाकर तप्त मिटा देता है सो उलटा अग्निद्वारा कैसे ताप निवारित किया जाय ?। परन्तु शास्त्रों में ज्ञान को अग्नि कहा है क्योंकि ज्ञान के प्रताप से अज्ञान नाश होता है सो ही मानों उसका जलना है और अज्ञान को अन्धकार और ज्ञान को प्रकाश भी शास्त्रों में उसही कारण से कहा है कि प्रकाश (तेज) अग्नि-सूर्यादि से निकलता है। यहां प्रमाण यह है। "ज्ञानाग्निदग्ध कर्माणं" (गीता । ४ । १९) "तमस्त्वज्ञानजं विद्धि" (गीता । १४ । ८)—ज्ञान की अग्नि से जिसके (पुन्य और पाप) कर्म दग्ध (नाश) हो गये। तम वा तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है और यह ज्ञान का विरोधी है।—सुं० दा० जोकी साखी—पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार। पावक आयौ पूछने सुन्दर वाकी सार। ३७।—जौ तूं मेरी शीपलै तौ तूं शीतल होइ। फिरि मोही सौं मिलि रहै सुंदर दुःख न कोइ। ३८।—कबीरजी का पद—"पानी मांहिं अगनि को अंकुर, मिलिन बुझावत पानी"। (बीजक (पद) शब्द ५८ में)।—गोरषनाथजी का पद—"अनिल कहै मैं प्यासा मूवा, अनाज कहै मैं भूपा। पावक कहै मैं जाड़ै मूवा, कपड़ा कहै मैं नागा"। (गो० पद ३६।)—

ह० लि० १—२ टीका—खसम जो मन सो जोरू नाम मनसा ताके पीछे पर्यो नाम सीख देणैं लागो खिजिकैं रीस करिकैं, भौंडी नाम बुरी विषय विकारां करि मलीन।—जहां तहां यौंही नाम वृथा ही विषय विकार रूप संकल्पां में भाजती फिरै, तैं तो मनैं भी जगत भांड कियो, याको यह अर्थ है जो सूक्ष्म वासनारूप जो संकल्प हैं सो मन में उदय होयकैं प्रगटैं सो मनही को वाको दूषण आवै।—सारी मांड नाम सर्व पदार्थां को तृष्णाद्वारि ते गिलि वैठी नाम खाय वैठी, तेरी ओरूं भी भूख भागी नहीं नाम तृप्ति हुई नहीं अब तो तृष्णा को दूरि कर।—तासौं मन कहै

है हे मनसा अब तो तृष्णा कों छांड़िकरि निश्चल होहु अरु घरिघरि फिरणों छांड़ि दे। घरि-घरि नाम स्वर्ग मृत्यु पाताल लोकां में अथवा चौरासी जोनि जन्मां में अथवा संसारी जनां का घर-घर में अथवा नवद्वारों का विषयविकारां में, इन स्थानों में, सर्वथा फिरिनों छांड़ि दे, ज्यूं सर्व सुख कों प्राप्त होय ॥ २७ ॥

पीताम्वरी टीकाः—चिदाभास—सहित अन्तःकरण-रूप जो जीव है ताकूं ही यहां पसम कह्या है। सो बुद्धिरूप जोरू के पीछे पर्यो। ता जोरू ने शुभाशुभ कर्मन के वलकरि अनंत चौरासीलक्ष योनि में भटकायो। औ तिन योनिजन्य अनंतयातना (पीड़ा) सहन कराई। ऐसे अगणित दुःख सहन करते हुवे कदाचित् काकतालीय न्यायवत् शुभाशुभ कर्मन करि मनुष्य शरीर की प्राप्ति हुई, तामें किसी उत्तम संस्कार के लिये सत्संगादिकन की प्राप्ति भई। तिस क्षण में बुद्धि की अवस्था यत्किंचित् फिरी। तव ताकूं सो जीव कहने लगा कि तैंने मेरी वहुत दुर्दशा करी, अब मेरे तें ऐसा दुःख सहन नहीं होवै है। तातें अब तूं ज्ञान में प्रवृत्त होय के अन्तकर्मन की वासनां का त्याग करहु तातें मेरा जन्ममरण निवृत्त होवै। इत्यादिक वाक्यन करि विचारपूर्वक आर्त्तजन अपनी बुद्धि कूं वहुत कहि समुझावै है। परन्तु वासना के वसि भई भौंडी (भ्रष्ट) रांड (रंडा) कह्यौ नहीं मानै है। अर्थात् निरंतर सत्संग में प्रवृत्त होय के ज्ञानवान नहीं होवै है। काहेतें कि ज्ञान की प्रतिवंधक जो अशुभकर्म-जन्य वासना है सो तिस शरीर में ज्ञान की प्राप्ति का असंभव होने तें बुद्धि कूं सत्संगादिकन में प्रवृत्ति करावने नहीं देवै है।—औ जित-तित कहिये जिस किस विषय में यूंही भटकती फिरै है जैसे व्यभिचारिणी स्त्री कामातुर भई हुई स्वश विषय के अर्थ जहां तहां भटकती फिरै है औ ताका ही निरतर ध्यान लग्या रहै है। सो जौंलौं पति ताके आधीन होवै तौंलौं सो कृत्य निर्भयता तें होवै है। परन्तु जव पति कूं तिस वात की कछु खवरि होवै है तथापि वासना के वल तें सो व्यसन शीघ्र छूटै नहीं है। सो देखिके ताका पति वहुत युक्तियों करि समुझावै है। परन्तु सो जव समुझे नहीं तव कोपायमान होयके कहै कि रांड तें तौ मेरे कूं जगत में भांड (फजीहत) कियो है। तैसें जीवरूप पसम भी अपनी बुद्धिरूप जोरू कूं व्यभिचारिनी देखिके क्रोध्यायमान होयके कहै है कि इस जगत में तैंनें मेरे कूं

पंथी मांहि पंथ चलि आयौ सो वह पंथ लख्यौ नहिं जाइ।
वाही पंथ चल्यौ उठि पंथी निर्भय देश पहूंच्यौ आइ॥
तहां दुकाळ परै नहिं कबहूं सदा सुभिक्ष रह्यौ ठहराइ।
सुन्दर दुखी न कोऊ दीसै अक्षय सुख मैं रहै समाइ॥ २८॥

ऐसा फजीहत कर्‌या है कि जानैं मेरी परिपूर्णतारूप प्रतिष्ठा-अद्वैतरूप नाम-औ अखंडानंदरूप धन आदिकन का अभाव की न्यांई होई गया है।—ऐसे मेरी प्रभुतारूपी सारी मांड (बडाई) तूं गिल बैठी। तौहू तेरी तृष्णारूप भूख न भागी (नाश नहीं भई)। अर्थात् ब्रह्म तैं जीव किया तौभी तेरी तृप्ति भई नहीं है। अब क्या पत्थर की न्यांई जड़ करने कूं चाहती है? ऐसे अति तीक्ष्ण वचन कहे है।—सुन्दरदासजी कहैं हैं कि हे बुद्धि! अब मेरी सीख (शिक्षा) सुनि के, कहिये इस मनुष्य जन्म विषे ज्ञान कूं पायके अब तूं अनेक विषयरूप वा अनेक योनिरूप घर-घर में फिरवो छांड। अर्थात् ज्ञान हुवे पीछे विषयवासना के अभाव हुवे जन्म मरण की निवृत्ति होवै है। ऐसें कह्या॥ २७॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुन्दरदासजी ने इसपर साखी नहीं कही है। वेदांत-रहस्य और अध्यात्म-परक तात्पर्य उक्त टीकाओं में स्पष्ट किया सो बहुत अन्शों में यथार्थ प्रदर्शित हुआ है। योग-साधन के रहस्य में इसका अर्थ इस प्रकार होता है कि—परम जो नियामक स्वामी आत्मा जोरू (स्त्री भाववाली) मनोवृत्ति पर एकाग्रता करने के निमित्त (उसपर) ऐसा अपना अधिकार जमाता है। योग का परम ध्येय चित्तवृत्तियों को निरोध (रोक) कर एकाग्र अन्तर्मुखी कर देना है जिससे निरंतर, गुरु के उपदेशानुसार, साधन द्वारा, अन्तरात्मा का साक्षात्कार अर्थात् अपरोक्षानुभव हो जाय।—गोरषनाथजी का पद—"गगरी कांपै पांणीहारी, गवरी कांपै गौरा। घरको गुसांई कौतिग चाहै, काहे न बांधै जौंरा (गोरष पद ३६ में से) (इस में अवांतर भाषा विपर्य्यय से वही आत्मा का प्रभुत्व और जौंरा जो जोरावर मनोवृत्तिरूपी स्त्री को आधीन करने की बात कही है।) तथा—"तळ गगरी ऊपर पणिहारि, ऊजड़ खेड़ा नगरी मंझारि-" (गो० पद २९ में से)।—

५० लि० १—२ टीकाः—पंथी संत मुमुक्षु तानें पंथ नाम परमात्मा की प्राप्ति

की कर्त्ता भक्ति ज्ञान सो आपका सुत वा साधना करि वा मुमुक्षु संत कौं प्राप्त हुवो। सो जो वो ज्ञान है सो अति सूक्ष्म स्वरूप है ताको लखणों समझणों अति कठिन है।— सो गुरु संत शास्त्र उपदेश करि वा ज्ञान मार्ग कों दृढ निश्चै धारिकै वो मुमुक्षु संतरूपी पंथी वाही ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग में चल्या, या प्रकार परमात्मा कौं प्राप्त हुवा। ता ब्रह्मदेश में दुकाल परै नहीं नाम किसी बात की ऊँणता रहै नहीं तहां ब्रह्मदेश में सुभिक्ष नाम सदा ही सर्व प्रकार की पूर्णता रहे। "रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्त्तते"। इति। वा ब्रह्मदेश कों जो प्राप्त हुआ तिनां के किसी के भी किसी प्रकार को दुःख नहीं रहै है, वे सदा ही अक्षय नाम अविनाशी सुख में लीन रहै हैं॥ २८॥

पीताम्बरी टीका मोक्षरूप प्रदेश के ज्ञानरूप मार्ग में गमन करनेवाला जो मुमुक्षु जीव है ताकूं इहां पंथी कहे हैं। ता मांहिं ज्ञानरूप पंथ (मार्ग) चलि आयो। अर्थात् गुरु शास्त्रादि अवांतर साधन-द्वारा अंतःकरण की चरमावृत्तिरूप करि प्रगट भयो। सो वह पंथ लख्यो नहिं जाइ। इहां यह रहस्य है:—जैसे विजली की गति, मन की गति औ पक्षी की गति विलक्षण पुरुष करि जानी जावै है। यातें, लक्ष्य है। जल में जो छोटी मच्छरी होवै है ताकी यद्यपि और कोई जानि शकै नहीं तातें अलक्ष्य कहिये है। तथापि मच्छरी रूपधारी योगी करि जानी जावै है यातें लक्ष्य है। योगी की गति यद्यपि औरन से जानी जावै नहीं तथापि सो अन्य योगी करि जानी जावै है। तातैं सो दुर्लक्ष्य है। तैसे ज्ञानी की गति विचक्षण नर करि वा योगी करि, वा अन्य ज्ञानी करि साक्षात् जानी जावै नहीं। यातैं यह अलक्ष्य है। तातैं ज्ञानी की गति (पंथ) रूप ज्ञान लखने में आवै नहीं।—उक्त मुमुक्षु जीवरूप जो पंथी है सो उठि कहिये अज्ञानरूप पूर्वावस्थान तें उठिके वाही ज्ञानरूप पंथ में चल्यो। अर्थात ज्ञानी होय विचरने लग्यो। ऐसे विचरते २ जब शेष कर्मन का क्षय होयगया तब विदेहमोक्षरूप जो निर्भय देश है तहां आइ पहूंच्यो, अर्थात् ब्रह्म तें अभिन्न भयो।—तहां कबहूं जन्म-मरणादि दुःखरूप दुकाल परै नहिं। काहेतें कि सदा ही परमानंदरूप सुभिक्ष (सुकाल) ठहराइ रह्यो है।—सुंदरदासजी कहैं हैं कि तिस विदेह-मुक्तिरूप स्थिति में कोऊ दूखी न दीसै। काहेतें कि जो जो पुरुष ज्ञान-

एक अहेरी वन मैं आयौ पेलन लागौ भली सिकार।
कर मैं धनुप कमरि मैं तरकस सावज घेरे वारंवार॥
मार्यौ सिंघ व्याघ्र पुनि मार्यौ मारी वहुरि मृगनि की डार।
ऐसैं सकल मारि घर ल्यायौ सुन्दर राजहिं कियौ जुहार॥ २६॥

रूप मार्ग करि विदेह मुक्त भये हैं वे सर्व उपाधि रहित ब्रह्मरूप होयके स्थित हैं। सो ब्रह्मस्वरूप अक्षयसुखरूप होने तें तहां दुःख का लेश भी नहीं है, ता में समाइ रहे हैं॥ २८॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—सुं० दा० जीकी साखी—"पंथी मांहैं पंथ चलि आयौ आकसमात। सुंदर वाही पंथ मंहि उठि चाल्यौ परभात। ३९"।—"चलत-चलत पहुंच्यौ तहां जहां आपनौं भौंन। सुन्दर निश्चल व्है रह्यौ फिरि आवै कहि कौंन। ४०"।—गोरपनाथजी—"पंथ विन पुलिवा अग्नि विन चलिवा, अनिल त्रिषा विन छटिया। ससंवेद श्री गोरपनाथ कथिया, वूझिले पंडित पढ़िया। (गो० शब्दी २२)। तथा-"चलै वटाऊ वासी का वाट, सोवै डोकरिया घौरै षाट"। गो० पद ३९ में से)।-

ह० लि० १—२ टीकाः—अहेरी नाम संत सो संसाररूपी वन में आयो प्रगट हुवो सो वा वन में भली जो श्रेष्ठ शिकार खेलन लागो सोई कहे हैं। कर नाम अंतःकरण तामें धनुप नाम ध्यान कमर नाम आपकी कठिनता संजमता अति सूरवीरपणों तामें तरकस नाम घणी तर्क-विवेक सों धारण कियो जो आपको निश्चो दृढ़भाव तामें नाम-रटणा आदि वांण परिपूर्ण हैं तिना करि सावज नाम शिकार खेलण जोग्य जो पशु तिनरूपी सर्व विकार तिनां को घेरन लाग्यो अर्थात् वाह्यवृत्ति मेटि सवको वश्य करनें लाग्यो।—तिन में मुख्य सावज सिंघ व्याघ्र नाम क्रोध-काम आदिक मार्या नाम जीति वस कीया, और वहु मृगन की डार नाम सर्व इन्द्रियां का समूह सो मार्यो नाम इन्द्रियां की वृत्ति जीती।—ऐसे सर्व कों मारिके नाम स्ववसि करिके घर नाम हृदो तामें ल्यायो नाम सर्व वृत्ति अंतर्निष्ट करी। या प्रकार की शिकार खेलि सर्व कार्य सिद्ध करि आया तव राजारामजी तिनको जुहार कियो नाम जाय हाजिर हुवा अर्थात् सर्व विकार जीत्या यातें परमात्मा की प्राप्ति हुई॥ २९॥

पीताम्बरी टीका:—एक उत्तम संस्कार-युक्त अधिकारी पुरुष अहेरी (शिकारी) संसाररूप वन में आयो। कहिये कर्मवश तें नरदेह कूं प्राप्त भयो। सो बंधनिवृत्तिरूप भली (अच्छी) शिकार खेलन लाग्यो।—ता शिकारी ने अंतःकरण की वृत्तिरूप कर (हाथ) में गुरुमुख द्वारा श्रवण किये हुवे महावाक्य के अर्थरूप धनुष धारण करिके। औ हृदयरूप कमरि में अनेक युक्ति औ विचाररूप वाणयुक्त अन्तःकरणरूप तरकस (भाथा) बाँधिके। बारंबार श्रवणादि सहकारी-द्वारा। सावज (मारनेलायक जानवर) घेरे कहिये रोके।—ज्ञानरूप युद्धकरि मूला-अज्ञानरूप सिंह मार्यो। पुनि काम-क्रोधादि बहुरि मृगन की डार (पंक्ति) मारी कहिये बाधित कीनी।—सुंदर-दासजी कहै हैं कि ऐसे सकल प्रपंचरूप शिकार कूं मारि (बाध करिके) घर लायो। कहिये पूर्व अज्ञानदशा में अधिष्ठान ब्रह्म तें भिन्न प्रपंच कूं मानतो थो। सो अब बाधि-तानुवृत्ति करि अधिष्ठान में कल्पित अनुभव करने लाग्यो। औ ब्रह्मरूप राजहि (राजा कूं) जुहार कियो। कहिये अपनो आप करि जान्यो। तातें मुक्तिरूप मौज मिली ॥ २९ ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—सुन्दरदासजी की साखी—"वन में एक अहेरिये दीन्ही अग्नि लगाइ। सुंदर उलटे धनुष सर सावज मारे आइ।४१"।—"मार्यौ सिंघ महाबली मार्यौ व्याघ्र कराल। सुंदर सबही घेरि करि मारी मृग की डाल। ४२"।—दादूजी की साखी १२०—"दादू कर बिन सर बिन कमान बिन मारै खैंचि कसीस। लागी चोट सरीर मैं नष सिष सालै सीस"।—कबीरजी का शब्द "जिया मत मार मुआ मत लइयो। मांस बिना मत अइयो रे॥ परली पार इक बेल का बिरवा, वाके पात नहीं है रे। होत पात चुगजात मिरगवा, मृग के सीस नहीं है रे॥ धनुष बान ले चढ़ा पारधी, धनुआके परच नहीं है रे। सरसर बांन तकातक मारै, मिरगा के घाव नहीं है रे॥ उर बिन खुर बिन चरन चोंच बिन, उड़न पंख नहिं जाके रे। जो कोई हंसा मार लियावै, रक्त मांस नहिं ताके रे॥ कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह पद अतिहि दुहेला रे। जो इस पद को अर्थ बतावै, सोई गुरु हम चेला रे"॥ (शब्दावली भाग २। १५।)।—गोरषनाथजी—"एक लष सींगनि दुई लष बांन, बेध्या मीन गगन अस्थांन। बेध्या मीन अग्नि के साथ। सत-सत भाषत (श्री) गोरषनाथ"। (गो० शब्दी। १७४।)।—

शुक के वचन अमृत मय ऐसैं कोकिल धार रहै मन मांहिं।
सारो सुनै भागवत कबहों सारस तोऊ पावै नांहि॥
हंस चुगै मुक्ताफल अर्थहिं सुन्दर मांनसरोवर न्हांहि।
काक कवीश्वर विषई जेते ते सब दौरि करंकहिं जांहि॥ ३० ॥

ह० लि० १-२ टीकाः—या में विपर्यय अलंकार नहीं है या में हीरावेदि अलंकार है जो उनही अक्षरां में अर्थ भी सिद्ध होय अरु किसी का नाम भी सिद्ध होता जाय। इहां शुक जो है सो सूवा को भी कहैं और अर्थ इह जो शुक नाम शुकदेवजी ताका वचन भागवतरूपी वड़ा श्रेष्ठ अमृतरूपी है सो वै सिद्धांत वचनां को कलि नाम संसार में कौन है ऐसा जो मन में धारन करै अर्थात् धारण करना अति कठिन है अरु यामें कोकिल नाम पक्षी का भी सिद्ध होवै है।—सारी नाम संपूर्ण भागवत सुनैं इह भी अर्थ है अरु सारो पक्षी (मैना) को भी नाम है। सारस नाम संपूर्ण सिद्धांत पावणों कठिन है अरु सारस पक्षी को भी नाम सिद्ध होवै है।—हंस नाम हंसरूपी संत अरु हंस पक्षी को भी नाम है। अर्थ की प्राप्ति को जो सुख सोई मानसरोवर तामें आनंद की प्राप्ति करि मगन रहै है।—काकरूपी जो रस ग्रंथन का कवि अरु काक पक्षी को भी नाम है॥

पीताम्बरी टीकाः—यह विपर्यय आदि जो मेरी काव्य है ताका तात्पर्य यद्यपि (विज्ञान) वेदांत-सिद्धांत में है तातें वेदांतिन कूं तौ अति प्रिय लगैगो। तथापि और कवि (चतुर) यथार्थ अर्थ जानने में समर्थ नहीं होने ते यथा बुद्धि यामें प्रवृत्त होवेंगे। सो दिखावैं हैं:—(इहां से तीन सवैये में विपर्यय नहीं है॥)—कोई कवि तो शुक (पोपट) के न्यांई होवै है। जैसे शुक पक्षी जितना शब्द सीखै हैं उतना ही बोलै है। अधिक बोलि शकै नहीं। तैसे यह कवि पढ़े हुवे विषय का वर्णन करैं। अधिक युक्ति करि कहि शकै नहीं। परन्तु सो श्रेष्ठ है, काहेते श्रद्धायुक्त जितना सीखैं हैं उतना दृढ़ ग्रहण करिके सोई कथन करै है। तामें संशय औ विपर्यय कछु नहीं होवै। ऐसे ताके वचन भी अमृतमय लगैं हैं। इस कथन तें श्रद्धावान् पुरुष के स्वभाव का सूचन किया॥—कोई कवि तो कोकिल की न्यांई होवै है। जैसे कोकिल

पक्षी किसी अर्थवाला शब्द बोलै नहीं। औ किसी से सीखै भी नहीं। परन्तु ताका शब्द स्वाभाविक ही ऐसा लगै है कि मानौं सुनते ही रहिये। कदे तृप्ति होवै नहीं। तातैं यह कवि विनाही पढैंतैं स्वाभाविक ऐसा विषय कथन करै है कि सो किसीसे विरुद्ध होवै नहीं। यद्यपि युक्ति औ प्रमाणादि करि रहित होवै है। तथापि ईश्वरादिक विषय होने तैं ताका कोई द्वेष वा निषेध करै नहीं। तातैं सो भी प्रथम कवि की न्यांई श्रेष्ठ ही है। ऐसे मनमांहि धारि रहै। इस कथन तैं निष्पक्षपात-स्वभाववाले पुरुष का सूचन किया॥—कोई कवि तौ सारो (एक जात के पक्षी) की न्यांई होवै है। जैसे सारो पक्षी कछु बोलै नहीं है परन्तु श्रेष्ठ गायनादि नाद कूं सुनै है तिस नाद में मृगन की न्यांई तल्लीन होइ जावै है औ मधुरनाद सुनने के वास्तै ही विचरता रहै हैं। ताकूं ऐसा नाद कबहूक सुनने में आवै है। तिस नादजन्य रहस्य का विस्मरण कबहू होवै नहीं। तैसे यह कवि बहुत वक्ता तो होवै नहीं है परन्तु श्रेष्ठ भगवत् कथादिकन कूं सुनै है। तिस भगवत्कथा में तल्लीन होइ जावै है। औ सो मधुर कथा सुनने के वास्तै ही विचरता रहै है। ताकूं ऐसी भागवत् (भगवत् सम्बन्धी) कथा कबहूक सुनने में आवै है। तिस कथा के रहस्य कूं कबहू भूलै नहीं। इस कथन तें रहस्याभिलाषी भाविक पुरुष के स्वभाव का सूचन किया॥—कोई कवि सारस पक्षी की न्यांई होवै है। जैसे सारस पक्षी जो है सो और सब पक्षीन तें श्रेष्ठ औ चतुर है। याकी बानी अति मधुर होवै है। परन्तु तिस कथन की वासना अन्तर में रहै नहीं। तैसे यह कवि और सब कवीन तें श्रेष्ठ औ चतुर है। परन्तु तिन विषयन की अन्तर में वासना रहै नहीं। अर्थात् ज्ञानी होवै है सो तौ कछु शंका औ तर्कादिक उपजावै नांहि। इस कथन तें ज्ञानी के स्वभाव का सूचन किया॥—कोई कवि तो हंस की न्यांई होवै है। जैसे हंस पक्षी जो है सो भी सारस की न्यांई और सब पक्षीन तें श्रेष्ठ औ चतुर है। याकी बानी अति मधुर होवै है। स्मरण-शक्ति भी उत्तम होवै है। ताकी चंचू में और एक ऐसा गुन होवै है कि जल में मिल्या हुवा दूध जल तें भिन्न करिके पान करि लेवै है। औ निरंतर मान-सरोवर में वास करिके ता मांहि ते मुक्ता-फलन कूं चुगै है। तैसे यह कवि जो है सो भी उक्त (सारस्वत) कवि की न्यांई श्रेष्ठ औ चतुर है। याका बोलना अति नम्र होवै है। श्रवण किया विषय विस्मरण होवै

नहीं। ताकी बुद्धि में और एक ऐसा गुन होवै है कि सारासार विवेक करि सार वस्तु का ग्रहण करै औ असार का त्याग करै है। औ निरंतर सतसंग में वास करिके सत्-शास्त्र के सुंदर अर्थहि (कूं) धारण करै है। इस कथन ते मुमुक्षु पुरुष के स्वभाव का सूचन किया है॥—कोई कवि तो काक की न्यांई होवै है। जैसे काक पक्षी जो है सो और सब पक्षीन तें अधम होवै है। निरंतर बकता ही रहै है। वाका स्वर अति कटुक होवै है सो सुनि के क्रोध उत्पन्न होवै है। काहू कूं भी अच्छा लगै नहीं है। ऐसे जेते होवै सो सब दौरि करंकहि कहिये करंक नामके वृक्ष के ऊपर जांहि के स्थित होवै हैं। तैसे यह कवि जो है सो और सब कविन तै अधम होवै है। यद्यपि अनेक विषयन करि निरंतर बकता ही रहै है तथापि सो-सो शृंगार विषयन तें रहित होने तें विरस है। सो सुनिके उत्तम पुरुष कूं क्रोध उत्पन्न होवै है। कोई सत्पुरुष सराहे नहीं। सो यद्यपि बड़ा चपल औ चंचल वक्ता होने तैं विषयी पुरुषन कूं तो अति नीके लागै है औ विषयी पुरुष याकूं कवीश्वर कहै है। तथापि सो कवि नहीं है किंतु कुकवि है। इस कथन तें विषयी द्वेषी औ दोषदर्शी पुरुषन के स्वभाव का सूचन किया है॥—इस कथन का भाव यह है:—यह विपर्यय आदिक जो मेरी काव्य है सो वांचिके सुनिके वा पढिके अर्थ ग्रहण करनेवाला कोई कवि (चतुर) निकलैगा। सब कविन तें याका अर्थ नहीं होवैगा। जैसे जो शुक की न्यांई कवि है सो श्रद्धावान होने तें जितना गुरुमुखद्वारा पढ़ैगा तितना ही ग्रहण करि लेवैगा। कोकिला की न्यांई जो कवि है सो पक्षपात रहित होने तें न अपेक्षा करैगा न तो उपेक्षा करैगा। सारो की न्यांई जो कवि है सो तौ रहस्याभिलाषी होने तैं यह सुनते ही यामें लीन होइ जायगा। सारस की न्यांई जो कवि है सो ज्ञानी होने तैं सम्यक् प्रकार तें अंगीकार करिके अंतर में वासना-रहित रहैगा। हंस की न्यांई जो कवि है सो मुमुक्षु होने तैं विवेक बुद्धि करि सारासार विचार करैगा। औ जो काक की न्यांई कवि है सो विषयी औ द्वेषी होने तें शीघ्र ही दोष कूं ग्रहण करैगा॥३०॥

सुन्दरानन्दी टीका:—इस छंद में विपर्यय वाक्य के अभाव से विशेष टीका अपेक्षित नहीं है॥ ३०॥

नष्ट होंहिं द्विज भ्रष्ट क्रिया करि कष्ट किये नहिं पावै ठौर।
महिमा सकल गई तिनि केरी रहत पगन तर सब सिर मौर॥
जित तित फिरहिं नहीं कछु आदर तिनकौं कोउन घालै कौर।
सुन्दरदास कहै समुझावै ऐसी कोऊ करौ मति और॥ ३१॥

ह० लि० १- २ टीका—अब आगे शुद्ध कथा अर्थ है अध्यात्मपक्ष में। अति उत्तम जीव सोई द्विज जो वो जीव द्विज है सो कष्ट-क्रिया नाम वेदोक्त शुद्ध-क्रिया आचरण धारण कर्यां विना भ्रष्ट होय जाय ता शुद्ध-क्रिया विना अर्थात् मनमते ही वहिर्मुख क्रिया कर्यां तें ठौर नाम सुख नहीं पावै अर्थात् ता क्रिया विना नीच जोनी को अधिकारी होय अर्थात् सुखी नहीं होय।—ता क्रिया विना ताको सर्व प्रभाव गयो अरु ता प्रभाव बिना सर्व-शिरोमणि है तो पाणि सर्वाधीन सर्व काम-क्रोधादि विकार सुख-दुःखां कै आधीन रहै है।—सर्वत्र सर्वलोकां में सर्वजोनी में वा सर्व घरां में जहां-तहां फिरै ता पाणि कोई स्थान में आदर नहीं पावै धर्म रहित पणां सों अरु तिनको कोई भी कछू मांग्यो दे नहीं कौर नाम कोववा मात्र भी नहीं देवै।—ऐसी नाम अपणां धर्म को त्याग कोई भी मतिकरो शुभ-धर्म का त्याग में सर्व दुःख हैं धारण में सर्व सुख है॥ ३१॥

पीताम्बरी टीकाः—जीवरुपी मानो द्विज कहिये जो ब्राह्मण है। सो अपने स्वरुप के विस्मरण-रूप भ्रष्टक्रिया करि नष्ट होय। कहिये अपने सर्वाधिष्ठान-पने कूं छोड़िके संसारी (जीव) भाव कूं प्राप्त होवै है। सो पीछे अनेक वहिरंग-साधनरुप कष्ट कूं किये भी ठौर कहिये "मैं कर्त्ताभोक्ता संसारी हूं" इस भावकूं छोडिके ब्रह्मस्वरुप करि स्थिति कूं पावै नहीं।—तिनकेरी कहिये जीवरूप ब्राह्मण की परमेश्वर-रूप करि ब्रह्मादिक की स्तुति औ पूजा की विषयता-रूप जो पूर्व महिमा थी। सो सकल गई। काहेतें, वास्तव परमात्मा होने ते सब शिरमौर कहिये सर्व का शिरोमणि-रूप है। सो पगन तर रहत कहिये सर्वदेव आदिकन के पाद के तले दीन की न्यांई पूंजक होइके स्थित भयो है।—जित तित कहिये चोराशी-लक्ष योनि-रूप पराये (पंचभूतन) के ग्रहन में फिरै है। परन्तु कहूं भी स्वरूपस्थिति-जन्य स्वतन्त्रता-रूप कछु आदर
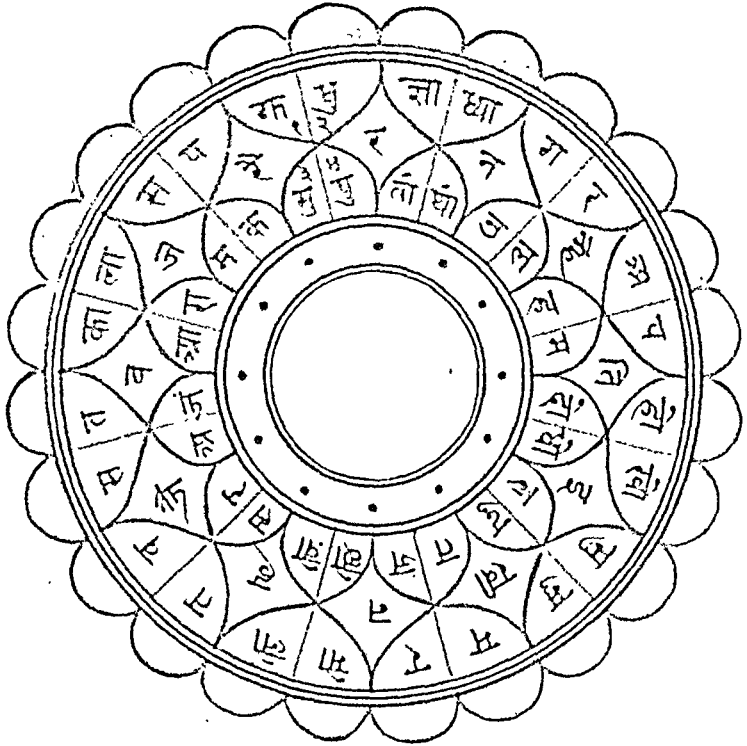
Engraved & printed by *Gaya Art Press, Cal.*

---

(१४) कंकण बन्ध दूसरा २

दुमिला छन्द

गुर ज्ञान गहै अति होइ सुखी, मन मोह तजै सब काज सरै ।
घुर ध्यान रहै पति खोइ मुखी, रन लोह बजै तब लाज परै ॥
सुर तान उहै हति होइ रुखी, तन छोह सजै अब आज मरै ।
पुर थान लहै मति धोइ दुखी, जन बोह रजै जब राज करै ॥१४॥

——o——

[इसके पढ़ने की विधि सामने पृष्ठ पर देखें]

न्यू राजस्थान प्रेस

कंकण बन्ध (२)

पढ़ने की विधिः—

जैसी कंकण-बंध प्रथम के पढ़ने की विधि है वैसी ही इसकी है। उसही को संक्षेप में देते हैं। छन्द के प्रत्येक चरण में बारह शब्द दो २ अक्षरों के हैं। चारों चरणों के किसी भी संख्या के शब्दों में दूसरा अक्षर एक ही है। कंकण में की ऊपर नीचे बड़ी छोटी सब पंखड़ियों (पत्तियों) के दो २ टुकडे हैं पिछले दो और पहिले दो यों चार २ टुकड़ों से एक २ चौकोर सा घर घिरा हुआ है। प्रत्येक ऐसे चौकोर घर का अक्षर चार वेर पढ़ा जाता है। चारों चरणों के प्रथम शब्दों के प्रथम (आद्य) अक्षर—गु-धु-सु-पु-पंखड़ियों के टुकड़ों में पास २ हैं। इन पर चरणों के प्रथम अक्षर होने से १-२-३-४ के अंक लगा दिये हैं। उक्त चारों आद्य अक्षर क्रम से इनके आगे पासवाले चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढ़े जायंगे। इसही प्रकार आगे के शब्द क्रमशः छन्द वार पढ़े जायंगे।- (१) प्रथम चरण में गु प्रथमाक्षर को चौकोर घर के र अक्षर के साथ पढ़ें। इसी तरह आगे ग्यारह शब्द इस प्रथम चरण के पढ़ें। (२) २ रे चरण में धु अक्षर के साथ उसही र अक्षर को साथ पढ़कर आगे के ११ शब्दों को भी उसही तरह पढ़ें। (३) ३ रे चरण में सु प्रथम अक्षर को उसही र के साथ पढ़कर आगे के शब्द पढ़ें। (४) ४ थे में पु को र के साथ और आगे वैसे ही ॥

—:*:—

शास्त्र वेद पुरान पढै किनि पुनि व्याकरन पढै जे कोइ।
संध्या करै गहै पट कर्म हि गुन अरु काल विचारै सोइ॥
रासि काम तबही बनि आवै मन मैं सब तजि रापै दोइ।
सुन्दरदास कहै सुनि पंडित राम नाम बिन मुक्त न होइ॥ ३२॥

॥ इति विपर्यय शब्द को अंग॥ २२॥

मिलै नहीं। औ तिनकूं कोउ इष्टदेवादिक भी स्वकर्मरुप श्रम विना कोर कहिये एक कवल भी घालै कहिये मांग्यो न देवै।—सुंदरदासजी कहिके समुझावै हैं कि—ऐसी कहिये स्वरुप के विस्मरण-रूप भ्रष्ट क्रिया और कोऊ पुरुष भी मति करौ। किंतु विचार आदिके जिस किस प्रकार करि सदा स्वरूप में ही रत रहो॥ ३१॥

सुन्दरानन्दी टीकाः—इसमें विपर्यय शब्द न होने से अन्य टीका टिप्पण अपेक्षा नहीं रखता। जो विद्वानों की ऊपर टीका दी है अलम् है॥ ३१॥

ह० लि० १-२ टीकाः—शास्त्र न्याय मीमांसादि ६। वेद ऋग्यजुरादि ४। पुराण भागवतादि १८। व्याकरण पाणिन्यादि ९। इन सबन को जे कोई पढ़ै।—संध्या नित्य नियम। पट्कर्म वर्णाश्रमां का भिन्न भिन्न कर्म हैं तथा ब्राह्मणां का यजन अध्यापनादि। गुनै सत्वादि गुण। कालभूतादि। इन सबन को विचारे नाम यथायोग्य शुभ-कर्म्मन कौं करै।—सर्व शुभकर्म कर्यां यथायोग्य सर्व ही फल देवै हैं परि साक्षात्कार कार्य तो तबही सिद्ध होवैंगो जब "सर्व तज अरु ररो ममो दोय अक्षर अखंड हृदय में धारैंगो तब।—रामनाम सर्व को सिद्धांत शिरोमणि है जीवन्मुक्ति कल्याण सुख को कर्त्ता यही है सो याही को निश्चै करि निरंतर अखंड धारणों सदी॥ ३२॥ राम नाम बिन मुक्ति नहीं होइ। अत्र प्रमाणं। (१) तपंतु तापैः प्रपतंतु पर्वता दटंतु तीर्थानि पठंतु चागमान्। यजंतु यागैर्विवदंतु योगैर्हरिं विना नैव मृतिं तरंति। इति भागवते। (२) आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः। इद-मेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणो हरिः। इति भारते व्यासः। (३) किं तात वेदागम-शास्त्र विस्तरैः स्तीर्थैः रनेकै रपि किं प्रयोजनम्। यद्यात्मनो वांछसि मोक्षकारणं गोविंद

गोविंद इदं स्फुटं रट । इति विष्णुरहस्ये प्रल्हाद वाक्यं । (४) अनन्य चेताः सततं यो माम् स्मरति नित्यशः तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः । १ । समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः । ये भजंति तु माम् भक्त्या मयिते तेषु चाप्यहं । इति भगवद्गीतायां श्रीकृष्णवचनम् ॥ इति विपर्यय अंगकी टीका सम्पूर्ण ॥३२ ॥ २२॥

पीताम्बरी टीकाः—"अब इस अंग की समाप्ति में पूर्वोक्त ज्ञान विषे जो असमर्थ होय ताकूं परमेश्वर की उपासना-रूप साधन कर्त्तव्य है । ऐसे दिखावते हुये अपनी (दादूजी की) संप्रदाय के इष्ट जो राम (चंन्द्र) हैं । ताके स्मरणपूर्वक गोप्य अर्थ करि शिरोमणि सिद्धांत कूं दिखावै हैः—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा औ वेदांत-ये जो षट्शास्त्र हैं रु कहिये अरु ऋग, यजु, साम औ अथर्वण ये चारि जो वेद हैं । ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कंडेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लैंग, वाराह, स्कंध, वामन, कौर्म्य, मात्स्य, गारुड, औ ब्रह्मांड ये जो अष्टादश पुराण हैं तिनकूं कोई पुरुष किन कहिये क्यूं न पढ़ै ! पुनि पाणिनी आदिक जो नव व्याकरण हैं तिनकूं जे कोई पढ़ै ।—प्रातःकाल, मध्यान्हकाल औ सायंकाल तीन समय में संध्या गायत्री कूं करै । औ स्नान, जप, होम आदिक षट्कर्महि गहे कहिये जो आचरै । सोइ देश, काल, कर्म आगम औ आहारादिक की सात्विकता राजसता औ तामसता में उपयोगी सत्वादि गुनन कूं अरु काल कहिये काल-करि उपलक्षित देशादिक कूं । अथवा शांत, घोर औ मूलवृत्तिरूप गुण औ कर्म में उपयोगी औ अनुपयोगी शुभाशुभ काल कूं जो विचारै ।—यद्यपि यह पूर्वोक्त आचार भी श्रेष्ट है औ परंपरा करि ज्ञान द्वारा मोक्ष का कारण है तथापि सो साक्षात् मोक्ष का वा ज्ञान का साधन नहीं होने तैं, तिस तें पूर्व कार्य होवै नहीं । औ सीरा कहिये अतिशय करि श्रेष्ट काम तबै बनि आवै कहिये सिद्ध होवै जब मन में सब पूर्वोक्त साधन आग्रह तजि कहिये छोड़िके "राम" इन दोइ अक्षरन कूं हृदय में राखै कहिये तदाकार होयके रहै । यह मोक्ष-साधन की प्राप्ति का निकट द्वार है ।—सुन्दरदासजी कहै हैं कि हे पंडित ! सुन ! सर्व शास्त्र का सिद्धांत यह हैः—राम नाम बिनु मुक्ति न होइ । याका गोप्य अर्थ यह हैः—ब्रह्म औ आत्मा की एकता के जाननेवाला योगी तदाकार वृत्ति करि जिस सत्य आनंद चिदात्मा विषै रमते हैं । सो चिद्रूप पर-

अथ अपने भाव को अंग ॥ २३ ॥

इन्दव

एकहि आपुनौ भाव जहां तहां बुद्धि के योग तें विभ्रम भासै।
जौ यह क्रूर तौ क्रूर उहां पुनि याके पिजै तें उहां पुनि पासै॥
जौ यह साधु तौ साधु उहां पुनि याके हंसे तें उहां पुनि हासै।
जैसो ई आपु करै मुख सुंदर तैसो ई दर्पन मांहि प्रकासै॥ १ ॥

मनहर

जैसें स्वान कांच के सदन मध्य देपि और
भूंकि भूंकि मरत करत अभिमान जू।

ब्रह्म राम कहिये है। तिस राम के नाम कहिये प्रसिद्धि अर्थ यह जो साक्षात्कार तिस बिना मुक्ति होवै नहीं। यातें राम के साक्षात्कार अर्थ कूं भजै॥ ॥ ३२" ॥

सुन्दरानन्दी टीका:—जो अर्थ उक्त टीकाओं में दिया है सो अपने २ स्थान में उपयुक्त और संगत है। इसमें विपर्यय शब्द नहीं है। इस कारण अन्य टीका टिप्पण की कुछ आवश्यकता नहीं है॥ ३२॥ इस २२ वें अंग की टीका को स्वयम् ग्रन्थकर्त्ता के विशिष्ट वचन पर समाप्त करते हैं:—'सुंदर सब उलटी कही, समुझैं संत सुजांन। और न जानैं बापुरे, भरे बहुत अज्ञांन"। साखी ५०॥

॥इति विपर्यय शब्द के अंग २२ की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥ २२ ॥

(१) आपनो भाव=आत्मानुभव की प्राप्ति के समय ज्ञेय ज्ञाता एक हो जाते हैं अथवा भ्रमज्ञान निवृत्त होता है तब 'युष्मद' और 'अस्मद' में कुछ भेद नहीं रहता है। आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं। 'सर्वंखल्विदं ब्रह्म नेह नानास्तिकिंचन'—यह सब जगत् का पसारा निश्चय करके ब्रह्म है और जो नानारूप दृष्टि में भासते हैं सो अन्य कुछ नहीं हैं आत्मा का ही विकास मात्र हैं।

जैसैं गज फटिक शिला सौं अरि तोरै दंत
जैसैं सिंघ कूप मांहि उझकि भुलांन जू॥
जैसैं कोऊ फेरी पात फिरत देषै जगत
तैसैं ही सुन्दर सब तेरौ ई अज्ञान जू।
आप ही कौ भ्रम सु तौ दूसरौ दिपाई देत
आप कौ विचारै कोऊ दूसरौ न आंन जू॥ २॥

नीच ऊंच बुरौ भलौ सज्जन दुर्जन पुनि
पंडित मूरप शत्रु मित्र रंक राव है।
मान अपमान पुन्य पाप सुख दुख दोऊ
स्वरग नरक बंध मोक्ष हू कौ चाव है॥
देवता असुर भूत प्रेत कीट कुञ्जर ऊ
पशु अरु पक्षी स्वान सूकर विलाव है।
सुन्दर कहत यह एकई अनेक रूप
जोई कछु देपिये सु आपनौ ई भाव है॥ ३॥

याही कै जगत काम याही कै जगत क्रोध
याही कै जगत लोभ याही मोह माता है।
याकौ याही वैरी होत याकौ याही मित्र होत
याकौ याही सुख देत याही दुख दाता है॥
याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देपियत
याही देव दैत्य यक्ष सकल संघाता है।
याही कौ प्रभाव सु तौ याही कौं दिपाई देत
सुन्दर कहत याही आतमा विख्याता है॥ ४॥

---

(२) अरि=अड़ाकर (दांत को)।

(४) जगत=जागता है, उत्पन्न होता है। संघाता=संघात, समूह—"संघातश्चेतना धृतिः" (गीता)। विख्याता=विख्यात, प्रमाणित।

याही कौ तौ भाव याकौं शंक उपजावत है
याही कौ तौ भाव याहि निःशंक करतु है।
याही कौ तौ भाव याकौं भूत प्रेत होइ लागौ
याही कौ तौ भाव याकी कुमति हरतु है॥
याही कौ तौ भाव याकौं वायु कौ वघूरा करै
याही कौ तौ भाव याहि थिर कैं धरतु है।
याही कौ तौ भाव याकौं धार मैं वहाइ देत
सुन्दर याही कौ भाव याहि लै तरतु है॥ ५॥

आपु ही कौ भाव सु तौ आपु कौं प्रगट होत
आपु ही आरोपि करि आपु मन लायौ है।
देवी अन्य देव कोऊ भाव कै उपासै ताहि
कहै मैं तौ पुत्र धन इन ही तें पायौ है॥
जैसैं स्वान हाड कौं चचौरि करि मानै मोद
आपु ही कौ मुख फोरि लोहू चाटि पायौ है।
तैसैं ही सुन्दर यह आपु ही चेतनि आहि
आपुने अज्ञान करि और सौं बंधायौ है॥ ६॥

इन्दव

नीचै तें नीचै रु ऊंचे तें ऊपरि आगै तें आगै है पीछै तें पीछौ।
दूरि तें दूर नजीक तें नीरैहि आडे तें आडौ है तीछे तें तीछौ॥
बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यौं कोउ जानैं त्यौंही करि ईछौ।
जैसौ ही आपुनौ भाव है सुन्दर तैसौ हि है दृग पोलि कै बीछौ॥ ७॥
आपुनै भाव तें सूर सौ दीसत आपुनै भाव तें चन्द्र सौ भासै।
आपुनै भाव तें तार अनन्त जु आपुने भाव तें विद्रुलता सै॥

---

(५) थिर कैं=थिर (स्थिर) करके।

(७) ईछौ='ईक्षतु' का अपभ्रंश=देखै। बीछौ=सं० 'वीक्षतु' का अपभ्रंश=देखै

आपुनै भाव तें नूर है तेज है आपुने भाव तें जोति प्रकासै।
तैसौ हि ताहि दिपावत सुन्दर जैसौ हि होत है जाहि कौ आसै॥ ८॥
आपुने भाव तें सेवक साहिब आपुने भाव सबै कोउ ध्यावै।
आपुने भाव तें अन्य उपासत आपुने भाव तें भक्तहु गावै॥
आपुने भाव तें दुष्ट संघारत आपुने भाव तें बाहर आवै।
जैसौ हि आपुनौ भाव है सुन्दर ताहि कौं तैसौ हि होइ दिपावै॥ ९॥
आपुने भाव तें दूर बतावत आपुने भाव नजीक बषांन्यौं।
आपुने भाव तें दूध पिवायौ जु आपुने भाव तें बीठल जांन्यौं॥
आपुने भाव तें चारि भुजा पुनि आपुने भाव तें सींग सौं मांन्यौं।
सुन्दर आपुने भाव कौ कारन आपुहि पूरन ब्रह्म पिछांन्यौं॥ १०॥
आपुने भाव तें होइ उदास जु आपुने भाव तें प्रेम सौं रोवै।
आपुने भाव मिल्यौ पुनि जानत आपुने भाव तें अन्तर जोवै॥
आपुने भाव रहै नित जागत आपुने भाव समाधि मैं सोवै।
सुन्दर जैसौ ई भाव है आपुनौ तैसौ ई आपु तहां तहां होवै॥ ११॥
आपुने भाव तें भूलि पर्‌यौ भ्रम देह स्वरूप भयौ अभिमानी।
आपुने भाव तें चंचलता अति आपुने भाव तें बुद्धि थिरानी॥
आपुने भाव तें आप बिसारत आपुने भाव तें आतमज्ञानी।
सुन्दर जैसौ हि भाव है आपुनौ तैसौ हि होइ गयौ यह प्रानी॥ १२॥

॥ इति अपने भाव कौ अंग ॥ २३ ॥

---

(८) तार=तारे। विद्युल्लता=बिजली का समूह। आसै=आसपास, निकट, समान। वा आश्रय। वा आशय।

(१०) बीठलजान्यौं=भक्त की कथा से संबंध है जिसके आग्रह से भगवान ने प्रत्यक्ष दूध पिया था।

(११) जोवै=देखै।

(१२) बुद्धि थिरानी=बुद्धि स्थिर हुई वा की। स्थितप्रज्ञ हुआ।

अथ स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २४ ॥

इन्दव

जा घट की उनहार है जैसो हि ता घट चेतनि तैसौ हि दीसै ।
हाथी की देह में हाथी सौ मानत चींटी की देह मैं चींटी कीरी सै ॥
सिंघ की देह में सिंघ सौ मानत कीस की देह मैं मानत कीसै ।
जैसि उपाधि भई जहां सुन्दर तैसौ हि होइ रह्यौ नखसीसै ॥ १ ॥

जैसैं हि पावक काठ के योग तें काठ सौ होइ रह्यौ इक ठौरा ।
दीरघ काठ मैं दीरघ लागत चौरेसे काठ मैं लागत चौरा ॥
आपुनौ रूप प्रकाश करै जब जारि करै तब और कौ औरा ।
तैसैं हि सुन्दर चेतनि आपु सु आपु कौं नांहिं न जानत बौरा ॥ २ ॥

मनहर (प्रश्न)

अजर अमर अविगत अविनाशी अज
कहत सकल जन श्रुति अवगाहे तें ।
निर्गुन निर्मल अति शुद्ध निरबन्ध नित
ऐसौउ कहत और ग्रन्थनि के थाहे तें ॥

(अंग २४)—(१) चींटी कीरी सैं=यहां चींटी कीरी (कीड़ी) ऐसा पढ़ें, अथवा चींटी की रीसैं-ऐसा भी पढ़ सकते हैं। परन्तु रीसैं से अर्थ की पूर्ण संगति न होगी ॥ नखसीसै=खास, विशिष्ट ।

(२) बौरा=बावला, वा बावला हो गया । अर्थात् अपने स्वस्वरूप को भूल-गया और जो पुद्गल धार लिया उसही को आपा मान लिया—अध्यास से भ्रमज्ञान में प्रविष्ट हो गया ।

(३) और (४)—३ रे छंद में प्रश्न करता है और ४ थे उसका उत्तर देता है—कि चेतन ब्रह्म सर्वज्ञ निर्विकार निर्भ्रान्त है फिर उसही को स्वस्वभाव की

व्यापक अखण्ड एक रस परिपूरन है
सुन्दर सकल रमि रह्यौ ब्रह्म ताहे तें।
सहज सदा उद्दोत याही तें अचम्भा होत
"आपुही कौं आपु भूलि गयौ सु तौ काहे तें" ॥ ३ ॥

जैसें मीन मांस कौं निगलि जात लोभ लागि
लोह कौ कंटक नहीं जानत उमाहे तें।
जैसें कपि गागरि मैं मूठी बांधि रापै सठ
छाडि नहीं देत सु तौ स्वाद ही के बाहे तें॥
जैसें वक नालियर चूंच मारि लटकत
सुन्दर सहत दुख देपि याही लाहे तें।
देह कौ संयोग पाइ इन्द्रिनि के वसि पर्‌यौ
"आपुही कौं आपु भूलि गयौ सुख चाहे तें" ॥ ४ ॥

इन्दव

ज्यौं कोउ मद्य पिये अति छाकत नांहिं कछू सुधि है भ्रम ऐसौ।
ज्यौं कोउ पाइ रहै ठग मूरि हि जानैं नहीं कछु कारन तैसौ॥
ज्यौं कोउ बालक शंकउ पावत कंपि उठै अरु मानत भैसौ।
तैसें हि सुन्दर आपुकौं भूलि सु देपहु चेतनि मानत कैसौ॥ ५ ॥

विस्मृति किस कारण से होगई। तो उसका उत्तर देते हैं कि—यह जीवात्मा देह में प्रवेशकर इन्द्रियों के सुख में मग्न होकर निजरूप को भूल गया, उस इन्द्रिय सुख से यह दशा हुई। (३)—ताहे तें=तिस हित (संलग्नता वा कारण) से। (४) लाहे तें=लाभ से, लोभ से। आगे के छंदों में भी जो वर्णन है वह भी मानों इसही प्रश्न के उत्तर में है।

(५) ठग मूरि=ठग की दी हुई (जहर लगी) मूली या कंद। उसका असर होने पर ठगा जाय। शंकउ=शंका वा भय की कल्पना से कुछ का कुछ मान ले। बच्चों को हाऊ, हावू आदि कह डराते हैं।

ज्यौं कोउ कूप मैं झांकि अलापत वैसी हि भांति सु कूप अलापै।
ज्यौं जल हालत है लगि पौंन कहै भ्रम तैं प्रतिबिंब हि कांपै॥
देह के प्रान के जे मन के कृत मांनत है सब मोहि कौं व्यापै।
सुन्दर पेच पर्यौ अतिसै करि "भूलि गयौ भ्रम तैं भ्रमि आपै"॥ ६॥
ज्यौं द्विज कोउक छाडि महातम शूद्र भयौ करि आपु कौं मांन्यौं।
ज्यौं कोउ भूपति सोवत सेज सु रंक भयौ सुपने मंहि जांन्यौं॥
ज्यौं कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भैंचक आंन्यौं।
तैंसे हि सुन्दर देह सौं ह्वै करि या भ्रम आपुहि आपु भुलांन्यौं॥ ७॥
एकहि व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म बिलासै।
ज्यौं नट मंत्रनि सौं दिठ बांधत है कछु औरई औरई भासै॥
ज्यौं रजनी मंहि बूझि परै नहिं जौं लगि सूरज नांहि प्रकासै।
त्यौं यह आपुहि आपु न जानत सुन्दर ह्वै रह्यौ सुन्दरदासै॥ ८॥

मनहर

इन्द्रिनि कौ प्रेरि पुनि इन्द्रिनि कै पीछै पर्यौ
आपुनि अविद्या करि आपु तनु गह्यौ है।
जोई जोई देह कौं शंकट कछु परै आइ
सोई सोई मानैं आपु यातैं दुख सह्यौ है॥
भ्रमत भ्रमत कहुं भ्रम कौ न आवै वोर
चिरकाल वीत्यौ पै स्वरूप कौं न लह्यौ है।

---

(६) देह के कृत्य मोहि कौं व्यापै—आत्मा को देह से पृथक् न समझ कर देह को ही आप मान लेता है। यही तो अध्यास है। (७) महातम=ब्राह्मणपने का माहात्म्य, गौरव, बडप्पन। अतित=अत्यंत। भैंचक=अचंभा।

(८) विश्व नहीं··सुंदरदासजी इस सृष्टि को ब्रह्म का एक विलास वा लीला, खेल-तमाशा मानते हैं। सृष्टि का समवायि वा निमित्त कारण वही है। अपने आपही में इसका पसारा करता है और आपही में लय कर लेता है।

सुन्दर कहत देषौ भ्रम की प्रबलताई
"भूतनि मैं भूत मिलि भूत सौ ह्वै रह्यौ है" ॥ ९ ॥

जैसैं शुक नलिका न छाडि देत चुंगल तें
जानै काहू औरै मोहि बांधि लटकायौ है।
जैसैं कपि गुंजनि कौ ढेर करि मानै आगि
आगै धरि तापै कछू शीत न गमायौ है॥
जैसैं कोऊ दिशा भूलि जात हु तौ पूरब कौं
उलटि अपूठौ फेरि पच्छिम कौं आयौ है।
तैसैं हि सुन्दर सब आपु ही कौं भ्रम भयौ
"आपु ही कौं भूलि करि आपु ही बंधायौ है" ॥ १० ॥

जैसैं कोऊ कामिनी के हिये पर चंपै बाल
सुपने मैं कहै मेरौ पुत्र काहू ह्यौ है।
जैसैं कोऊ पुरुष कैं कण्ठ विषै हुती मनि
ढूंढत फिरत कछु ऐसौ भ्रम भयौ है॥
जैसैं कोऊ वायु करि बावरौ बकत डोलै
औरकी औरई कहै सुधि भूलि गयौ है।
तैसैं ही सुन्दर निज रूप कौं बिसारि देत
"ऐसौ भ्रम आपु ही कौं आपु करि लयौ है" ॥ ११ ॥

---

(९) शंकट=संकट, कष्ट। स्वरूप को न लह्यो है=वेदांत मत से ज्ञान के उदय से भ्रमका नाश होते ही स्वस्वरूप अनुभव होते ही ब्रह्मत्व की अवस्था प्राप्त हो जाती है।

(१०) कपि-गुंजन···—कहते हैं कि वन में बंदर चिरमठी का ढेर लगा लेते हैं और उनको अग्नि समझकर उनसे शीत की निवृत्ति मानते हैं, लालरंग आग का सा देखकर। दिशा भूलि जात – चित्त भ्रम से दिशा-भूल हो जाता है। पूर्व को पश्चिम, उत्तर को दक्षिण समझ बैठता है।

(११) ह्यौ है=हर्यो है, हरणकर ले गया है।

दीन हीन छीन सौ ह्वै जात छिन छिन मांहि
देह के संजोग पराधीन सौ रहतु है।
शीत लगै घांम लगै भूप लगै प्यास लगै
शोक मोह मांनि अति पेद कौं लहतु है॥
अन्ध भयौ पंगु भयौ मूक हौं वधिर भयौ
ऐसौ मांनि मांनि भ्रम नदी मैं वहतु है।
सुन्दर अधिक मोहि याही तें अचम्भो आहि
"भूलि कैं स्वरूप कौं अनाथ सौ कहतु है" ॥ १२ ॥

जैसें कोऊ सुपने मैं कहै मैं तौ ऊंट भयौ
जागि करि देपै उहै मनुप स्वरूप है।
जैसें कोऊ राजा पुनि सोइ कै भिपारी होइ
आंपि उघरे तें महा भूपति कौ भूप है॥
जैसें कोऊ भैंचक सौं कहै मेरौ सिर कहां
भैंचक गये तें जानै सिर तौ तद्रूप है।
तैसें हि सुन्दर यह भ्रम करि भूलौ आपु
"भ्रम कै गये तें यह आतमा अनूप है" ॥ १३ ॥

जैसें काहू पोसती की पाग परी भूमि पर
हाथ लैकै कहै एक पाग मैं तौ पाई है।
जैसें शेपचिल्ली हू मनोरथनि कीयौ घर
कहै मेरौ घर गयौ गागरि गिराई है॥
जैसें काहू भूत लग्यौ वकत है आकवाक
सुधि सव दूरि भई औरै मति आई है।

---

(१२) देह के संजोग—आश्चर्य यही है कि आत्मा चेतन है परन्तु असंग है और शरीर जड़ है। फिर सुख दुःखादिकों का अनुभव कौन करता है। जीवात्मा देह ही को अपना स्वरूप मान लेता है यही तो अज्ञान वा भ्रम का फल है।

(१३) भूलौ=भूल्यो, भूल गया।

तैसैं हि सुन्दर यह भ्रम करि भूलौ आपु
"भ्रम कै गयें तें यह आतमा सदाई है" ॥ १४ ॥

आपु ही चेतन्य यह इन्द्रिनि चेतन्य करि
आपु ही मगन होइ आनन्द वढायौ है।
जैसें नर शीत काल सोवत निहाली वोढि
आपु ही तपत करि आपु सुख पायौ है ॥
जैसें वाल लकरी को घोरा करि डांकि चढै
आपु असवार होइ आपु ही कुदायौ है।
तैसें ही सुन्दर यह जड कौ संयोग पाइ
"पर सुख मांनि मांनि आपु ही भुलायौ है" ॥ १५ ॥

कहूं भूल्यौ कामरत कहूं भूल्यौ साधि जत
कहूं भूल्यौ गृह मध्य कहूं वनवासी है।
कहूं भूल्यौ नीच जानि कहूं भूल्यौ ऊंच मांनि
कहूं भूल्यौ मोह वांधि कहूं तौ उदासी है ॥
कहूं भूल्यौ मौंन धरि कहूं वकवाद करि
कहूं भूल्यौ मक्कै जाइ कहूं भूल्यौ कासी है।

---

(१४) शेपचिल्ली—लाहोर में इस नाम का फकीर हुआ बताते हैं। यहां उस कहानी से प्रयोजन है जो मजदूर तेल का घड़ा सिर पर लै विचारता है कि इसके उत्तरोत्तर लाभ से मैं सम्पन्न हो जाऊंगा। फिर विवाह करूंगा, पुत्र पौत्रादि होंगे। बुढापे में पौत्र भोजन को बुलाने को आवैगा तब मैं गर्दन हिलाऊंगा। उस गर्दन का हिलाना था कि घड़ा गिरकर फूट गया। मालिक ने कहा घड़ा फुट गया, इस मजदूर ने कहा मेरा घर ही गिर पड़ा।

(१५) निहाली=तोशक, सौड़, मिरजई। डांकि चढै=कूदकर उसपर चढ़े मानों सचे ही घोड़े पर। जड़ को संयोग पाइ=वेदांत मत में जड़ और चेतन का भेद समझना ही मुख्य है और उस ही को विवेक कहते हैं। शरीरादि सब जड़ हैं, आत्मा

सुन्दर कहत अहंकार ही तें भूल्यौ आप
एक आवै रोज अरु दूजै वडी हांसी है ॥ १६ ॥

मैं वहुत सुख पायौ मैं वहुत दुख पायौ
मैं अनन्त पुन्य कीये मेरे पोतै पाप है।
मैं कुलीन विद्यावन्त पण्डित प्रवीन महा
मैं तौ मूढ अकुलीन हीन मेरौ वाप है॥
मैं हौं राजा मेरी आंन फिरै चहुं चक्र माहिं
मैं तौ रंक द्रव्यहीन मोहि तौ सन्ताप है॥
सुन्दर कहत अहंकार ही तें जीव भयौ
अहंकार गये यह एक ब्रह्म आप है॥ १७॥

देह ई सुपुष्ट लगै देह ही दूवरी लगै
देह ही कौं शीत लगै देह ही कौं तावरौ।
देह ही कौं तीर लगै देह कौं तुपक लगै
देह कौं कृपान लगै देह ही कौं घावरौ॥
देह ही स्वरूप लगै देह ही कुरूप लगै
देह ही जोवन लगै देह वृद्ध डावरौ।
देह ही सौं यांधि हेत आपु विपै मांनि लेत
सुन्दर कहत ऐसौ वुद्धि हीन वावरौ॥ १८॥

ही चेतन है। जड़ में चेतन की भ्रांति ही मिथ्या ज्ञान है सो ही वंधन का कारण है।

(१६) एक आवै हांसी वा रोज=हाय आत्मा को ऐसा अज्ञान क्यों यही रोना। उधर यही अज्ञान हास्यास्पद है।

(१७) अहंकार—यहां उस अज्ञान वा भ्रम का कारण अहंकार कहा है। अहंकार महत्तत्व से है। यही सव सृष्टि का मूल आदि तत्व है। यहां अस्मिता से भी प्रयोजन है—मैं ऐसा, मैं यूं''इत्यादि।

(१८) आपु विपै मानिलेत—देह जड़ है उसमें क्रिया नहीं। चेतन अकर्त्ता है

इन्दव

आपु हि चेतनि ब्रह्म अखंडित सो भ्रम तें कछु अन्य परेपै ।
ढूंढत ताहि फिरै जित ही तित साधत योग बनावत भेपै ॥
औरउ कष्ट करै अतिसै करि प्रत्यक आतम तत्व न पेपै ।
सुन्दर भूलि गयौ निज रूप हि "है कर कंकण दर्पण देपै" ॥ १९ ॥

सूत्र गरे मंहि मेलि भयौ द्विज ब्राह्मण ह्वै करि ब्रह्म न जांन्यौं ।
क्षत्रिय ह्वै करि क्षत्र धर्‌यौ सिर है गय पैदल सौं मन मांन्यौं ॥
वैश्य भयौ वपु की वय देपत झूंठ प्रपंच वनिज्य हि ठांन्यौं ।
शूद्र भयौ मिलि शूद्र शरीर हि सुन्दर आपु नहीं पहिचांन्यौं ॥ २० ॥

ज्यौं रवि कौ रवि ढूंढत है कहुं तप्ति मिलै तनु शीत गवांऊं ।
ज्यौं शशि कौं शशि चाहत है पुनि शीतल ह्वै करि तप्ति बुझांऊं ॥
ज्यौं कोउ सांनि भयें नर टेरत है घर मैं अपनै घर जांऊं ।
त्यौं यह सुन्दर भूलि स्वरूप हि "ब्रह्म कहै कब ब्रह्म हि पाऊं ॥ २१ ॥

आपु न देपत है अपनौ मुख दर्पन काट लग्यौ अति थूला ।
ज्यौं द्दग देपत तें रहिजात भयौ जब ही पुतरी परि फूला ॥
छाइ अज्ञान रह्यौ अति अन्तर जानि सकै नहिं आतम मूला ।
सुन्दर यौं उपज्यौ मन कै मल "ज्ञान विना निज रूप हि भूला" ॥ २२ ॥

उसमें भी क्रिया नहीं । इनके सम्बन्ध की ग्रंथी में अहंकार बनता है उसही से अज्ञान प्रगट कर यह उलटा-पलटी कर देता है ।

(१९) निज अज्ञान का इन छन्दों (१९-२०-२१ आदिक २६ तक) में कैसा अच्छा वर्णन भ्रम और अज्ञान का किया है कि योगवाशिष्ट आदि ग्रन्थों में ढूंढे से ही मिलै ॥

(२०) है गय=हय—घोड़ा । गय—गयंद, हाथी ।—

(२१) सांनि—सनक, बोरापन । पाठांतर "जों सनिपात भये" ।

(२२) काट=जंग, मैंट (प्राचीन काल में दर्पण फोलाद के होते थे उनपर जंग

दीन हुवौ विललात फिरै नित इन्द्रिनि कै वस छीलक छोलै।
सिंह नहीं अपनौ वल जानत जंवुक ज्यौं जितही तित डोलै॥
चेतनता विसराइ निरन्तर लै जडता भ्रम गांठि न षोलै।
सुन्दर भूलि गयौ निज रूप हि देह स्वरूप भयौ मुख वोलै॥ २३॥
मैं सुखिया सुख सेज सुखासन है गय भूमि महा रजधांनीं।
हौं दुखियो दिन रैंनि भरौं दुख मोहि विपत्ति परी नहीं छांनीं॥
हौं अति उत्तम जाति वडौ कुल हौं अति नीच क्रिया कुल हांनीं।
सुन्दर चेतनता न संभारत देह स्वरूप भयौ अभिमांनीं॥ २४॥
गर्भ विषै उतपत्ति भई पुनि जन्म लियौ शिशु शुद्धि न जांनीं।
घाल कुमार किशोर युवादिक वृद्ध भयें अति वुद्धि नसांनीं॥
जैसि हि भांति भई वपु की गति तैसौ हि होइ रह्यौ यह प्रांनीं।
सुन्दर चेतनता न सम्भारत देह स्वरूप भयौ अभिमांनीं॥ २५॥
ज्यौं कोउ त्याग करै अपनौ घर वाहर जाइकै भेप वनावै।
मूंड मुंडाइ कै कान फराइ विभूति लगाइ जटाउ वधावै॥
जैसोइ स्वांग करै वपु कौ पुनि तैसोइ मांनि तिसौ ह्वै जावै।
त्यौं यह सुन्दर आपु न जानत भूलि स्वरूप हि और कहावै॥ २६॥

॥ इति स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २४ ॥

फे दाग लगाने से साफ़ नहीं रहते, सैंकल होनेपर साफ होते) फूला=आंख की पूतरी पर छिनका दाग।

(२३) छीलक छोलै=मुहाविरा—वृथा काम करै।

(२५) नसांनी=नष्ट हो गई।

(२६) तिसौ=तैसा।

अथ सांख्य को अंग ॥ २५ ॥

मनहर

क्षिति जल पावक पवन नभ मिलि करि
शब्द रु सपरस रूप रस गन्ध जू।
श्रोत्र त्वक चक्षु घ्रांण रसना रस को ज्ञांन
वाक्य पाणि पाद पायु उपस्थ हि बन्ध जू ॥
मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चौबीस तत्व
पंच विस जीव तत्व करत है धंध जू।
षड विस कौ है ब्रह्म सुन्दर सु निहकर्म
व्यापक अखंड एक रस निरसंध जू ॥ १ ॥
श्रोत्र दिक् त्वक् वायु लोचन प्रकासै रवि
नासिका अश्वनी जिह्वा वरण वपांनिये।
वाक अग्नि हस्त इंद्र चरण उपेन्द्र वल
मेढ्र प्रजापति गुदा मित्र हू कौं ठानिये ॥

अंग २५ वां सांख्य—इसही का ऊपर ज्ञान-समुद्र ग्रन्थ में 'सांख्ययोग' ४ था उपदेश में वर्णन है। इसकी व्याख्या आगे करते हैं।

(१) सांख मत से—५ महाभूत + ५ कर्मेन्द्रियें + ५ ज्ञानेन्द्रियें + १ मन + ५ तन्मात्राएं + १ अहंकार + १ महत्तत्व + १ प्रकृति + १ पुरुष=२४+१=२५ हैं। सांख्य-कारिका ३ री में ये आये हैं-"मूल प्रकृति रविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयःसप्त। षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुषः" ॥ ३ ॥

अर्थात्—मूल प्रकृति १ + महत् आदि ७ (महत्तत्व, अहंकार, शब्दस्पर्श, रूप रस गंध ये ५ तन्मात्राएं) + १६ पदार्थ (५ ज्ञानेंद्रियां + ५ कर्मेंद्रियां + १ मन+५ महाभूत)+१ पुरुष=२५ हुए। और "सांख्यसूत्र" में प्रथम अध्याय के ६० वें सूत्र में—"सत्वरजतमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्। महतोऽहंकारो।

मन चन्द्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि
अहंकार रुद्र कौ प्रभाव करि मांनियें।
जाकी सत्ता पाइ सब देवता प्रकासत हैं
सुन्दर सु आतमा हि न्यारौ करि जानिये ॥ २ ॥

इन्दव

श्रोत्र सुनैं दृग देषत हैं रसना रस घ्राण सुगन्ध पियारौ।
कोमलता त्वकू जानत है पुनि वोलत है मुख शब्द उचारौ॥
पानि ग्रहै पद गौन करै मल मूत्र तजै उभऊ अध द्वारौ।
जाके प्रकाश प्रकाशत हैं सब सुन्दर सोइ रहै घट न्यारौ॥ ३ ॥

वुद्धि भ्रमैं मन चित्त भ्रमै अहंकार भ्रमै कहा जानत नांहीं।
श्रोत्र भ्रमैं त्वकू घ्राण भ्रमै रसना दृग देषि दशौं दिश जांहीं॥
वाकू भ्रमै कर पाद भ्रमैं गुद द्वार उपस्थ भ्रमै कहुं कांहीं।
तेरे भ्रमाये भ्रमैं सवही गुन सुन्दर तूं क्यौं भ्रमै इन मांहीं॥ ४ ॥

वुद्धि कौ वुद्धि रु चित्त कौ चित्त अहं कौ अहं मन कौ मन वोई।
नैंन कौ नैंन हैं वैंन कौ वैंन है कान को कान त्वचा त्वक होई॥
घ्राण को घ्राण है जीभ कौ जीभ है हाथ कौ हात पगौं पग दोई।
सीस कौ सीस है प्राण कौ प्राण है जीव कौ जीव है सुन्दर सोई॥५॥

मनहर (प्रश्न)

कैसैं कै जगत यह रच्यौ है जगत गुरु
मौ सौं कहौ प्रथम ही कौन तत्व कीनौं है।
प्रकृति कि पुरुष कि मह तत्व अहंकार
किधौं उपजाये सत रज तम तीनौं है॥

अहंकारात्तं च तन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं । तन्मात्रेभ्यःस्थूलभूतानि । पुरुषः । इति पंचविंशतिर्गणः" ॥ ६० ॥ ऐसा आया है। परन्तु सुन्दरदास जी श्रीमद्भागवत पुराण में कथित सांख्य के अनुसार तथा वेदांत की छाया से जीव (पुरुष) सहित

किधौं व्योम वायु तेज आपु कै अवनि कौन
किधौं पंच विषय पसार करि लीनौं है।
किधौं दश इन्द्री किधौं अन्तहकरण कौन
सुन्दर कहत किधौं सकल विहीनौ है॥ ६॥

(उत्तर)

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई
प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हू तें तीन गुन सत्व रज तम
तम हू तें महाभूत विषय पसार है॥
रज हू तें इन्द्री दश पृथक-पृथक भई
सत्व हू तें मन आदि देवता विचार है।
ऐसें अनुक्रम करि शिष्य सौं कहत गुरु
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है॥ ७॥

(प्रश्न)

मेरौ रूप भूमि है कि मेरौ रूप आपु है कि
मेरौ रूप तेज है कि मेरौ रूप पौन है।
मेरौ रूप व्योम है कि मेरौ रूप इन्द्री है कि
अंतहकरण है कि वैंठौ है कि गौन है॥

---

२५ तत्व कहते हैं जिनमें अंतः करण चतुष्टय भी है। और २६ वां तत्व ब्रह्म को कहा है।—"पंचभिः पंचभिर्ब्रह्मन्-चतुर्भिर्दशभिस्तथा। एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः" ॥ (भा० ३। २६। ११)। अंतःकरण चतुष्टय माना है।

(६ और ७) शिष्य के प्रश्न के उत्तर में गुरु ने उत्तर दिया है। उसमें ब्रह्म को आदि कारण पुरुष और प्रकृति का बताया है। यह बात सांख्य के ग्रन्थों से नहीं पाई जाती है। यह साधारण वेदांत का मत है। सांख्य में तो प्रकृति (प्रधान) को आदि कारण माना है। पुरुष चेतन असंग कहा गया है। पुरुष (जीव) असंख्य

मेरौ रूप निर्गुण कि अहंकार महतत्व
प्रकृति पुरुष किधौं बोलै है कि मौंन है।
मेरौ रूप थूल है कि शून्य आहि मेरौ रूप
सुन्दर पूछत गुरु मेरौ रूप कौन है॥ ८॥

(उत्तर)

तूं तौ कछु भूमि नांहि आपु तेज वायु नांहिं
व्योम पंच विषै नांहिं सौ तौ भ्रम कूप है।
तूं तौ कछु इन्द्री अरु अंतहकरण नांहिं
तीनौं गुण ऊ तूं नांहि सोऊ छांह धूप है॥
तूं तौ अहंकार नांहि पुनि महतत्व नांहिं
प्रकृति पुरुष नांहिं तूं तौ सु अनूप है।
सुन्दर विचारि ऐसें शिष्य सौं कहत गुरु
"नांहि नांहि करतें रहै सु तेरौ रूप है" ॥ ९ ॥

नाना हैं। सुन्दरदासजी का कथन गीता और भागवत से पुष्ट होता है, परंतु सांख्य से नहीं होता ॥

अहंकार से तीनों गुणों की उत्पत्ति कही सो सांख्य के मतानुसार नहीं है। सांख्य में तो प्रकृति ही में तीनों गुणों को माना है। अहंकार से मन और दशों इन्द्रियां तथा पांच तन्मात्राएं इस तरह ये १६ उत्पन्न होती हैं। (कारिका २४)। अहंकार में तीनों गुण विद्यमान अवश्य ही रहते हैं। गुणों की न्यूनाधिकता ही से भिन्न-भिन्न सृष्टि होती है ॥

(९) सांख्य सूत्र १ अ० सूत्र १३८—१३९—१४०—१४१ आदि का यह भावार्थ है। नांहि नांहि—श्रुति के नेति नेति का अनुवाद है। 'शरीरादि व्यतिरिक्तः पुमान्।" "संहतपरार्थत्वात्" । "त्रिगुणादि विपर्ययात्" । "अधिष्ठानाच्चेति" ।—स्थूल शरीर से लेकर प्रकृति पर्यन्त सबसे पुरुष (आत्मा) भिन्न है। संहतवस्तु (जो अनेक पदार्थों से बने हुए) का अन्य ही भोक्ता होता है। आत्मा संहत पदार्थ

तेरौ तौ स्वरूप है अनूप चिदानंद घन
देह तौ मलीन जड़ या विवेक कीजिये।
तूं तौ निहसंग निराकार अविनाशी अज
देह तौ विनाशवंत ताहि नहिं धीजिये॥
तूं तौ षट ऊरमी रहत सदा एक रस
देह के विकार सब देह सिर दीजिये।
सुन्दर कहत यौं विचारि आपु भिन्न जानि
पर की उपाधि कहा आप पैंचि लीजिये॥ १०॥

देह ई नरक रूप दुख कौन वारपार
देह ई जु स्वर्ग रूप झूठौ सुख मान्यौं है।
देह ई कौं बंध मोक्ष देह ई अप्रोक्ष प्रोक्ष
देह ई के क्रिया कर्म शुभाशुभ ठान्यौं है॥
देह ही में और देह पुसी ह्वै विलास करै
ताहि कौं समुझि बिन आतमा बषान्यौं है।
दोऊ देह तें अलिप्त दोऊ कौ प्रकाश कहै
सुन्दर चेतन्य रूप न्यारौ करि जान्यौं है॥ ११॥

नहीं है। अतः आत्मा अन्यों का भोक्ता है। पुरुष में सुख दुःख मोहादिक नहीं है ये सब गुणों में हैं अतः पुरुष प्रकृति और प्रकृतिजन्य पदार्थों से भिन्न है। पुरुष अधिष्ठाता प्रेरक है इस कारण से यह आत्मा अधिष्ठेय प्रेरित से भिन्न है जैसे राजा प्रजा से और सारथि रथ और घोड़ों से भिन्न हैं। पुरुष चेतन है और इसही को ज्ञान होता है इन्द्रियादि जड़ हैं। अतः जड़ पदार्थों से पुरुष (आत्मा) भिन्न है।

(१०) षट ऊर्मी=छह ऊर्मियां (दुःख) ये हैं—शीत, उष्ण, क्षुधा, तृषा, लोभ और मोह।

(११) देह में और देह—स्थूल देह में सूक्ष्म शरीर। इनका प्रकाश और इनसे भिन्न पुरुष (आत्मा) है। (देखो सांख्य कारिका ३९—४० और ५२)।

देह हलै देह चलै देह ही सौं देह मिलै
देह पाइ देह पीवै देह ई भरत है।
देह ही हिंवारे गरै देह ही पावक जरै
देह रन मांहि झूझै देह ही परत है॥
देह ही अनेक कर्म करत विविध भांति
चम्बक की सत्ता पाइ लोह ज्यौं फिरत है।
आतमा चेतन्यरूप व्यापक साक्षी अनूप
सुन्दर कहत सु तौ जन्मै न मरत है॥ १२॥

देह कौ न देह कछु देह कौ ममत्व छाडि
देह तौ दमामौ दीये देह देह जात है।
घट तौ घटत घरी घरी घट नास होत
घट कै गये तें घट की न फेरि बात है॥
पिंड पिंड मांहि पुनि पिंड कौं उपावत है
पिंड पिंड पात पुनि पिंड ही कौ पात है।
सुन्दर न होइ जासौं सुन्दर कहत जग
सुन्दर चेतन्य रूप सुन्दर विख्यात है॥ १३॥*

---

(१२) चंबक=चंबुक, मिकनातीसो पत्थर जो लोहे को खैंचता है। यह लोहे का भी बनता है। यहां चेतन आत्मा से प्रयोजन है। देह जड़ है परन्तु चेतन आत्मा की सत्ता वा आभास से क्रियावान होती है। तब अनेक चेष्टाएं करती है। चेतन की सत्ता से पृथक् हो तब जड़ ही रह जाती है जैसे मृतक शरीर।

(१३) न देह=मत दे, अर्थात इस जड़ शरीर के अर्थ कुछ मत कर, आत्मा के अर्थ कर। दमामो=नक्कारा, अर्थात् धड़ा-धड़ डंके की चोट रूपांतरित होकर बदलती जाती है, स्थिर नहीं है। पिंड=शरीर, पुद्गल, देह। सुन्दर=परम पवित्र आत्मा। इस देह का नाम 'सुन्दर' रक्खा है सो इससे कुछ प्रेम मत कर। वास्तव में सुन्दर जो आत्मा है उस चेतन पुरुष उसका साक्षात्कार कर॥ *यह चित्रकाव्य भी है।

(प्रश्नोत्तर)

देह यह किन कौ है देह पंच भूतनि कौ
पंच भूत कौन तें हैं तामसाहंकार तें।
अहंकार कौन तें है जासौं महतत्व कहैं
महतत्व कौन तें है प्रकृति मंझार तें॥
प्रकृति हू कौन तें है पुरुष है जाको नाम
पुरुष सो कौन तें है ब्रह्म निराधार तें।
ब्रह्म अब जान्यौ हम जान्यौ है तौ निश्चै करि
निश्चै हम कीयौ है तौ चुप मुख द्वार तें॥ १४॥

एक घट मांहि तौ सुगन्ध जल भरि राख्यौ
एक घट मांहि तौ दुर्गन्ध जल भर्‌यौ है।
एक घट मांहि पुनि गंगोदिक राख्यौ आंनि
एक घट मांहि आंनि मदिराऊ कर्‌यौ है॥
एक घृत एक तेल एक मांहि लघुनीति
सबही में सविता कौ प्रतिबिंब पर्‌यौ है।
तैसें हिं सुन्दर ऊंच नीच मध्य एक ब्रह्म
देह भेद देपि भिन्न भिन्न नाम धर्‌यौ है॥ १५॥

भूमि परें अप अप हू कें परें पावक है
पावक कें परें पुनि वायु हू वहतु है।
वायु परें व्योम व्योम हू कें परें इन्द्री दश
इन्द्रिन कें परें अन्तःकरण रहतु है॥

---

(१४) इस सवैये में वही मत अपना सुन्दरदासजी ने प्रतिपादन किया है जो ऊपर ७ वें सवैये में वर्णित है। सांख्य शास्त्र में 'ब्रह्म' शब्द 'बुद्धि' का पर्यायवाची आया है। प्रकृति को अनादि कहा है। चुप मुखद्वार तें=ब्रह्म साक्षात्कार होता है तो वह वर्णन में नहीं आ सकता। वह गूंगे का गुड़ है॥

(१५) गुण कर्म स्वभाव के भेद से शरीरों के भेद हैं। लघुनीति=मूत्र।

अन्तहकरण परै तीनौं गुन अहंकार
अहंकार परै महतत्व कौं लहतु है।
महतत्व परै मूल माया माया परै ब्रह्म
ताहि तैं परातंपर सुन्दर कहतु है॥ १६॥

भूमि तौ विलीन गन्ध गन्ध हू विलीन आप
आप हू विलीन रस रस तेज पातु है।
तेज रूप रूप वायु वायु हू सपर्श लीन
सो सपर्श व्योम शब्द तम हि विलात है॥
इन्द्री दश रज मन देवता विलीन सत्व
तीन गुन अहं महत्तत्व गिलि जात है।
महतत्व प्रकृति प्रकृति हू पुरुष लीन
सुन्दर पुरुष जाइ ब्रह्म मैं समात है॥ १७॥

आतमा अचल शुद्ध एक रस रहै सदा
देह विवहारनि मैं देह ही सौ जानिये।
जैसैं शशि मण्डल अभंग नहिं भंग होइ
कला आवै जाहि घटि वढि सौ वषानिये॥
जैसैं द्रुम सु थिर नदी के टटि देपियत
नदी के प्रवाह मांहि चलतौ सौ मांनिये।
तैसैं आतमा अतीत देह कौं प्रकाशक है
सुन्दर कहत यौं विचारि भ्रम भांनिये॥ १८॥

---

(१६) इस छंद में सुन्दरदासजी ने 'परात्पर' की सिद्धि बहुत चतुराई और सफाई से की है। पर का अर्थ श्रेष्ठ और उत्तम का भी है।

(१७) परात्पर की परंपरा की तरह यह लय का तारतम्य बहुत अच्छा दरसाया गया है।

(१८) चन्द्रमा की कला सूर्य के तेज, अपनी गति और पृथ्वी की गति से

तैसैं ही सुन्दर मिल्यौ आतमा अनातमा जू
भिन्न भिन्न करिये सु तौ सांख्य कहतु है ॥ २३ ॥

अन्न-मय कोश सु तौ पिंड है प्रगट यह
प्रान-मय कोश पंच वायु हू वपांनिये ।
मनो-मय कोश पंच कर्म इन्द्रिय प्रसिद्धि
पंच ज्ञान इन्द्रिय विज्ञान कोश जानिये ॥
जाग्रत स्वपन विषै कहिये चत्वार कोश
सुपुप्ति मांहि कोश आनन्दमय मांनिये ।
पंच कोश आत्म कौ जीव नाम कहियतु है
सुन्दर शंकर भाष्य साष्य यह आनिये ॥ २४ ॥

जाग्रत अवस्था जैसैं सदन मैं वैठियत
तहां कछु होइ ताहि भली भांति देषिये ।
स्वपन अवस्था जैसैं वोवरे मैं वैठै जाइ
रहैं रहैं उहांऊ की वस्तु सब लेपिये ।
सुपुपति भौंहरे मैं वैठै तें न सूझि परै
महा अंध घोर तहां कछुव न पेपिये ।
व्योम अनसूत घर वोवरे भौंहरे मांहिं
सुन्दर साक्षी स्वरूप तुरिया विशेपिये ॥ २५ ॥

---

(२३) वांन=मिलित धातु ।

(२४) पंचकोशों का वर्णन करते हुए शांकरभाष्य का प्रमाण दिया है जो शारीरक सूत्र पर है ।

(२५) जाग्रत, स्वप्न और सुपुप्ति तीन अवस्थाओं का निरूपण दृष्टांतों से किया है । सदन=भवन, घर । वोवरा=मट्टी की कोठली । तीनों अवस्थाओं में मन और बुद्धि का संकोच या अभाव सा रहता है परन्तु आत्मा सब में एकरस प्रकाशरूप विद्यमान रहता है ।

जाग्रत के विषै जीव नैंननि मैं देषियत
विविधि व्यौहार सब इन्द्रिनि ग्रहत है।
स्वपने हूं मांहि पुनि वैसे ही व्यौहार होत
नैंननि तै आइ करि कंठ मैं रहतु है॥
सुषुपति हृदै मैं विलीन होइ जात जब
जाग्रत स्वपन की तौ सुधि न लहत है।
तीनि हूं अवस्था कौ साक्षी जब जानै आपु
तुरिया स्वरूप वह सुन्दर कहत है॥ २६॥

इन्दव

जाग्रत रूप लियें सब तत्वनि इन्द्रिय द्वार करै व्यवहारौ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ मानत है सुख दुःख अपारौ॥
लीन सवै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अंधारौ।
तीनों कौ साक्षि रहै तुरियातत सुन्दर सोइ स्वरूप हमारौ॥ २७॥
भूमि तें सूक्षम आपु कौं जानहु आपु तें सूक्षम तेज कौ अंगा।
तेज तें सूक्षम वायु वहै नित वायु तें सूक्षम व्योम उतंगा॥
व्योम तें सूक्षम है गुन तीन तिन्हूं तें अहं महतत्व प्रसंगा।
ताहु तें सूक्षम मूल प्रकृत्ति जु मूल तें सुन्दर ब्रह्म अभंगा॥ २८॥
ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि अरूप अखंडित है सब मांहीं।
ईश्वर पावक रासि प्रचंड जु संग उपाधि लिये वर तांहीं॥
जीव अनन्त मसाल चिराक सु दीप पतंग अनेक दिपांहीं।
सुन्दर द्वैत उपाधि मिटै जब ईश्वर जीव जुदै कछु नांहीं॥ २९॥

---

(२६) यह मत भी वेदांत ही का है। सांख्य में न्यूनाधिक तीनों अवस्थाओं का निर्देश है परन्तु तुरीया अवस्था यह वेदांत की ही परिभाषा प्रायः देखी जाती है। सांख्य में पुरुष ही नाम बहुत करके आता है।

(२८) अभंगा=अखंड, निर्विकार (आत्मा वा पुरुष)।

(२९) इस छन्द में वर्णित मत वेदांत का है सांख्य का नहीं है। सांख्य में

ज्यौं नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिले सु दिपांहीं।
चोट अनेक परैं घन की सिर लोह वधै कछु पावक नांहीं॥
पावक लीन भयौ अपनैं घर शीतल लोह भयौ तव तांहीं।
त्यौं यह आतम देह निरंतर सुन्दर भिन्न रहै मिलि मांहीं॥ ३०॥

आतम चेतनि शुद्ध निरंतर भिन्न रहै कहुं लिप्त न होई।
है जड चेतन अंतहकर्ण जु शुद्ध अशुद्ध लियें गुन दोई॥
देह अशुद्ध मलीन महा जड हालि न चालि सकै पुनि वोई।
सुन्दर तीनि विभाग किये विन भूलि परै भ्रम तैं सव कोई॥ ३१॥

सवइया।

ब्रह्म अरूप अरूपी पावक व्यापक जुगल न दीसत रंग।
देह दार तें प्रगट देपियत अंतःकरण अग्नि द्वय अंग॥
तेज प्रकाश कल्पना तौ लगि जौ लगि रहै उपाधि प्रसंग।
जहं के तहां लीन पुनि होई सुन्दर दोऊ सदा अभंग॥ ३२॥

देह सराव तेल पुनि मारुत वाती अंतःकरण विचार।
प्रगट जोति यह चेतनि दीसै जातैं भयौ सकल उजियार॥
व्यापक अग्नि मथन करि जोये दीपक वहुत भांति विस्तार।
सुन्दर अद्भुत रचना तेरी तूं ही एक अनेक प्रकार॥ ३३॥

पुरुष (आत्मा) अनन्त वा वहुत्व करके माने हैं। प्रत्येक शरीर में भिन्न पुरुष है। वेदांत मत में एक अद्वितीय आत्मा ही उपाधि के भेद से शरीरों में भिन्न २ भासती हैं।

(३०) अग्नि (पावक) दृष्टांत दोनों मतों में दिया जाता है। परन्तु वेदांत मत से सर्व में एक ही आत्मा उपाधि भेद से है और सांख्य मत से भिन्न भिन्न शरीरों में भिन्न भिन्न पुरुष हैं।

(३१) शुद्ध=सतोगुण प्रधान। अशुद्ध=तमोगुण प्रधान।

(३२) दार=लकड़ी। लकड़ी की मंथनी की रगड़ से आग प्रगट होती है।

(३३) सराव=दीपक जलाने की सराई।

तिल में तेल दूध में घृत है दार मांहि पावक पहिचांनि ।
पुहप मांहि ज्यौं प्रगट वासना इक्षु मांहि रस कहत वपांनि ॥
पोसत मांहि अफीम निरंतर वनस्पती में सहत प्रवांनि ।
सुन्दर भिन्न मिल्यौ पुनि दीसत देह मांहि यौं आतम जांनि ॥ ३४ ॥

जाग्रत स्वप्न सुषोपति तीनौं अंतःकरण अवस्था पावै ।
प्राण चलै जाग्रत अरु स्वपनै सुषुपति मैं पुनि अह निसि धावै ॥
प्राण गये तें रहै न कोऊ सकल देप तें थाट विलावै ।
सुन्दर आतम तत्व निरंतर सौ तौ कतहूं जाइ न आवै ॥ ३५ ॥

पन्द्रह तत्व स्थूल कुंभ मैं सूक्षम लिंग भर्यौ ज्यौं तोय ।
उहां जीव उहां आभा दीसै ब्रह्म इन्दु प्रतिबिंबे दोइ ॥
घट फूटै जल गयौ विलै है अंतहकरण कहै नहिं कोइ ।
तब प्रतिबिंब मिलै शशि बिंबहिं सुन्दर जीव ब्रह्ममय होइ ॥ ३६ ॥

मनहर

जैसैं व्योम कुम्भ कै बाहिर अरु भीतर हू
कोऊ नर कुम्भ कौं हजार कोस लै गयौ ।
ज्यौं ही व्योम इहां त्यौं ही उहां पुनि है अखंड
इहां न बिछोह न तौ उहां मिलाप है भयौ ॥
कुम्भ तौ नयौ न पुरानौ होइ कै बिनसि जाइ
व्योम तौ न है पुरानौ न तौ कछु है नयौ ।
तैसें ही सुन्दर देह आवै रहै नाश होइ
आतमा अचल अविनाशी है अनामयौ ॥ ३७ ॥*

देह कै संयोग ही तैं शीत लगै घाम लगै
देह कै संयोग ही तैं क्षुधा तृषा पौंन कौं ।

---

(३५) प्राण=जीवत्व जो चेतन आत्मा का प्रकृति में आभास मात्र है । इसी को आगे के ३६ वें सवैये में प्रतिबिंब मात्र कहा है । घट का जल मानों लिंग (सूक्ष्म) शरीर है उसमें चांद का प्रतिबिंब जीव है ।

देह कै संयोग ही तें कटुक मधुर स्वाद
देह कै संयोग कहै पाटौ पारौ लौन कौं ॥
देह के संयोग कहै मुख तें अनेक बात
देह के संयोग ही पकरि रहै मौंन कौं।
सुन्दर देह कै संग सुख मांनै दुख मांनै
देह कौ संयोग गयौ सुख दुख कौन कौं ॥ ३८ ॥※

आपु की प्रसंसा सुनि आपु ही पुसाल होइ
आपु ही की निंदा सुनि आपु मुरझाइ है।
आपु ही कौं सुख मांनि आपु सुख पावत है
आपु ही कौं दुख मांनि आपु दुख पाइ है ॥
आपु ही की रक्षा करै आपु ही की घात करै
आपु ही हत्यारौ होइ गंगा जाइ न्हाइ है।
सुन्दर कहत ऐसैं देह हो कौं आपु मांनि
निज रूप भूलि कै करत हाइ हाइ है ॥ ३९ ॥※

॥ इति सांख्य ज्ञान को अंग ॥ २५ ॥

※ ये तीनों छन्द (३७, ३८, ३९) मूल (क) वा (ख) पुस्तक फतहपुर-वाली में नहीं हैं, उसमें ३६ तक ही हैं। छपी हुई पुस्तकों वा स्फुट काव्य में है।

(३७) (३८) (३९) आत्मा में कर्त्तापन का अभिमान दरसता है, सो इसका कारण सांख्य मत से, "उपराग" है। "उपराग" नाम आत्मा का जो चित् है अर्थात् प्रकृति वा बुद्धि (महत्) तत्व में प्रतिबिंब पड़ने से वा सान्निध्य से जो कर्तृत्व का रंग भासना है सो ही है।—"उपरागात्कर्त्तृत्वं चित्सान्निध्यात् २"। सांख्य सूत्र ॥ १ ॥ १६३ ॥ यही बात वेदांत के अध्यास से समझी जाती है। इतर का इतर में—आत्मा का अनात्मा में और अनात्मा का आत्मा में आरोप किया जाय यही अध्यास है। चित् के सकाश से जड़ प्रकृति काम करती है, तो अहंता के

अथ विचार को अंग ॥ २६ ॥

मनहर

प्रथम श्रवण करि चित्त एकाग्र धरि
गुरु सन्त आगम कहैं सु उर धारिये।
दुतिय मनन वारंवार ही विचारि देषै
जोई कछु सुनैं ताहि फेरि कैं संभारिये ॥
त्रितिय ताहि प्रकार निदध्यास नीकैं करै
निहसंग विचरत अपुनपौ तारिये।
सो साक्षातकार याही साधन करत होइ
सुन्दर कहत द्वैत वुद्धि कौं निवारिये ॥ १ ॥

देषै तौ विचार करि सुनै तौ विचार करि
वोलै तौ विचार करि करै तौ विचार है।
पाइ तौ विचार करि पीवै तौ विचार करि
सोवै तौ विचार करि तौ ही तौ उवार है ॥
वैठै तौ विचार करि ऊठै तौ विचार करि
चलै तौ विचार करि सोई मत सार है।
देइ तौ विचार करि लेइ तौ विचार करि
सुन्दर विचार करि याही निरधार है ॥ २ ॥

उदाप से आत्मा करता भास जाता है। वास्तव में आत्मा अकर्त्ता है। अनामयो=अनामय=निर्लेप, शुद्ध, निर्गुण ।

(१) इस छन्द में वेदांत की प्रक्रिया के साधनचतुष्टय—श्रवण, मनन, निदिध्यासन समादि षट्-सम्पत्ति—को संक्षेप में कहा है। चौथा साक्षात्कार नाम देकर संक्षेप किया है।

एक ही विचार करि सुख दुख सम जानै
एक ही विचार करि मल सब धोइ है।
एक ही विचार करि संसार समुद्र तिरै
एक ही विचार करि पारंगत होइ है॥
एक ही विचार करि बुद्धि नाना भाव तजै
एक ही विचार करि दूसरौ न कोइ है।
एक ही विचार करि सुन्दर संदेह मिटै
एक ही विचार करि एक ब्रह्म जोइ है॥ ३॥

इन्दव

रूप कौ नास भयौ कछु देषिय रूप तौ रूप हि मांहि समावै।
रूप के मध्य अरूप अखंडित सौ तौ कहूं कछु जाइ न आवै॥
वीचि अज्ञान भयौ नव तत्व कौ वेद पुरान सबै कोउ गावै।
सोउ विचार करै जब सुन्दर सोधत ताहि कहूं नहिं पावै॥ ४॥
भूमि सु तौ नहिं गंध कौं छाडत नीर सु तौ रस तें नहिं न्यारौ।
तेज सु तौ मिलि रूप रह्यौ पुनि वायु सपर्स सदा सु पियारौ॥

---

(३) "जोइ है"—इसके दो अर्थ भासते हैं—१—जो ब्रह्म है उसे। २—ब्रह्म का प्रत्यक्ष देखें।

(४) "रूप तो रूपहि मांहि"=जगत् सारा नाम रूपात्मक है। क्षर है। रूप किसी पदार्थ को मिट कर तत्व रूप में विकृत होता है। यही रूप का रूप में समाना या बदलना है। रूप नाशमान है, वस्तु (वास्तव तत्व) नाशमान नहीं है। नवतत्व=पंचभूत (पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश), मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। ताहि कहूं नहीं पावै।—साधारण विचार से आत्म साक्षात्कार नहीं होता है। विशेष साधन, भगवत् कृपा तथा गुरु कृपा और भाग्य से ही आत्मा का साक्षात्कार होता है। यही बात कई जगह पहिले इस ग्रन्थ में आई है।

ब्योम रु शब्द जुदे नहिं होत सु ऐसैं हिं अन्तःकरण विचारौ ।
ये नव तत्व मिलें इन तत्वनि सुन्दर भिन्न स्वरूप हमारौ ॥ ५ ॥
क्षीण सपुष्ट शरीर कौ धर्म जु शीत हू ऊष्ण जरा मृति ठानैं ।
भूख तृषा गुन प्रान कौं व्यापत शोक रु मोह उभै मन आनैं ॥
बुद्धि विचार करै निस वासर चित्त चित्तै सु अहं अभिमानैं ।
सर्व कौ प्रेरक सर्व कौ साक्षिय सुन्दर आपु कौ न्यारौ हि जानैं ॥ ६ ॥
एकहि कूप के नीर तें सींचत ईक्ष अफीम हि अंब अनारा ।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि मिष्ट कटूक पटा अरु पारा ॥
त्यौं हि उपाधि संयोग तें आतम दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा ।
काढि लियें जु विचार विवस्वत सुन्दर सुद्ध स्वरूप है न्यारा ॥ ७ ॥
रूप परा कौ न जानि परै कछु ऊठत हैं जिहिं मूल तें छांनीं ।
नाभि विषै मिलि सप्त स्वरन्नि पुरुष्प संयोग पश्यंति वषांनीं ॥
नाद संयोग हृदै पुनि कंठ जु मध्यमा याहि विचार तें जांनीं ।
अक्षर भेद लियें मुख द्वार सु बोलत सुन्दर वैखरी वांनीं ॥ ८ ॥
ज्यौं कोउ रोग भयौ नर कै घर वैद कहै यह वायु विकारा ।
कोउ कहै ग्रह आइ लगे सब पुन्य कियें कछु होइ उवारा ॥
कोउ कहै इहि चूक परी कछु देवनि दोष कियौ निरधारा ।
तैसें हि सुन्दर तन्त्रनि के मत भिन्न हिं भिन्न कहैं जु विचारा ॥ ९ ॥

---

(५) "इन तत्वनि"=इन नव तत्वों से हमारा (आत्मा का) स्वरूप भिन्न (पृथक्) है।

(६) निर्गुण ब्रह्म का लक्षण कहा है।

(७) विवस्वत=सूर्य। आत्मा उपाधि-रहित हो तब वही आत्मा ही है। जैसे सूर्य के आगे से बद्दल आदि दूर हो जाने से शुद्ध प्रकाशमान दिखाई देता है।

(८) चार प्रकार की वाणियां—परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी—तुरिय, कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीरों में क्रमशः वर्त्तती है।

जे विपई तम पूरि रहे तिनि कौं रजनी मंहि बादर छायौ ।
कोउ मुमुक्षु किये गुरुदेव तिन्हैं भय जुक्त जु शब्द सुनायौ ॥
बादल दूरि भये उन्ह के पुनि तारनि सौं रजु सर्प दिपायौ ।
सुन्दर सूर प्रकाशत ही भ्रम दूरि भयौ रजु कौ रजु पायौ ॥ १० ॥
कर्म सुभासुभ को रजनी पुनि अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी ।
भक्ति सु तौ यह है अरुणोदय अंत निसा दिन संधि विचारी ॥
ज्ञान सु भान सदोदित बासर वेद पुरान कहैं जु पुकारी ।
सुन्दर तीन प्रभाव बपानत यौं निहचै संमुझै विधि सारी ॥ ११ ॥

मनहर

देह ई कौं आपु मानि देह ई सौ होइ रह्यौ
जडता अज्ञान तम शूद्र सोई जांनिये ।
इन्द्रिनि के व्यापारनि अत्यन्त निपुनि बुद्धि
तमो रज दुहुं करि वैश्य हू प्रमांनिये ॥
अंतहकरण मांहि अहंकार बुद्धि जाकै
रजोगुण वर्द्धमान क्षत्री पहिचांनिये ।
सत्व गुण बुद्धि एक आतमा विचार जाकै
सुन्दर कहत वह ब्राह्मन बपांनिये ॥ १२ ॥

---

(१०) ज्ञान की क्रमिक दशा वा अवस्था और उपाधि की न्यूनाधिक्यता से ऐसा होता है ।

(११) यह छन्द स्वामीजी का अत्यंत प्रसिद्ध और सार भरा है । इसमें त्रिकाण्ड प्रकरण—कर्म, भक्ति (उपासना) और ज्ञान- को बहुत सुन्दरता से वर्णन किया है । प्रभाव=अवस्था, प्रकरण वा कक्षा ।

(१२) गुणों के पंचीकरण से ज्ञान (वा ज्ञानी) की चार अवस्थाएं (जातिएं) कही हैं ।

आतमा के विषै देह आइ करि नाश होइ
आतमा अखंड सदा एकई रहतु है।
जैसैं सांप कंचुकी कों लियें रहै कोऊ दिन
जीरन उतारि करि नूतन गहतु है॥
जैसैं द्रुम हू कै पत्र फूल फल आइ होत
तिन के गये तें द्रुम औरउ लहतु है।
जैसैं व्योम मांहि अभ्र होइ कैं विलाइ जात
ऐसौ सौ विचार कछु सुन्दर कहतु है॥ १३॥
परी की डरी सौं अंक लिपि कैं विचारियत
लिपत लिपत वहै डरी घसि जात है।
लेपौ समुझ्यौ है जब संमुझि परी है तब
जोई कछु सही भयौ सोई ठहरात है॥
दार ही सौं दार मथि पावक प्रगट भयौ
वह दार जारि पुनि पावक समात है।
तैसैं ही सुन्दर बुद्धि ब्रह्म कौ विचार करि
करत करत वह बुद्धि हू विलात है॥ १४॥
आपु कौं संमुझि देषि आपु ही सकल मांहि
आपु ही मैं सकल जगत देषियतु है।

---

(१३) आत्मा समुद्र समान विशाल और महान है। देह बुद्बुदा सा है।

(१४) यह उदाहरण स्वामीजी ने बहुत उच्चकोटि का दिया है। और इसमें दार्शनिक मर्म भला भरा है। इस पर जिज्ञासु को बहुत ही गहरा विचार रखना चाहिए। परात्पर ब्रह्म के लिये "योबुद्धेःपरतस्तुसः"। जो बुद्धि से परे है सोही वह (परमात्मा) है। अर्थात् बुद्धि उसके खोजने में मर मिटती है तब वह मिलता है। बुद्धि (अहंकार वृत्ति) मिटने पर ही आत्मा का प्रकाश मिलता है।

जैसें व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है
बादल अनेक नाना रूप लेपियतु है ॥
जैसें भूमि घट जल तरंग पावक दीप
वायु में बघूरा यौं ही विश्व रेपियतु है ।
ऐसें ही विचारत विचार हू विलीन होइ
सुन्दर ही सुन्दर रहत पेपियतु है ॥ १५ ॥

देह कौ संयोग पाइ जीव ऐसो नाम भयौ
घट के संयोग घटाकाश ज्यौं कहायौ है ।
ईश्वर हू सकल विराट में विराजमान
मठ के संयोग मठाकाश नाम पायौ है ॥
महाकाश मांहि सब घट मठ देपियत
बाहिर भीतर एक गगन समायौ है ।
तैसें ही सुन्दर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव
त्रिविधि उपाधि भेद ग्रन्थनि मैं गायौ है ॥ १६ ॥

प्रश्न

देह दुख पावै किधौं इन्द्री दुख पावै किधौं
प्रान दुख पावै जब लहै न अहार कौं ।
मन दुख पावै किधौं बुद्धि दुख पावै किधौं
चित्त दुख पावै किधौं दुख अहंकार कौं ॥

---

(१५) रेखियतु है=रेखांकित होता है=रूपधारी हो जाता है। अरूप में से रूप निकलता है।

(१६) वेदांत मत की यह प्रसिद्ध कोटि है—घटाकाश मठाकाश और महाकाश। ये ब्रह्म, ईश्वर और जीव को समझाने को दृष्टांत हैं कि उपाधि के भेद से इनका भेद प्रतीत होता है। वास्तव में घटाकाश और मठाकाश भी महाकाश (के अंतर्गत) भेद या विभागमात्र हैं।

गुण दुख पावै किधौं सूत्र दुख पावै किधौं
प्रकृति दुख पावै कि पुरुष अधार कौं ।
सुन्दर पूछत कछु जानि न परत तातैं
कौंन दुख पावै गुरु कहौ या विचार कौं १७ ॥

उत्तर

देह कौं तौ दुख नांहि देह पंचभूतनि की
इन्द्रिनि कौ दुख नांहि दुख नांहि प्रान कौं ।
मन हू कौं दुख नांहि बुद्धि हू कौं दुख नांहि
चित्त हू कौं दुख नाहिं नाहिं अभिमान कौं ॥
गुणनि कौ दुख नांहि सूत्र हू कौं दुख नांहि
प्रकृति कौं दुख नांहि दुख न पुमान कौं ।
सुन्दर विचारि ऐसैं शिष्य सौं कहत गुरु
दुख एक देपियत वीच के अज्ञान कौं ॥ १८ ॥

पृथवी भाजन अंग कनक कटक पुनि
जल हू तरंग दोऊ देपि कै वपांनिये ।
कारण कारज ये तौ प्रगट ही थूल रूप
ताही तें नजर मांहि देपि करि आंनिये ॥
पावक पवन व्योम ये तौ नहिं देपियत
दीपक वघूरा अभ्र प्रत्यक्ष प्रमांनिये ।
आतमा अरूप अति सूक्षम तें सूक्षम है
सुन्दर कारण तातैं देह मैं न जांनिये ॥ १९ ॥

(१७-१८) सतरहवें छन्द में शिष्य का प्रश्न है। और अठारहवें में गुरु ने उत्तर देकर समझाया है।

(१९) कटक=कड़ा, वलिया । सोने का बनता है। सोना कारण और कड़ा कार्य है। "कारण तातैं देह में न जानिये"=आत्मा अणोरणीय अत्यंत सूक्ष्म है, स्थूल न होने से देह में इन्द्रिय और बुद्धि आदिकों से प्रत्यक्ष नहीं होता है।

जैन मत उहै जिनराज कौं न भूलि जाइ
दान तप शील साची भावना तैं तरिये ।
मन वच काय शुद्ध सब सौं दयालु रहै
दोष बुद्धि दूरि करि दया उर धरिये ॥
जोध नाम तब जब मन कौ निरोध होइ
बोध कौं बिचारि सोध आतमा कौ करिये ।
सुन्दर कहत ऐसैं जीवत ही मुक्त होय
मुये तें मुक्ति कहैं तिनि कौं परिहरिये ॥ २० ॥

योगी जागै योग साधि भोगी जागै भोग रत
रोगी जागै दुख मांहि रोग की उपाधि मैं ।
चोर जागै चोरी कौं पाहरू जागै रापिबे कौं
निरधन जागै धन पाइबे की ब्याधि मैं ॥
दिवाली की राति जागै मंत्र वादी मंत्र जपि
क्यौं ही मेरौ मंत्र फुरै देपौं मंत्र साधि मैं ।
बिबिधि उपाइ करि जागत जगत सब
सोवै सुख सुन्दर सहज की समाधि मैं ॥ २१ ॥*

योगी तूं कहावै तौ तूं याहि योग कौं विचारि
आतमा कौं जोरि परमातमा ही जांनिये ।
न्यासी तूं कहावै तौ तूं देह कौ संन्यास करि
बाहर भींतर एक ब्रह्म पहिचांनिये ॥

---

(२०) जीवन्मुक्ति (जैनशासन के सहारे) बताई है । परिहरिये=त्यागिये । छोड़िये ।

* २१ छन्द से लगा कर २७ तक ७ छन्द मूल (क) पुस्तक में नहीं हैं (ख) पुस्तक में हैं । सम्भवतः एक पत्र ही लिखने में रह गया होगा । अन्तिम छन्द उस पुस्तक का २१ वां और इसका २८ वां "देह वोर देपिय तो......" दोनों में है ॥

जंगम कहावै तौ तूं एक शिव ही कौं देषि
थावर जंगम सब द्वैत भ्रम मानिये ॥
जैनी तूं कहावै तौ तूं दोष बुद्धि दूरि करि
सुन्दर कहत जिनराज उर आंनिये ॥ २२ ॥

जती तूं कहावै तौ तूं एक या जतन करि
याही जत नीकौ एक आतमा कौं हेरिये ।
तपसी कहावै तौ तूं एक याही तप साधि
याही तप नीकौ मन इन्द्रीन कौ घेरिये ॥
भक्त तूं कहावै तौ तूं चित्त एक ठौर आंनि
स्वासो स्वास सोहं जाप याही माला फेरिये ॥
संजमी कहावै तौ तूं एक या संजम करि
सुन्दर कहत देह आतमा निवेरिये ॥ २३ ॥

ब्राह्मण कहावै तौ तूं ब्रह्म कौ विचार करि
सत रज तम तीनौं ताग तोरि डारिये ।
पंडित कहावै तौ तूं याही एक पाठ पढि
अंत वेद मैं कह्यौ सु वाही कौं विचारिये ।
ज्योतिषी कहावै तौ तूं ज्योति कौ प्रकाश करि
अन्तहकरण अन्धकार कौं निवारिये ॥
आगमी कहावै तौ तूं अगम ठौर कौं जांनि
सुन्दर कहत याही अनुभव धारिये ॥ २४ ॥

ब्राह्मण कहावै तौ तूं आपु ही कौं ब्रह्म जानि
अति ही पवित्र सुख सागर मैं न्हाइये ।

---

(२४) ताग=तागा=गुण (सत, रज, तम तीनों गुण हैं। गुण तागे या धागे को भी कहते हैं) अन्त वेद मैं=वेदांत में ।

क्षत्री तूं कहावै तौ तूं प्रजा प्रतिपाल करि
सीस पर एक ज्ञान क्षत्र कौ फिराइये ॥
वैश्य तूं कहावै तौ तूं एक ही व्यापार जानि
आतमा कौ लाभ होइ अनायास पाइये ।
शूद्र तूं कहावै तौ तूं शूद्र देह त्याग करि
सुन्दर कहत निज रूप मैं समाइये ॥ २५ ॥

ब्रह्मचारी होइ तौ तूं वेद कौ विचार देषि
ताही कौ समझि जोई कह्यौ वेद अंत है ।
गृही तूं कहावै तौ तूं सुमति त्रिया कौं व्याहि
जाके ज्ञान पुत्र होइ उही भाग्यवंत है ॥
वानप्रस्थ होइ तौ तूं काया वन वास करि
कर्म कंद मूल पाहि फल हू अनंत है ।
संन्यासी कहावै तौ तूं तीन्यौं लोक न्यास करि
सुन्दर परमहंस होइ या सिधंत है ॥ २६ ॥

रामानन्दी होइ तौ तूं तुच्छानंद त्याग करि
राम नाम भजि रामानन्द ही कौं ध्याइये ।
निंबादती होइ तौ तूं कामना कटुक त्यागि
अमृत कौ पान करि अधिक अघाइये ॥
मध्वाचारी होइ तौ तूं मधुर मत कौं विचारि
मधुर मधुर धुनि हृदै मध्य गाइये ।
विष्णुस्वामी होइ तौ तूं व्यापक विष्णु कौं जांनि
सुन्दर विष्णु कौं भजि विष्णु मैं समाइये ॥ २७ ॥

---

(२५) क्षत्र=यहां छत्र से अभिप्राय है ।

(२६) "काया वन वासि करि"=काया को विषयों रूपी वृक्षों वा जीव-जन्तुओं से उजाड़ कर के वन बना दे । और कर्म को खाजा, अर्थात् निर्मूल कर दे, नष्ट कर दे ।

(२७) निंबादत्ति=निंबादित्य मार्ग का=निंबार्काचार्य का अनुगामी । यहां निम्न

देह वोर देषिये तौ देह पंच भूतनि की
ब्रह्मा अरु कीट लग देह ई प्रधांन है।
प्रान वोर देषियें तौ प्रान सब ही की एक
क्षुधा पुनि तृषा दोऊ व्यापत समांन है॥
मन वोर देषिये तौ मन कौ स्वभाव एक
संकल्प विकल्प करि सदा ई अज्ञांन है।
आतमा विचार कीयें आतमा ई दीसै एक
सुन्दर कहत कोऊ दूसरौ न आंन है॥ २८॥

॥ इति विचार को अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ ब्रह्म निःकलंक को अंग ॥२७॥

मनहर

एक कोऊ दाता गाइ ब्राह्मण कौं देत दान
एक कोऊ दया हीन मारत निशंक है।
एक कोऊ तपस्वी तपस्या मांहि सावधान
एक कोऊ कामी क्रीडै कामिनी कै अंक है॥
एक कोऊ रूपवंत अधिक विराजमान
एक कोऊ कोढी कोढ चूवत करंक है।

शब्द से उत्प्रेक्षा की है। नींव कड़वा होता है। और निम्बार्क स्वामी ने साधु के भोजनदान के हेतु से सूर्य को नींव के वृक्ष पर दिखा दिया था। इसही से यह निम्बार्क नाम प्रसिद्ध हो चला। निंव से श्लेषार्थ लिया है। विष्णु-स्वामी—एक सम्प्रदाय वैष्णवों की, राधिका को भी मानते हैं। विष्णु-स्वामी दक्षिण में एक प्रसिद्ध भक्त हुए हैं।

आरसी मैं प्रतिबिंब सब ही कौ देषियत
सुन्दर कहत ऐसैं ब्रह्म निःकलंक है ॥ १ ॥

रवि के प्रकाश तैं प्रकाश होत नेत्रनि कौ
सब कोऊ सुभासुभ कर्म कौं करत है।
कोऊ यज्ञ दान जप तप जम नेम ब्रत
कोऊ इन्द्री बसि करि ध्यान कौं धरत है॥
कोऊ परदारा परधन कौं तकत जाइ
कोऊ हिंसा करि कैं उदर कौं भरत हैं।
सुन्दर कहत ब्रह्म साक्षी रूप एकरस
वाही मैं उपजि करि वाही मैं मरत है ॥ २ ॥

जैसैं जल जंतु जल ही मैं उतपन्न होंहिं
जल ही मैं विचरत जल के आधार हैं।
जल ही मैं क्रीडत विविधि विवहार होत
काम क्रोध लोभ मोह जल मैं संहार है॥
जल कौं न लागै कछु जीवन के राग दोष
उन ही के क्रिया कर्म उन ही की लार हैं।
तैसैं ही सुन्दर यह ब्रह्म मैं जगत सब
ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत विकार हैं॥ ३ ॥

---

(१) यह दर्पण का दृष्टांत वेदांतादि में प्रसिद्ध है। कोई भी अपना मुख में देखें परन्तु दर्पण को कोई लेप वा मल उसमें नहीं आता है। जैसे वह निर्मल है वैसे ही ब्रह्म निर्मल निर्लेप है।

(२) यह सूर्य्य का दूसरा दृष्टांत है। यह भी उतना ही प्रसिद्ध है। सूर्य सबको प्रकाशित करता है कर्मदायी है सबको कर्म में प्रेरित करता है। परंतु सूर्य में कोई दोष नहीं व्यापता है। वह प्रकाशक जगत का चक्षु है वैसे ही परमात्मा (ब्रह्म)

[illegible] कलंक=सड़ा वा मरा हुआ शरीर।

(३) लार=साथ, लेरां।

स्वेदज जरायुज अंडज उद्भिज पुनि
चारि पांनि तिन के चौरासी लक्ष जंत है।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न
देह पंच भूतन की उपजि पपंत है॥
शीत घाम पवन गगन मैं चलत आइ
गगन अलिप्त जामैं मेघ हू अनंत है।
तैसें ही सुन्दर यह सृष्टि एक ब्रह्म मांहि
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत है॥ ४॥

॥ इति ब्रह्म निःकलंक को अंग ॥ २७ ॥

॥ अथ आत्मानुभव को अंग ॥ २८ ॥

इन्दव

है दिल मैं दिलदार सही अंखियां उलटी करि ताहि चितइये।
आब मैं खाक मैं बाद मैं आतस जान मैं सुन्दर जानि जनइये॥
नूर मैं नूर है तेज मैं तेज है ज्योति मैं ज्योति मिलें मिलि जइये।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये॥ १॥
जासौं कहूं सब मैं वह एक तौ सो कहै कैसौ है आंखि दिखइये।
जौ कहूं रूप न रेख तिसै कछु तौ सब झूठ कै मानें कहइये॥

(४) पपंत=खपजाते, नष्ट हो जाते। महंत=जो महान ज्ञानी हैं सो।

आत्मानुभव अंग। (१) दिलदार=प्यारा। चितइये=देखिये, निहारिये। आब=पानी, खाक=पृथ्वी। बाद=हवा। आतस=आतिश, अग्नि, तेज। गीता आदिमें भगवान की विभूतियों का वर्णन याद पड़ता है।

जौ कहूं सुन्दर नैननि मांझि तौ नैनहू बैन गये पुनि हइये ।
क्या कहिये कहतें न बनै कछु जो कहिये कहतें ही लजइये ॥ २ ॥
होत विनोद जु तौ अभिअन्तर सो सुख आपु मैं आपु ही पइये ।
बाहिर कौं उमग्यौ पुनि आवत कंठ तें सुन्दर फेरि पठइये ॥
स्वाद निवेरें निवेरयौ न जात मनौं गुर गूंगे हि ज्यौं नित खइये ।
क्या कहिये कहतें न बनें कछु जो कहिये कहतें ही लजइये ॥ ३ ॥
व्योम सो सोम्य अनंत अखंडित आदि न अन्त सु मध्य कहां है ।
को परिमान करै परिपूरन द्वैत अद्वैत कछू न जहां है ॥
कारण कारय भेद नहीं कछु आपु मैं आपु हि आपु तहां है ।
सुन्दर दीसत सुन्दर मांहि सु सुन्दरता कहि कौन उहां है ॥ ४ ॥

(प्रश्नोत्तर)

एक कि दोइ न एक न दोइ उहीं कि इहीं न उहीं न इहीं है ।
शून्य कि थूल न शून्य न थूल जहीं कि तहीं न जहीं न तहीं है ॥
मूल कि डाल न मूल न डाल वहीं कि महीं न वहीं न महीं है ।
जीव कि ब्रह्म न जीव न ब्रह्म तौ है कि नहीं कछु है न नहीं है ॥ ५ ॥
एक कहूं तौ अनेक सौ दीसत एक अनेक नहीं कछु ऐसौ ।
आदि कहूं तिहि अन्त हू आवत आदि न अंत न मध्य सु कैसौ ॥

---

(२) हइये=है ही । रह जाता है ।

(३) पठइये=उलटा भेजिये ।

(४) सोम्य=शांत, गंभीर ।

(५) महीं=अंदर प्रविष्ट । वा बारीक (मिहीन) । है न नहीं है=नासदीय सूक्त ऋग्वेद सा भाव है । अर्थात यह कहते बनता है कि नहीं है, और यह कहें कि है तो बनाना असंभव है । इसलिये है और नहीं के बीच में है । वा दोनों ही कहा जाना या न कहा जाना कुछ बनता ही नहीं ।

गोपि कहूं तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभौ न वैसौ ।
जोइ कहूं सोइ है नहिं सुन्दर है तौ सही परि जैसै कौ तैसौ ॥ ६ ॥

मनहर

एक कै कहै जौ कोऊ एक ही प्रकाशत है
दोइ कै कहैं जौ कोऊ दूसरौ ऊ देपिये ।
अनेक कहै जौ कोऊ अनेक आभासै ताहि
जाकै जैसौ भाव ताकौं तैसौ ई विशेपिये ॥
वचन विलास कोऊ कैसें ही वपानि कहौ
व्योम माहिं चित्र कहूं कैसें करि लेपिये ।
अनुभौ किये तें एक दोइ न अनेक कछु
सुन्दर कहत ज्यौं है त्यौं हि ताहि पेपिये ॥ ७ ॥

वचन ई वेद विधि वचन ई शास्त्र पुनि
वचन ई स्मृति अरु वचन पुरान जू ।
वचन ई और ग्रन्थ वचन ई व्याकरन
वचन ई काव्य छन्द नाटक वपांन जू ॥
वचन ई संसकृत वचन ई पराकृत
वचन ई भाषा सब जगत मैं जांन जू ।
वचन कै परे है सु वचन मैं आवै नांहि
सुन्दर कहत वह अनुभौ प्रमांन जू ॥ ८ ॥

---

(६) गोपि=गोप्य, छिपा हुआ, अप्रत्यक्ष । वैसो=बैठा हुआ, स्थिर। ऊभौ=खड़ा हुआ, अस्थिर। "नेति नेति" का सा वर्णन है।

(७) व्योम माहि चित्र=आकाश में तसवीर का बनाना। ख पुष्पवत्।

(८) वचन के परे="यतो वाचा निवर्त्तंते"—जिसको वाणी नहीं पहुंच सकती। जो पढ़ने या प्रवचन से जाना नहीं जा सके। "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः"—यह आत्मा व्याख्यान से समझी नहीं जा सकती है।

इन्द्री नहिं जांनि सकै अल्प ज्ञान इन्द्रीन कौ
प्रान हूं न जांनि सकै स्वास आवै जाइ है।
मन हूं न जांनि सकै संकल्प विकल्प करै
बुद्धि हूं न जानि सकै सुन्यौं सु बताइ है॥
चित्त अहंकार पुनि एऊ नहिं जांनि सकै
शब्द हू न जानि सकै अनुमान पाइ है।
सुन्दर कहत ताहि कोऊ नहिं जानि सकै
"दीवा करि देपिये सु ऐसी नहिं लाइ है" ॥ ९ ॥

इन्दव

श्रोत्र न जानत चक्षु न जानत जानत नांहि जु सूंघत प्रांनैं।
ताहि सपर्श तुचा न सकै पुनि जानत नांहि न जीभ वपांनैं॥
नां मन जानत बुद्धि न जानत चित्त अहं कहि क्यौं पहिचांनैं।
सब्द हु सुन्दर जांनि सकै नहिं "आतमा आपु कौ आपु ही जानैं"॥१०॥
सूर के तेज तें सूरज दीसत चन्द के तेज तें चन्द उजासै।
तारे के तेज तें तारे उ दीसत विज्जुल तेज तें विज्जु चकासै॥

---

(९) इन्द्रिय (चक्षुरादि पंच ज्ञानेन्द्रिय) स्थूल पदार्थों को जान सकती हैं। आत्मा अति सूक्ष्म है। इनके अधिकार में नहीं। प्रण—यहां पंच-महाप्राणों से अभिप्राय है। उनकी भी इतनी शक्ति कहां कि अनंत तेजोमय का अनुभव करें। मन—संकल्प विकल्पात्मक, चंचल, अस्थिर इसही कारण अशक्त है। बुद्धि—बुद्धि से परे है इस से जाना नहीं जा सकता। चित, अहंकार-ये दोनों भी स्वल्पशक्ति के होने से अनुभव करने में असमर्थ हैं। दीवा=दीपक। लाइ=लाय, महा ज्वलंत अग्नि। वह स्वयम् प्रकाश ज्योतिःस्वरूप है। "न तद्भासयते सूर्य्यो न शशाङ्को न पावकः" उसको सूर्य्य चन्द्रमा और अग्नि के तेज भी दिखा नहीं सकते हैं।

(१०) यह ९ वें छन्द की व्याख्या ही में समझिए।

दीप के तेज तें दीपक दीसत हीरे के तेज तें हीरो उभासै।
तैसें हि सुन्दर आतम जानहुं आपु के तेज तें आपु प्रकासै ॥ ११ ॥
कोउ कहै यह सृष्टि सुभाव तें कोउ कहै यह कर्म तें श्रृष्टी।
कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी ॥
कोउ कहै यह ऐसें हि होत है क्यौं करि मांनिये वात अनिष्टी।
सुन्दर एक किये अनुभौ विनु जांनि सकै नहिं वाहिज दृष्टी ॥ १२ ॥
कोउ तौ मोक्ष अकास वतावत को कहै मोक्ष पताल के मांहीं।
कोउ तौ मोक्ष कहै पृथवी पर कोउ कहै कहुं और कहां हीं ॥
कोउ वतावत मोक्ष शिला पर को कहै मोक्ष मिटैं पर छांहीं।
सुन्दर आतम के अनुभौ विन और कहूं कोउ मोक्ष हि नांहीं ॥ १३ ॥
मुये तें मोक्ष कहैं सव पंडित मूये तें मोक्ष कहै पुनि जैंना।
मूये तें मोक्ष कहैं ऋषि तापस मूये तें मोक्ष कहैं शिव सैंना ॥
मूये तें मोक्ष मलेछ कहैं तेउ धोपै हि धोपै वपानत वैंना ॥
सुन्दर आतम कौ अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैंना ॥ १४ ॥
जाग्रत तौ नहिं मेरै विषै कछु स्वप्न सु तौ नहिं मेरै विषै है।
नाहिं सुषोपति मेरै विषै पुनि विश्व हु तैजस प्राज्ञ पषै है ॥

(११) यह भी "दीवा करि देषिये सु ऐसी नहि लाइ हैं" इस वाक्य की ही व्याख्या समझैं।

(१२) तिष्टी=स्थापित की, निर्मित की। अनिष्टी=ऐसे ही होना अस्वभाविक है। कोई कारण अवश्य ही मानना पड़ेगा। वस वही कारण ब्रह्म है। कारण का न मानना अनिष्ट है, वुद्धि ग्राह्य नहीं है। वाहिज दृष्टि=वाह्य दृष्टि, वहिर्मुख वुद्धि, भौतिक वुद्धि, अंतर्मुख हुये विना जान ही नहीं सकती।

(१४) शिव सैंना=शैवमत में जो रहस्य कहा है। वाममार्ग से भी अभिप्राय हो सकता है। मलेछ=मुसल्मान। कयामत के दिन इनके यहां इन्साफ होकर जिनको नजात मिलनी है मिलैगी। आत्मानुभव=यही एक अवस्था विशेष है सो ही मोक्ष या मुक्ति जगत् है।

मेरैं विषैं तुरिया नहिं दीसत याहि ते मेरौ स्वरूप अपै है।
दूर तें दूर परे तें परै अति सुन्दर कोउ न मोहि लपै है॥ १५॥

मनहर

कोउ तौ कहत ब्रह्म नाभि के कंवल मध्य
कोउ तौ कहत ब्रह्म हृदै मैं प्रकास है।
कोउ तौ कहत कंठ नासिका के अग्रभाग
कोउ तौ कहत ब्रह्म भृकुटी मैं वास है॥
कोउ तौ कहत ब्रह्म दशयें द्वार के बीच
कोउ तौ कहत भौंर गुफा मैं निवास है।
पिंड तें ब्रह्मंड तें निरंतर विराजै ब्रह्म
सुन्दर अखंड जैसैं व्यापक आकास है॥ १६॥

पांव जिनि गह्यौ सु तौ कहत है ऊपर सौ
पूंछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है।
सूंडि जिनि गही तिन दगली की बांह कह्यौ
दन्त जिनि गह्यौ तिनि मूसर दिपायौ है॥
कांन जिनिं गह्यौ तिनिं सूप सौ वनाइ कह्यौ
पीठि जिनि गही तिनि विटोरा वतायौ है।
जैसौ है सु तैसौ ताहि सुन्दर सयांपौ जांनै
"आंधरनि हाथी देपि झगरा मचायौ है"॥ १७॥

---

(१५) यही छन्द और इसका वर्णन ऊपर "ज्ञानसमुद्र" के पंचम उल्लास में ८ वां छन्द और तत्सम्बन्धी छन्द हैं। "जाग्रत तौ नहिं......।

(१६) नाभि के कंवल=नाभिचक्र। दशयें द्वार=ब्रह्मरंध्र। भौंर गुफा=नादानुसंधान क्रिया में भ्रमर गुफा का वर्णन है। पिंड ब्रह्मांड ते निरंतर=शरीरों में और समग्र सृष्टि में व्यापक है, कहीं विशिष्ट स्थिति नहीं। (१७) उपर=ऊखली, लकड़ी की बनी हुई वा पत्थरकी खड़ी। दगली=अंगरखा। सूप=छाज, छाजला। विटोरा=छानों (छांणों) के चुने समूहको ऊपर से लीप देते हैं। पिथवंडा।

न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वर वाद
मीमांसक शास्त्र महिं कर्मवाद कह्यौ है।
वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध
पातंजलि शास्त्र महिं योगवाद लह्यौ है॥
सांख्य शास्त्र मांहि पुनि प्रकृति पुरुष वाद
वेदांत शास्त्र तिनहिं ब्रह्मवाद गह्यौ है।
सुन्दर कहत षट् शास्त्र मांहि भयौ वाद
जाकै अनुभव ज्ञान वाद मैं न वह्यौ है॥ १८॥

प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म ऐसैं ऋग्वेद कहत
अहं ब्रह्म अस्मि इति युयुर्वेद यौं कहै।
तत्वमसि इति साम वेद यौं वषानत है
अयमात्मा हि ब्रह्म वेद अथर्व्वन लहै॥
एक एक वचन मैं तीन पद हैं प्रसिद्ध
तिन कौ विचार करि अर्थ तत्व कौं गहै।
चारि वेद भिन्न भिन्न सव कौ सिद्धांत एक
सुन्दर समुझि करि चुपचाप ह्वै रहै॥ १९॥

---

(१८) छहों शास्त्रों में भिन्न—भिन्न वाद (मत) हैं। परन्तु जिसको आत्मानुभव हो गया उसको किसी के मत से प्रयोजन नहीं। शब्द (वचन) और अनुभव (सिद्धि की प्राप्ति) में यही भेद है। कहनी और करणी का भेद जो है सो ही यहां अभिप्राय है।

(१९) ये चार महावाक्य उपनिषदों में आये हैं। ये उपनिषद तत्तत् वेदों के साथ हैं। महावाक्यविवेक पंचदश्यादि से। प्रथम तैत्तिरीय में २।१।—दूसरा बृहदारण्यक में १।४।१०।——तीसरा छांदोग्य ६।८।३। में—चौथा मांडूक्योपनिषद् ।२। में है। इस प्रकार चारों वेदों के चार उपनिषदों में ये महावाक्य हैं। सो स्वामीजी ने सम्भवतः "पंचदशी" ग्रन्थ के महावाक्यविवेक में भी आप देखा है सो ही लिखा

इन्द्रिनि कौ भोग जब चाहैं तब आइ रहै
नाशवंत तातैं तुच्छानन्द यौं सुनायौ है।
देवलोक इन्द्रलोक विधिलोक शिवलोक
वैकुंठ के सुख लौं गणितानन्द गायौ है॥
अक्षय अखंड एकरस परिपूरन है
ताही तें पूरनानन्द अनुभौं तें पायौ है।
याही कै अंतरभूत आनन्द जहां लौं और
सुन्दर समुद्र मांहि सर्व जल आयौ है॥ २०॥

एक तौ माया विसाल जगत प्रपंच यह
चारि पांनि भेद पाइ द्वैत भासि रह्यौ है।
दूसरौ विषै विलास इन्द्रिनि की विषै पंच
शब्द हू सपर्श रूप रस गंध गह्यौ है॥
तीजौ वाइक विलास सु तौ सब वेद मांहि
बरनि कैं जहांलग वचन तें कह्यौ है।
चौथौ ब्रह्म कौ विलास तिहूं कौ अभाव जहां
सुन्दर कहत वह अनुभौ तें लह्यौ है॥ २१॥

है। एक वाक्य तीन पद है—तथा "तत्वमसि" में तत्+त्वम्+असि। वह+तू+है। है शब्द वह को तू के साथ मिला कर एक करता है। अर्थात् यह जीव है सो ब्रह्म है। यों जीव ब्रह्म की एकता को प्रतिपादन किया। ऐसे शेष तीन महावाक्य भी जानना।

(२०) इन्द्रियों का आनंद चाहे जब होकर शीघ्र नष्ट हो जाता है। इसी से तुच्छ है। और इन्द्रलोकादि का भोग परिमित समय तक रहता है भोग पूर्ण हो जाने के उपरांत मर्त्यलोक में आकर जन्म लेना पड़ता है। परन्तु आत्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है तब वह पूर्ण आनन्द है फिर नष्ट नहीं होता है। इस ही वास्तै ब्रह्मानन्द ही सब आनन्दों से परम श्रेष्ठ है।

(२१) विलास=आनन्द वा भोग, व्यवसाय। माया विलास=विषयानन्द के सहगामी है।

जीवत ही देवलोक जीवत ही इन्द्रलोक
जीवत ही जन तप सत्यलोक आयौ है।
जीवत ही विधिलोक जीवत ही शिवलोक
जीवत वैकुंठलोक जो अकुंठ गायौ है॥
जीवत ही मोक्षशिला जीवत ही भिस्ति मांहिं
जीवत ही निकट परमपद पायौ है।
आतम कौ अनुभव जिनि कौं जीवत भयौ
सुन्दर कहत तिनि संसय मिटायौ है॥ २२॥

इच्छा ही न प्रकृति न महतत्व अहंकार
त्रिगुण न व्योम आदि शवदादि कोइ है।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि
सूक्षम न थूल पुनि एक ही न दोइ है॥
स्वेदज न अण्डज जरायुज न उदभिज
पशु ही न पक्षी ही न पुरुष ही न जोइ है।
सुन्दर कहत ब्रह्म ज्यौं कौं त्यौं ही देपियत
न तौ कछु भयौ अव है न कछु होइ है॥ २३॥

क्षिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम
व्योम भ्रम तिन कौ शरीर भ्रम मांनिये।

---

(२२) इस छन्द में जीवन्मुक्ति का वर्णन और उसकी श्रेष्ठता कही है जो आत्मा के अनुभव से प्राप्त होती है। अकुंठ=विशाल, स्वतंत्र। मोक्षशिला=जैन धर्म के अनुसार उनके तीर्थंकरों को जिस स्थान में निर्वाण वा कैवल्य मिलता है वही मोक्षशिला कही है। भिस्ति=वहिश्त, स्वर्ग (मुसल्मानी धर्म में यह नाम है)।

(२३) "न तो कछु भयो......"। जगत् का पसारा, जिस माया का, ब्रह्म के आभास या सत्ता से है, वह माया मिथ्या है। वह तीन काल ही में नहीं वर्त्तती है। केवल ब्रह्म ही तीनों काल में व्यापता रहता है।

इन्द्री दश तेऊ भ्रम अन्तहकरण भ्रम
तिन हूं के देवता सु भ्रम तें वषांनिये ॥
सत्व रज तम भ्रम पुनि अहंकार भ्रम
महतत्व प्रकृति पुरुप भ्रम भानिये।
जोई कछु कहिये सु सुन्दर सकल भ्रम
अनुभौ किये तें एक आतमा ही जानिये ॥ २४ ॥

भूमि हू विलीन होइ आपु हू विलीन होइ
तेज हू विलीन होइ वायु जो वहतु है।
व्योम हू विलीन होइ त्रिगुण विलीन होइ
शब्द हूं विलीन होइ अहं जो कहतु है ॥
महतत्व लीन होइ प्रकृति विलीन होइ
पुरुप विलीन होइ देह जो गहतु है।
सुन्दर सकल जो जो कहिये सु लीन होइ
आतमा के अनुभव आतमा रहतु है ॥ २५ ॥

---

(२४) यहां संसार के सब पदार्थों को भ्रम कहा है। अर्थात् अध्यास मात्र हैं। अविद्या से उत्पन्न मिथ्या दिखावा ही है।

(२५) "पुरुष विलीन होई..."। यहां पुरुष शब्द से जीव समझना। जीव ब्रह्म की एकता होने पर जीवदशा ब्रह्म में लीन हो जाती है और केवल ब्रह्म ही रह जाता है। "द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते। उत्तमःपुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः"। गीता। यहां तीन पुरुष कहे इसमें पहिला पुरुष माया। दूसरा पुरुष जीव। और तीसरा परात्पर परमात्मा (ब्रह्म)। "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः"। यह जीव परमात्मा का एकांशरूप से समझा जाय तब भी अंश जो (जीव) है सो अंशी (ब्रह्म) में लीन ही होता है। उस परमात्मारूप महासागर में जीव एक जलकण समान है। जीव का ब्रह्म से भेद माया के संसर्ग मात्र ही से है। माया का संसर्ग मिटते ही जीव और ब्रह्म वस्तुतः एक ही हैं। यहां ऐसी ही समझ बताई गई है।

माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन
जड की अपेक्षा करि चेतन्य बपांनिये।
अज्ञान अपेक्षा ज्ञान बंध की अपेक्षा मोक्ष
द्वैत की अपेक्षा सु तौ अद्वैत प्रवांनिये॥
दुख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुन्य
झूठ की अपेक्षा ताहि सत्य करि मांनिये।
सुन्दर सकल यह वचन विलास भ्रम
वचन अवचन रहित सोई जानिये॥ २६॥

आतमा कहत गुरु शुद्ध निरबन्ध नित्य
सत्य करि मानै सु तौ शब्द हू प्रमांण है।
जैसें व्योम व्यापक अखण्ड परिपूरन है
व्योम उपमा तें उपमान सो प्रमांण है॥
जाकी सत्ता पाइ सब इन्द्रिय चेतन्य होइ
याहि अनुमान अनुमान हू प्रमांण है।
अनुभव जानै तब सकल सन्देह मिटै
सुन्दर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमांण है॥ २७॥

---

(२६) माया और ब्रह्म के परस्पर के भेद को उदाहरणों से कहा है। चेतन्य=चेतन। प्रवांनिये=प्रमाणिये।

(२७) यहां चार प्रमाण बताये हैं:—(१) शब्द प्रमाण। सो वेद वाक्य वा आप्त-वाक्य जैसे "सत्यंज्ञानमनंतं ब्रह्म"। (२) उपमान प्रमाण जैसे खं ब्रह्म' अथवा "यथाकाशस्थितो नित्यं—। इत्यादि। (३) अनुमान प्रमाण। जैसे "मनो वै ब्रह्म"। ब्रह्म मन नहीं है तो भी ऐसा कहने से यह प्रयोजन है कि ब्रह्म का मन अनुमान कराता है। (४) प्रत्यक्ष प्रमाण जैसे "अहं ब्रह्मास्मि" इसमें ब्रह्म साक्षात्कार प्रत्यक्ष है। वेदांत में (५) अर्थापत्ति—जिसके बिना जो न हो। जैसे ब्रह्म के बिना प्रकृति से सृष्टि नहीं हो सकती। और (६) अनुपलब्धि-एक पदार्थ में दूसरे के अभाव की

एक घर दोइ घर तीन घर चारि घर
पंच घर तजै तब छठौ घर पाइ है।
एक एक घर कै आधार एक एक घर
एक घर निराधार आपु ही दिपाइ है॥
सु तौ घर साक्षी रूप घर घर मैं अनूप
ताहू घर मध्य कोऊ दिन ठहराइ है।
ताकै परै साक्षि न असाक्षि न सुन्दर कछु
वचन अतीत कहूं आइ है न जाइ है॥ २८॥
एक तौ श्रवन ज्ञान पावक ज्यौं देषियत
माया जल वरसत वेगि बुझि जात है।
एक है मनन ज्ञान विज्जुल ज्यौं घन मध्य
माया जल वरषत ता मैं न बुझात है॥

प्रतीति (भाव की अप्रतीति) होय—जैसे ब्रह्म में अविद्या की अनुपलब्धि है। "वेदांत परिभाषा" तथा विचार सागर और "वृत्ति प्रभाकरादि" में इन छहों प्रमाणों का अच्छा प्रतिपादन है।

(२८) यहां "घर" शब्द देकर उत्तरोत्तर शारीरिक ज्ञान वा ज्ञान-स्थिति और आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से बताया है। पहला घर शरीर। दूसरा इन्द्रियां। तीसरा मन। चौथा बुद्धि। पांचवा चित्त। छठा अहंकार। सातवां जीवात्मा। आठवां परात्पर ब्रह्म जो वचनातीत, रूपातीत, ध्यानातीत है। अथवा ज्ञान की सात भूमिकाएं और उनसे परे परब्रह्म। अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोष जो एक दूसरे में (कदि के छिलके की तरह) धसे हुये हैं। इन पांचों के भीतर ही भीतर साक्षी चेतन कूटस्थ परमात्मा है। 'पंचदशी' ग्रन्थ में (पंच-कोषविवेक में) निरूपण है। तदनुसार ही स्वामीजी ने कहा है। और 'विचार-सागर' में पंचम तरंग में अच्छा कथन किया है। और आत्मा को पंचकोष से पृथक् कहा है—"पंचकोष ते आतम न्यारो......।"

एक निदिध्यास ज्ञान वडवा अनल सम
प्रगट समुद्र मांहि माया जल पात है।
आतमानुभव ज्ञान प्रलय अगनि जैसैं
सुन्दर कहत द्वैत प्रपंच विलात है॥ २९॥
चकमक ठोके तें चमतकार होत कछु
ऐसौ है श्रवन ज्ञान तव ही लौं जानिये।
कफ मन लागैं जव प्रगटै पावक ज्ञान
सिलगात जाइ वह मनन वषानिये॥
वर्द्धमान भये काठ कर्मनि जरावत है
वह निदिध्यास ज्ञान ग्रन्थनि मैं गानिये।
सकल प्रपंच यह जारि कैं समाइ जात
सुन्दर कहत वह अनुभौ प्रमानिये॥ ३०॥

---

(२९) वाडवा अनल=वाडवाग्नि, जो समुद्र के पैंदे में रहती है, और समुद्र जल को तपाती और सोसती है। "ज्ञानाग्नि दग्ध कर्म्माणं...(गीता)। ज्ञान की प्राप्ति होते ही शुभाशुभ कर्मों का नाश हो जाता है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन तीनों ज्ञान को वढानेवाले साधन हैं। इनके अनंतर वा इनके वल से आत्मा का साक्षात्कार हो जाने से फिर कर्म उत्पन्न नहीं हो पाते। "क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरि"। विज्जुल=विद्युत, विजली। माया जल=मायारूपी जल, अथवा जल जो माया (प्रकृति) का एक तत्व है।

(३०) कफमन=यह शब्द हिन्दी वा अन्य किसी भाषा का नहीं प्रतीत होता है। मूल पुस्तकों और पुराणी छपी हुई में यही पाठ है। हिन्दी के किसी भी कोश में वा उर्दू फ़ारसी के कोशों में यह शब्द नहीं मिला। अतः इसकी लिखावट पर विचार किया तो यही अनुमान उपयुक्त हुआ कि आदि में ग्रन्थकार ने 'कपासन' लिखा होगा तव 'पा' का 'फ' हो गया लिखने में और 'स' का 'म' हो गया लिखने ही में क्योंकि ऐसा बन जाना सहज ही है। पहाड़ी भाषा में चकमाक से जिन पत्तों की

भोजन की बात सुनि मन में मुदित होत
मुख में न परै जौं लौं मेलिये न ग्रास है।
सकल सामग्री आंनि पाक कौं करन लाग्यौ
मनन करत कब जीऊं यह आस है॥
पाक जब भयौ तब भोजन करन बैठौ
मुख में मेलत जाइ उहै निदिध्यास है।
भोजन पूरन करि तृपत भयौ है जब
सुन्दर साक्षातकार अनुभौ प्रकास है॥ ३१ ॥

श्रवन करत जब सब सौं उदास होइ
चित्त एकाअग्र आंनि गुरु मुख सुनिये।
बैठि कै एकंत ठौर अन्तहकरन मांहि
मनन करत फेरि उहै ज्ञान गुनिये॥
ब्रह्म कौं परोक्ष जनि कहत है अहं ब्रह्म
सोहं सोहं होइ सदा निदिध्यास धुनिये॥
इहै अनुभव इहै कहिये साक्षातकार
सुन्दर पालै तें गलि पानी होइ मुनिये॥ ३२ ॥

बनी रुई पर आग झड़ती है उसको 'कपास' या 'बचा' कहते हैं। और 'कपासन' एक भेद रुई या कपास का भी है। इसको बंदूक के साथ रस्सी के आकार की हो तो 'जामगी' भी कहते हैं। तब अर्थ होता है—कपास रूपी बुद्धि पर मन रूपी चकमाक झाड़ने से आग की चिनगारी पड़ें तब ज्ञानरूपी अग्नि सुलगने लग जाय। किसी किसी मुद्रित पुस्तक में 'कफ मांहि' ऐसा पाठ भी दिया है और कफ का अर्थ "वेल्वेडियर प्रेसकी छपी पुस्तक में 'सोग्ता' दिया है सो नितान्त अनुचित है क्योंकि 'कफ' का ऐसा अर्थ कभी नहीं होता।

(३१) चारों ज्ञान के साधनों को भोजन की चारों अवस्थाओं से उपमा देना कितना सुन्दर हुआ है।

(३२) एकाअग्र=एकाग्र, इधर उधर न टुलै। धुनिये=उसकी धुन में तल्लीन

जब ही जिज्ञास होइ चित्त एक ठौर आंनि
मृग ज्यौं सुनत नाद श्रवन सो कहिये।
जैसैं स्वांति बून्द हूं कों चातक रटत पुनि
ऐसैं ही मनन करैं कब बून्द लहिये॥
जैसैं रात्रि हूं चकोर चन्द्रमा कौ धरै ध्यांन
ऐसैं जानि निदिध्यास दृढ़ करि ग्रहिये।
सुन्दर साक्षातकार कीट जैसैं होइ भृंग
उहै अनुभव उहै स्वस्वरूप रहिये॥ ३३॥

काहू कों पूछत रंक धन कैसै पाइयत
कान दैकें सुनत श्रवन सोई जानिये।
उन कह्यौ धन हम देष्यौ है फलांनी ठौर
मनन करत भयौ कब घरि आनिये॥
फेरि जब कह्यौ धन गड्यौ तेरे घर मांहिं
पोदन लग्यौ है तब निदिध्यास ठानिये।

हो जाइये। पाला=बर्फ, जो वस्तुतः पानी ही है, उष्णता (अग्नि) ज्ञानाग्नि से पिघल कर फिर पानी ही हो जाता है। उपाधि से पानी और पाला पृथक् थे, वैसे ही जगत् और ब्रह्म, वा जीव और परमात्मा उपाधि से चिदाभास मात्र से न्यारे न्यारे प्रतीत होते हैं, वास्तव में एक हैं। यह ज्ञान होना ही आत्मा का अनुभव कहाता है। श्रवणादि साधन चतुष्टय ज्ञान के अंतरंग साधन हैं। इनका 'विचार सागर' के प्रथम-तरंग में अच्छा विवेचन है।

(३३) जिज्ञास=जिज्ञासा, जानने की इच्छा, ज्ञान प्राप्ति की लालसा। अथवा जिज्ञासु अधिकारी बन कर। कीट जैसे भृंग—लट से भौंरा। इस पर पूर्व में ही टिप्पणी दी गई है। यहां जीव से ब्रह्म होने से अभिप्राय है।

धन निकस्यौ है जब दरिद्र गयौ है तब
सुन्दर साक्षातकार नृपति बषांनिये ॥ ३४ ॥※

॥ इति आत्मानुभव को अंग ॥ २८ ॥

॥ अथ ज्ञानी को अंग ॥ २९ ॥

इन्दव

जाके हृदै मंहि ज्ञान प्रकाशत ताकौ सुभाव रहै नहिं छांनौ ।
नैंन में बैंन में सैन में जानिये ऊठत बैठत है अलसांनौ ॥
ज्यौं कछु भक्ष किये उदगारत कैसैं हुं रापि सकै न अघांनौ ।
सुन्दरदास प्रसिद्धि दिपावत धान कौ पेत पयार तें जांनौ ॥ १ ॥
ज्ञान प्रकाश भयौ जिनके उर वे घट क्यूं हि छिपे न रहैंगे ।
भोडल मांहि दुरै नहिं दीपक यद्यपि वे मुख मौंन गहैंगे ॥
ज्यूं घनसार हि गोप्य छिपावत तौहि सुगन्धि सु तज्ञ लहैंगे ।
सुन्दर और कहा कोउ जानत वूठे की बात वटाऊ कहैंगे ॥ २ ॥†

---

(३४) घरि=घर में, अपने अधिकार वा कब्जे में । इस छन्द में धन प्राप्ति, ज्ञान (अद्वैत ज्ञान) की प्राप्ति के लिये जो दृष्टांत दिया है यह अत्यंत सुन्दर और समीचीन है ।

※ छन्द ३४ के आगे (क) पुस्तक में ३५ वां छन्द "देह यह किन को है देह पंचभूतनि कौ..." इत्यादि है । सो पहिले अंग २५ छन्द १४ आ चुका है ।

† यह छन्द २ (क) पुस्तक में नहीं है (ख) आदि पुस्तकों में है ।

(१) प्रसिद्धि=प्रगट । पयार=पयाल, पराल, डंठल । अलसानौं=सुस्ताने के समय ।

(२) घनसार=सुगंधि द्रव्य । कपूर । तज्ञ=उसके जाननेवाले । वूठे की=रस्ते चला गया उसकी, परदेश गया उसकी । वटाऊ=रस्ते चलनेवाला ।

बोलत चालत बैठत ऊठत पीवत षातहु सूंघत स्वासै।
ऊपर तौ व्यवहार करै सब भीतर स्वप्न समान सौ भासै॥
लै करि तीर पताल कौं सांधत मारत है पुनि फेरि अकासै।
सुन्दर देह क्रिया सब देषत कोउ न पावत ज्ञानी कौ आसै॥ ३॥

बैठै तौ बैठै चलै तौ चलै पुनि पीछै तौ पीछै हि आगै तौ आगै।
बोलै तौ बोलै न बोलै तौ मौंन हि सोवै तौ सोवै रु जागै तौ जागै॥
षाइ तौ षाइ नहीं तौ नहीं जु ग्रहै तौ ग्रहै अरु त्यागै तौ त्यागै।
सुन्दर ज्ञानी की ऐसी दसा यह जानै नहिं कछु राग विरागै॥ ४॥

देषत है पै कछू नहिं देषत बोलत है नहिं बोल बषांनै।
सूंघत है नहिं सूंघत घ्रांण सुनै सब है न सुनै यह मांनै॥
भक्ष करै अरु नांहि भषै कछु भेटत है नहिं भेटत प्रांनै।
लेत है देत है देत न लेत है सुन्दर ज्ञानी की ज्ञानी हि जांनै॥ ५॥

काज अकाज भलौ न बुरौ कछु उत्तम मध्यम दृष्टि न आवै।
कायक वाचक मानस कर्म सु आपु विषै न तिन्है ठहरावै॥
हौं करि हौं न कियौ न करौं अब यौं मन इन्द्रिनि कौ बरतावै।
दीसत है व्यवहार विषै नित सुन्दर ज्ञानी की कोउ न पावै॥ ६॥

देषत ब्रह्म सुनै पुनि ब्रह्म हिं बोलत है सोउ ब्रह्म हि बांनी।
भूमि हु नीर हु तेज हु वायु हु व्योम हु ब्रह्म जहां लगि प्रांनी॥
आदि हु अन्त हु मध्य हु ब्रह्म हि है सब ब्रह्म इहै मति ठांनी।
सुन्दर ज्ञे अरु ज्ञान हु ब्रह्म सु आपु हु ब्रह्म हि जानत ज्ञांनी॥ ७॥

---

(३) षातहु=खावत। आसै=आशय।

(६) "नैवकिंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित"—तत्वज्ञानी योगी मैं करता हुआ भी कुछ नहीं करता ऐसा मानता है—(गीता)। गीतादि शास्त्रों में अनेक स्थलों पर विदेह-मुक्ति और ज्ञानी के लक्षण कहे हैं। "ब्रह्मण्याधाय कर्म्माणि संगंत्यक्त्वा करोति यः कर्मों को (करता हुआ) ब्रह्म में अर्पण करता है। ऐसा ज्ञानी कर्मों से लिप्त नहीं होता है।

ऊठत केवल बैठत केवल बोलत केवल बात कही है।
जागत केवल सोवत केवल जोवत केवल दृष्टि लही है॥
भूत हु केवल भावि हु केवल वर्त्तत केवल ब्रह्म सही है।
है सब ही अध ऊरध केवल सुन्दर केवल ज्ञान उही है॥ ८॥

केवल ज्ञान भयौ जिनि के उर ते अध ऊरध लोक न जांही।
व्यापक ब्रह्म अखंड निरंतर वा बिन और कहूं कछु नांही॥
ज्यौं घट नाश भये घट व्योम सु लीन भयौ पुनि है नभ मांही।
त्यौं मुनि मुक्ति जहां वपु छाडत सुन्दर मोक्षशिला कहुं कांही॥ ९॥

आदि हुतौ नहिं अंतर है नहिं मध्य शरीर भयौ भ्रम कूपं।
भासत है कछु और कौ औरइ ज्यौं रजु मैं अहि सीप सु रूपं॥
देषि मरीचि उज्यौं बिचि बिभ्रम जानत नांहि उहै रवि धूपं।
सुन्दर ज्ञान प्रकाश भयौ जब एक अखंडित ब्रह्म अनूपं॥ १०॥

मनहर

जाही कै बिवेक ज्ञान ताही कै कुसल भई
जाही वोर जाइ वाकौं ताही वोर सुख है।
जैसैं कोऊ पाइनि पैंजार कौं चढाइ लेत
ताकौं तौ न कोउ कांटे पोभरे कौ दुख है॥
भावै कोऊ निंदा करौ भावै तौ प्रसंसा करौ
वो तौ देषै आरसी मैं आपुनौ ई मुख है।
देह कौ व्यौहार सब मिथ्या करि जानत है
सुन्दर कहत एक आतमा कौ सुख है॥ ११॥

---

(९) जैनियों के मत में तीर्थंकरों आदिकों की मोक्ष को मोक्षशिलापर जा पहुंचने को मानते हैं। मोक्षशिला आत्मा की एक अवस्था विशेष है। शिला शब्द से स्थिरता का प्रयोजन बताया है। परन्तु सुन्दरदासजी ज्ञानी की तत्क्षण मोक्ष वा जीवन्मुक्ति ही को मानते हैं।

(११) पैंजार=जूते। पोभरे=छोटे खड्डे। 'कांटाखोवरा' ऐसा बोलचाल में

अंतहकरण जाकै तम गुण छाइ रह्यौ
जडता अज्ञान वाकै आलस भै त्रास है।
रज गुण कौ प्रभाव अंतहकरण जाकै
विविधि करम वाकै कामना कौ वास है॥
सत्व गुण अंतहकरण जाकै देपियत
क्रिया करि सुद्ध वाकै भक्ति कौ निवास है।
त्रिगुण अतीत साक्षी तुरिया स्वरूप जांनि
सुन्दर कहत वाकै ज्ञान कौ प्रकास है॥ १२॥

तमोगुणी वुद्धि सु तौ तवा कै समान जैसै
ताकै मध्य सूरज की रंच हूं न जोति है।
रजो गुणी वुद्धि जैसैं आरसी कौ औंधौ वोर
ताकै मध्य सूरज कौ कछुक उदोत है॥
सतो गुणी वुद्धि जैसैं आरसी की सूधी वोर
ताकै मध्य प्रतिविंव सूरज कौ पोत है॥
त्रिगुण अतीत जैसैं प्रतिविंव मिटि जात
सुन्दर कहत एक सूरज ई होत है॥ १३॥

कहते हैं। खोबड़ा लगना लकड़ी की नोंक वदन में घुस जाने को भी कहते हैं। खुभना भी इसकी क्रिया है जिसका अर्थ घुसना है। रुख= मुख। लक्ष्य।

(१२) रजोगुण और तमोगुण का अभाव जिसमें है और सतोगुण ही की प्रधानता जिसकी आत्मा में है ऐसा ज्ञानी। तुरीया=चतुर्थी ब्राह्मी अवस्था। "ज्ञानं यदा तदा विद्यात् विवृद्धं सत्वमित्युत" (गीता)। जब सतोगुण की बढ़वारी होती है तब ही ज्ञान का प्रकाश होता है।

(१३) आरसी को औंधो ओर=जब काच के दर्पणों का प्रचार नहीं था तब फौलादी आईने होते थे। उनके एक तरफ पर सैकल से अधिक चमक (पालिश) होती थी। दूसरी तरफ उतनी नहीं होती थी। उस में मुख नहीं वा कम दिखाई देता था। पोत=प्रोत—ओतप्रोत=पूर्ण।

सब सौं उदास होइ काढि मन भिन्न करै
तार्को नाम कहियत परम वैराग है।
अंतहकरण हूं की वासना निवर्त्त होंहि
ताकौं मुनि कहत हैं उहै वडो त्याग है॥
चित्त एक ईश्वर सौं नेंकहूं न न्यारौ होइ
उहै भक्ति कहियत उहै प्रेम माग है।
आपु ब्रह्म जगत कौं एक करि जानै जब
सुन्दर कहत वह ज्ञान भ्रम-भाग है॥ १४॥

कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूतौ आइ
जब लग जाग्यौ तौ लौं अति सुख मान्यौं है।
नींद जब आई तब वाही को सुपन भयौ
जाइ पर्यौ नरक के कुंड मैं यौं जान्यौं है॥
अति दुख पावै परि निकस्यौ न क्यौंहि जाइ
जागि जब पर्यौ तब सुपन वषान्यौ है।
इह झूठ वह झूठ जाग्रत सुपन दोऊ
सुन्दर कहत ज्ञानी सब भ्रम भान्यौं है॥ १५॥

स्वपने में राजा होइ स्वपने मैं रंक होइ
स्वपने में सुख दुख सत्य करि जानै हैं।
स्वपने में बुद्धि हीन मूढ समुझै न कछु
स्वपने (मैं) पंडित वहु ग्रन्थनि वषानै हैं॥
स्वपने मैं कामी होइ इन्द्रिन कै वसि पर्यौ
स्वपने मैं जती होइ अहंकार आनै हैं।

---

(१४) माग=मार्ग। प्रेमपंथ। भ्रम-भाग=भ्रम जिसमें से भाग गया है। निर्भ्रान्त। वह पुरुष ज्ञा-भ्रम-भाग वाला है, अर्थात् जिसका पूर्ण निर्भ्रान्त ज्ञान है।

(१५) वेदांत में परमार्थ दृष्टि मे जगत् को स्वप्न समान माना है। अर्थात् मिथ्या। देखो "जगत मिथ्या को अंग" २३।

स्वपने तें जाग्यौ जब समुझि परी है तब
सुन्दर कहत सब मिथ्या करि मानै हैं ॥ १६ ॥
विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि
क्रिया सौ करत दीसै यौंही नित प्रति है।
काहू कौ निकट रापै काहू कौं तौ दूरि भापै
काहू सौं नीरै न दूर ऐसी जाकी मति है॥
राग ही न दोष कोऊ शोक न उछाह दोऊ
ऐसी विधि रहै कहुं रति न विरति है।
बाहिर व्यौहार ठांनै मन मैं स्वपन जांनै
सुन्दर ज्ञानी की कछु अदभुत गति है॥ १७ ॥
कामी है न जती है न सूम है न सती है न
राजा है न रंक है न तन है न मन है।
सोवै है न जागै है न पीछै है न आगै है न
ग्रहै है न त्यागै है न घर है न वन है॥
थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न
बंधै है न पोलै है न स्वांमी है न जन है।
वैसौ कोऊ होइ जब वाकी गति जानै तब
सुन्दर कहत ज्ञानी शुद्ध ज्ञान-घन है॥ १८ ॥
सुनत श्रवन मुख बोलत बचन ब्रांन
सूंघत फूलन रूप देपत दृगन है।

---

(१८) जन=स्वजन, सेवक। ज्ञानघन=परिपूर्ण ज्ञान से भरा हुआ। यह विशेषण ब्रह्म का है। परिपूर्ण ज्ञानावस्था में ज्ञान का आनन्द भी पूर्ण ही हो जाता है। ज्ञानी ब्रह्मस्वरूप ही होता है। "ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्"—ज्ञानी तो मेरी ही आत्मा है अर्थात् मैं ही हूं यही मेरा सिद्धांत मत है—(गीता)। "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" (श्रुति उपनिषद्) ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म ही हो जाता है। इस कारण ज्ञानी को ज्ञानघन कहना यथार्थ है।

त्वक सप्रसन रस रसना ग्रसन कर
ग्रहत असन अरु चलत पगन है॥
करत गवन पुनि वैठत भवन सेज
सोवत रवन तन वोढत नगन है।
जुजु कछु व्यवहार जानत सकल भ्रम
सुन्दर कहत ज्ञानी गगन मगन है॥ १९॥

कर्म न विकर्म करै भाव न अभाव धरै
सुभ हु असुभ परै यातें निधरक है।
वसती न सून्य जाकै पाप ही न पुन्य ताकै
अधिक न न्यून वाकै स्वग न नरक है॥
सुख दुख सम दोऊ नीच ही न ऊंच कोऊ
ऐसी विधि रहै सोउ मिल्यौ न फरक है।
एक ही न दोइ जानैं वंध मोक्ष भ्रम मांनै
सुन्दर कहत ज्ञानी ज्ञान मैं गरक है॥ २०॥

अज्ञानी कौं दुख कौ समूह जग जानियत
ज्ञानी कौं जगत सव आनन्द स्वरूप है।

---

(१९) जु जु=जो जो भी। गगन मगन=आकाश समान व्यापक ब्रह्म में, डूबा हुआ है। इस छन्द का ज्ञान तथा २० वें छन्द का ज्ञान वहुत कुछ गीता अध्याय ५, श्लो० ७ से "योगयुक्तो विशुद्धात्मा" इत्यादि से लगाकर श्लो० ११ "कायेन मनसा बुद्धया..." इत्यादि तक से मिलता है। परन्तु सुन्दरदासजी के विचार में आनन्दमग्नता का कथन विशेष है। गीता में योगयुक्तता प्रधान कही है।

(२०) सुभ हु असुभ परै=शुभाशुभ, बुरे भले, कर्मों से दूर रहता है, अर्थात् उनमें लिप्त नहीं होता है करता है तौ भी। वसती न सून्य=वह चाहै वसती (ग्राम या शहर की वसापत) में रहै चाहै शून्य (निर्जन स्थान उजाड़) में रहै सव समान है। अथवा वस+तीन=त्रिगुण वाली माया उसके वश में है शून्य समान प्रभाव।

नैन हीन कौं तौ घर वाहिर न सूझै कछु
जहां जहां जाइ तहां तहां अंध कूप है ॥
जाकै चक्षु है प्रकाश अंधकार भयौ नाश
वाकौं जहां रहै तहां सूरज की धूप है।
सुन्दर अज्ञानी ज्ञानी अन्तर वहुत आहि
वाकै सदा राति वाकै दिवस अनूप है ॥ २१ ॥

ज्ञानी अरु अज्ञानी की क्रिया सव एकसी ही
अज्ञ आसा और ज्ञानी आस न निरास है।
अज्ञ जोई जोई करै अहंकार वुद्धि धरै
ज्ञानी अहंकार विनु करत उदास है ॥
अज्ञ सुख दुख दोऊ आपु विषै मांनि लेत
ज्ञानी सुख दुख कौं न जानै मेरै पास है।
अज्ञ कौं जगत यह सकल संताप करै
सुन्दर ज्ञानी कौं सव ब्रह्म कौ विलास है ॥ २२ ॥

ज्ञानी लोक संग्रह कौं करत व्यौहार विधि
अंतहकरण में सुपन की सी दौर है।
देत उपदेश नाना भांति के वचन कहि
सव कोउ जानत सकल सिरमौर है ॥

---

(२१) सूरज की धूप है। यहां सूर्य के समान प्रकाश अभिप्रेत है।

(२२) अज्ञ आसा=अज्ञानी आशा तृष्णा में लिप्त रहता है। उदास=उदासीन भाव, समभाव। न जानैं मेरे पास है=ज्ञानी सुख और दुःख को "गुणा गुणेषु वर्त्तन्ते इति मत्वा न सज्जते" (गीता) प्रकृति के गुणों को व्यापार समझ कर उनको आप (आत्मा) से न्यारा भिन्न ही समझता रहता है। अर्थात् उनका प्रभाव कुछ भी पड़ता नहीं।

हलन चलन पुनि देह सौं करावत है
ज्ञान मैं गरक नित लिये निज ठौर है।
सुन्दर कहत जैसैं दंत गजराज मुख
"पाइबे कै और ई दिपाइबे के और हैं" ॥ २३ ॥

इन्द्रिनि कौ ज्ञान जाकै सु तौ पसु कै समान
देह अभिमान पान पान ही सौं लीन है।
अंतहकरण ज्ञान कछुक विचार जाकै
मनुप ब्यौहार सुभ कर्मनि आधीन है॥
आतमा विचार ज्ञान जाकै निस वासर है
सोई साधु सकल ही बात मैं प्रवीन है।
एक परमातमा कौ ज्ञान अनुभव जाकै
सुंदर कहत वह ज्ञानी भ्रम-छीन है॥ २४ ॥

जाही ठौर रवि कौ उदोत भयौ ताही ठौर
अंधकार भागि गयौ गृह वन वास तें।
न तौ कछु वन तें उलटि आवै घर मांहि
न तौ वन चलि जाइ कनक अवास तें॥
जैसैं पंपी पांप टूटि जाही ठौर पर्यौ आइ
ताही ठौर गिरि रह्यौ उडिबे की आस तें।
सुन्दर कहत मिटि जाइ सब दौर धूप
"धोपौ न रहत कोऊ ज्ञान के प्रकास तें" ॥ २५ ॥

---

(२३) लोक संग्रह=संसार यात्रा, संसार का व्यवहार। "लोकसंग्रहमेवापि संपस्यन् कर्त्तुमर्हसि" (गीता)। ज्ञानी संसार के सब आवश्यक कर्मों को अवश्यकर्त्ता है परन्तु भेद यही है कि "पद्मपत्रमिवाम्भसा" जल में कमल के पत्ते की तरह रहकर भी जल से लिपता नहीं है। दौर=दौड़, क्रिया, काम। ज्ञानी को जाग्रत भी तो स्वप्न समान भासता है।

(२५) ज्ञान का लक्षण कहते हैं। ज्ञान सूर्य प्रकाश समान है। स्थान के परि-

जैसें काहू देश जाइ भाषा कहै और सी ही
समुझै न कोऊ वासौं कहै का कहतु है ।
कोऊ दिन रहि करि बोली सीषै उन ही की
फेरि समुझावै तब सबको लहतु है ॥
तैसें ज्ञान कहैं तें सुनत विपरीति लागै
आप आपुनौ ई मत सब को गहतु है ।
उन ही के मत करि सुन्दर कहत ज्ञान
तबही तौ ज्ञान ठहराइ कैं रहतु है ॥ २६ ॥

एक ज्ञानी कर्मनि मैं ततपर देपियत
भक्ति कौ प्रभाव नांहि ज्ञान मैं गरक है ।
एक ज्ञानी भकति कौ अत्यन्त प्रभाव लीये
ज्ञान मांहि निश्चै करि कर्म सौं तरक है ॥
एक ज्ञानी ज्ञान ही मैं ज्ञान कौ उचार करै
भक्ति अरु कर्म इनि दुहुं ते फरक है ।
कर्म भक्ति ज्ञान तीनौं वेद मैं बपांनि कहे
सुन्दर बतायौ गुरु ताही मैं लरक है ॥ २७ ॥

वर्तन आदि की अपेक्षा नहीं। कनक अवास=स्वर्ण का महल। पषी=पक्षी, पखेरु। टूटि=टूटी, टूट पड़ी।

(२६) इस छन्द में स्व० सुं० दा० जी ने मनुष्य में ज्ञान किस प्रकार आता है वा बढ़ता है इस बात का आध्यात्मिक वा मानसिक रहस्य का, क्रम का वा सिद्धांत निरूपण किया है। प्राप्ति अभ्यास अथवा साधन के आधीन है।

(२७) छन्द पाद के अक्षर पूर्ति के लिए "भक्ति" को "भकति' लिखा गया है ('एक ज्ञानी भकति कौं'—यहां)। तरक=अरबी तर्क शब्द=त्याग। वा सं० तर्क, दलील, छानबीन, विवेक। फरक=अ० फर्क भिन्नता। लरक=तत्पर, अभ्यस्त। 'सुन्दर बतायौ गुरु' इसका सम्बन्ध 'ज्ञानभक्ति कर्म' वेद के बताए से भी हो सकता

जैसें पंषी पगनि सौं चलत अवनि आइ
तैसें ज्ञानी देह करि कर्मनि करत है।
जैसें पंषी चूंच करि चुगत अहार पुनि
तैसें ज्ञानी उर में उपासना धरत है॥
जैसें पंषी पंषनि सौं उडत गगन मांहिं
तैसें ज्ञानी ज्ञान करि ब्रह्म मैं चरत है।
सुन्दर कहत ज्ञानी तीनौं भांति देषियत
ऐसी विधि जानें सब संशय हरत है॥ २८॥

इन्दव

एक क्रिया करि क्रिषि निपावत आदि रु अन्त ममत्व बंध्यौ है।
एक क्रिया करि पाक करै जब भोजन लौं कछु अन्न रंध्यौ है॥
एक क्रिया मल त्यागत है लघुनीति करै कहुं नांहि फंध्यौ है।
त्यौं यह जांनि क्रिया अरु संग्रह सुन्दर तीनि प्रकार संध्यौ है॥ २९॥
दोइ जने मिलि चौपरि पेलत सारि धरैं पुनि ढारत पासा।
जीतत हैं सु पुसी मन मैं अति हारत है सु भरै जु उसासा॥

है। अथवा सम्बन्ध नहीं भी हो सकता है और गुरु के बताए विशिष्ट वा विलक्षण रहस्य (सैन) भी अभिप्राय लिया जा सकता है। 'लरक' यह शब्द हिन्दी भाषा में अव्यवहृत प्रतीत होता है।

(२८) इस छन्द में ज्ञानी के लिये कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों का उदाहरण पक्षी (पखेरू) से दिया है। स्वभावतः ज्ञानी आकाश में उडनेवाले पांखोंवाले के समान है, परन्तु संसार यात्रा और शरीर यात्रा करने को पृथ्वी पर आना और चुगना यह भी करता है। अर्थात् कर्म और पुनः भक्ति गौण है। प्रधान ज्ञान है।

(२९) जानि=जानकारी, ज्ञान। तीनि प्रकार=कर्म, भक्ति और ज्ञान। संध्यौ=मिला हुआ। क्रिषि निपावत=खेती कर अन्न उत्पन्न करै।

एक जनों दुहु वोर ही पेलत हारि न जीति करै जु तमासा ।
तैसैं अज्ञानी कैं द्वैत भयौ भ्रम सुन्दर ज्ञानी कै एक प्रकासा ॥ ३० ॥

सवईया

जीव नरेश अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयौ करि हेत ।
कर्म पवास पुटपरी लाई तातें वहु विधि भयौ अचेत ॥
भक्ति प्रधान जगायौ कर गहि आलस भर्यौ जंभाई लेत ।
सुन्दर अव निद्रा वस नाहीं ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥ ३१ ॥
ज्ञानी कर्म करै नाना विधि अहंकार या तन कौ पोवै ।
कर्मन कौ फल कछू न वंछै अन्तहकरन वासना धोवै ॥
ज्यौं कोई पेती कौं जोतै लै करि वीज भूंनि करि वोवै ।
सुन्दर कहै सुनौ दृष्टान्त हि "नागौ न्हाइ सु कहा निचोवै" ॥ ३२* ॥

॥ इति ज्ञानी कौ अंग ॥ २९ ॥

अथ निरसंशै को अंग ॥ ३० ॥

मनहर

भावै देह छूटि जाहु काशी मांहि गंगातट
भावै देह छूटि जाहु क्षेत्र मगहर मैं ।

---

(३०) अज्ञानी=जो आपस में खेलते हैं वे परस्पर स्पर्द्धा होने से द्वैतवाले अज्ञानी हैं । ज्ञानी=वह तमाशा देखनेवाला (भेद रहित होने से) ज्ञानी ।

(३१) चार अवस्थाओं के उदाहरण—(१) विषयसुख (२) कर्म (३) भक्ति (उपासना) (४) ज्ञान । पुटपरी=(१) पगचंपी । अथवा (२) भंग धतूरे का पुट दी हुई या मदिरा अफ्यूनदार ।

* छन्द ३२ (क) पुस्तक में नहीं है (ख) आदि में है।

अंग ३० वां—निरसंसैं=निःसंशय=संशय रहित ।

भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन मध्य
भावै देह छूटि जाहु स्वपच कै घर मैं॥
भावै देह छूटौ देश आरज अनारज मैं
भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं।
सुन्दर ज्ञानी कै कछु संशै नहिं रह्यौ कोइ
स्वरग नरक सब भाजि गयौ भर मैं॥ १॥

भावै देह छूटि जाहु आज ही पलक मांहि
भावै देह रहौ चिरकाल जुग अन्त जू।
भावै देह छूटि जाहु ग्रीषम पावस रितु
सरद सिसिर सीत छूटत वसन्त जू॥
भावै दक्षनायन हू भावै उत्तरायन हूं
भावै देह सर्प सिंह बिज्जुली हनन्त जू॥
सुन्दर कहत एक आतमा अखण्ड जांनि
याहि भांति निरसंशै भये सब सन्त जू॥ २॥

---

(१) मगहर=मगधदेश। यहां मरने से मुक्ति नहीं होती ऐसा कहीं २ लिखा है। भर=मरुस्थल वा भाड़। (देखो अर्थ आगे) कांशीमांहि=काशीमरण से मुक्ति मानी गई है, ऐसे ही गंगाजल वा गंगातट पर मृत्यु से मोक्ष मानी गई है। भर=(यहां) भाड़ का अर्थ प्रतीत होता है। भर का अर्थ लड़ाई युद्ध का भी है। ग्रामीण मारवाड़ी में मरुस्थल निर्जल निर्जन स्थान को भी भर कहते हैं। जहां जाने से नाश वा अभाव हो जाय, उसी से प्रयोजन है।

(२) उत्तरायन=सूर्य जब उत्तरायण में आवें और मनुष्य की मृत्यु हो तो सद्गति मानी जाती है। सूर्य उत्तरायण में धनुराशि पर आने के प्रायः ९ दिन पीछे आ जाता है और उस दिन तारीख २२ दिसम्बर होती है। यह अयन शिशिर, वसंतः और ग्रीष्म तीन ऋतुओं में छह महीने तक रहता है। ता० २१ जून तक रहता है। फिर सूर्य दक्षिणायन में आने लगता है। भीष्मजी उत्तरायण में सूर्य आया तब ही मरे थे। इसका महात्म्य गीता अ० ८ श्लो० २४ में भी दिया है—

इन्द्व

कै यह देह धरौ वन पर्वत कै यह देह नदी में वहौ जू।
कै यह देह धरौ धरती महिं कै यह देह कृशान दहौ जू॥
कै यह देह निरादर निंदहु कै यह देह सराहि कहौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब कै यह देह चलौ कि रहौ जू॥ ३॥
कै यह देह सदा सुख सम्पति कै यह देह विपत्ति परौ जू।
कै यह देह निरोग रहौ नित कै यह देह हि रोग चरौ जू॥
कै यह देह हुतासन पैठहु कै यह देह हिंवारै गरौ जू।
सुन्दर संशय दूरि भयौ सब कै यह देह जिवौ कि मरौ जू॥ ४॥

॥ इति निरसंशै को अंग ॥ ३० ॥

॥ अथ प्रेमपराज्ञान ज्ञानी को अंग ॥ ३१ ॥

इन्द्व

प्रीति की रीति नहीं कछु राषत जाति न पांति नहीं कुल गारौ।
प्रेम कै नेम कहूं नहिं दीसत लाज न कांनि लग्यौ सब पारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहुं जाम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ ही न्यारौ"॥ १॥

"अग्निर्ज्योतिरहः शुक्रः षण्मासा उत्तरायणम्। तत्र प्रयाता गच्छंति ब्रह्म ब्रह्मविदोजनाः"॥ २४ सर्प, सिंह, विजली, धुवां, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि में मरने से या तो सद्गति नहीं हो या फिर जनमै।

(३) कृशान=कृशानु=अग्नि। हुतासन=हुताशन=प्रबल अग्नि।

[अंग ३१] (१) कुल गारौ=कुल गारी=कुलाम्नाय छोड़ने से जो निन्दा हो (उसकी कुछ परवाह नहीं) "अरु आवै कुलगारी"। सूरदास अथवा—कुलरूपी कीच।

ज्ञान दियौ गुरुदेव कृपा करि दूरि कियौ भ्रम पोलि किवारौ।
और क्रिया कहि कौंन करै अब चित्त लग्यौ परब्रह्म पियारौ॥
पांव विना चलि कै तहिं ठाहर पंगु भयौ मन मित्त हमारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ २॥
एक अखंडित ज्यौं नभ व्यापक बाहिर भीतर है इकसारौ।
दृष्टि न मुष्टि न रूप न रेप न सेत न पीत न रक्त न कारौ॥
चक्रित होइ रहै अनुभौ विन जौं लग नांहि न ज्ञान उज्यारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ३॥
द्वंद्व विना विचरै बसुधा परि जा घट आतम ज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ॥
योग न भोग न त्याग न संग्रह देह दशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ४॥
लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष न पक्ष अपक्ष न तूल न भारौ।
झूठ न सांच अवाच न वाच न कंचन काच न दीन उदारौ॥
जान अजान न मान अमान न शान गुमान न जीत न हारौ।
सुन्दर कोउ न जांनि सकै यह "गोकुल गांव कौ पैंडौ हि न्यारौ"॥ ५॥

॥ इति प्रेमपराज्ञान ज्ञानी को अंग ॥ ३१ ॥

---

(३) पैंडौ=पैंडा=मार्ग, रीति। मुष्टि=मुट्ठी, मुट्ठी में, गुप्त। दृष्टि=दृष्ट, दृश्यमान, प्रगट। ज्ञान=तत्वज्ञान।

(४) म्हारो=(राजस्थानी)—मेरा, अपना। थारो=तुम्हारा, पराया। ढक्यौ=ढका हुआ। वस्त्र पहिने हुए।

(५) तूल=रुई (जैसा हलका)। अवाच=वचनातीत, कहने में न आवै। अथवा वाच्य, कहने योग्य शिष्ट वाक्य।

वृक्ष बंध (९) पहिला १

त्र
प
कै
ता
न
घ
स्र
ही
ति
त्र
त
य
धि
दे
ही
त्यों
कौं
ज्यों
श्व
वि
प
ट
वि
हा
क
ए
१
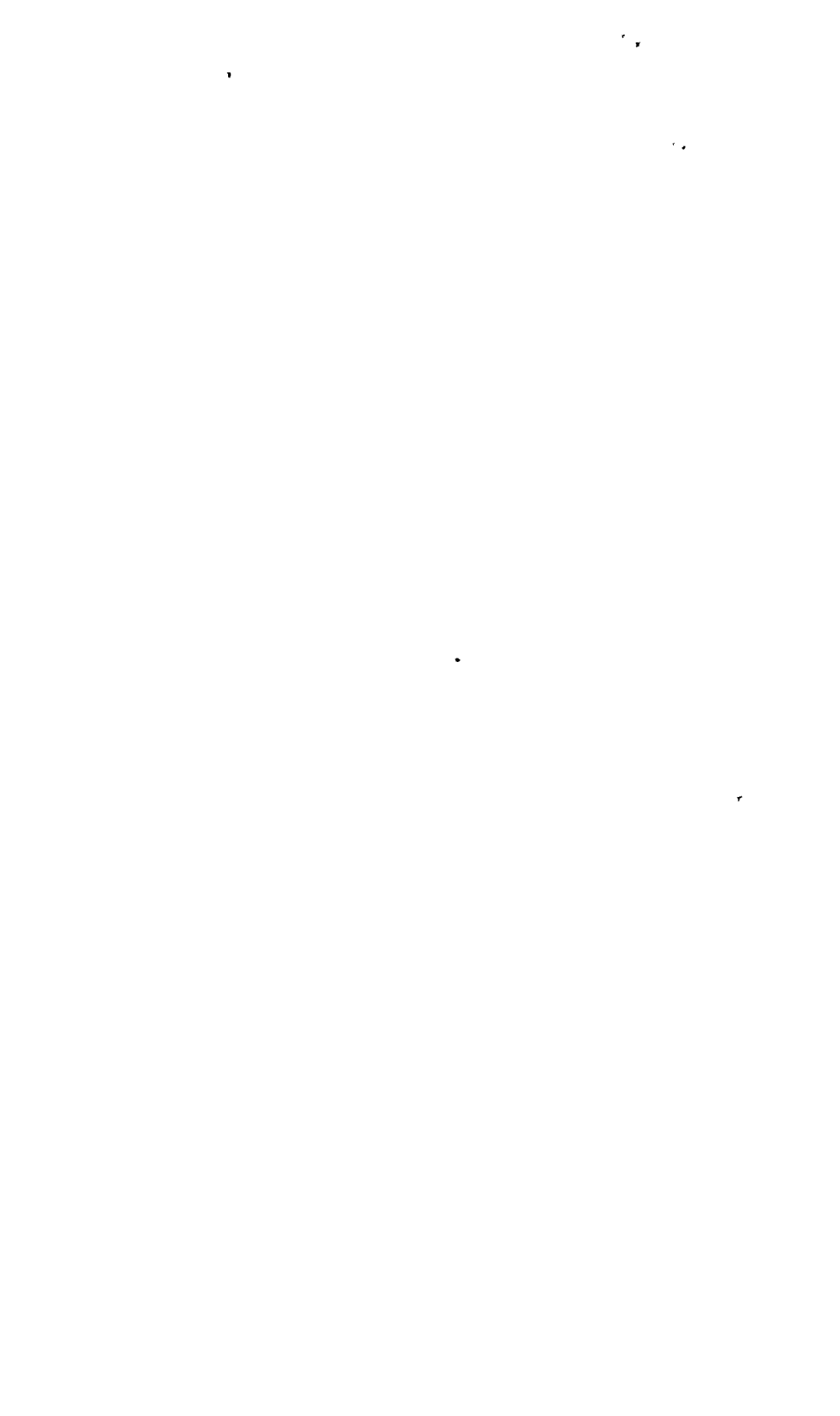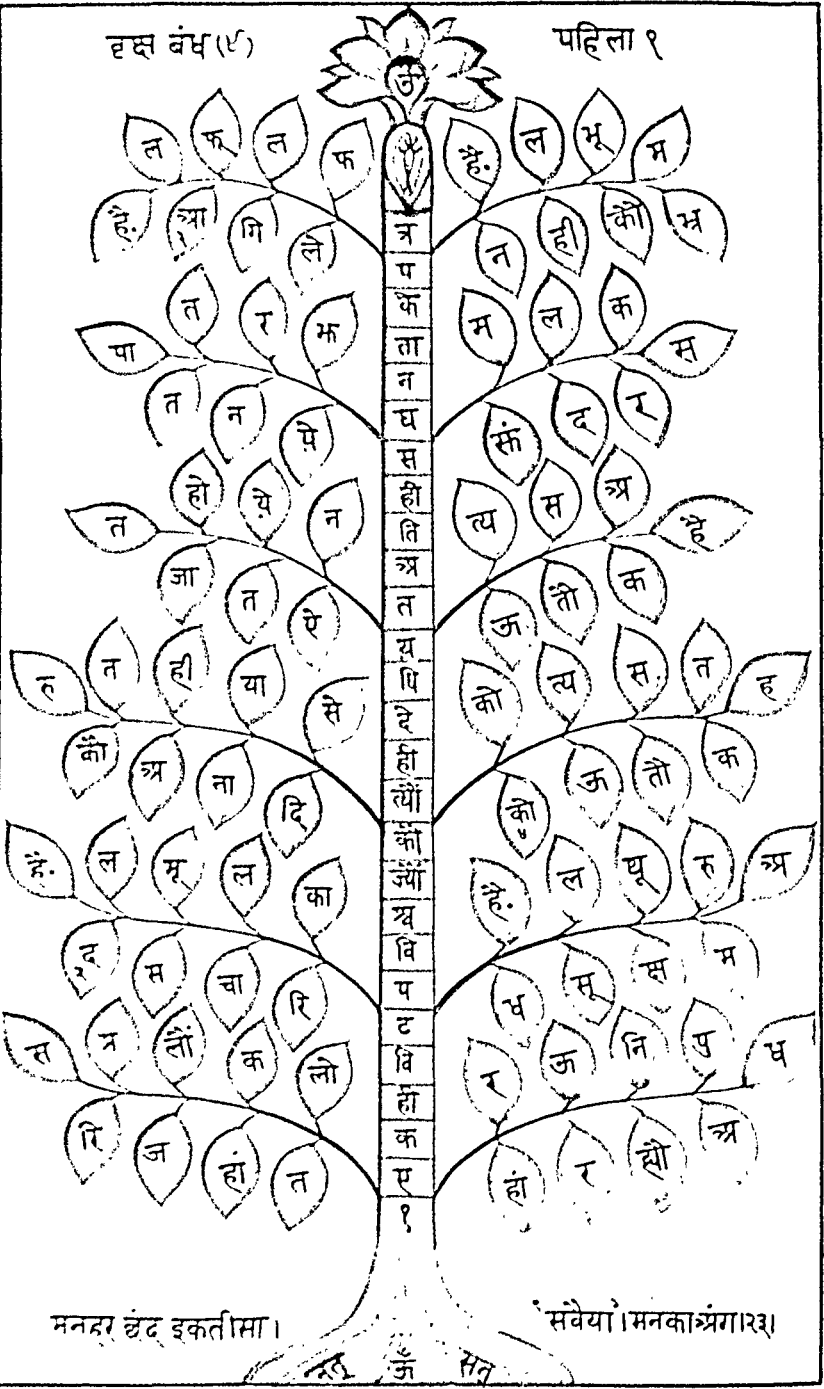
मनहर छंद इकतीसा। सवैया। मनका अंग।२३।

ॐ

वृक्षवन्ध (१)

मनहर छन्द

एक ही विटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देखियत
अति ही सघन ताके पत्र फल फूल है।
आगिले झरत पात नये नये होत जात
ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है॥
दस चारि लोक लौं प्रसरि जहां तहां रह्यो
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य
सुन्दर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है॥ १॥

पढ़ने की विधिः—

इस वृक्ष वंध के छन्द को वृक्ष के तने की जड़ के ऊपर ए अक्षर से प्रारंभ करना चाहिये। ए अक्षर पर १ का अङ्क नीचे को लगा हुआ है। ऊपर पढ़ते जांय त्र तक पढ़ें, फिर बांई ओर को फ अक्षर से पत्तों में पढ़ें। प्रथम चरण है में पूरा करें जहां पूर्ण-विराम का विन्दु लगा है। प्रत्येक चरण के आदि के अक्षर के नीचे १-२-३-४ के अङ्क और अन्त के अक्षर पर पूर्ण विराम के विन्दु (फुलस्टाप) लगा दिये गये हैं जिससे पढ़ने में सुविधा रहे। पत्तों के अक्षरों के पढने में यह सावधानी रक्खी जाय कि टहनी के (पढ़ने में) सबसे पिछले पत्ते के अक्षर को पास की दूसरी टहनी के निकटवाले पत्ते के अक्षर से मिला कर पढ़ें। पत्तों के अक्षरों का क्रम लगातार कवि महात्मा ने ऐसा ही रक्खा है। दूसरा चरण छठे पत्ते के आ अक्षर से पढ़कर ३७ वें पत्ते (पांचवी टहनी के ५ वें) में पूरा करें। इसही प्रकार ३ रे चरण को द से प्रारम्भ करके आठवीं टहनी के ९ नवें अक्षर में पूर्ण करें। और चौथे चरण को उक्त टहनी के आगे ९ वीं टहनी के प्रथम अक्षर को से प्रारम्भ करके १२ वीं टहनी के अन्तिम पत्ते के अक्षर में पूर्ण करें। चतुर रचनाकार ने टहनियों के पत्तों की गणना दोनों ओर के प्रथम तीन की (प्रथम कोट और आगे के दो २ की ७-७) २२-२२। और पिछले तीन की ९-९ यों २७ रक्खी है। यों तने की २६+ दोनों ओर ९८=१२४ हैं। इस युक्ति से चरणान्त अक्षर, वाम पार्श्व में टहनी के अन्त के पत्ते में और दाहिने में तने के पास के ऊपर के प्रथम पत्ते में आया है कहीं भी मध्य में नहीं आया है। इससे छन्द के पढ़ने और दर्शन में सुन्दरता आ गई है।

॥ अथ अद्वैतज्ञान को अंग ॥ ३२ ॥

इन्दव (प्रश्नोत्तर)

हौ तुम कौन, हौं ब्रह्म अखंडित, देह मैं क्यौं, नहिं देह क नेरैं।
बोलत कैंसे कै, हौं नहिं बोलत, जानिये कैसैं, अज्ञान है तेरैं॥
दूर करौ भ्रम, निश्चय धारि. कहौ गुरुदेव, कहौं नित टेरैं।
हौ तुम ऐसैं हि, तूं पुनि ऐसौ ई, दोइ भये, नहिं द्वैत है मेरैं॥ १ ॥
हौं कछु और कि तूं कछु और कि है कछु और किसो कछु औरै।
हौं अरु तू यह है कछु सो पुनि बुद्धि विलास भयौ झक झौरै॥
हौं नहि तूं नहिं है कछु सो नहिं बूझि विना जित ही तित दौरै।
हौं पुनि तूं पुनि है कछु सो पुनि सुन्दर व्यापि रह्यौ सव ठौरै॥ २ ॥
उत्तम मध्यम और सुभासुभ भेद अभेद जहां लग जो है।
दीसत भिन्न तवो अरु दर्प्पन वस्तु विचारत एकई लो है॥
जो सुनिये अरु दिष्टि परै पुनि वा विन और कहौ अव को है।
सुन्दर सुन्दर व्यापि रह्यौ सव सुन्दर ही महिं सुन्दर सोहै॥ ३ ॥
ज्यौं वन एक अनेक भये द्रुम नाम अनंतनि जाति हु न्यारी।
वापि तडाग रु कूप नदी सव है जल एक सौ देषौ निहारी॥

[३२ वा अंग] (१) नेरैं=निकट। अनात्म देह में व्यापक होकर इससे भिन्न और फिर निकट। दोइ भये=हौं (मैं) और तूं (तुम)—ऐसा कहने से द्वैत हो गया ऐसा सन्देह शिष्य ने किया। उसका ही परिहार कर समाधान गुरु करता है कि मेरे द्वैत नहीं है। अर्थात् "तत्वमसि" महावाक्य का स्मरण कर। और दूसरे छन्द में विस्तार से निरूपण करता है गुरु।

(३) तवो=(लोहे का) तवा रोटी पकाने का। दर्पण=फौलाद का बना हुआ दर्पन। लो=लोहा। सोहै=सुहाना लगै।

पावक एक प्रकाश वहू विधि दीप चिराक मसाल हु बारी।
सुन्दर ब्रह्म विलास अखंडित खंडित भेद को बुद्धि सु टारी ॥ ४ ॥
एक सरीर मैं अंग भये वहु एक धरा परि धाम अनेका।
एक शिला महिं कोरि किये सब चित्र बनाइ धरे ठिकठेका ॥
एक समुद्र तरंग अनेकनि कैसैं क कीजिये भिन्न विवेका।
द्वैत कछू नहिं देपिये सुन्दर ब्रह्म अखंडित एक कौ एका ॥ ५ ॥
ज्यौं मृतिका घट नीर तरंग हि तेज मसाल किये जू वहूता।
वायु वघूरनि गांठि परी वहु वादल व्योम सु व्योम जीमूता ॥
वृक्ष सु वीज है वीज सु वृक्ष है पूत सु वाप है वाप सपूता।
वस्तु विचारत एक हि सुन्दर तांनै रु वांनै तौ देपिये सूता ॥ ६ ॥
भूमि हू चेतनि आपु हु चेतनि तेज हु चेतनि है जु प्रचंडा ॥
वायु हु चेतनि व्योम हु चेतनि शब्द हु चेतनि पिंड ब्रह्मंडा ॥
है मन चेतनि वुद्धि हू चेतनि चित्त हू चेतनि आहि उडंडा।
जो कछु नाम धरैं सोइ चेतनि चेतनि सुन्दर ब्रह्म अखंडा ॥ ७ ॥
एक अखंडित ब्रह्म विराजत नाम जुदौ करि विश्व कहावै।
एक ई ग्रन्थ पुरान बपानत एक ई दत्त वसिष्ट सुनावै ॥
एक ई अर्जुन उद्धव सौं कहि कृष्ण कृपा करि कैं समुझावै।
सुन्दर द्वैत कछू मति जानहुं एक ई व्यापक वेद बतावै ॥ ८ ॥

---

(४) (५) (६)—इन तीनों छन्दों में विशेषतः समष्टि और व्यष्टि की युक्तियों से अखण्ड ब्रह्म का जगत् का पसारा नाना भेद रूपादि में दरसाया है। कार्य-कारणता सम्बन्ध (जैसे बीज-वृक्ष न्याय से) भी दिखाया है। ठिकठेका=ठीक ठीक। जीमूत=बादल।

(७) (८)—इन दो छन्दों में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन" इस श्रुति का प्रगटरूप से वर्णन है। संसार में जड़ वा अनात्म पदार्थ कोई नहीं है सब चैतन्य (चेतन—ब्रह्म) ही है। चेतन कारण है चेतन ही कार्य (जगत्) है। यह

मनहर (प्रश्नोत्तर)

शिष्य पूछै गुरुदेव गुरु कहै पूछ शिष्य
मेरै एक संशय है, पूछै क्यौं न अव ही।
तुम कह्यौ एक ब्रह्म अव हूं मैं कहूं एक
एक तौ अनेक (ता) क्यौं इह तौ भ्रम सव ही॥
भ्रम इह कौंन कौं है भ्रम ही कौं भ्रम भयौ
भ्रम ही कौं भ्रम कैसें तूं न जानै कव ही।
कैसें करि जानौं प्रभु गुरु कहै निश्चै धरि
निश्चय मैं धार्‌यौ अव एक ब्रह्म तव ही॥ ९॥

ब्रह्म है ठौर कौ ठौर दूसरौ न कोऊ और
वस्तु कौ विचार कीयें वस्तु पहिचांनिये।
पंचतत्व तीन गुन विस्तरे विविधि भांति
नाम रूप जहां लगै मिथ्या माया मांनिये॥
शेष नाग आदि दै कै वैकुण्ठ गोलोक पुनि
वचन विलास सव भेद भ्रम भांनिये।

वात शंकर मत (विवर्त्तवाद) से एक अंश में प्रतिकूल भले ही पड़े परन्तु वास्तव में इसकी समर्थक श्रुतियां हैं। दत्त=दत्तात्रेय। दत्तात्रेय-संहिता में इस विश्व को ब्रह्म का विराट्स्वरूप मात्र कहा है। वशिष्ठ—वशिष्ठजी ने भी योगवाशिष्ठ में अनेक स्थानों में ऐसा ही कहा है। अर्जुन को गीता और अनुगीता में। उद्धव को भागवत में इस ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश श्रीकृष्ण ने दिया है।

(९) शिष्य के नानात्वरूपी भ्रम को गुरु निवारण करता है कि यह सृष्टि भ्रम (मिथ्या—दृश्यमान सत्य और वास्तव असत्य—क्षर) है। जीव ईश्वर दशा उपाधियों सहित्य होने से नानापने का आभास होता है। कार्य-कारणता के भ्रम मिट जाने पर सच्चा और पूर्ण बोध हो जाता है। "कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते"। इस वचन से।

न तौ कोऊ उरझ्यौ न सुरझ्यौ कह्यौ सु कौंन
सुन्दर सकल यह "ऊवावाई जांनिये" ॥ १० ॥

प्रथम हिं देह में तें बाहिर कौं चौंकि पर्‌यौ
इन्द्रिय व्यौपार सुख सत्य करि जांन्यौ है ।
कौंन ऊ संयोग पाइ सद्‌गुरु सौं भेट भई
उन उपदेश दे कै भीतर कौं आंन्यौ है ॥
भीतर कैं आवत हि बुद्धि कौ प्रकास भयौ
हौं कौंन देह कौंन जगत किन मान्यौ है ।
सुन्दर विचारत यौं उपज्यौ अद्वैत ज्ञान
आपु कौं अखंड ब्रह्म एक पहिचांन्यौ है ॥ ११ ॥

हंसाल

सकल संसार विस्तार करि वरनियौ स्वर्ग पाताल मृति पूरि भ्रम रह्यौ है ।
एक तें गिनत गिनि जाइये सो लगें फेरि करि एक कौं एक ही गह्यौ है ॥
यह नहिं यह नहिं यह नहिं यह नहिं रहै अवशेष सो वेद हू कह्यौ है ।
सुन्दर सही सौं विचारि कै अपुनपौ "आपु मैं आपु कौं आपु ही लह्यौ है"॥१२॥
एक तूं दोइ तूं तीन तूं चारि तूं पंच तूं तत्व मैं जगत कीयौ ।
नाम अरु रूप ह्वै वहुत विधि विस्तर्‌यौ तुम विना और कोऊ नाहिं वीयौ ॥
राव तूं रंक तूं दानि तूं दीन तूं दोइ कर मेलि तें दीयौ लीयौ ।
सकल यह सृष्टि तुम मांहि उपजै खपै कहत सुन्दर वडौ विपुल हीयौ ॥१३॥

---

(१०) "ऊवावाई"—यह ऊवावाई शब्द "बावनी" ग्रन्थ के १५ वें छन्द में आया है। वहां टीका देखें। पोपांबाई की तरह एक यह "ऊवावाई" भी हुई है।

(१३) बीयौ=दूजा, दूसरा। विपुल हीयौ=बहुत बड़ा हृदय। ईश्वर का महान् विशाल विचार है जिससे महान् विश्व हुआ। अथवा सुन्दरदासजी कहते हैं कि विराट विश्व का महान् विचार करते करते मेरा हृदय भी महान् हो जाता है।

मनहर

तोही में जगत यह तू ही है जगत मांहि
तौ में अरु जगत में भिन्नता कहां रही।
भूमि ही तें भाजन अनेक भांति नाम रूप
भाजन विचारि देषें उहै एक है मही॥
जल तें तरंग भई फेन बुद्बुदा अनेक
सो ऊ तौ विचारें एक वहै जल है सही।
महा पुरुष जेतें है सब कौ सिद्धांत एक
सुन्दर खल्विदं ब्रह्म अन्त वेद है कही॥ १४॥

जैसें ईक्षुरस की मिठाई भांति भांति भई
फेरि करि गारै ईक्षुरस हि लहत हैं।
जैसें घृत थीजि कैं डरा सौ बंधि जात पुनि
फेरि पिघरे तें वह घृत ई रहत है॥
जैसें पानी जमि कै पषान हू सौ देषियत
सो पषान फेरि करि पानी ह्वै वहत है।
तैसें हि सुन्दर यह जगत है ब्रह्ममय
ब्रह्म सौ जगत मय वेद यौं कहत है॥ १५॥

जैसें काठ कोरि ता में पूतरी बनाइ राषी
जो विचार देषिये तौ उहै एक दार है।
जैसें माला सूत ही की मनिकाऊ सूत ही के
भीतर हू पोयौ पुनि सूत ही कौ तार है॥
जैसें एक समुद्र के जल ही कौं लौंन भयौ
सो ऊ तौ विचारे पुनि उहै जव पार है।

---

(१४) खल्विदं ब्रह्म="सर्वं खल्विदं ब्रह्म..." श्रुतिवाक्य उपनिषद का है। यह सब सृष्टि जो भासती है सारी ब्रह्म है—ब्रह्मरूपा है।

(१५) ईक्षु=ईख, गन्ना, सांठा। थीजिके=जमकर, गाढ़ा होकर।

तैसें हि सुन्दर यह जगत सु ब्रह्ममय
ब्रह्म सो जगत मय याहि निरधार है ॥ १६ ॥

जैसें एक लोह के हथ्यार नाना विधि कीये
आदि अन्त मध्य एक लोह ई प्रवानिये ।
जैसें एक कंचन के भूपन अनेक भये
आदि अन्त मध्य एक कंचन ई जानिये ॥
जैसें एक मैंन के संवारे नर हाथी हय
आदि अन्त मध्य एक मैंन ही वपानिये ।
तैसें ही सुन्दर यह जगत सु ब्रह्ममय
ब्रह्म सो जगत मय निश्चै करि मानिये ॥ १७ ॥

ब्रह्म में जगत यह ऐसी विधि देपियत
जैसो विधि देपियत फूलरी महीर मैं ।
जैसी विधि गिलम दुलीचे मैं अनेक भांति
जैसी विधि देपियत चूनरी हू चीर मैं ॥
जैसी विधि कांगरे ऊ कोट पर देपियत
जैसी विधि देपियत बुदबुदा नीर में ।
सुन्दर कहत लीक हाथ पर देपियत
जैसी विधि देपियत शीतला शरीर मैं ॥ १८ ॥

---

(१६) पूतरी=पुतली, मूर्त्ति । दार=दारु, काठ । (१७) मैंन=मैंण, मोम ।

(१८) फूलरी महीर में=महीर=मट्ठा । फूलरी=मक्खन की छोटी डलियां जो दही बिलोते में पड़ती हैं । अथवा महीरुह=वृक्ष । फूलरी=फूल अथवा चीर वा ओटने में फूल बूंटे । गिलम=बढिया मखमल से भी उत्तम वेल बूंटदार कारीगरी के मुलाइम रेशमी कपड़े वा गालीचे जो बादशाहों वा अमीरों के लिए बनते थे— "गिलगिली गिलमैं हैं" (पद्माकर) दुलीचा=गालीचा । चूनरी=बंधाई डोरे की से कपड़े की रंगाई में फूल से बनते हैं ।

ब्रह्म अरु माया जैसैं शिव अरु शक्ति पुनि
पुरुष प्रकृति दोउ करि कैं सुनाये हैं।
पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी ऊ
नारायण लक्ष्मी द्वै वचन कहाये हैं॥
जैसैं कोऊ अर्द्ध नारी नाटेश्वर रूप धरै
एक बीज ही तें दोइ दालि नाम पाये हैं।
तैसैं हि सुन्दर वस्तु ज्यौं है त्यौं ही एक रस
उभय प्रकार होइ आपु ही दिषाये हैं॥ १९ ॥

इन्दव

ब्रह्म निरीह निरामय निर्गुन नित्य निरंजन और न भासै।
ब्रह्म अखंडित है अध ऊरध वाहिर भीतरि ब्रह्म प्रकासै॥
ब्रह्म हि सूक्षम थूल जहां लग ब्रह्म हि साहिब ब्रह्म हि दासै।
सुन्दर और कछू मति जानहुं ब्रह्म हि देपत ब्रह्म तमासै॥ २० ॥
ब्रह्म हि मांहि विराजत ब्रह्म हिं ब्रह्म विना जिनि और हि जानौं।
ब्रह्म हि कुंजर कीट हु ब्रह्म हि ब्रह्म हि रंक रु ब्रह्म हि रानौं॥
काल हु ब्रह्म स्वभाव हु ब्रह्म हि कर्म हु जीव हु ब्रह्म वषानौं।
सुन्दर ब्रह्म विना कछु नांहि न ब्रह्म हि जानि सवै भ्रम भानौं॥ २१ ॥
आदि हुतौ सोइ अंतर है पुनि मध्य कहा कछु और कहावै।
कारण कारय नाम धरै जुग कारय कारण मांहि समावै॥
कारय देषि भयौ विचि विभ्रम कारण देषि विभ्रम्म विलावै।
सुन्दर या निहचै अभिअंतर द्वैत गये फिरि द्वैत न आवै॥ २२ ॥

---

(१९) अर्धनारी नाटेश्वर=वामांग में पार्वती दाहिने अंग में शिव। ऐसी मूर्ति को अर्धनारीश्वर कहते हैं। नाट=स्वांग, नक्ल। शिव की ऐसी मूर्ति का नाम "नाटेश्वर" दिया है।

(२०) निरीह=चेष्टारहित। तटस्थ। साक्षीमात्र। निरामय=निर्मल,

(२१) रानौं=राणा, बड़ा राजा। (२२) कारण देखि विभ्रम्म विलावै=कारण

मनहर

द्वैत करि देषै जब द्वैत ही दिषाई देत
एक करि देषै तब उह एक अंग है।
सूरज कौं देषै जब सूरज प्रकाशि रह्यौ
किरण कौं देषै तौ किरण नाना रंग है॥
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसौ नाम धर्‍यौ
भ्रम कै गये तें एक ब्रह्म सरबंग है।
सुन्दर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ
"ब्रह्म अरु माया कै तौ माथै नहिं शृंग है" ॥२३॥
श्रोत्र कछु और नांहि नेत्र कछु और नांहि
नासा कछु और नांहि रसना न और है।
त्वक कछु और नांहि वाक कछु और नांहि
हाथ कछु और नांहि पावन की दौर है॥
मन कछु और नांहि बुद्धि कछु और नांहि
चित्त कछु और नांहि अहंकार तौर है।
सुन्दर कहत एक ब्रह्म विन और नांहि
आपु ही मैं आपु व्यापि रह्यौ सब ठौर है॥२४॥*

इन्दव

व्यापिन व्यापिक व्यापि हु व्यापक आतम एक अखंडित जांनौं।
ज्यौं पृथवी नहिं व्यापिन व्यापक भांजन व्यापि हु व्यापक मांनौं॥

जो ब्रह्म उसका साक्षात्कार होने से काय जो संसार लय हो जाता है अर्थात् मिट जाता है। "परं दृष्ट्वा निवर्त्तते"। यही मोक्ष है।

(२४) पावन की दौर है=पांव भी शरीर के अंग मात्र हैं। उनमें चलने दौड़ने की क्रिया विशेष है। अहंकार तौर है=अहंकार में तोरा या त्योरा अभिमान का स्वभाव या लक्षण है।

कंचन व्यापि न व्यापक दीसत भूपन व्यापि हु व्यापक ठांनौं।
सुन्दर कारण व्यापि न व्यापक कारय व्यापि हु व्यापक आंनौं ॥२५॥※

॥ इति अद्वैतज्ञान को अंग ॥ ३२ ॥

॥ अथ जगन्मिथ्या को अंग ॥ ३३ ॥

मनहर

कियौ न विचार कछु भनक परी है कांन
धार आई सुनि कै डरपि विप पायौ है।
जैसैं कोऊ अनछतौ ऐसै ही बुलाइयत
बार बीति गई पर कोऊ नहिं आयौ है ॥
वेद हि बरनि कैं जगत तरु ठाढौ कियौ
अंत पुनि वेद जर मूल तैं उठायौ है।
तैसैं हि सुन्दर याकौ कोऊ एक पावै भेद
जगत कौ नाम सुनि जगत भुलायौ है ॥ १ ॥

---

(२५) व्यापि=व्याप्य, जिसमें अन्य वस्तु व्यापै, वसै वा प्रवेश करै, सृष्टि, संसार। व्यापिक=व्यापक, ब्रह्म, ईश्वर। यहां व्याप्य व्यापक भाव का विवरण है। विशेषता यही है कि कार्य्य (सृष्टि) को ही व्यापक वा व्याप्य दोनों कहा है। इसही का विवरण आगे के अंग "जगन्मिथ्या" के छन्द ४ में भी है।

※ छन्द २४ और २५ दोनों (क) पुस्तक में इस अंग में नहीं हैं। २३ वें छन्द पर ही समाप्ति है। ये (ख) आदि पुस्तकों में मिले हैं।

[अंग ३३] (१) बार=बहुत समय। अनछतौ=जो वास्तव में है ही नहीं ऐसे पुरुष की कल्पना करके। जगत तरु=जगतरूपी वृक्ष। "अश्वत्थमेनम् सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्वा···" (गीता अ० १५) इस अश्वत्थ का वर्णन

ऐसौ ही अज्ञान कोऊ आइ कै प्रगट भयौ
दिव्य दृष्टि ढुरि गई देषै चम दृष्टि कौं।
जैसैं एक आरसी सदा ई हाथ मांहि रहै
सामैं हो न देषै फेरि फेरि देषै पृष्टि कौं॥
जैसैं एक व्योम पुनि बादर सौ छाइ रह्यौ
व्योम नहिं देपत देपत बहु बृष्टि कौं।
तैसैं एक ब्रह्म ई बिराजमान सुन्दर है
ब्रह्म कौं न देषै कोऊ देषै सब सृष्टि कौ॥ २॥

अनछतौ जगत अज्ञान तें प्रगट भयौ
जैसैं कोऊ बालक बेताल देषि डर्‌यौ है।
जैसैं कोऊ स्वपने मैं दाब्यौ है अथारै आइ
मुख तें न आवै बोल ऐसौ दुख पर्‌यौ है॥
जैसैं अंधियारी रैंन जेवरी न जानै ताहि
आपु ही तें सांप मानि भय अति कर्‌यौ है।
तैसैं हि सुन्दर एक ज्ञान कै प्रकास बिन
आपु दुख पाय पाय आपु पचि मर्‌यौ है॥ ३॥

ऋग्वेद, अथर्ववेद तैत्तिरीय ब्राह्मण, कठोपनिषद, महाभारत और पुराणों में भी है। गीता में कठोपनिषद के अनुसार है। यह वृक्ष संसाररूप है जिसकी जड़ माया अविद्या है। जो ज्ञान और प्रसंग से कट जाती है। (शंकरभाष्य और गीता रहस्य देखो)।

(२) ढुरि=छिपगई। चम दृष्टि=चर्म दृष्टि, स्थूल दृष्टि। यहां उपाधि के कारण यथार्थ ज्ञान न होने से अभिप्राय है। (देखो वेदांत सार)। सूक्ष्म आध्यात्मिक दृष्टि वा ज्ञान से शुद्ध की हुई बुद्धि के बिना ब्रह्म नहीं अनुभवित हो सकता। स्थूल दृष्टि से मिथ्या यह जगत् ही सत्य दीखता है।

(३) अथारै=सूर्यास्त पीछे। अन्धेरे में।

मृत्तिका समाइ रही भाजन के रूप मांहि
मृतिका कौ नाम मिटि भाजन ई गह्यौ है।
कनक समाइ त्यौं ही होइ रह्यौ आभूषन
कनक न कहै कोऊ आभूषन कह्यौ है॥
बीज ऊ समाइ करि वृक्ष होइ रह्यौ पुनि
वृक्ष ई कौं देषियत बीज नहीं लह्यौ है।
सुन्दर कहत यह यौंही करि जानौ सब
ब्रह्म ई जगत होइ ब्रह्म दुरि रह्यौ है॥ ४॥

कहत है देह मांहि जीव आइ मिलि रह्यौ
कहां देह कहां जीव वृथा चौंकि पर्‌यौ है।
बूडबे के डर तें तिरन कौ उपाइ करै
ऐसैं नहिं जानै यह मृगजल भर्‌यौ है॥
जेवरे कौ सांपु जैसें सीप विषै रूपौ जांनि
और कौं और इ देषि यौंही भ्रम कर्‌यौ है।
सुन्दर कहत यह एक ई अखंड ब्रह्म
ताही कौं पलटि कैं जगत नाम धर्‌यौ है॥ ५॥

॥ इति जगन्मिथ्या को अंग ॥ ३३ ॥

(४-५) १ से ५ तक वही एक विचार पृथक् उदाहरणों दृष्टांतो से दरसाया है। इनमें ईश्वर ही जगत्‌रूप होना कहा है। अर्थात् निमित्त और उपादान कारण भी वही है। भासमान जगत् माया का विवर्त्तरूप है वा मिथ्या है इन्द्रजाल, मृगतृष्णा (मरीचिका) के जल के समान, अथवा उपाधि के आरोप से रस्सी का सांप वा सीप की चांदी प्रतीत हो वैसे सत्य वस्तु ब्रह्म में असत्य वस्तु संसार भासता है। वास्तव में जगत् है नहीं। वेताल=भुत-प्रेत। कहां देह कहां जीव=मिथ्यात्व की रीति को प्रश्न करके दरसाते हैं कि देह भ्रम वा मिथ्या है उसमें जीव (ब्रह्म वा

॥ अथ आश्चर्य को अंग ॥ ३४ ॥

मनहर

वेद कौ विचार सोई सुनि कै संतनि मुख
आपु हू विचार करि सोई धारियतु है।
योग की युगति जानि जग तैं उदास होइ
शून्य मैं समाधि लाइ मन मारियतु है॥
ऐसैं ऐसैं करत करत केते दिन बीते
सुन्दर कहत अज हूं विचारियतु है।
कारौ ही न पीरौ न तौ तातौ ही न सीरौ कछु
हाथ न परत तातैं हाथ झारियतु है॥ १॥

मन कौ अगम अति वचन थकित होत
बुद्धि हू विचार करि यहु पींडियतु है।
श्रवन न सुनैं जाहि नैंन हू न देपैं ताहि
रसना कौ रस सरबस छींडियतु है॥
त्वक कौ सपर्श नांहि घ्रांण को न विषै होइ
पगनि हूं करि जित तित हींडियतु है।

आत्मा) का आना कैसा ? अर्थात् यह एक मिथ्या विचार मात्र है। संसार माया-जाल है। वस्तुतः कुछ नहीं है। फिर भी "संसारसागर" से डर कर इसमें डूबने से बचने के लिये अनेक उपाय मनुष्य किया करता है। सो अवस्तु की भ्रम भरी कल्पना मात्र होने से केवल वृथा विडम्बना ही है। ज्ञानरूपी प्रकाश से मिथ्या भ्रम का नाश हो कर वास्तविक सत्य वस्तु ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। तब आप ही जगत् का मिथ्या होना निश्चित होता है।

[अङ्ग ३४] (१) परमात्मा की प्राप्ति में मनुष्य के विचार की अशक्तता वर्णित है।

सुन्दर कहत अति सूक्ष्म स्वरूप कछु
हाथ न परत तातें हाथ मींडियतु है ॥ २ ॥

गुफा कौं संवारि तहं आसन उ मारि करि
प्राण हूं कौं धारि धारि नाक सौंटियतु है।
इन्द्रिनि कौं घेरि करि मन हूं कौं फेरि करि
त्रिकुटी में हेरि हेरि हियौ छौंटियतु है॥
सब छुटकाइ पुनि शून्य में समाइ तहं
समाधि लगाइ करि आंपि मींटियतु है।
सुन्दर कहत हम और ऊ किये उपाय
हाथ न परत तातें हाथ पीटियतु है ॥ ३ ॥

बोलै ही न मौन धरै बैठै ही न गौन करै
जागै ही न सोवै सु तौ दूरि ही न नीरौ है।
आवै ही न जाइ न तौ थिर अकुलाइ पुनि
भूषौ ही न पाइ कछु तातौ ही न सीरौ है॥
लेत ही न देत कछु हेत न कुहेत पुनि
स्याम ही न सेत सु तौ रातौ ही न पीरौ है।
दूबरौ न मोटौ कछु लांबौ ही न छोटौ तातें
सुन्दर कहै सु कहा काच ही न हीरौ है ॥ ४ ॥

---

(२) पोंडियतु=क्षीण होती है। छौंडियतु=विखरता वखेरता है। हींडियतु=हांडियतु=फिरता वा भ्रमता है। मींडियतु=मलता है। हाथ मलना=अफसोस करना। (यह मुहाविरा मक्खी के दोनों हाथ मारने से उपमा देते हैं।)

(३) सौंटियतु=साफ करता। छौंटियतु=पछांट कर शुद्ध करता। मींटियतु=मोंदलगाता, मूंदना। पीटियतु=एक हाथ दूसरे पर मारता, पश्चात्ताप करता।
इतना उपाय किया जाता है। फिर भी ईश्वर प्राप्ति नहीं होती। तब अफसोस करता है। यही आश्चर्य है।

(४) से (७)—इन सब ही छन्दों में ब्रह्म को अगाध अगम्य अचिन्तनीय

भूमि ही न आप न तौ तेज ही न ताप न तौ
वायु हू न व्योम न तौ पंच कौ पसारौ है।
हाथ ही न पाव न तौ नैंन बैंन भाव न तौ
रंक ही न राव न तौ बृद्ध ही न बारौ है॥
पिंड ही न प्रान न तौ जांन न अजांन न तौ
बंध निरवान न तौ हरवौ न भारौ है।
द्वैत न अद्वैत न तौ भीत न अभीत तातें
सुन्दर कह्यौ न जाइ मिल्यौ ही न न्यारौ है॥ ५॥

इन्दव

पाप न पुन्य न थूल न सून्य न बोल न मौन न सोवै न जागै।
एक न दोइ पुरुष्प न जोइ कहै कहा कोइ न पीछै न आगै॥
बृद्ध न बाल न कर्म न काल न ह्रस्व विसाल न जूझै न भागै।
बंध न मोक्ष अप्रोक्ष न प्रोक्ष न सुन्दर है न असुन्दर लागै॥ ६॥
तत्व अतत्व कह्यौ नहिं जात जु शून्य अशून्य उरै न परै है।
जोति अजोति न जानि सकै कोउ आदि न अंत जिवै न मरै है॥
रूप अरूप कछू नहिं दीसत भेद अभेद करै न हरै है।
शुद्ध असुद्ध कहै पुनि कौंन जु सुन्दर बोलै न मौन धरै है॥ ७॥

शक्ति वा लीला का दिग्दर्शन है कि अल्पज्ञान जन की बुद्धि के विचार से परे है। काच ही न हीरौ—विवेक बुद्धि भी पूरी २ नहीं हो सकती है। अस्ति नास्ति, सत्य, असत्य, वास्तविकता वा अवास्तविकता के होने का विचार मनुष्य करता ही रहता है। और पार नहीं पाता है। पंच को पसारौ=पंचतत्व का फैलाव, सृष्टि निर्माण। बारौ=बालक। बंध=बंधा हुआ। निर्वान=मुक्त। ह्रस्व=छोटा। विसाल=बड़ा। जूझै=लड़ै, युद्ध करै। अप्रोक्ष=अपरोक्ष, प्रत्यक्ष। प्रोक्ष=परोक्ष। गुप्त। जिवै=भूतादि की तरह जीवसंज्ञा का नहीं है। रूप अरूप=आकारवाला कहैं तो बनता नहीं और निराकार कहैं तो प्रत्यक्ष होता नहीं।

पोजत पोजत पोजि रहे अरु पोजत हैं पुनि पोजि हैं आनैं।
गागत गावत गाइ गये बहु गावत हैं अरु गाइ हैं गानैं॥
देपत देपत देपि थके सब दीसै नहीं कहुं ठौर ठिकानैं।
बूझत बूझत बूझि कैं सुन्दर हेरत हेरत हेरि हिरानैं॥ ८॥
पिंड में है परि पिंड लिपै नहिं पिंड परै पुनि त्यौंहि रहावै।
श्रोत्र में है परि श्रोत्र सुनै नहिं दृष्टि मैं है परि दृष्टि न आवै॥
बुद्धि में है परि बुद्धि न जानत चित्त मैं है परि चित्त न पावै।
शब्द मैं है परि शब्द थक्यौ कहि शब्द हू सुन्दर दूरि बतावै॥ ९॥
भूमि हु तैसैं हिं आपु हु तैसैं हिं तेज हु तैसैं हिं तैसैं हिं पौंना।
व्योम हु तैसैं हि आहि अखंडित तैसैं हिं ब्रह्म रह्यौ भरि भौंना॥
देह संयोग वियोग भयौ जब आयौ सु कौंन गयौ तब कौंना।
जो कहियै तौ कहे न बनैं कछु सुन्दर जांनि गही मुख मौंना॥ १०॥
एक हि ब्रह्म रह्यौ भरपूर तौ दूसर कौंन बतावनि हारौ।
जो कोउ जीव करैं जु प्रमांन तौ जीव कहा कछु ब्रह्म तैं न्यारौ॥
जो कहै जीव भयौ जगदीस तैं तो रवि मांहि कहां कौ अंधारौ।
सुन्दर मौंन गही यह जानि कै कौंन हु भांति न होत निधारौ॥ ११॥
जो हम पोज करैं अभिअन्तर तौ वह पोज डरैं हि बिलावै।
जो हम बाहिर कौं उठि दौरत तौ कछु बाहिर हाथि न आवै॥

---

(८) हिरानैं=विकल हुए, हैरान हुए। (परन्तु मिला नहीं)।

(९) शब्द=शब्द प्रमाण, वेद वाक्य।

(१०) जांनि गही मुख मौना=जिन्होंने ब्रह्म को जाना वे कुछ वर्णन ही नहीं कर सकते। जिनको खबर (ज्ञान) हुआ, वे बेखबर (अज्ञानी) से हुए रहते हैं। अथवा उनका पता ही नहीं पड़ता है।

(११) तो रवि मांहि कहां को अन्धारो=आत्मा स्वयं प्रकाश है, ब्रह्म अकर्त्ता है, फिर जीव का जगदीश से उत्पन्न होना ऐसा कहना नहीं बनता। जीव ब्रह्म तो एक ही हैं। निधारो=निर्धार, निर्णय।

जो हम काहु कौं पूछत हैं पुनि सोउ अगाध अगाध बतावै।
ताहि तें कोउ न जानि सकै तिहिं सुन्दर कौंनसि ठौर रहावै॥ १२॥

नैंन न बैंन न सैंन न आस न वास न स्वास न प्यास न यातैं।
सीत न घाम न ठौर न ठाम न पुंस न वाम न बाप न मातैं॥
रूप न रेप न शेप अशेप न स्वेत न पीत न स्याम न तातैं।
सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौंन कहै उसकी मुख बातैं॥ १३॥

वेद थके कहि तन्त्र थके कहि ग्रन्थ थके निस वासर गातैं।
शेप थके शिव इन्द्र थके पुनि पोज कियौ बहुभांति विधातैं॥
पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके बहु बोलि गिरातैं।
सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौंन कहै उसकी मुख बातैं॥ १४॥

योगि थके कहि जैन थके ऋपि तापस थाकि रहे फल पातैं।
न्यासि थके बनवासी थके जु उदासि थके बहु फेर फिरातैं॥
सेप मसाइक और उलाइक थाकि रहे मन मैं मुसकातैं।
सुन्दर मौंन गही सिध साधक कौंन कहै उसकी मुख बातैं॥ १५॥

॥ इति आश्चर्य को अंग ॥ ३४ ॥

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विराचित "सवैया" (अपर नाम "सुन्दरविलास") ग्रन्थ समाप्त ॥ सर्वछन्द सख्या ५६३ ॥

---

(१२) पोज उरैं ही बिलावै=हमारा ढूंढना ठेठ नहीं पहुंचता। षड्दर्शनकारों के मत का भेद इस ही में प्रगट है कि निश्चय बात एकने भी नहीं कही। जिनकी जहां तक पहुंच हो सकी उसही को सिद्धान्त बता कर अलम् कर दिया। अगाध अगाध= 'नेति नेति' वेद तक में कहा है। फिर मनुष्य की क्या चलाई।

(१३) मातैं=माता से। तातैं=ताता, तप्त।

(१४) गातैं=गाते २। विधातैं=नाना विधियों से प्रकारों से। वा विधाता ब्रह्मा ने। पीर=मुसलमानी धर्म का गुरु। मीर=सय्यद जो पैगम्बर मुहम्मद के वंशज हैं। गिरा तैं=वाणी से।

(१५) योगी=राजयोग के अभ्यास से ईश्वर प्रणिधान द्वारा योग का सिद्धान्त ईश्वर सिद्धि है। उसके कर्त्ता भी ईश्वर साक्षात्कार यथार्थ नहीं कर सके वा कर सके तो कुछ कह ही नहीं सके। जैनी=जैनधर्म में ईश्वर इस आत्मा की सिद्धि प्राप्त करनेवाले सिद्ध को ही कहते हैं। पृथक् ईश्वर जगत् का कर्त्ता नहीं मानते हैं। फल पाते=वन में कन्दमूल फलपत्र खाकर उग्र तपस्या करनेवाले भी नहीं कह सके। न्यासी=सन्यासी। त्यागी। उदासो=त्यागी साधु जो जगत् से उदासीन (विरक्त) हो चुका। सेप मसाइक=(फा० वा अ०) शेख़—मुसल्मानों के धर्मज्ञाता पण्डित। मशाइख़ बहुवचन शेख़ का। उ लाइक=पाठान्तर "मलाइक" (फरिश्ते) मन में मुसकाते=परमात्मा तत्व को तो जान लिया इससे मन में तो प्रसन्न हैं परन्तु वचनातीत होने से ईश्वर कुछ कहने में नहीं आता ।:—जान लेने पर वचन से कहने में नहीं आ सकता है यही आश्चर्य है ॥ इति ॥ सुन्दरदासजी के सवैया ग्रन्थ के ३४ वें अंग "आश्चर्य का अङ्ग" सुन्दरानन्दी टीका सहित समाप्त हुआ ॥ ३४ ॥

॥ इति कविवर महात्मा स्वामी सुन्दरदासजी विरचित "सवैया" ग्रन्थ "सुन्दरानन्दी टीका" सहित सम्पूर्णम् ॥

साक्षी

अथ साषी
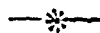
॥ अथ गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

दोहा

दादू सद्गुरु वन्दिये सो मेरै सिर मौर।
सुन्दर वहिया जाय था पकरि लगाया ठौर॥ १॥

सद्गुरु वन्दिये मन क्रम बिसवा बीस।
र तिनकै चरण द्वै सदा रहौ मम सीस॥ २॥

दादू सद्गुरु वन्दिये सव सुख आनन्द मूल।
सुन्दर पद रज परसतें निकसि गई सव सूल॥ ३॥

सद्गुरु वन्दिये सकल सुखनि की रासि।
र पद रज परसतें दुःख गये सव नासि॥ ४॥

दादू सद्गुरु वन्दिये सकल सिरोमन राइ।
वार वार कर जोरि कैं सुन्दर वलि वलि जाइ॥ ५॥

नोट—इस "सापी" ग्रन्थ के अङ्गों को 'सवैया' ग्रन्थ के अङ्गों के साथ मिलाकर
से बहुत आनन्द रहैगा। "सवैया" ग्रन्थ के ३४ अङ्ग (अध्याय हैं) और
सापी" ग्रन्थ के ३१ ही अङ्ग हैं। परन्तु प्रायः सव अङ्गों के विचार आपस में
स्थलों और प्रकरणों में मिलते जुलते हैं। इस कारण समझने और विचारने
ापस के मीलान और साथ २ पढ़ने से, बहुत सुविधा रहैगी।

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये नमस्कार प्रणपत्ति।
विघ्न विलै ह जात हैं मन वच क्रम करि सत्य ॥ ६ ॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये सोई वन्दन जोग।
औषध शब्द पिवाइ करि दूरि किया सब रोग ॥ ७ ॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये ग्रहिये दृढ़ करि पांव।
मस्तक हस्त लगाइ जिनि किये रंक तें राव ॥ ८ ॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये जिनके गुन नहिं छेह।
श्रवन हुं शब्द सुनाइ करि दूरि किया सन्देह ॥ ९ ॥

सुन्दर सद्गुरु वन्दिये निर्मल ज्ञान स्वरूप।
नैंननि में अंजन किया देख्या तत्व अनूप ॥ १० ॥

सुन्दर सद्गुरु आपु तें किया अनुग्रह आइ।
मोह निशा में सोवते हमकों लिया जगाइ ॥ ११ ॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें गहे सीस के वाल।
बूडत जगत समुद्र में काढि लियो ततकाल ॥ १२ ॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें मुक्त किये गृह कूप।
कर्म कालिमा दूरि करि कीये शुद्ध स्वरूप ॥ १३ ॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें वन्धन काटे सर्व।
मुक्त भये संसार में विचरत हैं निहगर्व ॥ १४ ॥

सुन्दर सद्गुरु आपुतें अलप पजोना पोल।
दुख दरिद्र जाते रहे दीया रत्न अमोल ॥ १५ ॥

---

(६) प्रणपति=प्रणिपात, दण्डवत। "प्रणत्ति" का अनुप्रास "सत्ति" के साथ होता तो अच्छा रहता।

(१३) गृहकूप=गृहस्थाश्रमरूपी कुए से निकाल दिया। कालिमा=कालुष्य, पाप।

(१५) पोल=खोलकर (अमूल रत्न (ज्ञान) दे दिया जिससे (अज्ञानरूपी) दरिद्र दूर हुआ)।

सद्गुरु आया मिहरि करि सुन्दर पाया पूरि।
शब्द सुनाया आपना भरम उडाया दूरि ॥ १६ ॥

सुन्दर सद्गुरु मिहरि करि निकट बताया राम।
जहां तहां भटकत फिरै काहे कौं बेकाम ॥ १७ ॥

शंक न आनै जगत की सद्गुरु शब्द विचारि।
सुन्दर हरि रस सो पिवै मेल्है सीस उतारि ॥ १८ ॥

सद्गुरु शब्द सुनाइ करि दीया ज्ञान विचार।
सुन्दर सूर प्रकासिया मेट्या सब अन्धियार ॥ १९ ॥

सद्गुरु कही मरंम की हिरदै बैसी आइ।
रीति सकल संसार की सुन्दर दई बहाइ ॥ २० ॥

सुन्दर सद्गुरु सो मिल्या जो दुर्ल्लभ जग मांहिं।
प्रभू कृपा तें पाइये नहितर पइये नांहिं ॥ २१ ॥

सुन्दर सद्गुरु तौ मिलै जो हरि देहिं सुहाग।
मनसा वाचा कर्मना प्रगटै पूरन भाग ॥ २२ ॥

सुन्दर सद्गुरु सारिषा उपकारी नहिं कोइ।
देषै तीनों लोक मैं सरि भरि कछू न होइ ॥ २३ ॥

सुन्दर सद्गुरु पलक मैं मुक्त करत नहिं वार।
जीव बुद्धि जाती रहै प्रगटै ब्रह्म विचार ॥ २४ ॥

सुन्दर सद्गुरु पलक मैं दूरि करै अज्ञांन।
मन वच क्रम यज्ञास है शब्द सुनैं जो कांन ॥ २५ ॥

---

(१६) पूरि=पूरा, पूर्णरूप से।

(१७) जहां तहां=अन्य मतों के ज्ञाताओं वा तीर्थादि में।

(१८) सीस उतारि=आपा मार कर।

(२१) नहींतर (रा०) नहीं तो।

(२२) सुहाग=सौभाग्य। (२५) यज्ञास=जिज्ञासु, ज्ञान की ६८६

सुन्दर सद्गुरु के मिले भाजि गई सब भूप।
अमृत पान कराइ कं भरी अधूरी कूप ॥ २६ ॥

सुन्दर सद्गुरु जब मिल्या पडदा दिया उठाइ।
ब्रह्म घोंट माहिं सकल जग चित्राम दिपाइ ॥ २७ ॥

सुन्दर सद्गुरु सारिपा कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान पजीना पोलिया सदा अटूट भँडार ॥ २८ ॥

वेद नृपति की बंदि में आइ परे सब लोइ।
निगहवांन पंडित भये क्यों करि निकसै कोइ ॥ २९ ॥

सद्गुरु भ्राता नृपति कै बेडी काटे आइ।
निगहवांन देपत रहैं सुन्दर देहिं छुडाइ ॥ ३० ॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द का ब्योरि बताया भेद।
सुरझाया भ्रम जाल तें उरझाया था वेद ॥ ३१ ॥

वेद माहिं सब भेद हैं जानै विरला कोइ।
सुन्दर सो सद्गुरु विना निरवारा नहि होइ ॥ ३२ ॥

सुन्दर सद्गुरु यों कह्या शब्द सकल का मूल।
सुरझै एक विचार तें उरझै शब्दस्थूल ॥ ३३ ॥

---

(२६) कूप=कुम्भ, कुक्षि। पेट की कोल।

(२७) घोंट=(रस की) अमृत की घूंट पिला कर। अथवा ब्रह्म का रंग ऐसा अन्तहकरण में घोट दिया कि संसाररूपी इन्द्रजाल की वास्तविकता—मिथ्यात्व—स्पष्ट प्रत्यक्ष हो गई। ('घी सो घोट रह्यो घट भीतर''—)

(२९) बन्दि=कैद, बन्धन। कर्म उपासना के विधानों में जकड़ बन्द कर दिये गये। आचार्यों की रामदुहाई से उस बन्धन से मुक्त होना कठिन हो गया। उससे गुरुदेव ने खलास किया।

(३१) ब्योरि=ब्योरि, ब्यौरे वार, भलीभांति।

(३२) निरवारा=निवेरा, बचाव, छुटकारा।

(३३) शब्दस्थूल=स्थूल (व्यावहारिक, मोटे) ज्ञान से।

सुन्दर ताला शब्द का सद्गुरु पोल्या आइ।
भिन्न २ संमुझाय करि दीया अर्थ वताइ॥ ३४॥

गोरषधंधा वेद है वचन कडी वहु भांति।
सुन्दर उरभ्यौ जगत सव वर्णाश्रम की पांति॥ ३५॥

क्रिया कर्म वहु विधि कहे वेद वचन विस्तार।
सुन्दर समुझै कौंन विधि उरझि रह्यौ संसार॥ ३६॥

कर्मकांड के वचन सुनि आंटी परी अनेक।
सुन्दर सुनै उपासना तव कछु होइ विवेक॥ ३७॥

सुन्दर सद्गुरु जव मिलै पेच वतावै आइ।
भिन्न भिन्न करि अर्थ कौं आंटी दे सुरझाइ॥ ३८॥

अंत वेद के वचन तें उपजै ज्ञान अनूप।
सुन्दर आंटी सुरझि कैं तव ह्वै ब्रह्म स्वरूप॥ ३९॥

गोरषधंधा लोह मैं कडी लोह ता मांहि।
सुन्दर जानै ब्रह्म मैं ब्रह्म जगत द्वै नांहि॥ ४०॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द तें सारे सव विधि काज।
अपना करि निर्वाहिया वांह गहे की लाज॥ ४१॥

सुन्दर सद्गुरु शब्द सौं दीया तत्व वताइ।
सोवत जाग्या स्वप्न तें भ्रम सव गया विलाइ॥ ४२॥

सुन्दर जागे भाग सिर सद्गुरु भये दयाल।
दूरि किया विष मंत्र सौं थकत भया मन व्याल॥ ४३॥

सुन्दर सद्गुरु उमगि कै दीनी मौज अनूप।
जीव दशा तें पलटि करि कीये ज्ञान स्वरूप॥ ४४॥

सुन्दर सद्गुरु भ्रम विना दूरि किया संताप।
शीतलता हृदये भई ब्रह्म विराजै आप॥ ४५॥

---

(३५) गोरखधन्धा=एक खिलोना वा उलझन का खेल जिसमें लोहे की खास तरकीब से कड़ियां पुई रहती हैं। उनको सुलझाना कठिन है। (४५) व्याल=सर्प।

परमातम सौं आतमा जुदे रहे बहु काल।
सुन्दर मेला करि दिया सद्गुरु मिले दलाल॥ ४६॥

परमातम अरु आतमा उपज्या यह अविवेक।
सुन्दर भ्रम तें दोइ थे सद्गुरु कीये एक॥ ४७॥

हम जांग्यां था आप थे दूरि परे है कोइ।
सुन्दर जब सद्गुरु मिल्या सोहं सोहं होइ॥ ४८॥

स्वयं ब्रह्म सद्गुरु सदा अमी शिष्य बहु संति।
दान दियौ उपदेश जिनि दूरि कियौ भ्रम हंति॥ ४९॥

राग द्वेष उपजै नहीं द्वैत भाव को त्याग।
मनसा वाचा कर्मना सुन्दर यहु वैराग॥ ५०॥

सदा अखंडित एक रस सोहं सोहं होइ।
सुन्दर याही भक्ति है बूझै बिरला कोइ॥ ५१॥

अहं भाव मिटि जात है तासौं कहिये ज्ञान।
वचन तहां पहुंचै नहीं सुन्दर सो विज्ञान॥ ५२॥

षट सत सहस्र इकीस है मनका स्वासो स्वास।
माला फेरै राति दिन सोहं सुन्दरदास॥ ५३॥

ज्ञान तिलक सोहै सदा भक्ति दई गुरु छाप।
व्यापक विष्णु उपासना सुन्दर अजपा जाप॥ ५४॥

सुन्दर सूता जीव है जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन तें परे सद्गुरु कह्या अनूप॥ ५५॥

मन को सर्प कहा है। इसका विषयरूपी विष गुरु के दिए ज्ञानरूपी गारुड़ी मन्त्र से उतर गया।

(५३) मनका=माला के मणिये। प्रत्येक स्वास एक मणिका (मणिया)। २१६०० स्वास दिन रात में लेते हैं। उनको माला के मणिके समझ प्रत्येक में सोऽहं का अजपा जाप जपैं।

सुन्दर समुझै एक है अन समझै कौ द्वीत।
उभै रहित सद्गुरु कहै सो है वचनातीत ॥ ५६ ॥

बोलत बोलत चुप भया देषत मूंदे नैंन।
सुन्दर पावै एक को यहु सद्गुरु की सैन ॥ ५७ ॥

मूरष पावैं अर्थ कौं पंडित पावैं नांहि।
सुन्दर उलटी बात यह है सद्गुरु के मांहि ॥ ५८ ॥

जो कोउ विद्या देत है सो विद्या गुरु होइ।
जीव ब्रह्म मेला करै सुन्दर सद्गुरु सोइ ॥ ५९ ॥

गुरु शिष्य हि उपदेश दे यह गुरु शिष व्यवहार।
शब्द सुनत संसय मिटै सुन्दर सद्गुरु सार ॥ ६० ॥

सुंदर गुरु सु रसाइनी बहु विधि करय उपाय।
सद्गुरु पारस परसतें लोह हेम ह्वै जाय ॥ ६१ ॥

सुन्दर मसकति दार सौं गुरु मथि काढै आगि।
सद्गुरु चकमक ठोकतें तुरत उठै कफ जागि ॥ ६२ ॥

सुंदर गुरु जल पोदि कैं नित उठि सींचैं षेत।
सद्गुरु बरषै इन्द्र ज्यौं पलक मांहिं सरसेत ॥ ६३ ॥

---

(५६) वचनातीत=अनिर्वचनीय, जो कहने में नहीं आ सकै। द्वीत=द्वैत, भेदज्ञान, जीव ब्रह्म की भिन्नता।

(५८) मूरष=संसार से विमुख। पण्डित=शब्दज्ञान में तो प्रवीण परन्तु दिव्यज्ञान से रहित। (विपर्यय है)

(६१) लोह, हेम=द्वैतभावरूपी जीव लोह है सो गुरु पारस से मिलकर स्वर्ण हो जाता है अद्वैत प्राप्त होता है।

(६२) मसकति=मशक्कत, उपाय। दार=दारु, काठ। अरणी (से आग उत्पन्न)। कफ=सूत का लच्छा जो आग से जल उठता है।

(६३) सरसेत=सर तालाब पानी से सराबोर हो जाता है।

सुंदर गुरु दीपक किये घर में को तम जाइ।
सद्गुरु सूर प्रकास तें सबै अंधेर बिलाइ॥ ६४॥

सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै सनमुख देषै दृष्टि।
सद्गुरु हृदय उमंगि करि करै अमी की वृष्टि॥ ६५॥

सुन्दर शिष जिज्ञास ह्वै शब्द ग्रहै मन लाइ।
तासौं सद्गुरु तुरत ही ज्ञान कहै संमुझाइ॥ ६६॥

सुन्दर शिष जिज्ञास है निश्चय आवै नांहिं।
तौ सद्गुरु कहिबौ करौ ज्ञान न उपजै मांहिं॥ ६७॥

सुन्दर शिष जिज्ञास है परि जो बुद्धि न होइ।
तौ सद्गुरु क्यौं पचिमरौ शब्द ग्रहै नहिं कोइ॥ ६८॥

जन सुन्दर निश्चय बिना क्यौं करि उपजै ज्ञांन।
सद्गुरु दोष न दीजिये शिष्य मूढ मति जांन॥ ६९॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है तिनकौ आशय गूढ।
जो कृत देषै देह के सो क्यौं पावै मूढ॥ ७०॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है बोलै अंमृत बैंन।
सूरय कौं देषै नहीं मूंदि रहै जो नैंन॥ ७१॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै ब्रह्म बिचार।
गूरष औगुन काढिलै देषि देह व्यवहार॥ ७२॥

सद्गुरु सुद्ध स्वरूप है शिष देषै गुन देह।
सुन्दर कारय क्यौं सरै कैसैं बधै सनेह॥ ७३॥

सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय परि शिष कीचम दृष्टि।
सूधी बोर न देषई देषै दर्पन पृष्टि॥ ७४॥

सुन्दर सद्गुरु क्यौं द्रसै शिष की दृष्टि मलीन।
देषत है सब देह कृत पान पान सौं लीन॥ ७५॥

---

(६४) घर में को=घर के अन्दर का।

(७४) परि=परन्तु। (७५) द्रसै=दृष्टि में आवै, प्रकाशित हो, प्रगट करै।

सुन्दर सूक्षम दृष्टि ह्वै तव सद्गुरु दरसाइ।
देषै देहस्थूल कौं यों शिप गोता पाइ॥ ७६॥

सद्गुरु ही तें पाइये राम मिलन की वाट।
सुन्दर सब कौ कहत है कोडा विना न हाट॥ ७७॥

सद्गुरु जाइ कृपा करै सो जानै सब भेव।
सुन्दर क्यौं करि पाइये एक विना गुरुदेव॥ ७८॥

सुन्दर सद्गुरु प्रगट है जिनि कै हृदै प्रकास।
वे अलिप्त हैं देह सौं ज्यौं अलिप्त आकास॥ ७९॥

दूध मांहि ज्यौं जल मिलै रंगनि मैं ज्यौं नीर।
सद्गुरु हंस जुदा करै सुन्दर पांणी पीर॥ ८०॥

सुन्दर सद्गुरु के मिलें संसै हूवा छिन्न।
यौं निश्चय करि जानिया देह आतमा भिन्न॥ ८१॥

सुन्दर काढै सोधि करि सद्गुरु सोनी होइ।
शिप सुवर्ण निर्मल करै टांका रहै न कोइ॥ ८२॥

सुन्दर सद्गुरु वैद ज्यौं पर उपकार करेइ।
जैसौ ही रोगी मिलै तैसी औषध देइ॥ ८३॥

सद्गुरु देषै नाडि कौं दूरि करै सब व्याधि।
सुन्दर ताकौं छोडि दे जाके रोग असाधि॥ ८४॥

---

(७७) कोडा=कोड़ी, धन, रोकड़, पूंजी।

(८१) देह आत्मा भिन्न=देह जड़ है, आत्मा चेतन है। आत्म अनात्म का विवेक प्रधान साधन है।

(८२) टांका=मेल का धातु, खोटा मिलाव।

(८३) करेई=अवश्य करता है। (यह क्रिया विलक्षण प्रयुक्त है) (रा० रूप=अर्थ करै ही कौ)।

(८४) नाडि=नाड़ी, नब्ज।

सद्गुरु साह गजेन्द्र है सुन्दर वस्तु अपार।
जोई आवै लैंन कौं ताकौं तुरत तयार ॥ ८५ ॥

सद्गुरु ही तें अकलि है सद्गुरु ही तें बुद्धि।
सुन्दर सद्गुरु तें संमुझि सद्गुरु तें सब सुद्धि ॥ ८६ ॥

सद्गुरु ही तें ज्ञान है सद्गुरु ही तें ध्यांन।
सुन्दर सद्गुरु तें लगै योग समाधि निदांन ॥ ८७ ॥

सद्गुरु महिमा कहन कौं रसना हुई न कोरि।
सुन्दर क्यों करि वरनिये जो वरनिये सु थोरि ॥ ८८ ॥

सद्गुरु महिमा अगम अति क्यौं करि कहौं बनाइ।
सुन्दर मुख तैं सरस्वती कहत कहत थकि जाइ ॥८९॥

नभ मनि चिंता मनि कहैं हीरा मनि मनि लाल।
सकल सिरोमनि मुकुटमनि सद्गुरु प्रकट दयाल ॥ ९० ॥

सुर तरु पारस कामधुक कहियत नाव जिहाज।
सुन्दर इनतें डूबियें सद्गुरु सारैं काज ॥ ९१ ॥

नां कछु हुवा न होइगा सद्गुरु सम सिरमौर।
सुन्दर देष्या सोधि सब तोलैं तुलत न और ॥ ९२ ॥

सुन्दर सद्गुरु भक्तिमय भजनमई भजिराम।
सुखमय रसमय अमृतमय प्रेम मांहिं विश्राम ॥ ९३ ॥

सुन्दर सद्गुरु ब्रह्ममय नारायणमय ध्यान।
ईश्वरमय जगदीशमय गोविन्दमय गलतान ॥ ९४ ॥

---

(८६) सुद्धि=सुध बुध (ज्ञान)।

(८८) न कोरि=(यथा—"नई, न कोर") वा कोटि जिव्हा भी समर्थ नहीं। वा कोरि=कोई (भी)।

(९०) नभ मनि=सूर्य।

(९२) न कछु हुआ न होइगा=सद्गुरु समान अन्य कोई न तो हुआ न होगा। तोलैं=तोलने से।

सुन्दर सद्गुरु ज्ञानमय चेतनिमय चिद्रूप।
निर्गुन नित्यानन्दमय तन्मय तत्व अनूप॥ ९५॥

सुन्दर सद्गुरु सूरमय उदित भये हैं ऐंन।
मनसा वाचा कर्मना षोलत सब के नैंन॥ ९६॥

सुंदर सद्गुरु शशिमयी सुधा श्रवै मुख द्वार।
पोष देत हैं सबनि कौं प्रगटे पर उपकार॥ ९७॥

सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत हैं घट मांहिं।
ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब कौं लिपै छिपै कछु नांहिं॥ ९८॥

सुन्दर सद्गुरु भिन्न हैं दीसत घट मैं वास।
घट सौं सदा अलिप्त है ज्यौं अलिप्त आकास॥ ९९॥

सुन्दर सद्गुरु करि कृपा दीया दीरघ दांन।
ह्रदै हमारै आइया निश्चय अद्वय ज्ञांन॥ १००॥

सुन्दर सद्गुरु आप तें अति ही भये प्रसन्न।
दूरि किया संदेह सब जीव ब्रह्म नहिं भिन्न॥ १०१॥

सुन्दर सद्गुरु हैं सही सुन्दर सिक्षा दीन्ह।
सुन्दर वचन सुनाइ कैं सुन्दर सुन्दर कीन्ह॥ १०२॥

॥ इति गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

---

(९७) पर उपकार=परोपकार के अर्थ।

(१०१) आपतें=अनायास ही। अपनी मौज ही से। मुझ शिष्य ने कोई प्रार्थना या सेवा भी नहीं की। ऐसे उदार हैं।

॥ अथ सुमरन को अंग ॥ २ ॥

दोहा

सुन्दर सद्गुरु यौं कह्या सकल सिरोमनि नांम ।
ताकौं निस दिन सुमरिये सुखसागर सुखधाम ॥ १ ॥

राम नाम श्रवनौ सुन्यौ रसना कियौ उचार ।
सुन्दर पीछै सुरति सौं हृदय प्रगट रंकार ॥ २ ॥

नांव निरंतर लीजिये अन्तर परै न कोइ ।
सुन्दर सुमरन सुरति सौं अंतर हरि हरि होई ॥ ३ ॥

हृदये में हरि सुमरिये अन्तरजांमी राइ ।
सुन्दर नीकै जत्न सौं अपनौं वित्त छिपाइ ॥ ४ ॥

काहू कौं न दिपाइये राम नाम सी वस्त ।
सुन्दर वहुत कलाप करि आई तेरै हस्त ॥ ५ ॥

रंक हाथ हीरा छड्यौ ताकौ मोल न तोल ।
घर घर डोलै वेचतौ सुंदर याही भोल ॥ ६ ॥

राम नाम रटबौ करै निस दिन सुरति लगाइ ।
सुन्दर चालै गांव जिहिं तहां पहूंचै जाइ ॥ ७ ॥

राम नाम संतनि धर्यौ राम मिलन के काज ।
सुन्दर पल में पार ह्वै वैठै नाम जिहाज ॥ ८ ॥

राम नाम तिहुं लोक में भवसागर की नाव ।
सद्गुरु खेवट वांह दे सुंदर वेगो आव ॥ ९ ॥

[अङ्ग २ रा] (२) रङ्कार=रामनाम की निरन्तर ध्वनि । राम मन्त्र का अजपाजाप या रटना ।

(६) छड्यो=चढा । आया, प्राप्त हुआ । भोल=मोल, मूल ।

राम नाम विन लैन कौं और वस्तु कहि कौंन ।
सुंदर जप तप दान ब्रत लागे पारे लौंन ॥ १० ॥

राम नाम मिश्री पियें दूरि जाहिं सव रोग ।
सुंदर औपध कटुक सव जप तप साधन जोग ॥ ११ ॥

नाम लिया तिन सव किया सुंदर जप तप नेम ।
तीरथ अटन सनान ब्रत तुला वैठि दत्त हेम ॥ १२ ॥

नाम वरावर तोलिया तुलै न कोऊ धर्म ।
सुंदर ऐसैं नाम का लहै न मूरप मर्म ॥ १३ ॥

राम भजन परिश्रम विना करिये सहज सुभाइ ।
सुन्दर कष्ट कलेस तजि मन की प्रीति लगाइ ॥ १४ ॥

सव सुख हरि कै भजन मैं कष्ट कलेस न कोइ ।
सुंदर देषै कष्ट कौं जगत पुसी तव होइ ॥ १५ ॥

सुंदर सवही संत मिलि सार लियो हरि नाम ।
तक्र तजी घृत काढि कै और क्रिया किहिं काम ॥ १६ ॥

राम नाम पीयूप तजि विप पीवैं मति हीन ।
सुंदर डोलै भटकतें जन जन आगे दीन ॥ १७ ॥

राम नाम कौं छाडि कै और भजैं ते मूढ ।
सुन्दर दुख पावैं सदा जन्म जन्म वै हूढ ॥ १८ ॥

राम नाम हीरा तजै कंकर पकरै हाथ ।
सुंदर कवहु न कीजिये उन मूरप कौ साथ ॥ १९ ॥

राम नाम भोजन करै राम नाम जल पान ।
राम नाम सौं मिलि रहै सुंदर राम समान ॥ २० ॥

राम नाम सोवत कहै जागैं हरि हरि होइ ।
सुंदर वोलत ब्रह्म मुख ब्रह्म सरीखा सोइ ॥ २१ ॥

---

(१२) दत्त=दान । (१८) हूढ=हूढ,—हठी, उजड्ड, अनाड़ी आदमी ।
(२१) ब्रह्म सरीषा होइ=रामनाम के निरन्तर जप से वैसा ही हो जाय ।

बैठत वनमाली कहै ऊठत अविगति नाथ।
चलतें चिंतामनि जपै सुन्दर सुमिरन साथ ॥ २२ ॥

नारायण सौं नेह अति सन्मुख सिरजनहार।
परब्रह्म सौं प्रीतडी सुंदर सुमिरन सार ॥ २३ ॥

राम नाम सौं रत भया हर्षत हरि के नाम।
गलित भया गोविंद सौं सुंदर आठौं याम ॥ २४ ॥

लीन भया विचरत फिरै छीन भया गुन देह।
हीन भई सब कलपना सुंदर सुमिरन येह ॥ २५ ॥

भजन करत भय भागिया सुमिरन भागा सोच।
जाप करत जौंरा टल्या सुंदर सांची लोच ॥ २६ ॥

सुंदर महिमा नाम की क्यौं करि बरनी जाइ।
सेस सहस मुख कहत हैं सो भी पार न पाइ ॥ २७ ॥

सुंदर महिमा नाम की कहत न आवै अंत।
शिव सनकादिक मुनि जनां थकित भये सब संत ॥ २८ ॥

राम भजन जाके हृदै ताके टोटा कौंन।
मूरतिवंती लक्ष्मी सुन्दर वाकै भौंन ॥ २९ ॥

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति"—ब्रह्म का जाननेवाला ब्रह्मरूप हो जाता है। आगे साषी ४३ तथा ५६ को देखें। दादूवाणी। सुमिरण साषी ५०—"जीव ब्रह्म की लार"।

(२२) (२३) (२४) इनमें आद्यक्षरों से नामों के यमक दिये हैं।

(२५) सुमिरन का रहस्य कहा है। सत्यनिष्ठा, अन्तःकरण की तदाकारवृत्ति—"लौ" लगी रहै।

(२६) जौंरा=भयानक आक्रमण, जैसे मस्त भैंस वा भैंसा। लोच=कोमला-वृत्ति, सच्ची चतुराई।

(२९) मूरतिवन्ती लक्ष्मी=साक्षात् लक्ष्मी वा सर्व ऋद्धि-सिद्धिवाला वैभव।

राम नाम जाकै हृदै सुन्दर वंदहि देव।
पहल डिगावैं आइ कै पीछैं लागैं सेव॥ ३०॥

राम नाम जाकै हृदै ताकै कौंन अनाथ।
अष्ट सिद्धि नव निधि सदा सुन्दर वाकै साथ॥ ३१॥

राम नाम जाकै हृदै जगत षुसी सब होत।
सुन्दर निंदा करत जे तेई करैं डंडोत॥ ३२॥

राम नाम जाकै हृदै ताहि नवैं सब कोइ।
ज्यौं राजा की त्रास तें सुन्दर अति डर होइ॥ ३३॥

सुन्दर भजिये राम कौं तजिये माया मोह।
पारस कैं परसे विना दिन दिन छीजै लोह॥ ३४॥

सुन्दर हरि के भजन तें संत भये सब पार।
भवसागर नवका विना बूडत है संसार॥ ३५॥

सुन्दर हरि के भजन तें निर्मल अंतहकर्ण।
सबही कौं अधिकार है उधरै चारौं वर्ण॥ ३६॥

सुन्दर भजन सबै करहु नारायण निरपेछ।
प्रीति परम गुरु लेत हैं अंतिज हो कि मलेछ॥ ३७॥

प्रीति सहित जे हरि भजें तब हरि होंहि प्रसन्न।
सुन्दर स्वाद न प्रीति बिन भूप विना ज्यौं अन्न॥ ३८॥

सुन्दर हरि प्यारा लग्या सोवत जाग्या जन्न।
प्रीति तजी संसार सौं न्यारा कीया मन्न॥ ३६॥

राम भजन तें रामजी मुदित होत मन मांहिं।
सुन्दर जाकै प्रीति अति ताकौं छाडै नांहिं॥ ४०॥

---

(३०) पहल डिगावैं=परीक्षा करने को प्रथम उस भक्त को किंचित विघ्न देते हैं।

(३४) लोह—यहां काया से अभिप्राय है। पारस—रामनाम है।

राम भजन राम हि मिलै तामैं फेर न सार।
सुन्दर भजै सनेह सौं वाकौं मिलत न वार॥ ४१॥

एक भजन तन सौं करै एक भजन मन होइ।
सुन्दर तन मन कै परै भजन अखंडित सोइ॥ ४२॥

भजत भजत ह्वै जात है जाहि भजै सो रूप।
फेरि भजन की रुचि रहै सुन्दर भजन अनूप॥ ४३॥

सुन्दर भजि भगवंत कौं उधरे संत अनेक।
सही कसौटी सीस पर तजी न अपनी टेक॥ ४४॥

भजन किये भगवंत वसि डोली जन की लार।
सुन्दर जैसैं गाय कौं बच्छा सौं अति प्यार॥ ४५॥

सुन्दर जन हरि कौं भजै हरिजन कौ आधीन।
पुत्र न जीवै मात बिन माता सुत सौं लीन॥ ४६॥

राम नाम शंकर कह्यौ गौरी कौं उपदेस।
सुन्दर ताही राम कौं सदा जपतु है सेस॥ ४७॥

राम नाम नारद कह्यौ सोई ध्रुव कै ध्यान।
प्रगट भये प्रह्लाद पुनि सुन्दर भजि भगवांन॥ ४८॥

राम नाम रंकै भज्यौ भज्यौ त्रिलोचन राम।
नामदेव भजि राम कौं सुन्दर सारे कांम॥ ४९॥

राम हि भज्यौ कबीरजी राम भज्यौ रैदास।
सोझा पीपा राम भजि सुन्दर हृदय प्रकास॥ ५०॥

सद्गुरु दादू राम भजि सदा रहै लैलीन।
सुन्दर याही समझि कै राम भजन हित कीन॥ ५१॥

---

(४५) डोली=फिरे, साथ रहे।

(४९) रंकै=राका बांका, भक्त हुए हैं। त्रिलोचन=भक्त हुआ है। नामदेव=प्रसिद्ध भक्त। (५०) सोझा, पीपा=प्रसिद्ध भक्त हुए हैं।

सुन्दर सुरति समेटि कैं सुमिरन सौं लैलीन।
मन वच क्रम करि होत है हरि ताकै आधीन॥ ५२॥

सुमिरन तें संसय मिटै सुमिरन मैं आनन्द।
सुन्दर सुमिरन कैं किये भागि जाहिं दुख द्वंद॥ ५३॥

सुमिरन तें श्रीपति मिलै सुमिरन तें सुखसार।
सुमिरन तें परिश्रम विना सुन्दर उतरै पार॥ ५४॥

सुमिरन ही मैं शील है सुमिरन मैं संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन-मोष॥ ५५॥

जाही कौं सुमिरन करै है ताही कौ रूप।
सुमिरन कीयें ब्रह्म कैं सुन्दर है चिद्रूप॥ ५६॥

॥ इति सुमिरन कौ अंग ॥ २ ॥

॥ अथ विरह कौ अंग ॥ ३ ॥

दोहा

मारग जोवै बिरहनी चितवै पिय की वोर।
सुन्दर जियरै जक नहीं कल न परत निस भोर॥ १॥

सुन्दर विरहनि अति दुखी पीव मिलन की चाह।
निस दिन बैठी अनमनो नैननि नीर प्रवाह॥ २॥

---

(५५) जीवन—मोष=जीवन मुक्ति।

[३ रा अङ्ग]—(१) निस भोर=दिन रात (भोर=प्रातःकाल, ब्राह्म्य मुहूर्त, दिन का प्रारम्भ)

(२) अनमनी=उनमनी, उदास।

सुन्दर पिय कै कारणैं तलफै वारह मास।
निस दिन लै लागी रहै चातक की सी प्यास॥ ३॥

सुन्दर व्याकुल विरहनो दीन भई विललाइ।
दंत तिणां लीयें कहै रे पिय आप दिपाइ॥ ४॥

विरहै मारी वान भरि भई और की और।
वैद विथा पावै नहीं सुन्दर लगी सु ठौर॥ ५॥

सुन्दर विरहनि मरि रही कहूं न पइये जीव।
अमृंत पांन कराइ कै फेरि जिवावै पीव॥ ६॥

सुन्दर नख सिख पर जरै छिन छिन दाझै देह।
विरह अग्नि तवही वुझै जव वरषै पिय मेह॥ ७॥

विरह वघूरा लै गयौ चित्त हि कहूं उडाइ।
सुन्दर आवै ठौर तव पीय मिलै जव आइ॥ ८॥

सुन्दर विरहनि दूवरी विरह देत तन त्रास।
अजा रहै ढिग सिंह कै कहो चढै क्यौं मांस॥ ९॥

सुन्दर विरहनि दुखभरी कहै दुख भरे वैंन।
पिय कौ मारग देपतें अंसुवा आवत नैंन॥ १०॥

सुन्दर विरहनि कै निकट आई विरहनि कोइ।
दुखिया ही दुखिया मिली दहुंवनि दीनौ रोइ॥ ११॥

---

(४) दन्त तिणां=दांतों में तिनका लेकर, अति दीन होकर।

(५) वान भरि=कमान में तीर लगाकर, खैंच कर तीर मारा। लगी सु ठौर= वह चोट (वाण की) ऐसी (सुन्दर, उत्तम) ठौर पर लगी है कि इलाजी से उसका इलाज नहीं हो सकता है। यह दर्द वह दर्द है जिसकी दवा ही नहीं। मर्ज वढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।

(७) पर=पंख (यहां विरहनि को पक्षी माना है जो पिया के लिए उड़ती है)। अथवा, पर=प्र, वहुत।

सुन्दर विरहनि वंदि में विरहै दीनी आइ।
हाथ हथकरी तौक गलि क्यौं करि निकस्यौ जाइ॥ १२॥

सुन्दर विरहनि वंदि में निस दिन करै पुकार।
पीय रह्यौ कहुं वेसि कै वंदि छुडावनहार॥ १३॥

विरहा विरहनि सौं कहत सुन्दर अति अरि भाव।
जब लग तोहि न पिय मिलै तब लग घालौं घाव॥ १४॥

विरहा दुखदाई लग्यौ मारै ऐंठि मरोरि।
सुंदर विरहनि क्यौं जिवै सब तन लियौ निचोरि॥ १५॥

सुन्दर विरहनि कौं विरह भूत लग्यौ है आइ।
पीय विना उतरै नहीं सब जग पचि पचि जाइ॥ १६॥

निस दिन विरहा भूत लगि विरहनि मारी गोडि।
सुन्दर पीय जबै मिलै तब ही भागै छोडि॥ १७॥

सुन्दर विरहनि अध जरी दुःख कहै मुख रोइ।
जरि वरि कैं भस्मी भई धुंवा न निकसै कोइ॥ १८॥

सुन्दर काची विरहनी मुख तैं करै पुकार।
मरि माहैं मठ ह्वै रहै वोलै नहीं लगार॥ १९॥

ज्यौं ठगमूरी पाइ कै मुखहि न वोलै वैन।
टुगर टुगर देष्या करै सुन्दर विरहा ऐन॥ २०॥

---

(१२) वन्दि=कैद।

(१४) अरि भाव=शत्रु के भाव से।

(१७) गोडि=गोड़ियों से खूंद कर (मारी) गोड़ा=घुटना पांवका।

(१९) मरि माहैं मठ ह्वै रहै=मर कर मठ होना मुहाविरा है। स्तब्ध वा सुन्न हो जाना।

(२०) टुगर, टुगर=टम टम, निमेप मारता हुआ। देष्या=देखा करै, देखता रहै।

हाकी वाकी रहि गई नां कछु पिवै न पाइ।
सुन्दर विरहनि वह सही चित्र लिपी रहि जाइ ॥ २१ ॥

राम सनेही तजि गये प्रान हमारा लेइ।
सुन्दर विरहनि वापुरो किसहि संदेसा देइ ॥ २२ ॥

भूष पियास न नींदडी विरहनि अति वेहाल।
सुन्दर प्यारे पीव विन क्यों करि निकसै साल ॥२३ ॥

वहुतक दिन विछुरें भये प्रीतम प्रान अधार।
सुदर विरहनि दरद सौं निस दिन करै पुकार ॥ २४ ॥

सुन्दर तलफै विरहनी विलक तुम्हारे नेह।
नैंन श्रवै घन नीर ज्यौं सूकि गई सव देह ॥ २५ ॥

सव कोई रलियां करैं आयौ सरस वसंत।
सुन्दर विरहनि अनमनी जाकौ घर नहिं कंत ॥ २६ ॥

घर घर मगल होत है वाजहिं ताल मृदंग।
सुनि सुनि विरहनि पर जरै सुन्दर नख सिख अंग ॥२७॥

अपने अपने कंत सौं सव मिलि पेलहिं फाग।
सुन्दर विरहनि देषि करि डसो विरह के नाग ॥ २८ ॥

चोवा चन्दन कुमकुमा उडत अवीर गुलाल।
सुन्दर विरहनि कै हृदै उठत अग्नि की झाल ॥ २९ ॥

पीय लुभाना सुनि सपा काहू सौं परदेस।
सुन्दर विरहनि यों कहै आया नहीं सन्देस ॥ ३० ॥

जा दिन तें मोहि तजि गये ता दिन तें जक नांहि।
सुन्दर निस दिन विरह की हूक उठत उर मांहि ॥३१ ॥

---

(२३) साल=कसक, (साल निकलना=खटका, कसक मिट जाना)।
(२५) विलक=रह रह कर, फूट फूट कर रोवें।
(२६) रलियां=रग रलियां, आनन्द भर २ कर मौज करना,।
(३०) परदेस=परदेश में।(३१)जक=चैन। हूक=ज्वाला का लूक, भबूका, हूला।

घार लगाई वल्लभा विरहनि फिरै उदास।
सुन्दर गई वसंत ऋतु अव आयौ चोमास ॥ ३२ ॥

दिस दिस तें वादल उठे बोलत चातक मोर।
सुन्दर चक्रित विरहनी चित्त रहै नहिं ठौर ॥ ३३ ॥

दामिनि चमकै चहुं दिसा बून्द लगत है बांन।
सुन्दर व्याकुल विरहनी रहै क निकसै प्रांन ॥ ३४ ॥

एक अन्धेरी रैनि है दूजै सूनौ भौंन।
सुन्दर रटै पपीहरा विरहनि जीवै कौंन ॥ ३५ ॥

पावस नृप चढि आइयौ साजि कटक मम गेह।
सुन्दर विरहनि थरसली कंपि उठी सव देह ॥ ३६ ॥

चलें हवाई दामिनी वाजै गरज निसांन।
सुंदर विरहनि क्यौं जिवै घर नहिं कंत सुजांन ॥ ३७ ॥

वादल हस्ती देषिये सुन्दर पवन तुरंग।
दादुर मोर पपीहरा पाइक लीयें सङ्ग ॥ ३८ ॥

घेस्यौ गढ दश हूं दिशा विरहा अग्नि लगाइ।
सुन्दर ऐसै सङ्कट हिं जौ पिय करै सहाइ ॥ ३९ ॥

सांई तूं ही तूं करौं क्यौं ही दरस दिपाव।
सुन्दर विरहनि यौं कहे ज्यौं ही त्यौं ही आव ॥ ४० ॥

पीय पीय रसना रटै नैंना तलफै तोहि।
सुन्दर विरहनि अति दुखी हाइ हाइ मिलि मोहि ॥ ४१ ॥

जोवन मेरा जात है ज्यौं अंजुरी का नीर।
सुन्दर विरहनि वापुरी क्यौं करि वन्धै धीर ॥ ४२ ॥

---

(३६) थरसली=हिल गई, कपकपा गई।

(३८) पाइक=पैदल, नोकर चाकर।

(४२) बंधै=धारै, पकड़ै। धीर=धैर्य, धीरज।

जिस विधि पीव रिझाइये सो विध जानी नांहिं।
जोबन जाइ उतावला सुन्दर यहु दुख मांहिं ॥ ४३ ॥

किये सिंगार अनेक मैं नख सिख भूषन साजि।
सुन्दर पिय रीझै नहीं तो सब कौनैं काजि ॥ ४४ ॥

सुन्दर बिरहनि बहु तपी मिहरि कछू इक लेहु।
अवधि गई सब बीति कैं अब तौ दरसन देहु ॥ ४५ ॥

सुन्दर बिरहनि यौं कहै जिनि तरसावौ मोहि।
प्रान हमारे जात हैं टेरि कहतु हौं तोहि ॥ ४६ ॥

ढोलन मेरा भावता बेगि मिलहु मुझ आइ।
सुन्दर व्याकुल बिरहनी तलफि तलफि जिय जाइ ॥४७॥

लालन मेरा लाडिला रूप बहुत तुझ मांहिं।
सुन्दर राखै नैंन मैं पकल उघारैं नांहिं ॥ ४८ ॥

सुन्दर बिगसै बिरहनी मन मैं भया उछाह।
फूल बिछाऊं सेजरी आज पधारैं नाह ॥ ४९ ॥

सुन्या सन्देसा पीव का मन मैं भया अनंद।
सुन्दर पाया परम सुख भाजि गया दुख दंद ॥ ५० ॥

दया करहु अब रामजी आवौ मेरै भौंन।
सुन्दर भागै दुःख सब बिरह जाइ करि गौंन ॥ ५१ ॥

अब तुम प्रगटहु रामजी हृदै हमारै आइ।
सुन्दर सुख सन्तोष ह्वै आनँद अंग न माइ ॥ ५२ ॥

॥ इति बिरह कौ अंग ॥ ३ ॥

---

(४३) बिध=विधि। (४५) मिहरि=दया। (४७) ढोलन=ढोला, प्यारा। "ढोला मारू" में ढोला से प्यारा पिया ही लिया जाता है, यद्यपि ढोल नाम विशेष है। जैसे लाल से लालन। (४९) बिगसै=विकसै, आनन्द मगन होकर (काकड़ी की तरह फूल कर फूटे)। (५१) गौंन=गवन, गमन।

॥ अथ वंदगी कौ अंग ॥ ४ ॥

दोहा

सुन्दर अंदर पैसि करि दिल मौं गौता मारि।
तौ दिल ही मौं पाइये सांई सिरजनहार ॥ १ ॥

सुन्दर दिल मौं पैसि करि करै वंदगी पूव।
तौ दिल मौं दीदार है दूरि नहीं महवूव ॥ २ ॥

जिस वंदे का पाक दिल सो वंदा माकूल।
सुन्दर उसकी वंदगी सांई करै कवूल ॥ ३ ॥

वंदा सांई का भया सांई वंदे पास।
सुन्दर दोऊ मिलि रहे ज्यौं फुल हु मैं वास ॥ ४ ॥

हर दम हर दम हक्क तूं लेइ धनी का नांव।
सुन्दर ऐसी वंदगी पहुंचावै उस ठांव ॥ ५ ॥

वंदा आया वंदगी सुनि सांईं का नांव।
सुन्दर पोज न पाइये ना कहुं ठौर न ठांव ॥ ६ ॥

उलटि करै जो वंदगी हर दम अरु हर रोज।
तौ दिल ही मैं पाइये सुन्दर उसका पोज ॥ ७ ॥

सुन्दर वंदा चुस्त ह्वै जौ पैठै दिल मांहि।
तौ पावै उस ठौर ही वाहिर पावै नांहि ॥ ८ ॥

सुन्दर निपट नजीक है उठै जहां थी स्वास।
उहां हि गोता मारि तूं सांईं तेरै पास ॥ ९ ॥

[अङ्ग ४] (३) माकूल=(अ०) योग्य। कवूल=स्वीकार, मंजूर।

(६) आया वन्दगी=वन्दगी में लगा, प्रयुक्त हुआ।

(७) उलटि करै=वाहर की वन्दगी (सेवा, अर्चना, उपासना) न करके अन्दर हृदय में ध्यान धरै। (९) जहां थी=जहां से।

सपुन हमारा मांनिये मत पोजै कहुं दूर।
सांईं सीने वीच है सुन्दर सदा हजूर ॥ १० ॥

सुन्दर भूल्या क्यौं फिरै सांई है तुझ मांहिं।
एक मेक ह्वै मिलि रह्या दूजा कोई नांहिं ॥ ११ ॥

सुन्दर तुझ ही मांहिं है जो तेरा महवूव।
उस पूबी कौं जांनि तूं जिस पूवी तें पूव ॥ १२ ॥

जो वंदा हाजिर पडा करै धणी का कांम।
सांईं कौं भूलै नहीं सुन्दर आठौं यांम ॥ १३ ॥

जो यह उसका ह्वै रहै तौ वह इसका होय।
सुन्दर वातौं ना मिलै जव लग आपन पोय ॥ १४ ॥

सुन्दर वंदा वंदगी करै दिवस अरु रात।
सो वंदा कहिये सही और वात की वात ॥ १५ ॥

करै वंदगी वहुत करि आपा आंणै नांहिं।
सुन्दर करी न वंदगी यौं जांणै दिल मांहिं ॥ १६ ॥

वंदा आवै हुकम सौं हुकम करै तहां जाइ।
सुन्दर उजर करै नहीं रहिये रजा पुदाइ ॥ १७ ॥

सांई वंदे कौं फसै करै वहुत वेहाल।
दिल मैं कछु आंणै नहीं सुन्दर रहै पुस्याल ॥ १८ ॥

सुन्दर वंदा वंदगी सदा रहै इकतार।
दिल मैं और न दूसरा सांईं सेती प्यार ॥ १९ ॥

मुख सेती वंदा कहै दिल मैं अति गुमराह।
सुन्दर सो पावै नहीं सांईं की दरगाह ॥ २० ॥

---

(१४) आप न=आप (अपनपा, अहंकार) न (नहीं)।

(१५) वात की वात=कहने मात्र, कोरी वात।

(१७) हुकम=हुक्म, मर्जी (ईश्वर की)

सुन्दर ज्यौं मुख सौं कहै त्यौं ही दिल मैं जाप।
सोई वंदा सरषरू सांई रीझै आप ॥ २१ ॥

कै सांई की वंदगी कै सांई का ध्यांन।
सुन्दर वंदा क्यौं छिपै वंदे सकल जिहांन ॥ २२ ॥

वहुत छिपावै आप कौं मुझै न जांणै कोइ।
सुन्दर छाना क्यौं रहै जग मैं जाहर होइ ॥ २३ ॥

औरत सोई सेज पर बैठा षसम हजूर।
सुन्दर जान्यां ष्वाव मौं षसम गया कहुं दूर ॥ २४ ॥

तलब करै वहु मिल्न की कब मिलसी मुझ आइ।
सुन्दर ऐसै ष्वाव मौं तलफि तलफि जिय जाइ ॥ २५ ॥

कल न परत पल एक हूं छाडै सास उसास।
सुन्दर जागी ष्वाव सौं देषै तौ पिय पास ॥ २६ ॥

मैं ही अति गाफिल हुई रही सेज पर सोइ।
सुन्दर पिय जागै सदा क्यौं करि मेला होइ ॥ २७ ॥

सुन्दर दिल की सेज पर औरत है अरवाह।
इस कौं जाग्या चाहिये साहिव वे परवाह ॥ २८ ॥

जौ जागै तौ पिय लहै सोयें लहिये नांहिं।
सुन्दर करिये वंदगी तौ जाग्या दिल मांहिं ॥ २९ ॥

---

(२१) सरषरु=सुर्खरु (फा०) आवदार चेहरेवाला, प्रसन्न, इज्ज़तदार (उत्तम काम की खुशी से)।

(२२) वन्दे=वन्दना करै, नवै।

(२४) ष्वाव (फा०)=स्वप्न, सपना। षसम=(अ०) स्वामी, पीव।

(२५) तलब करै=ढूंढै। (मिल्न को=मिल्ने के लिए)।

जागि करै जो वंदगी सदा हजूरी होइ।
सुन्दर कबहुं न बीछुरै साहिब सेवग दोइ॥ ३०॥

॥ इति वंदगी कौ अंग ॥ ४ ॥

॥ अथ पतिव्रत कौ अंग ॥ ५ ॥

दोहा

सुन्दर हरि आराध करि है देवनि कौ देव।
भूलि न और मनाइये सबै भींति के लेव॥ १॥

सुन्दर और कछू नहीं एक बिना भगवंत।
तासौं पतिव्रत राषिये टेरि कहैं सब संत॥ २॥

सुन्दर और न ध्याइये एक बिना जगदीस।
सो सिर ऊपर राषिये मन क्रम बिसवा बीस॥ ३॥

सुन्दर कछु न सराहिये एक बिना भगवांन।
लच्छन लागै तुरत ही सबहिं सराहै आंन॥ ४॥

सुन्दर और सराहतं पतिव्रत लागै पोट।
बालु सरायौ रेनुका बंधी न जल की पोट॥ ५।

---

(३०) "हाजिरां हजूर" के लिए "सदा हजूरी"। साहिब सेवग दोइ=सेव्य सेवक (बन्दा और माबूद) जीव ईश्वर का भेद (दोइ=द्वैत) नहीं रहै।

[अंग ५] (१) लेव=लेवड़ा, पपड़ी ('भीत का लेव' मुहाविरा है तुच्छता के अर्थ में)

(४) लच्छन लागै=ऐब (दोष) लग जाय (यदि पतिव्रता अन्य को सराहै तो)। निर्दोष होने से संसार बड़ाई करै। आंन=अन्य (संसार के लोग)।

सुन्दर जब पतिव्रत गयौ तब पोई सपतंग।
मांनहुं टीका नील कौ विप्र दियौ निज अंग ॥ ६ ॥

सुन्दर जिन पतिव्रत कियौ तिनि कीये सब धर्म।
जब हि करै कछु और कृत तब ही लागै कर्म ॥ ७ ॥

सुन्दर सब करनी करी सबै करी करतूति।
पतिव्रत राष्यौ राम सौं तब आई सब सूति ॥ ८ ॥

पतिव्रत ही मैं योग है पतिव्रत ही मैं जाग।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वहै त्याग वैराग ॥ ९ ॥

पतिव्रत ही मैं यम नियम पतिव्रत ही मैं दान।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं तीरथ सकल सनान ॥ १० ॥

पतिव्रत ही मैं तप भयौ पतिव्रत ही मैं मौन।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं और कष्ट कहि कौन। ११ ॥

पतिव्रत ही मैं शील है पतिव्रत मैं संतोष।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं वह ई कहिये मोष ॥ १२ ॥

पतिव्रत मांहिं क्षमा दया धीरज सत्य वषांनि।
सुन्दर पतिव्रत राम सौं याही निश्चय आंनि ॥ १३ ॥

सुन्दर पतिव्रत राषि तूं सुधर जाइ ज्यौं वात।
सुख मैं मेलै कोर जब तृपति होइ सब गात ॥ १४ ॥

सुन्दर रीझै रामजी जाकै पतिव्रत होइ।
रुलत फिरै ठिक वाहरी ठौर न पावै कोइ ॥ १५ ॥

---

(८) सूति=सूत आना=सीधा और साफ होना, जैसे वेजा बुनने में सूत (धागा) न टूट कर साफ सीधा आ जाय। अर्थात् उपासना से ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर सब सिद्धि हो गई। (९) जाग=यज्ञ।

(१४) ज्यौं=(रा०) इससे, इस अर्थ वा प्रयोजन से। अतः।

(१५) रुलत फिरै=योंही वृथा इधर उधर, ठिक वाहरी=वाहर (स्थूल) संसार में स्थिर स्थान (गति, वा मंजिल) न प्राप्त होकर।

सुन्दर जो विभचारिनी फरका दीयौ डारि।
लाज सरम वाकै नहीं डोलै घर घर वारि ॥ १६ ॥

विभचारणि नाकी विना लाज सरम कछु नांहिं।
कालौ मुख कीयां फिरै सकल जगत कै मांहिं ॥ १७ ।

विभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पीय सुजान।
सुन्दर पतिव्रता कहै काटौं तेरे कांन ॥ १८ ॥

विभचारिणि यौं कहतु है मेरौ पिय अति पाक।
सुन्दर पतिव्रता कहै काटौं तेरौ नाक ॥ १९ ॥

विभचारिणि यौं कहतु है शोभित मेरौ कंत।
सुन्दर पतिव्रता कहै तोडौं तेरे दंत ॥ २० ॥

विभचारिणि यौं कहत है मेरौ पिय अति रौंन।
सुन्दर पतिव्रता कहै तेरी जिह्वा लौंन ॥ २१ ॥

विभचारिणि कहै देपि तूं मेरे पिय के वाल।
सुन्दर पतिव्रता कहै तेरै मांथै ताल ॥ २२ ॥

---

(१६) फरका=चीर (ओढ़नी) का वह विभाग जिसको स्त्री आगे लज्जा के लिए लहंगे में टांकती हैं।

(१७) नाकी विना=विन नांक की, नकटी। बेइज्जत।

(१८) काटौं तेरे कान=मैं तुझ से बढ़ कर हूं (कान काटना=किसी से बढ़ कर होना, मुहावरा है)।

(१९) काटौं तेरौ नाक=मैं प्रतिष्ठित हूं प्रतिष्ठा रहित बदनाम है।

(२०) तोडौं तेरे दन्त=मार कर सीधी कर दूं। अर्थात् तू दण्ड के योग्य है।

(२१) रौंन=रमणीय । जिह्वा लौंन तुझे लूंग (नमक) चबाया जाय जो ऐसी भ्रष्ट बात कहती है।

(२२) बाल=शिर के केश (कैसे सुन्दर हैं)। ताल=थाप। तेरा सिर पीटा जाने योग्य है

विभचारिणि कहै देषि तूं मेरे पिय कौ गात।
सुन्दर पतिवरता कहै तेरी छाती लात॥ २३॥

विभचारिणि कहै देषि तूं मेरे पिय कौ द्वार।
सुन्दर पतिवरता कहै तेरे मुख मैं छार॥ २४॥

पतिवरता पति सनमुखी सुन्दर लहै सुहाग।
विभचारिणि विमुखी फिरै ताके बडे अभाग॥ २५॥

पतिवरता छाडै नहीं सुन्दर पति की सेव।
विभचारिणि औगुन भरी पूजै देवी देव॥ २६॥

जाचिग कौं जाचै कहा सरै न कोई काम।
सुन्दर जाचै एक कौं अलष निरञ्जन राम॥ २७॥

सब ही दीसै दालदी देवी देव अनंत।
दारिद्र भंजन एकही सुन्दर कमलाकंत॥ २८॥

पतिवरता पति कै निकट सुन्दर सदा हजूरि।
विभचारणि भटकति फिरै न्याय परै मुख धूरि॥ २९॥

पतिवरता देषै नहीं आंन पुरुष की वोर।
सुन्दर वह विभचारिणि तकत फिरै ज्यौं चोर॥ ३०॥

पति की आज्ञा मैं रहै सा पतिवरता जांनि।
सुन्दर सनमुख है सदा निस दिन जोरे पांनि॥ ३१॥

प्रभू बुलावै बोलिये ऊठि कहै तब ऊठि।
बैठावै तौ बैठिये सुन्दर यौं जी चूठि॥ ३२॥

---

(२९) न्याय परे मुख धूरि=न्याय (निर्णय यह कि) अन्त में, अंततो गत्वा। मुख धूल पड़ना=मुंह पर धूल (बदनामी) होना।

(३१) पानि=पाणि, हाथ।

(३२) जी चूठि=जीव को (वा जी जान से) पीव की मर्जी के चिपक जाय, अर्थात् दृढ़ता के साथ आज्ञा पालन करे।

प्रभू चलावै तब चलै सोइ कहै तब सोइ।
पहरावै तब पहरिये सुन्दर पतिव्रत होइ ॥ ३३ ॥

दिवस कहै तब दिवस है रैंनि कहै तब रैंन।
सुन्दर आज्ञा में रहै कबहुं न फेरै वैंन ॥ ३४ ॥

रीसि करै अत्यन्त करि तौ प्रभु प्यारौ लाग।
हंसि करि निकट बुलाइले सुन्दर माथै भाग ॥ ३५ ॥

सुन्दर पतिव्रत राम सौं सदा रहै इकतार।
सुख देवै तौ अति सुखी दुख तौ सुखी अपार ॥ ३६ ॥

रजा राम की सीस पर आज्ञा मेटै नांहि।
ज्यौं रापै त्यौं ही रहै सुन्दर पतिव्रत मांहि ॥ ३७ ॥

साहिब मेरा रामजी सुन्दर पिजमतिगार।
पाव पलोटै प्रीति सौं सदा रहै हुसियार ॥ ३८ ॥

करै हजूरी बन्दगी और न कोई काम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै सुन्दर सदा गुलाम ॥ ३९ ॥

पति कौ वचन लियें रहै सा पतिवरता नारि।
सुन्दर भावै पीव कौं आवै नहीं अवगारि ॥ ४० ॥

जौ पिय कौ व्रत ले रहै कन्त पियारी सोइ।
अंजन मंजन दूरि करि सुन्दर सनमुख होइ ॥ ४१ ॥

अपना बल सब छाडि दे सेवै तन मन लाइ।
सुन्दर तब पिय रीझि करि रापै कण्ठ लगाइ ॥ ४२ ॥

प्रीतम मेरा एक तूं सुन्दर और न कोइ।
गुप्र भया किस कारनैं काहि न परगट होइ ॥ ४३ ॥

---

(३५) लाग=लागैं। भाग=भाग्य।

(४०) अवगारि=ओगाल, नफरत, अवज्ञा।

(४१) अंजन मंजन=टीका टमका, बाह्य आडम्बर। इन्द्रियों का व्यापार, देवी देवता की उपासना इत्यादि।

हृदये मेरै तूं वसै रसना तेरा नाम।
रोम रोम में रमि रह्या सुन्दर सब ही ठाम ॥ ४४ ॥

जहं जहं भेजै रामजी तहं तहं सुन्दर जाइ।
दाणां पांणी देह का पहली धस्या बनाइ ॥ ४५ ॥

अपणां सारा कछु नहीं डोरी हरि कै हाथ।
सुन्दर डोलै वांदरा वाजीगर के साथ ॥ ४६ ॥

ज्यौं हीं आवै राम मन सुन्दर त्यौं ही धारि।
जो ही भावै पीव कौं सोई भावै नारि ॥ ४७ ॥

सुन्दर प्रभु मुख सौं कहै सोई मीठी वात।
डार कहै तौ डार ही पात कहै तौ पात ॥ ४८ ॥

जो प्रभु कौं प्यारौ लगै सोई प्यारौ मोहि ॥
सुन्द ऐसैं समुंझि करि यौं पतिवरता होहि ॥ ४९ ॥

सुन्दर प्रभु की चाकरी हांसी पेल न जांनि।
पहलै मन कौं हाथ करि पीछै पतिव्रत ठांनि ॥ ५० ॥

सुन्दर कछू न कीजिये क्रिया कर्म भ्रम आन।
करने कौ हरि भक्ति है समझन कौं है ज्ञान ॥ ५१ ॥

॥ इति पातिव्रत कौ अंग ॥ ५ ॥

---

(४५) जहं जहं=जिस जिस जन्मांतर में, योनियों में। दाणां पांणी=खान पान। शरीर के पालन के लिए पत्येक योनि में भोजनादि का प्रवन्ध।

(४८) डार=डाली। (डाल २ पात २ मुहाविरा है) अथवा चाहे डाली न हो उसको डाली ही कहै यदि प्यारा ईश्वर डाली ऐसा कहै तो।

(५०) चाकरी हांसी पेल न जान=सेवा धर्म बहुत कठिन है, कोई खिलवाड़ नहीं है। "सेवधर्म्मो परम गहनो योगिना मप्यगम्यः"।

(५१) आन=अन्य। भक्ति और ज्ञान से भिन्न अन्य सब कर्म और धर्म

॥ अथ उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ ६ ॥

सुन्दर मनुषा देह की महिमा बरनहिं साध।
जामैं पइये परम गुरु अविगति देव अगाध ॥ १ ॥

सुन्दर मनुषा देह की महिमा कहिये काहि।
जाकौं बंछे देवता तूं क्यौं पोवै ताहि ॥ २ ॥

सुन्दर मनुषा देह यह पायौ रतन अमोल।
कोडी सटै न पोइये मांनि हमारौ बोल ॥ ३ ॥

सुन्दर सांची कहतु है मति आनै कछु रोस।
जौ तैं पोयो रतन यह तौ तोही कौं दोस ॥ ४ ॥

बार बार नहिं पाइये सुन्दर मनुषा देह।
राम भजन सेवा सुकृत यह सोदा करि लेह ॥ ५ ॥

सुन्दर निश्चय आन तूं तोहि कहूं करि प्यार।
मनुष जन्म की मौज यह होइ न बारम्बार ॥ ६ ॥

सुन्दर मनुषा देह में सारे बंधन बाढि।
आयौ हाथ सिला तलै काढि सकै तौ काढि ॥ ७ ॥

सुन्दर तूं भटकति फिर्‌यौ स्वर्ग मृत्यु पाताल।
अबकै या नर देह मैं काढि आपनौ साल ॥ ८ ॥

मिथ्या और भ्रममूलक है। "भक्तिमय ज्ञान" ही दादू-सम्प्रदाय का मूल सिद्धान्त है अनेक प्रसगों में सुन्दरदासजी ने बता दिया है।

(७) बाढि=बढ़ कर हैं। परन्तु इस ही में सब बन्धन खुल सकते हैं। 'शिला तले हाथ आना'=दब जाना फस जाना। जन्म-मरण का बन्धन फस जाना। एक मनुष्य देह ऐसी है जो आवागमनरूपी बन्धन से मुक्त कर सकती है।

(८) साल=(शल्य) सूल, कांटा। साल काढना=कांटा निकालना। त्रिविध दुःख वा आवागमन का खटका मिटाना।

सुन्दर कछु संप्या नहीं वहुतक धरे शरीर।
अवके तूं भगवंत भजि विलम करै जिनि वीर ॥ ६ ॥

सुन्दर या नर देह है सव देहनि कौ मूल।
भावै यामैं समझि तूं भावै यामैं भूल ॥ १० ॥

सुन्दर मनुपा देह धरि भज्यौ नहीं भगवंत।
तौ पशु ज्यौं पूरै उदर शूकर स्वान अनंत ॥ ११ ॥

सुन्दर या नर देह अव पुल्यौ मुक्ति कौ द्वार।
यौं ही वृथा न पोइये तोहि कह्यौ कै वार ॥ १२ ॥

सुन्दर सांची कहत है जौ मानै तौ मांनि।
यहै देह अति निंद्य है यहै रतन की पांनि ॥ १३ ॥

सुन्दर मनुपा देह यह तामैं दोइ प्रकार।
यातै वूडै जगत महिं यातैं उतरै पार ॥ १४ ॥

सुन्दर वंधे देह सौं तौ यह देह निपिद्धि।
जौ याकी ममता तजै तौ याही मैं सिद्धि ॥ १५ ॥

भूलत काहे वावरे देपि सुरंगी देह।
वंध्यौ फिरै अनादि कौ सुन्दर याके नेह ॥ १६ ॥

सुन्दर वंध्या देह सौं कवहु न छूटा भाजि।
और कियौ सनमंध अव भई कोढ मैं पाजि ॥ १७ ॥

मात पिता वंधव सकल सुत दारा सौं हेत।
सुन्दर वंध्या मोहि करि चेतै नहीं अचेत ॥ १८ ॥

---

(९) विलम=विलम्व=अवेर, देर। (१४)दुष्कर्मों से डूबे। शुभकर्मों से तिरैं।

(१६) देह जड़ है, आत्मा चेतन है। देह में आत्मा का अध्यास करना मिथ्या और बन्धन का कारण होता है।

(१७) 'कोढ में पाजि'=महाराजरोग कोढ़ में खाज का होना=विषम दुःख में अन्य अधिक दुःख का आ जाना।

सुन्दर स्वारथ सौं बंधै बिन स्वारथ को नांहिं।
जब स्वारथ पूजै नहीं आपु आपु कौ जांहिं ॥ १९ ॥

सुन्दर अति अज्ञान नर समझत नाहिं न मूरि।
तूं इनसों लाग्यौ मरै ये सब भागै दूरि ॥ २० ॥

सुन्दर अति अज्ञान नर समुंझत नहीं लगार।
जिनहिं लडावै लाड तूं ते ठोकि हैं कपार ॥ २१ ॥

सुन्दर माया मोह तजि भजिये आतम राम।
ये संगी दिन चारि के सुत दारा धन धाम ॥ २२ ॥

सुन्दर नदी प्रवाह मैं मिल्यौ काठ संजोग।
आपु आपु कौं ह्वै गये त्यौं कुटंब सब लोग ॥ २३ ॥

सुन्दर बैठे नाव मैं कहूं कहूं तें आइ।
पार भये कतहूं गये त्यौं कुटंब सब जाइ ॥ २४ ॥

सुन्दर पक्षी वृक्ष पर लियौ बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यौं कुटंब सब जानि ॥ २५ ॥

सुन्दर समझि विचार करि तेरौ इनमें कौन।
आपु आपु कौं जाहिंगे सुत दारा करि गौन ॥ २६ ॥

सुन्दर तूं इन सौं बंध्यौ ये सब तोसौं फर्क।
याही बात विचार करि तूं हूं दै अब तर्क ॥ २७ ॥

सुन्दर नाना जोनि मैं जन्म जन्म की भूल।
सुत दारा माता पिता सगलै याही सूल ॥ २८ ॥

---

(१९) आपु आपु को जांहि=त्याग जांय, यही नीचता।

(२०) मूरि=मूल, कुछ भी, थोड़ा भी।

(२१) कपार ठोकैं=मरने पर कपालक्रिया करें।

(२७) तूं हूं दै तर्क=यह मेरा यह तेरा ऐसी ममता भरी अज्ञता की तर्कना (दै) छोड़ दे।

सुन्दर मांथै वोझ लै यह तौ अति अज्ञान।
इनकौ करता और ही भय भंजन भगवान॥ २६॥

सुन्द काहे पेंचि ले अपने मांथै वोझ।
करता कौं जानै नहीं तूं रांमां कौ रोझ॥ ३०॥

सुन्द तेरी मति गई समुंझत नहीं लगार।
कूकर रथ नीचै चलै हूं पेंचत हौं भार॥ ३१॥

सुंदर यह औसर भलौ भजि लै सिरजनहार।
जैसें ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार॥ ३२॥

सुंदर औसर कै गयें फिरि पछितावा होइ।
शीतल लोह मिलै नहीं कूटौ पीटौ कोइ॥ ३३॥

सुन्दर यौंही देप तें औसर वीत्यौ जाइ।
अंजुरी मांहें नीर ज्यौं किती वार ठहराइ॥ ३४॥

सुंदर अव तेरी पुसी वाजी जीति कि हारि।
चौपडि कौ सौ पेल है मनुषा देह विचारि॥ ३५॥

सुंदर जीतै सो सही डाव विचारै कोइ।
गाफिल होइ सु हारि कै चालै सरवस पोइ॥ ३६॥

सुंदर याही देह में हारि जीति कौ पेल।
जीतै सो जगपति मिलै हारे माया मेल॥ ३७॥

---

(३०) रांमां कौ रोझ=रामां—जंगल। रोझ—एक प्रकार का जंगली पशु।

(३१) कूकर रथ नीचे...=यह मिथ्या अविवेक और अध्यास का दृष्टान्त है। कुत्ता रथ के नीचे २ चलता हुआ यह समझै कि यह रथ मेरे चलाये चलता है तो उसकी यह कल्पना हास्य के योग्य और नितान्त झूठी है। इस ही प्रकार संसार के व्यवहार मनुष्य के लिए हैं। मनुष्य अहन्ता से अपने ऊपर लेता है। कार्य के कारण तो और ही हैं।

(३२) ताता लोह कुटना मुहावरा है। अवसर पर ही काम होता है।

(३४) अंजुरी=आंदला। (३७) जगपति=ईश्वर, परमात्मा।

सुंदर अबकै आंपणौ टोटौ नफौ विचारि।
जिनि डहकावै जगत मैं मेल्ह्यो हाट पसारि॥ ३८॥

सुंदर भटक्यौ बहुत दिन अब तूं ठौहर आव।
फेरि न कबहूं आइ है यहु औसर यहु डाव॥ ३९॥

सुंदर दुःख न मानि तूं तोहि कहूं उपदेश।
अब तौ कछूक सरम गहि धौले आये केश॥ ४०॥

सुंदर बैठा क्यौं अबै उठि करि मारग चालि।
कै कछु सुकृत कीजिये कै भगवंत संभालि॥ ४१॥

सुंदर सौदा कीजिये भली वस्तु कछु पाटि।
नाना विधि काटांगरा उस बनिया की हाटि॥ ४२॥

सुंदर विप पलि पार तजि लै केसरि कर्पूर।
जौ तूं हीरा लाल ले तौ तौसौं नहिं दूर॥ ४३॥

सुंदर ठगबाजी जगत यह निश्चय करि जांनि।
पहलै बहुत ठगाइयौ बहै घणों करि मांनि॥ ४४॥

सुन्दर ठग्यौ अनेकबर सावधान अब होह।
हीरा हरि कौ नाम लै छाडि विषै सुख लोह॥ ४५॥

सुन्दर सुख कै कारनै दुःख सहै बहु भाइ।
को पेती को चाकरी कोइ वणज कौं जाइ॥ ४६॥

पराधीन चाकर रहै पेती मैं संताप।
टोटौ आवै वणज मैं सुन्दर हरि भजि आप॥ ४७॥

---

(३८) टोटा नफा विचारना=फायदा होगा या नुकसान इसका पहिले से विचार कर लेना ही बुद्धिमानी है।

(४२) पाटि=परख कर मोल ले। टांगरा=सामान, सोदा, सटड़ पटड़ उस बनिया=परमात्मा (की सृष्टि)।

(४३) पलि=खल, छूंछ, निःसार वस्तु।

सुख दुख छाया धूप है सुन्दर कर्म सुभाव।
दिन द्वै शीतल देषिये बहुरि तप्त में पांव ॥ ४८ ॥
सुन्दर सुख की चाह करि कर्म करै बहु भांति।
कर्मनि कौ फल दुःख है तूं भुगतै दिन राति ॥ ४९ ॥
तैं नर सुख कीये घने दुख भोगये अनंत।
अब सुख दुख कौ पोठि दें सुन्दर भजि भगवंत ॥ ५० ॥
दीया की बतियां कहै दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि दीयें ज्योति दिषाइ ॥ ५१ ॥
दीयें तें सब देषिये दीये करौ सनेह।
दीये दसा प्रकासिये दीया करि किन लेह ॥ ५२ ॥
दीया राषै जतन सौं दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं दीये होइ विनाश ॥ ५३ ॥
सांई दीया है सही इसका दीया नांहिं।
यह अपना दीया कहै दीया लषै न मांहिं ॥ ५४ ॥
सांई आप दिया किया दीया मांहिं सनेह।
दीये दीये होत है सुन्दर दीया देह ॥ ५५ ॥

॥ इति उपदेश चितावनी कौ अंग ॥ ६ ॥

---

(४८) तप्त में पांव=धूप, तावड़े में पांव का दाझना।

(५१) यह 'दीया' शब्द और 'बाती' तथा 'सनेह' शब्दों में श्लेष है। दीया=१ दान, २ दीपक। बाती=१ वार्त्ता, २ बत्ती। सनेह=१ स्नेह, प्रेम, २ तेल।

(५२) यहां भी श्लेष है। १ देने से (त्यागने से) दिव्यज्ञान की प्राप्ति होती है। २ दीपक से सब दिखाई दे। करि=१ हाथ में २ करके।

(५३) यहां भी श्लेष है। प्रसंग से अर्थ जान लेना। दीया=ज्ञान। अहं=अहंकार।

(५४) यहा 'दीया' शब्द से प्रकाश। परमात्मा स्वयं प्रकाश है, वह किसी अन्य प्रकाश से नहीं दिखाई देता। (५५) ज्ञानरूपी दीपक हृदय में परमात्मा ने

॥ अथ काल चितावनी कौ अंग ॥ ७ ॥

काल ग्रसत है बावरे चेतत क्यौं न अजांन।
सुन्दर काया कोट मैं होइ रह्या सुलतांन ॥ १ ॥

सुन्दर काल महाबली मारे मोटे मीर।
तूं कौनैं की गनति मैं चेतत काहि न बीर ॥ २ ॥

सुन्दर काल गिराइ दे एक पलक मैं आइ।
तूं क्यौं निर्भय ह्वै रह्यौ देषि चल्यौ जग जाइ ॥ ३ ॥

सुन्दर चितवै और कछु काल सु चितवै और।
तूं कहुं जाने की करै वहु मारै इहिं ठौर ॥ ४ ॥

सुन्दर काल प्रवीण अति तूं कछु समुझै नांहिं।
तूं जानैं जीवत रहूं वहु मारै पल माहिं ॥ ५ ॥

सुन्दर तेरी और कौं ताकि रहे जमदूत।
बैंरी बैठैं बारनैं तूं सोवै किंहिं सूत ॥ ६ ॥

सुन्दर सूवा पींजरै केलि करै दिन राति।
मिनकी जानैं पांव कव ताकि रही इहि भांति ॥ ७ ॥

सुन्दर मूसा फिरत है बिलतैं बाहिर आइ।
काल रह्यौ अहि ताकि करि कबहुंक लेइ उठाइ ॥ ८ ॥

मनुष्य को प्रदान किया। उसमें 'सनेह'=भक्तिरूपी तेल भर दिया। दीपक से दीपक जलता है। गुरु से शिष्य, परम्परागत ज्ञानधारा बहती है। परमात्मा ने यह सुन्दर देह प्रदान की है। यह देह ज्ञानभरी है सो इस ज्ञानरूपी दीया (दीपक) को प्रज्वलित करके अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा लो।

(६) सूत=सूत के वस्त्र में, बिस्तरों में। अथवा हे सूत, पुत्र!। वा सूत=सुरत, धुन।

सुन्दर मछरी नीर मैं विचरत अपने प्याल।
वगुला लेत उठाइ कै तोड़ ग्रसै यौं काल॥ ९॥

सुन्दर वैठी मक्षिका मीठे ऊपर आइ।
ज्यौं मकरी वाकौं ग्रसै मृत्यु तोहि लै जाइ॥ १०॥

सुन्दर तोकौं मारि है काल अचानक आइ।
तीतर देषत ही रहै वाज झपट ले जाइ॥ ११॥

सुन्दर काल जुरावरी ज्यौं जाणै त्यौं लेइ।
कोटि जतन जौ तूं करै तोहूं रहन न देइ॥ १२॥

मेरी मेरी करत है तौकौं सुद्धि न सार।
काल अचानक मारि है सुन्दर लगै न वार॥ १३॥

मेरै मन्दिर माल धन मेरौ सकल कुटुम्व।
सुन्दर ज्यौं कौ त्यौं रहै काल दियौ जव वंव॥ १४॥

सुन्दर गर्व कहा करै कहा मरोरै मूंछ।
काल चपेटौ मारि है समझि कहूं के भूंछ॥ १५॥

यौं मति जानै वावरे काल लगावै वेर।
सुन्दर सवही देषतें होइ राप की ढेर॥ १६॥

सुन्दर संक रती नहीं वहुत करै उदमाद।
काल अचानक आइहै करिहै गुरदावाद॥ १७॥

सुन्दर क्यौं चेतै नहीं सिर पर सांधे काल।
पल मैं पटकि पछारि हैं मारि करै वेहाल॥ १८॥

सुन्दर काहे कौं करै थिर रहणें की वात।
तेरै सिर पर जम पडा करै अचानक घात॥ १९॥

---

(१२) जुरावरी=जोरावरी, वलात्, जवरदस्ती।

(१४) वंव=प्रवल शब्द। (१५) भूंछ=भुच्च=मूर्ख।

(१७) उदमाद=ऊधम। गुरदावाद=गुरदावाज, लोटपोट, रेतलेत।

सुन्दर गाफिल क्यों फिरै सावधान किन होय।
जम जौरा तकि मारि है घरी पहरि मैं तोय॥ २०॥

सुन्दर तौ तूं उबरि है समरथ सरनैं जाइ।
और जहां जहां तूं फिरै काल तहां तहां पाइ॥ २१॥

सुन्दर अपनौ राम तजि जाइ और के भौंन।
काल गहै जब कण्ठ कौं तबहि छुडावै कौंन॥ २२॥

सुन्दर रापै कौंन कौं संचि संचि धन माल।
तेरै संग चलै न कछु पोसि लेहिंगे पाल॥ २३॥

सुत कलत्र माता पिता भइया बंधु समेत।
सुन्दर सब कौं देपते काल ग्रास करि लेत॥ २४॥

जौर चलै कहि कौंन कौ सब कुटंब घर मांहिं।
सुन्दर काल उठाइ ले देपत ही रहि जांहिं॥ २५॥

सुन्दर पौन लगै नहीं राप्यौ तहां छिपाइ।
काल पकरि कै केस कौं बाहरि नाप्यौ आइ॥ २६॥

काल ग्रसै सब सृष्टि कौं बचत न दीसै कोइ।
सुन्दर सारे जगत मैं तोबह तोबह होइ॥ २७॥

सुन्दर घर घर रोवणौं पर्‍यौ काल की त्रास।
केइक जारन कौं गये फिर केइक कौ नास॥ २८॥

सुन्दर सब ही थरसलै देपि रूप विकराल।
मुख पसारि कब कौ रह्यौ महा भयानक काल॥ २९॥

---

(२०) जौरा=जोरावर, जोरा (भैंस, जो बहुत आसूदा रह कर जोर से दौड़ती है)।

(२३) खाल खोसना=खाल खैंचना, उपाड़ना। बुरी तरह बेहाल कर मारना।

(२७) तोबह तोबह=(अ०) तोबाह=त्राहि।

(२८) जारन=जलाने को गये (वे भी जलाये गये)।

(२९) थरसलै=थर्रावै, डरै।

सत्य लोक ब्रह्म डर्‍यौ शिव डरप्यौ कैलास।
विष्णु डर्‍यौ वैकुंठ में सुन्दर मानी त्रास॥ ३०॥

इन्द्र डर्‍यौ अमरावती देवलोक सब देव।
सुंदर डर्‍यौ कुबेर पुनि देषि सबनि कौ छेव॥ ३१॥

राक्षस असुर सर्बे डरे भूत पिशाच अनेक।
सुंदर डरपे स्वर्ग के काल भयानक एक॥ ३२॥

चन्द सूर तारा डरै धरती अरु आकाश।
पांणी पावक पवन पुनि सुंदर छाडी आस॥ ३३॥

सुन्दर डर सुनि काल कौ कंप्यौ सब ब्रह्मंड।
सागर नदी सुमेर पुनि सप्त दीप नौ खंड॥ ३४॥

साधक सिद्ध सबैं डरे तपी ऋषीश्वर मौंन।
योगी जंगम बापुरे सुंदर गनती कौंन॥ ३५॥

एक रहै करता पुरुष महाकाल कौ काल।
सुन्दर वहु विनसै नहीं जांकौ यह सब ष्याल॥ ३६॥

सुन्दर उठतें बैठतें जागत सोवत काल।
निर्भय कोइ न रहि सकै काल पसार्‍यौ जाल॥ ३७॥

सुन्दर षाते पीवते चलत फिरत डर होइ।
सबही कौं भै काल कौ निर्भय नाहीं कोइ॥ ३८॥

सुन्दर सुनतें देषतें लेतें देतें त्रास।
यौंही मुख सौं बोलतें निकसि जात है स्वास॥ ३९॥

जगत जोइ जो कृत करै सो सो भय संयुक्त।
सुंदर निर्भय रामजी कै कोई जन मुक्त ४०॥

सुंदर या संसार तें काहि न निकसत भागि।
सुख सोवत क्यौं बावरे घर मैं लागी आगि॥ ४१॥

---

(३५) मौंन=मुनीश्वर।

काम काल त्रैलोक में मारे जान सुजान।
सुन्दर ब्रह्मा आदि दे कीट प्रयंत बपान ॥ ४२ ॥

क्रोध काल प्रत्यक्ष ही कियौ सकल कौ नास।
सुन्दर कौरव पांडुवा छपन कोटि परभास ॥ ४३ ॥

लोभ काल यौं जानिये भरमावै जग मांहि।
बूडैं जाइ समुद्र मैं सुंदर निकसैं नांहि ॥ ४४ ॥

मोह काल की पासि है सुन्दर निकसै कौंन।
पिता पुत्र संग जलि मुवौ अग्नि लगी जब भौंन ॥ ४५ ॥

जो जो मन में कल्पना सो सो कहिये काल।
सुन्दर तूं निःकल्प हो छाडि कल्पना जाल ॥ ४६ ॥

काल ग्रसै आकार कौं जामैं सकल उपाधि।
निराकार निर्लेप है सुन्दर तहां न व्याधि ॥ ४७ ॥

सुन्दर काल तहां तहां जब लग है अज्ञान।
ममत गयौ जब देह कौ तब व्यापक भगवान ॥ ४८ ॥

सुन्दर बंध्या देह सौं तब लग ग्रासै काल।
छाडि ममत न्यारौ भयौ रज्जु विषै कत व्याल ॥ ४९ ॥

सुन्दर काल अखंड है तिमिर रह्यौ ज्यौं छाइ।
ज्ञान भान प्रगटै जबहिं दोन्यूं जांहि विलाइ ॥ ५० ॥

॥ इति काल चितावनी कौ अंग ॥ ७ ॥

---

(४२) जान=ज्ञानीजन।

(४३) छपन=छप्पन किरोड़ यादव प्रभास क्षेत्र में आपस में कट मरे।

(४५) पिता-पुत्र संग=मोह के वश में पुत्र का जला जान कर पिता ने भी अपने आपको जला दिया। (४७) नामरूपात्मक जगत् सब उपाधिमात्र है। दृश्यमान सब क्षर और मिथ्या है। अतः सब त्यागने योग्य है।

(४९) बन्ध्या=बन्धा हुआ। ग्रासै=ग्रसै, खाय। रज्जु विषै कत व्याल=रज्जु

नारी चलै उतावली नख सिख लागै भाहि।
सुन्दर पटकै पीव सिर दुःख सुनावै काहि॥ ६॥

नारी घर बैठी रहै पर घर करै न गौन।
सुन्दर पावै पीव सुख दोष लगावै कौन॥ ७॥

नारी प्यारी पीव कौं सुन्दर आठौं याम।
जब नारी असकी परै तब परचै बहु दाम॥ ८॥

नारी नीकै बोलई सुन्दर तब सुख भौन।
जब नारी चुप करि रहै तब पिय पकरै मौन॥ ९॥

पुरुष सदा डरपत रहै सुन्दर डोलै साथ।
नारी छूटै हाथ तैं तब कत आवै हाथ॥ १०॥

नारी निरपै रात दिन अति गति बांध्यौ मोह।
सुन्दर बार लगै नहीं पल में होइ बिछोह॥ ११॥

नारी में बल पुरुष कौ पुरुष भयौ बसि नारि।
अपुनौ बल समुझै नहीं बैठौ सर्बस हारि॥ १२॥

नारी जाकै हाथ में सोई जीवत जानि।
नारी के संग बहि गयौ सुन्दर मृतक बषानि॥ १३॥

नारी फिरै गली गली ताकौं लज्या नांहिं।
सुन्दर मार्यौ सरम कौ पुरुष घस्यौ घर मांहिं॥ १४॥

नारी डोलै भटकती पुरुषहिं नहीं बिसास।
मति कहुं अटकै और सौं मोतें होइ उदास॥ १५॥

सुन्दर पिय की लाडिली नारी सौं अति नेह।
जाइ दिपावै और कौं चूक पुरुष की येह॥ १६॥

सुन्दर पिय अति बावरौ है करि जाइ अनाथ।
नारी अपनी आनि कै देइ और कै हाथ॥ १७॥

---

(१४) नारी फिरै= रुग्-दोष कुपित होने से नाड़ी (धमनी) विकार से चलै। तब गली गली इधर उधर बैद्य को ढूंढै। (१७) रुग्नावस्था में विह्वल वा

सुन्दर पीव कहा करै नारी चंचल होइ।
न्याइ दिपावै और कौं जे समुंझावै कोइ॥ १८॥

छाड्यौ चाहै पीव कौं नारी पर घर जाइ।
सुन्दर चंचल चपल अति तासौं कहा वसाइ॥ १९॥

समझावन कौं ल्याइये भलौ सयानौ कोइ।
तासौं वोलै आकरी कै कहुं पवर न होइ॥ २०॥

ऐसैं वैसैं आइ कै कहै वहुत ही वैन।
तिनकी कछु मानै नहीं पुरुपहि होइ न चैन॥ २१॥

भलौ सयानौ आइ जो समुझावै वहु भांति।
कुलवंती मानै कह्यौ सुन्दर उपजै स्वांति॥ २२॥

सुन्दर नारी पुरुप की प्रीति परस्पर जांनि।
तव तैं संग तज्यौ नहीं जव तैं पकरी पांनि॥ २३॥

सुन्दर नारी पतिव्रता तजै न पिय कौ संग।
पीव चलै सहि गामिनी तुरत करै तन भंग॥ २४॥

दैव विछोह करै जवहिं तव कोई वस नांहि।
सुन्दर नेह न निर्वहै आपु आपु कौं जांहि॥ २५॥

इति सापी पचीस मैं नारी पुरुप प्रसङ्ग।
सुन्दर पावै चतुर अति तीन अर्थ तिनि सङ्ग॥ २६॥

॥ इति नारी पुरुप श्लेष को अंग ॥ ८ ॥

रोग विवश होकर अपनी नाड़ी दूसरे (वैद्य वा सयाने) को दिखावैं।

(२३) पानि=हाथ।

(२४) सहिगामिनी=१ साथ चलनेवाली, अनुकूला। २ पुरुष=जीव के साथ ही नारी (स्त्री) वा नाड़ी (धमनी) रहती है। पतिव्रता पति वियोग में सती हो जाती है। २ जीव निकलने पर हाथ की नाड़ी छूट जाती है।

(२६) तीन अर्थ—दो अर्थों का संकेत तो ऊपर हो ही चुका। तीसरा अर्थ

॥ अथ देहात्मा बिछोह को अंग ॥ ९ ॥

दोहा

सुन्दर देह परी रही निकसि गयौ जब प्रान।
सब कोऊ यौं कहत हैं अब लै जाहु मसान ॥ १ ॥

माता पिता लगावते छाती सौं सब अंग।
सुन्दर निकस्यौ प्रान जब कोउ न बैठै संग ॥ २ ॥

सुन्दर नारी करत ही पिय सौं अधिक सनेह।
तिनहूं मन मैं भय धर्‍यौ मृतक देषि करि देह ॥ ३ ॥

सुन्दर भइया कहत हो मेरी दूजी बांह।
प्राण गयौ जब निकसि कैं कोउ न चंपै छांह ॥ ४ ॥

सुन्दर लोग कुटंब सब रहते सदा हजूरि।
प्रान गये लागे कहन काढौ घर तें दूरि ॥ ५ ॥

देह सुरंगी तब लगैं जब लग प्राण समीप।
जीव जाति जाती रही सुन्दर बिदरंग दीप ॥ ६ ॥

चमक दमक सब मिटि गई जीव गयौ जब आप।
सुन्दर पाली कंचुकी नीकसि भागौ सांप ॥ ७ ॥

श्रवन नैंन मुख नासिका ज्यौं के त्यौं सब द्वार।
सुन्दर सो नहिं देषिये अचल चलावणहार ॥ ८ ॥

पुरुष=परमात्मा और उसके आधीन नारी=आत्मा वा जीवात्मा वा प्रकृति माया समझना चाहिए। यह तीसरा अर्थ अध्यात्म का है। इसका आभास पतिव्रता के अंगों में भी है—क्या 'सापी' में और क्या 'सवइया' में।

[अंग ९] इसके सुन्दर विचार 'सवइया' ग्रन्थ के इस ही (देहात्मा बिछोह) अंग में देखना उचित है। यहां भी कैसा मनोग्राही सच्चा ललित वर्णन किया है। हिन्दी भाषा में अन्यत्र ऐसा वर्णन नहीं मिलैगा।

(६) बिदरंग=बदरंग, बुरे रंग रूप का।

हँसै न बोलै नैंक हूं पाइ न पीवै देह।
सुन्दर अंनसन ले रही जीव गयौ तजि नेह ॥ ९ ॥

पाथर से भारी भई कौंन चलावै जाहि।
सुन्दर सो कतहूं गयौ लीयें फिरतौ ताहि ॥ १० ॥

सुन्दर पांणी सींचतौ क्यारी कंण कै हेत।
चेतनि माली चलि गयौ सूकौ काया पेत ॥ ११ ॥

ज्यौं कौ त्यौं ही देषिये सकल देह कौ ठाट।
सुन्दर को जांणै नहीं जीव गयौ किहिं बाट ॥ १२ ॥

सुन्दर देह हलै चलै चेतनि कै संजोग।
चेतनि सत्ता चलि गई कौंन करै रस भोग ॥ १३ ॥

हलन चलन सब देह कौ चेतनि सत्ता होइ।
चेतनि सत्ता बाहरी सुन्दर क्रिया न होइ ॥ १४ ॥

सुन्दर देह हलै चलै जब लगि चेतनि लाल।
चेतनि कियौ प्रयान जब रूसि रहै ततकाल ॥ १५ ॥

चम्बक सत्ता कर जथा लोहा नृत्य कराइ।
सुन्दर चम्बक दूरि ह्वै चञ्चलता मिटि जाइ ॥ १६ ॥

नख सिख देह लगै भली सुन्दर अधिक स्वरूप।
चेतनि हीरा चलि गयौ भयौ अन्धेरा घूप ॥ १७ ॥

सुन्दर देह सुहावनी जब लगि चेतनि मांहिं।
कोई निकट न आवई जब यह चेतनि नांहिं ॥ १८ ॥

चेतनि कै संयोग तें होइ देह कौ तोल।
चेतनि न्यारौ ह्वै गयौ लहै न कोडी मोल ॥ १९ ॥

---

(९) अंनसन=अनशन=न खाना, निराहार।

(१०) कैसा मनोहर विचार है। चित्त द्रवीभूत हो जाता है।

। (१९) तोल=प्रतिष्ठा, आदर।

चेतनि मिश्री देह तृण तुलत संग देहिं दांम।
सुन्दर दोउ जुदे भये तन तृण कोणें काम ॥ २० ॥

चेतनि तें चेतनि भई अतिगति शोभित देह।
सुन्दर चेतनि निकसतें भई पेह की पेह ॥ २१ ॥

चेतनि ही लीयें फिरै तन कौं सहज सुभाइ।
सुन्दर चेतनि वाहरी पैल भैल ह्वै जाइ ॥ २२ ॥

देह जीव यौं मिलि रहे ज्यौं पांणी अरु लौंन।
वार न लाई विछुरतें सुन्दर कीयौ गौंन ॥ २३ ॥

सुन्दर आइ शरीर में जीव किये उतपात।
निकसि गये या देह की फेर न वूझी वात ॥ २४ ॥

सुन्दर आयौ कौंन दिसि गयौ कौनसी वोर।
या किनहूं जान्यौ नहीं भयौ जगत मैं सोर ॥ २५ ॥

॥ इति देहात्मा विछोह को अंग ॥ ९ ॥

॥ अथ तृष्णा को अङ्ग ॥ १० ॥

पल पल छीजै देह यह घटत घटत घटि जाइ।
सुन्दर तृष्णा ना घटै दिन दिन नौतन थाइ ॥ १ ॥

वालापन जोवन गयौ वृद्ध भये सव कोइ।
सुन्दर जीरन ह्वै गये तृष्णा नव तन होइ ॥ २ ॥

---

(२०) कोणें काम=किसी काम की नहीं, त्यागने योग्य।

(२२) पैल भैल=खला भला, गड़बड़, नष्ट भ्रष्ट।

[अङ्ग १०] (१) नौतन=नूतन, नई, ताजा।

(२) नवतन=नये शरीरवाली।

सुन्दर तृष्णा यौं वधै जैमैं वाढै आगि।
ज्यौं ज्यौं नापै फूस कौं त्यौं त्यौं अधिकी जागि॥ ३॥

जव दस वीस पचास सौ सहस्र लाष पुनि कोरि।
नील पद्म संष्या नहीं सुन्दर त्यौं त्यौं थोरि॥ ४॥

व्हुरि पृथीपति होन की इन्द्र ब्रह्म शिव वोक।
कव देहैं करतार ये सुन्दर तीनौं लोक॥ ५॥

तृष्णा वहै तरंगिनी तरल तरी नहिं जाइ।
सुन्दर तीक्षण धार में केते दिये वहाइ॥ ६॥

सुन्दर तृष्णा पकरि कैं करम करावै कोरि।
पूरी होइ न पापिनी भटकावै चहुं वोरि॥ ७॥

सुन्दर तृष्णा कारनै जाइ समुद्र हि वीच।
फटै जहाज अचानचक होइ अवंछी मीच॥ ८॥

सुन्दर तृष्णा लै गई जहँ वन विषम पहार।
सिंह व्याघ्र मारै तहां कै मारै वटपार॥ ९॥

सुन्दर तृष्णा करत है सवकौ वांद गुलांम।
हुकम कहै त्यौं ही चलै गनै शीत नहिं घांम॥ १०॥

मेघ सहै आंधी सहै सहै वहुत तन त्रास।
सुन्दर तृष्णा कै लियें करै आपनौ नास॥ ११॥

सुन्दर तृष्णा कै लियें पराधीन ह्वै जाइ।
दुसह वचन निस दिन सहै यौं परहाथ विकाइ॥ १२॥

तृष्णा कै वसि होइ कै डोलै घर घर द्वार।
सुन्दर आदर मांन विन होत फिरै नर ष्वार॥ १३॥

तृष्णा पेट पसारियौ तृप्ति न क्यौंही होइ।
सुन्दर फहुतै दिन गये लाज सरम नहिं कोइ॥ १४॥

---

(५) वोक=प्यास, चाह।

तृष्णा डोलै ताकती स्वर्ग मृत्यु पाताल।
सुन्दर तीनहुं लोक में भर्यो न एकहु गाल ॥ १५ ॥

तृष्णा डाइण होइ कैं पायौ सब संसार।
सुन्दर संतोषी बचै जिनके ब्रह्म विचार ॥ १६ ॥

सुन्दर तोहि कितौ कह्यौ सीप न मानी एक।
तृष्णा तूं छाडै नहीं गही आपनी टेक ॥ १७ ॥

तृष्णा तूं बौरी भई तोकौं लागी बाइ।
सुन्दर रोकी नां रहै आगै भागी जाइ ॥ १८ ॥

सुन्दर तृष्णा बहु बधी धर्यौ बडो अति देह।
अध ऊरध दशहूं दिशा कहूं न तेरौ छेह ॥ १९ ॥

सुन्दर तृष्णा डाइनी डाकी लोभ प्रचण्ड।
दोऊ काढैं आंपि जब कंपि उठै ब्रह्मण्ड ॥ २० ॥

सुंदर तृष्णा भांडिनी लोभ बडौ अति भांड।
जैसौ ही रंडुवौ मिल्यौ तैसी मिलि गई रांड ॥ २१ ।

सुंदर तृष्णा कोढनी कोढी लोभ भ्रतार।
इनकौं कबहुं न भींटिये कोढ लगै तन प्यार ॥ २२ ॥

सुन्दर तृष्णा चूहरी लोभ चूहरौ जांनि।
इनके भींटें होत है ऊंचे कुल की हांनि ॥ २३ ॥

सुंदर तृष्णा सर्प्पणी लोभ सर्प कै साथ।
जगत पिटारा मांहि अब तूं जिनि घालै हाथ ॥ २४ ॥

सुन्दर तृष्णा है छुरी लोभ पङ्ग की धार।
इनतें आप बचाइये दोनौं मारणहार ॥ २५ ॥

॥ इति तृष्णा को अंग ॥ १० ॥

---

(१५) गाल=गाला (चक्की का) अथवा मुंह (का गास)।

(२२) भ्रतार=भर्त्तार, पति।

॥ अथ अधीर्य उरांहने को अंग ॥ ११ ॥

देह रच्यौ प्रभु भजन कौं सुन्दर नख सिख साज ।
एक हमारी बात सुनि पेट दियौ किंहिं काज ॥ १ ॥

श्रवन दिये जस सुनन कौं नैन देषने सन्त ।
सुन्दर सोभित नासिका मुख सोभन कौं दन्त ॥ २ ॥

हाथ पांव हरि कृत्य कौं जीभ जपन कौं नाम ।
सुन्दर ये तुम सौं लगै पेट दियौ किंहिं काम ॥ ३ ॥

सुन्दर कीयौ साज सब समरथ सिरजनहार ।
कौंन करी यह रीस तुम पेट लगायौ लार ॥ ४ ॥

और ठौर सौं काढि मन करिये तुम कौं भेट ।
सुन्दर क्यौं करि छूटिये पाप लगायौ पेट ॥ ५ ॥

कूप भरै वापी भरै पूरि भरै जल ताल ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरै कौंन कियौ तुम ख्याल ॥ ६ ॥

नदी भरहिं नाला भरहिं भरहिं सकल ही नाड ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं कौंन करी यह पाड ॥ ७ ॥

पंदक पास वुपार पुनि वहुरि भरहिं घर हाट ।
सुन्दर प्रभु पेट न भरहिं भरियहि कोठी माट ॥ ८ ॥

चूल्हा भाठी भार महिं इन्धन सब जरि जाइ ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह कबहूं नहीं अघाइ ॥ ९ ॥

घम्बई थलहि समुद्र में पानी सकल समात ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह रहै पात ही पात ॥ १० ॥

असुर भूत अरु प्रेत पुनि राक्षस जिनि कौ नांव ।
त्यौं सुन्दर प्रभु पेट यह करै पांव ही पांव ॥ ११ ॥

[अंग ११] (७) नाड=नाड़ा, छोटा सर वा तालाब । पाट=खड्ड ।

सुन्दर प्रभुजी पेट की चिंता दिन अरु राति ।
सांझ पाइ करि सोइये फिरि मांगै परभाति ॥ १२ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब ष्वार ।
को षेती को चाकरी कोई बनज ब्यौपार ॥ १३ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब दीन ।
अन्न बिना तलफत फिरै जैसैं जल बिन मीन ॥ १४ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट वसि भये रंक अरु राव ।
राजा राना छत्रपति मीर मलिक उमराव ॥ १५ ॥

विद्याधर पंडित गुनी दाता सूर सुभट्ट ।
सुंदर प्रभुजी पेट इनि सकल किये पटपट्ट ॥ १६ ॥

सुंदर प्रभुजी पेट यह रापै कछू न मांन ।
वन मैं बैठै जाइ कैं उठि भागे मध्यांन ॥ १७ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट वसि चौरासी लष जंत ।
जल थल कै चाहैं सकल जे आकाश वसंत ॥ १८ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट इनि जगत कियौ सब भांड ।
कोई पंचामृत भषै कोई पतरा मांड ॥ १९ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट कौं बहु विधि करहिं उपाइ ।
कौंन लगाई व्याधि तुम पीसत पोवत जाइ ॥ २० ॥

सुन्दर प्रभुजी सबनि कौं पेट भरन की चिंत ।
कीरी कन ढूंढत फिरै मांषी रस लैजंत ॥ २१ ॥

सुन्दर प्रभुजी पेट वसि देवी देव अपार ।
दोष लगावैं और कौं चाहैं एक अहार ॥ २२ ॥

---

(१८) जन्त=जीवाजूण, जीवजन्त ।

(२१) लैजन्त=ले जाती हैं (मधुमक्षिका)

सुन्दर प्रभुजी पेट कौं दूधाधारी होइ।
पाषंड करहिं अनेक विधि पाहिं सकल रस गोइ ॥ २३ ॥

सुंदर प्रभुजी पेट कौं साधै जाइ मसान।
यंत्र मंत्र आराध करि भरहिं पेट अज्ञान ॥ २४ ॥

सुंदर प्रभुजी सब कह्यौ तुम आगै दुख रोइ।
पेट विना हीं पेट करि दीनी पलक विगोइ ॥ २५ ॥

॥ इति अधीर्य उरांहने को अंग ॥ ११ ॥

॥ अथ विश्वास को अंग ॥ १२ ॥

सुंदर तेरे पेट की तोकौं चिंता कौंन।
विस्व भरन भगवंत है पकरि वैठि तूं मौंन ॥ १ ॥

सुंदर चिंता मति करै पांव पसारै सोइ।
पेट कियौ है जिनि प्रभू ताकौं चिंता होइ ॥ २ ॥

जलचर थलचर व्योमचर सबकौं देत अहार।
सुंदर चिंता जिनि करै निस दिन वारंवार ॥ ३ ॥

सुंदर प्रभुजी देत हैं पाहन में पहुंचाइ।
तूं अब क्यौं भूषौ रहै काहे कौं विललाइ ॥ ४ ॥

सुन्दर धीरज धारि तूं गहि प्रभु कौ विश्वास।
रिजक वनायौ रामजी आवै तेरै पास ॥ ५ ॥

काहे कौं परिश्रम करै जिनि भटकै चहुं ओर।
घर वैठैं ही आइ है सुंदर सांझ कि भोर ॥ ६ ॥

---

(२३) गोई=गुप्त, छिप कर। (२५) पेट विना ही......आपके पेट नहीं है परन्तु प्रजा के पेट लगा कर तुमने बड़ी बुराई पैदा करदी ।

[अंग १२] (६) कि (सांझ कि भोर में) अथवा, वा, और।

रिजक बनायौ रामजी कापै मेट्यौ जाइ।
सुंदर धीरज धारि तूं सहजि रहेगौ आइ॥ ७॥

चंच संवारी जिनि प्रभू चूंन देइगो आंनि।
सुंदर तूं विश्वास गहि छांडि आपनी बांनि॥ ८॥

सुन्दर दौरै रिजक कौं सौ तौ मूरप होइ।
यौं जानै नहि बावरौ पहुंचावै प्रभु सोइ॥ ९॥

सुन्दर समुंझि विचार करि है प्रभु पूरन हार।
तेरौ रिजक न मेटि है जानत क्यौं न गवांर॥ १०॥

सुन्दर निस दिन रिजक कौं बादि मरै नर झूरि।
रिजक दे तुझे रामजी जहां तहां भरपूरि॥ ११॥

सुन्दर जो मुख मूंदि कै बैठि रहै एकंत।
आनि पवावै रामजी पकरि उघारै दंत॥ १२॥

सुन्दर ऐसै रामजी ताकौं जानत नांहि।
पहुंचावत है प्रान कौं आपुहि बैठौ मांहि॥ १३॥

सुन्दर प्रभुजी निकट है पल पल पोपै प्रांन।
ताकौं सठ जानत नहीं उद्यम ठांनै आंन॥ १४॥

सुन्दर पशु पंपी जिते चूंन सबनि कौं देत।
उनकै सौदा कौंन सो कहौ कौंन से पेत॥ १५॥

सुन्दर अजिगर परि रहै उद्यम करै न कोइ।
ताकौं प्रभुजी देत हैं तूं क्यौं आतुर होइ॥ १६॥

सुन्दर मच्छ समुद्र में सौ जोजन विसतार।
ताहू कौं भूलै नहीं प्रभु पहुंचावनहार॥ १७॥

---

(११) बादि=वृथा ही। झूरि=रो २ कर।

(१६) परि रहै=पड़ा रहै (कुछ काम चेष्टा नहीं करै)।

सुन्दर मनुषा देह मैं धीरज धरत न मूरि।
हाइ हाइ करतौ फिरै नर तेरै सिर धूरि॥ १८॥

सुन्दर सिरजनहार कौं क्यौं न गहै विस्वास।
जीव जंत पोषै सकल कोउ न रहत निरास॥ १९॥

सुन्दर जाकी सृष्टि यह ताकै टोटो कौंन।
तूं प्रभु के विस्वास विन परै न हांडी लौंन॥ २०॥

सुन्दर जिनि प्रभु गर्भ मैं वहुत करी प्रतिपाल।
सो पुनि अजहूं करत है तूं सोधै धनमाल॥ २१॥

सुन्दर सवकौं देत है चंच संवानी चौंनि।
तेरै तृष्णा अति वढी भरि भरि ल्यावत गौंनि॥ २२॥

सुन्दर जाकौं जो रच्यौ सोई पहुंचै आइ।
कीरी कौं कन देत है हाथी मन भरि पाइ॥ २३॥

सुन्दर जल की वूंद तैं जिनि यह रच्यौ सरीर।
सोई प्रभु याकौ भरै तूं जिनि होइ अधीर॥ २४॥

सुन्दर अव विस्वास गहि सदा रहै प्रभु साथ।
तेरौ कियौ न होत है सव कछु हरि कै हाथ॥ २५॥

॥ इति विश्वास को अंग॥ १२॥

---

(२०) परै न हांडी लौंन=हांडी में नमक पड़ना, (ईश्वर की सहायता विना) कोई काम नहीं होता है।

(२२) चंच सवानी चौंन=चूंच के योग्य चून (भोजन), कीड़ी को कण हाथी को मण देता है। गौंनि=गूंण, वोरी।

॥ अथ देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग ॥ १३ ॥

दोहा

सुन्दर देह मलीन है राख्यौ रूप संवारि।
ऊपर तें कलई करी भीतरि भरी भंगारि ॥ १ ॥

सुन्दर देह मलीन है प्रकट नरक की पांनि।
ऐसी याही भाकसी तामैं दीनौ आंनि ॥ २ ॥

सुन्दर देह मलीन अति बुरी वस्तु को भौंन।
हाड मांस को कौथरा भली वस्तु कहि कौंन ॥ ३ ॥

सुन्दर देह मलीन अति नख शिख भरे विकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि सदा वहै नव द्वार ॥ ४ ॥

सुन्दर मुख मैं हाड सब नैंन नासिका हाड।
हाथ पांव सब हाड के क्यौं नहिं समुंझत रांड ॥ ५ ॥

सुन्दर पंजर हाड को चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलि कै मो समान को आहि ॥ ६ ॥

सुन्दर न्हावै बहुत ही बहुत करै आचार।
देह माहिं देपै नहीं भर्‍यौ नरक भंडार ॥ ७ ॥

सुन्दर अपरस धोवती चौकैं बैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै ताही कै संगि पाइ ॥ ८ ॥

सुन्दर ऐसी देह मैं सुचि कहौ क्यौं होइ।
झूठेई पापंड करि गर्व करै जिनि कोइ ॥ ९ ॥

[अङ्ग १३] (१) भंगारि=कूड़ा करकट।

(२) भाकसी=खत्ता, अन्ध खन्धक। दीनौं=जीव को इस में ला धरा।

(५) रांड=यहां दुर्वचन, मूर्ख नासमझ अभागे के अर्थ में है।

(९) सुचि=शुचि, शौच, शुद्धता, पवित्रता।

सुन्दर सुधि रहै नहीं या शरीर के संग।
न्हावें धोवै बहुत करि सुद्ध होइ नहिं अंग ॥ १० ॥

सुन्दर कहा पषारिये अति मलीन यह देह।
ज्यौं ज्यौं माटी धोइये त्यौं त्यौं उकटै पेह ॥ ११ ॥

सुन्दर मैली देह यह निमल करी न जाइ।
बहुत भांति करि धोइ तूं अठसठि तीरथ न्हाइ ॥ १२ ॥

सुन्दर ब्राह्मन आदि कौं ता महिं फेर न कोइ।
सूद्र देह सौं मिलि रह्यौ क्यौं पवित्र अब होइ ॥ १३ ॥

सुन्दर गर्व कहा करै देह महा दुर्गंध।
ता महिं तूं फूल्यौ फिरै संमुझि देषि सठ अंध ॥ १४ ॥

सुन्दर क्यौं टेढौ चलै बात कहै किन मोहि।
महा मलीन शरीर यह लाज न उपजै तोहि ॥ १५ ॥

सुन्दर देषै आरसी टेढी नापै पाग।
बैठौ आइ करंक पर अति गति फूल्यौ काग ॥ १६ ॥

सुन्दर बहुत बलाइ है पेट पिटारी मांहिं।
फूल्यौ माइ न पाल मैं निरपत चालै छांहिं ॥ १७ ॥

सुन्दर रज वीरज मिले महा मलिन ये दोइ।
जैसौ जाकौ मूल है तैसोई फल होइ ॥ १८ ॥

सुन्दर मलिन शरीर यह ताहू मैं बहु व्याधि।
कबहूं सुख पावै नहीं आठौं पहर उपाधि ॥ १९ ॥

---

(१३) ब्राह्मन आदि कौं=आत्मा नित्य शुद्ध होने से ब्राह्मण कही गई। इसका संसर्ग अशुद्ध शरीर से हुआ जो यहां शूद्र कहा गया।

(१६) नापै=धरै, बांधै। (रापै पाठ अच्छा होता)। करंक=मुर्दा लाश, फरक।

(१७) बलाइ=बला, बुरी वस्तु (विष्टा, मूत्र, आम, आदिक)।

सुन्दर कबहूं फुनसली कबहूं फोरा होइ।
ऐसी याही देह में क्यों सुख पावै कोइ॥ २०॥

कबहूं निकसै न्हारवा कबहूं निकसै दाद।
सुन्दर ऐसी देह यह कबहुं न मिटै विपाद॥ २१॥

सुन्दर कबहूं ताप ह्वै कबहूं ह्वै सिरवाहि।
कबहूं हृदय जलनि ह्वै नख शिख लागै भाहि॥ २२॥

कबहूं पेट पिरातु है कबहूं माथै सूल।
सुन्दर ऐसी देह यह सकल पाप का मूल॥ २३॥

सुन्दर कबहूं कान में चीस उठै अति दुःख।
नैंन नाक मुख में विथा कबहुं न पावै सुक्ख॥ २४॥

स्वास चलै पासी चलै चलै पसुलिया बाव।
सुन्दर ऐसी देह में दुखी रंक अरु राव॥ २५॥

॥ इति देह मलिनता गर्व प्रहार कौ अंग ॥ १३ ॥

॥ अथ दुष्ट को अंग ॥ १४ ॥

सुन्दर बातैं दुष्ट की कहिये कहा बषांनि।
कहें विना नहिं जानियें जिती दुष्ट की बांनि॥ १॥

अपने दोष न देषई परकै औगुन लेत।
ऐसौ दुष्ट सुभाव है जन सुन्दर कहि देत॥ २॥

सुन्दर दुष्ट स्वभाव है औगुन देषै आइ।
जैसें कीरी महल में छिद्र ताकती जाइ॥ ३॥

---

(२२) सिरवाहि=शिरो व्याधि, सिर दर्द। भाहि=दर्द, पीड़ा।

(२३) पिरातु=पीड़ा करता।

सूझत नांहिं न दुष्ट कौं पांव तरै की आगि।
औरन के सिर पर कहै सुन्दर वासौं भागि॥ ४॥

देषी अनदेषी कहै ऐसौ दुष्ट सुभाव।
सुन्दर निशदिन परि गयौ कहिवे ही कौ चाव॥ ५॥

सुन्दर कवहुं न धीजिये सरस दुष्ट की वात।
मुख ऊपर मीठी कहै मन मैं घालै घात॥ ६॥

व्याघ्र करै ज्यौं लुरपरी कूकर आगै आइ।
कूंकर देषत ही रहै वाघ पकरि ले जाइ॥ ७॥

सुन्दर काहू दुष्ट कौं भूलि न धीजहु वीर।
नीचै आगि लगाइ करि ऊपर छिरकै नीर॥ ८॥

दुष्ट धिजावै वहुत विधि आनि नवावै सीस।
सुन्दर कवहुंक जहर दे मारै विसवा वीस॥ ९॥

दुष्ट करै वहु वीनती होइ रहै निज दास।
सुन्दर दाव परै जवहिं तवहिं करै घट नास॥ १०॥

दुष्ट घाट घरिवौ करै घट मैं याही होय।
सुन्दर मेरी पासि मैं आइ परै जे कोय॥ ११॥

वात सुनौ जिनि दुष्ट की वहुत मिलावै आंनि।
सुन्दर मानै सांच करि सोई मूरप जानि॥ १२॥

दुष्ट वुरी हो करत है सुन्दर नैंकु न लाज।
काम विगारै और कौ अपनैं स्वारथ काज॥ १३॥

पर कौ काम विगारि दे अपनौ होउ न होह।
यह सुभाव है दुष्ट कौ सुन्दर तजिये वोह॥ १४॥

---

(७) व्याघ्र=वघेरा (यह कुत्ते को मारखाता है)। और वहुत चालाक होता है।

(११) पासि=पाश, फांसी।

घर पोवत है आपनौ औरनि हूं कौ जाइ।
सुन्दर दुष्ट सुभाव यह दोऊ देत बहाइ॥ १५॥

दुर्जन संग न कीजिये सहिये दुःख अनेक।
सुन्दर सब संसार मैं दुष्ट समान न एक॥ १६॥

बींछू काटे दुख नहीं सर्प डसै पुनि आइ।
सुन्दर जो दुख दुष्ट तें सो दुख कह्यौ न जाइ॥ १७॥

गज मारै तौ नाहिं दुख सिंह करै तन भंग।
सुन्दर ऐसौ नांहिं दुःख जैसौ दुर्जन संग॥ १८॥

सुन्दर जरिये अग्नि महिं जल बूडे नहिं हांनि।
पर्वत ही तें गिरि परौ दुर्जन भलौ न जांनि॥ १९॥

सुन्दर झंपापात ले करवत धरिये सीस।
वा दुर्जन के संगतें रापि रापि जगदीस॥ २०॥

सुन्दर विष हू पीजिये मरिये पाइ अफीम।
दुर्जन संग न कीजिये गलि मरिये पुनि हीम॥ २१॥

सुन्दर दुख सब तोलिये घालि तराजू मांहिं।
जो दुख दुर्जन संग तें ता सम कोई नांहिं॥ २२॥

सुन्दर दुर्जन सारिषा दुखदाई नहिं और।
स्वर्ग मृत्यु पाताल हम देषे सब ही ठौर॥ २३॥

देह जरै दुख होत है ऊपर लागै लौंन।
ताहू तें दुख दुष्ट कौ सुन्दर मानै कौंन॥ २४॥

जो कोउ मारै बान भरि सुन्दर कछु दुख नांहि।
दुर्जन मारै वचन सौं सालतु है उर मांहिं॥ २५॥

॥ इति दुष्ट को अंग ॥ १४ ॥

---

(२०) करवत=करौत (जैसे काशी करौत लेना)।

(२१) हीम=हिम, हिमालय के बर्फ में।

वृक्षबन्ध (२)

प्रगट विश्व यह वृक्ष है मूला माया मूल ।
महातत्त्व अहंकार करि पीछे भया स्थूल ॥ १ ॥
शाखा त्रिगुन त्रिधा भई सत रज तम प्रसरन्त ।
पंच प्रशाखा जानि यौं उप शाखा सु अनंत ॥ २ ॥
अवनि नीर पावक पवन व्योम सहित मिलि पंच ।
इनही कौ विसतार जे कछु सकल प्रपंच ॥ ३ ॥
श्रोत्र त्वचा दृग नासिका जिव्हा है तिन मांहिं ।
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच ये भिन्न भिंन्न वरतांहिं ॥ ४ ॥
वाक्य पाणि अरु चरण पुनि गुदा उपस्थ जु नाम ।
कर्म सु इन्द्रिय पंच ये अपने अपने काम ॥ ५ ॥
शब्द स्पर्श जु रूप रस गन्ध सहित मिलि पुष्ट ।
मन बुधि चित्त अहं तहां अंतहकरन चतुष्ट ॥ ६ ॥
इन चौवीस हु तत्व कौ वृक्ष अनूपम एक ।
सुख दुख ताके फल भये नाना भांति अनेक ॥ ७ ॥
तामें दो पक्षी बसहिं सदा समीप रहांहिं ।
एक भषै फल वृक्ष के एक कछू नहिं पांहिं ॥ ८ ॥
जीवातम परमातमा ये दो पक्षी जांन ।
सुन्दर फल तरु के तजैं दोऊ एक समांन ॥९॥१० वां॥

पढ़ने की विधि:—

केलि वृक्ष के तने की जड़ के कुछ ऊपर प्र अक्षर से प्रारंभ करैं, जिसपर १ का अंक है, और ऊपर की ओर पढ़ते चले जांय ल अक्षर तक। यह प्रथम दोहे की प्रथम अर्धाली है। फिर द्वितीय अर्धाली केलि के बांईं तरफ के ऊपर के प्रथम पत्ते की नोंक पर के म अक्षर से पढ़ैं और नोंकों पर के अक्षरों को दोनों ओर के पत्तों पर पढ़ते जांय। दाहिनी ओर के सब से ऊपर के पत्ते की नोंक पर के ल अक्षर पर पूरा करैं। यहां प्रथम दोहा समाप्त हुआ। (केलि के दाहिने विभाग के सबसे नीचे के पत्ते की नोंक पर के रि अक्षर पर ३ का अङ्क पिछले छंदोंऽश से मिलाने को है।) अब आगे दूसरा दोहा केलि के बाम पार्श्व के सबसे ऊपर के पत्ते में शा अक्षर से पढ़ैं जिस पर ४ का अङ्क है। दो २ पत्तों पर एक २ दोहा है। बांईं ओर के दोहे पढ़े जाने पर दाहिनी ओर को ऊपर के पत्ते पर श अक्षर से पढ़ा जाय जिस पर ५ का अङ्क है। सबसे पिछला दोहा नीचे के दो पत्तों पर है, और यहां यह चित्रकाव्य केलि-वृक्ष-बंध का समाप्त होता है, ९ दोहों में ॥

॥ अथ मन कौ अंग ॥ १५ ॥

दोहा

मन कौं रापत हटकि करि सटकि चहूं दिसि जाइ।
सुंदर लटकि रु लालची गटकि विषै फल पाइ ॥ १ ॥

झटकि तार कौं तौरि दे भटकत सांझ रु भोर।
पटकि सीस सुन्दर कहै फटकि जाइ ज्यौं चोर ॥ २ ॥

पल ही मैं मरि जात है पल मैं जीवत सोइ।
सुन्दर पारा मूरछित बहुरि सजीवनि होइ ॥ ३ ॥

जातें कबहुं न जानिये यौं मन नीकसि जाइ।
आवत कछू न देषिये सुन्दर किसी बलाइ ॥ ४ ॥

घेरें नैंकु न रहत है ऐसौ मेरौ पूत।
पकरें हाथ परै नहीं सुन्दर मनुवा भूत ॥ ५ ॥

नीति अनीति न देषई अति गति मन कै वंक।
सुन्दर गुरु की साधु की नैंकु न मानै संक ॥ ६ ॥

सुन्दर क्यौं करि धीजिये मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं पेलै अपनौ दाव ॥ ७ ॥

सुन्दर या मन सारिषौ अपराधी नहिं और।
साप सगाई ना गिनै लपै न ठौर कुठौर ॥ ८ ॥

सुन्दर मन कामी कुटिल क्रोधी अधिक अपार।
लोभी तृप्त न होत है मोह लग्यौ सैंवार ॥ ९ ॥

[अंग १५] (७) गुदरैं नहीं=गुजरैं नहीं, हटैं नहीं, मानैं नहीं ।

(९) सैंवार=सिंवार, जो पानी पर रहता है और धोखा देता है, थल समझकर आदमी डूब जाता है।

सुन्दर यह मन अधम है करै अधम ही कृत्य।
चल्यो अधोगति जात है ऐसी मन की वृत्य। १० ॥

सुन्दर मन कै रिंदगी होइ जात सैतान।
काम लहरि जागै जबहिं अपनी गनै न आन ॥ ११ ॥

ठग विद्या मन कै घनी दगावाज मन होइ।
सुन्दर छल केता करै जानि सकै नहिं कोइ ॥ १२ ॥

सुन्दर यहु मन चोरटा नापै ताला तोरि।
तकै पराये द्रव्य कौं कब ल्याऊं घर फोरि ॥ १३ ॥

सुन्दर यहु मन जार है तकै पराई नारि।
अपनी टेक तजै नहीं भावै गर्दन मारि ॥ १४ ॥

सुन्दर मन वटपार है घालै पर की घात।
हाथ परे छोडै नहीं लूटि पोसि ले जात ॥ १५ ॥

सुन्दर मन गांठी कटौ डारै गर मैं पासि।
बुरौ करत डरपै नहीं महा पाप की रासि ॥ १६ ॥

सुन्दर यहु मन नीच है करै नीच ही कर्म।
इनि इन्द्रिनि कै वसि पस्यौ गिनै न धर्म अधर्म ॥ १७ ॥

सुन्दर यहु मन भांड है सदा भंडायौ देत।
रूप धरै वहु भांति कै राते पीरे सेत ॥ १८ ॥

सुन्दर यहु मन डूम है मांगत करै न संक।
दीन भयौ जाचत फिरै राजा होह कि रङ्क ॥ १९ ॥

सुन्दर यहु मन रासिभौ दौरि विषै कौं जात।
गदही कै पीछै फिरै गदही मारै लात ॥ २० ॥

---

(१५) वटपार=लुटेरा।

(१६) गांठी कटौ=गठकटा, ठग। रासि= समूह, आगर।

(२०) रासिभौ=रासभ, गधा।

सुन्दर यहु मन स्वान है भटकै घर घर द्वार।
कहूंक पावै झूठि कौं कहूं परै वह मार ॥ २१ ॥

सुन्दर यहु मन काग है बुरौ भलौ सब पाइ।
समुझायौ समुझै नहीं दौरि करङ्क हि जाइ ॥ २२ ॥

सुन्दर मन मृग रसिक है नाद सुनै जब कांन।
हलै चलै नहि ठौर तें रहौ कि निकसौ प्रांन ॥ २३ ॥

सुंदर यह मन रूप कौ देषत रहै लुभाइ।
ज्यौं पतंग वसि नैंन के जोति देषि जरि जाइ ॥ २४ ॥

सुन्दर यह मन भ्रम रहै संूघत रहै सुगंध।
कंवल माहिं निकसै नहीं काल न देषै अंध ॥ २५ ॥

सुन्दर यह मन मीन है बंधै जिह्वा स्वाद।
कंटक काल न सूझई करत फिरै उदमाद ॥ २६ ॥

सुन्दर मन गजराज ज्यौं मत्त भयौ सुध नांहि।
काम अंध जानै नहीं परै पाड के मांहि ॥ २७ ॥

सुन्दर यह मन करत है बाजीगर कौ ष्याल।
पंप परेवा पलक मैं मुवो जिवावत व्याल ॥ २८ ॥

ज्यौं बाजीगर करत है कागद मैं हथफेर।
सुन्दर ऐसैं जानिये मन मैं धरन सुमेर ॥ २९ ॥

सुन्दर यह मन भूत है निस दिन वकतें जाइ।
चिन्ह करै रोवै हंसै पातें नहीं अघाइ ॥ ३० ॥

सुन्दर यह मन चपल अति ज्यौं पीपर कौ पांन।
बार बार चलिबौ करै हाथी कौ सौ कांन ॥ ३१ ॥

---

(२१) झूंठि=उच्छिष्ट। कहूं परै वह मार=कहीं उस पर ऐसी (कड़ी) मार पड़े।

(२९) धरन=धरणी, पृथ्वी।

सुन्दर यह मन यों फिरै पांनी कौ सौ घेर।
वायु ववूरा पुनि ध्वजा यथा चक्र कौ फेर॥ ३२॥

सुन्दर अरहट माल पुनि चरषा वहुरि फिरात।
धूंवा ज्यों मन उठि चलै कापै पकर्‌यौ जात॥ ३३॥

मन वसि करने कहत हैं मन कै वसि ह्वै जांहिं।
सुन्दर उलटा पेच है समझि नहीं घट मांहिं॥ ३४॥

मन कौं मारत वैठि करि मन मारै वै अंध।
सुन्दर घोरे चढन कौ घोरा वैठौ कंध॥ ३५॥

सुन्दर करत उपाइ वहु मन नहिं आवै हाथ।
कोई पीवैं पवन कौं कोई पोवै काथ॥ ३६॥

सुन्दर साधन करत है मन जीतन के काज।
मन जीतैं उन सवनि कौं करै आपनौ राज॥ ३७॥

साधन करहिं अनेक विधि देहिं देह कौं दण्ड।
सुन्दर मन भाग्यौ फिरै सप्त दीप नौ षण्ड॥ ३८॥

सुन्दर आसन मारि कै साधि रहे मुख मौंन।
तन कौ राषै पकरि कैं मन पकरै कहि कौंन॥ ३९॥

तन कौ साधन होत है मन कौ साधन नांहिं।
सुन्दर वाहर सब करैं मन साधन मन मांहिं॥ ४०॥

साधत साधत दिन गये करहिं और की और।
सुन्दर एक विचार विन मन नहिं आवै ठौर॥ ४१॥

सुन्दर यह मन रंक ह्वै कवहूं ह्वै मन राव।
कवहूं टेढौ ह्वै चलै कवहूं सूधे पाव॥ ४२॥

सुन्दर कवहूं ह्वै जती कवहूं कामी जोइ।
मन कौ यहै सुभाव है तातैं सियरौ होइ॥ ४३॥

---

(३६) काथ=कथीर अथवा काथा। कामवेग के दमनार्थ ऐसा साधु करते हैं।

ाप पुन्य यह मैं कियौ स्वर्ग नरक हूं जांऊं ।
ुन्दर सब कछु मानि ले ताही तें मन नांउं ॥ ४४ ॥

मन ही वडौ कपूत है मन ही महा सपूत ।
सुन्दर जौ मन थिर रहै तौ मन ही अवधूत ॥ ४५ ॥

न ही यह विस्तरि रह्यौ मन ही रूप कुरूप ।
ुन्दर यह मन जीव है मन ही ब्रह्म स्वरूप ॥ ४६ ॥

सुन्दर मन मन सब कहैं मन जान्यौ नहिं जाइ ।
जौ या मन कौं जांणिये तौ मन मनहिं समाइ ॥ ४७ ॥

न कौ साधन एक है निस दिन ब्रह्म विचार ।
ुन्दर ब्रह्म विचारतें ब्रह्म होत नहि वार ॥ ४८ ॥

देह रूप मन ह्वै रह्यौ कियौ देह अभिमान ।
सुन्दर समुझै आपकौं आपु होइ भगवान ॥ ४९ ॥

ाव मन देषै जगत कौं जगत रूप ह्वै जाइ ।
ुन्दर देषै ब्रह्म कौं तब मन ब्रह्म समाइ ॥ ५० ॥

मन ही कौ भ्रम जगत सब रज्जु मांहि ज्यौं साप ।
सुन्दर रूपौ सीप मैं मृग तृष्णा मंहिं आप ॥ ५१ ॥

ागत विभूका देषि करि मन मृग मानै संक ।
ुन्दर कियौ विचार जब मिथ्या पुरुप करङ्क ॥ ५२ ॥

तबही लौं मन कहत है जबलग है अज्ञांन ।
सुन्दर भागै तिमर सब उदै होइ जब भांन ॥ ५३ ॥

---

(४७) मन मनहि समाय=निर्विकल्प समाधि लग जाय। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त ो जाय।

(५२) विभूका=डरानी चीज़ (जैसे खेत में पुरुषाकार कुछ स्वरूप बनाकर ाड़ा कर देते हैं) मिथ्या पुरुष करंक=नकली आदमी की सी सूरत। अथवा मरे ानवर का कंकाल।

सुन्दर परम सुगन्ध सौं लपटि रह्यौ निश भोर ।
पुण्डरीक परमातमा चंचरीक मन मोर ॥ ५४ ॥

सुन्दर निकसै कौंन विधि होइ रह्या लै लीन ।
परमानन्द समुद्र मैं मग्न भया मन मीन ॥ ५५ ॥

दृष्टि न फेरै नैंकहूं नैंन लगै गोविन्द ।
सुन्दर गति ऐसी भई मन चकोर ज्यौं चन्द ॥ ५६ ॥

इत उत कहूं न चलि सकै थकित भया तिहिं ठौर ।
सुन्दर जैसें नाद वसि मन मृग विसर्‍या और ॥५७॥

(मन को श्लेप)

धड तौ जाकै चारि हैं द्वै द्वै सिर है वीस ।
ऐसी वडी वलाइ मन सिर करिले चालीस ॥ १ ॥

सिर तें द्वै अध सिर करै सिर सिर चहुं चहुं पांव ।
ऐसें सिर चालीस हैं मन कहिये क छलाव ॥ २ ॥

सिर जाकै चालीस हैं असी अरध सिर जाहि ।
पांव एक सौ साठि हैं क्यौं करि पकरै ताहि ॥ ३ ॥

आधे पग हैं तीन सै और अधिक पुनि वीस ।
तिनहूं तें आधे करै पट सत अरु चालीस ॥ ४ ॥

---

(५४) पुंडरीक=कमल । चंचरीक=भौंरा । मोर=मेरा ।

(५७) और=अन्य सब पदार्थ (भूलकर) ।

[मन को श्लेप]—यह मन के अंग का ही विभाग है इसमें छन्दों की संख्या पृथक् यौंही दे दी है । इस वर्णन में मन की अनंतता वा विस्तार वताया गया है । यहां मन=मण चालीस सेर का जो होता है उसके अर्थ में श्लेप है । धड=धड़ी दस सेर की । सिर=सेर । २०×२=४० । सिर तें अध=एक सेर में दो आधसेरे होते हैं । सिर २ चहुं २ पाव=प्रत्येक सेर में चार पाव वा पव्वे होते हैं । पांव=पाव

डेढ हजार रु एक सौ इतने होहिं अंगुष्ट।
चौसठि सै अंगुली करै मन तें कौन सपुष्ट ॥ ५ ॥

नख की गिनती कौ गिनैं तन के रोम अनंत।
ऐसे मन कौं वसि करै सुन्दर सौ वलिवंत ॥ ६ ॥

एक पालडे सीस धरि तौलै ताके साथ।
वर चालीस क तौलिये तव मन आवै हाथ ॥ ७ ॥

पंच सीस करि येकठे धरै तराजू आइ।
आठ वार जो तोलिये तव मन पकस्या जाइ ॥ ८ ॥

धरै एक धड पालडै तोलै वरियां चारि।
थोरे में वसि होइ मन पंडित लेहु विचारि ॥ ९ ॥

पव्वा। ४०×४=१६० पाव एक मण में होते हैं। असी अरध सिर=४०×२=८० अधसेरे। "आधे पग हैं……" ।=१६०×२=३२० अधपव्वे वा आधपाव एक मण में होते हैं। "तिनहू ते आधे……"। ३२०×२=६४० आने भर वा छटंकी एक मण में होती हैं। "डेढ हजार……"। १५००+१००=१६००=४०×४० दाम (अंगूठा)। १६००×४=६४०० विदाम (अंगुली)

(७) सीस धरि=अपने आपे को (चालीस) अनेक वार मार दे तव मन वस होय। यहां मुसलमान फकीरों के चालीस दिन के चिल्ले से भी अभिप्राय हो सकता है। चालीस दिन का रोजा या व्रत वे लोग रखकर तपस्या करते हैं।

(८) पंच सीस=पांच सेर। ८×५=४० सेर का मण। यहां पंच से पंचेंद्रिय। और आठसे अष्टांग योग भी अवांतर भाव से ले सकते हैं।

(९) एक धड=एक धडी=।) दस सेर का। १०×४=४० एक मण। सिर तो पहिले उतर हो गया अव धड़ की वारी आई। इससे देहाभिमान निवारण का अर्थांतर अभिप्रेत हो सकता है। पालडै=न्याय की तराजू। जगत् का व्यवहार जिसमें न्याय से ही विजय मिलती है। थोरे में=थोरा, थोड़ा सा सत्यज्ञान जो आत्माभिमान मिटा देने से तुरंत मिलता है।

एक सेर कुंजर हणै अति गति तामहिं जोर।
सेर गहे चालीस जिनि मन तें बली न ओर॥ १०॥

इंद्री अरु रवि शशि कला धात मिलावै कोइ।
सुन्दर तोलै जुगति सौं तब मन पूरा होइ॥ ११॥

चौपई

पांच सात नौ तेरह कहिये। साढे तीन अढाई लहिये।
सब कौं जोर एक मन होई। मन के गायें सत्य नहिं कोई॥ १२॥
ज्ञान कर्म इन्द्री दश जानहुं। मन ग्यारहों सु प्रेरक मानहुं।
ग्यारह में जब एक मिटावैं। सुन्दर तबहिं एकही पावै॥ १३॥ ७०॥

॥ इति मन को अंग॥ १५॥

---

(१०) एक सेर=शेर (सिंह) ऐसा है कि अकेला ही कुंजर (हाथी) को दुहाथल कुंभस्थल पर मार कर मार डालता है ऐसे शेर (सेर ꠰१) चालीस मिलकर अर्थात् ४० सेर का एक मण होता है। फिर उसके पराक्रम का क्या पार है। मन में चालीस हाथियों का सा बल है। यह श्लेपार्थ हुआ। अर्थात् महाबली है।

(११) इन्द्री ५+रवि १२+शशि १+कला १६+धात ६=४० हुए। धात सात भी होते हैं परन्तु यहां छह ही ग्रहण करने पड़े।

(१२) ५+७+९+१३+३॥+२॥=४० होते हैं। जोतीष के विद्यार्थी भी ऐसा बोलते हैं।

(१३) ज्ञानेंद्रिय पांच है। कर्मेन्द्रिय पाच है=यों १० इन्द्रियां हैं। और ग्यारहवां मन, सो भी अंतरेंद्रिय और दशों इन्द्रियों का प्रेरक वा राजा है। १०+१=११ हुए। एकादश इन्द्रियां भी प्रसिद्ध हैं। अब ११ के अंक में एका निकाल दें पहिले का, तो बाकी एका ही रह जाय। अर्थात् एक जो मन प्रथम उसको मिटा दें तौ १ जो ब्रह्म अद्वितीय है सो रह जाय। "अहं ब्रह्मास्मि" "एकोऽहं-द्वितीयो नास्ति" महावाक्य के अर्थ की सिद्धि होय।

॥ इति श्लेपार्थः॥

॥ अथ चाणक को अंग ॥ १८ ॥

छूट्यौ चाहत जगत सौं महा अज्ञ मति मन्द ।
जोई करै उपाइ कछु सुन्दर सोई फन्द ॥ १ ॥

योग करै जप तप करै यज्ञ करै दे दांन ।
तीरथ ब्रत यम नेम तैं सुन्दर ह्वै अभिमांन ॥ २ ॥

सुन्दर ऊंचे पग किये मन की अहं न जाइ ।
कठिन तपस्या करत है अधो सीस लटकाइ ॥ ३ ॥

मेघ सहै सब सीस पर वरिषा रितु चौमास ।
सुन्दर तन कौ कष्ट अति मन में औरै आस ॥ ४ ॥

सीत काल जल मैं रहै करै कामना मूढ ।
सुन्दर कष्ट करै इतौ ज्ञान न समझै गूढ ॥ ५ ॥

उष्ण काल चहुं वौर तैं दीनी अग्नि जराइ ।
सुन्दर सिर परि रवि तपै कौंन लगी यह वाइ ॥ ६ ॥

वन वन फिरत उदास ह्वै कंद मूल फल पात ।
सुन्दर हरि के नाम विन सबै थोथरी वात ॥ ७ ॥

कूकस कूटहिं कन विना हाथ चढै कछु नांहिं ।
सुन्दर ज्ञान हृदै नहीं फिरि फिरि गोते पांहिं ॥ ८ ॥

वैठौ आसन मारि करि पकरि रह्यौ मुख मौंन ।
सुन्दर सैन वतावतें सिद्ध भयौ कहि कौंन ॥ ९ ॥

कोउ करै पय पान कौं कौंन सिद्धि कहि वीर ।
सुन्दर वालक वाछरा ये नित पीवहिं पीर ॥ १० ॥

[अङ्ग १६] चाणक=चाणक्य, कोड़ा, कड़ा उपदेश ।

(६) चहुं वौर अग्नि=पंचाग्नि तपना । वाइ=वायु, रोग ।

(७) थोथरी=थोथी, थोथिला ।

कोऊ होत अलौनिया पाहिं अलौंनौ नाज।
सुन्दर करहिं प्रपंच वहु मान वढावण काज॥ ११॥

धोवन पीवै वावरे फांसू विहरन जांहिं।
सुन्दर रहै मलीन अति संमझ नहीं घट मांहिं॥ १२॥

एक लेत हैं ठौर ही सुन्दर वैठि अहार।
दाप छुहारी राइता भोजन विविधि प्रकार॥ १३॥

कोउक आचारी भये पाक करै मुख मूंदि।
सुन्दर या हुन्नर विना पाइ सकै नहिं पूंदि॥ १४॥

कोउक माया देत है तेरै भरै भण्डार।
सुन्दर आप कलापकरि निठि निठि जुरै अहार॥ १५॥

कोउक दूध रु पूत दे कर पर मेल्हि विभूति।
सुन्दर ये पापण्ड किय क्यौं ही परै न सूति॥ १६॥

यंत्र मंत्र वहु विधि करै झाडा वूंटी देत।
सुन्दर सब पापण्ड है अंति पडै सिर रेत॥ १७॥

कोऊ होत रसाइनी वात वनावै आइ।
सुन्दर घर में होइ कछु सो सव ठगि ले जाइ॥ १८॥

गल में पहरी गूदरी कियौ सिंह कौ भेप।
सुन्दर देपत भय भयौ वोलत जान्यौ मेप॥ १९॥

---

(१४) पूंदि=(५।१०) खवीद—ताजा खूराक। हरी जो जो घोड़ों (या वैलों) को खिलाते हैं। यहां उन वैष्णवों के भोजन-विधान पर कटाक्ष है।

(१५) तेरै=वे वरदान देनेवाले कहते हैं—"तेरै भंडार भरै"।

(१६) सूति—यह सुन्दरदासजी के जन्म कथा से सम्बन्ध रखनेवाली वात का संकेत है। जग्गाजी ने आंबेर में भिक्षा के समय कहा था—'दे माई सूत, ले माई पूत'। यहां अभिप्राय है कि हर एक साधु में ऐसी शक्ति नहीं हो सकती इससे साधारण साधु पाखंड ही करते हैं।

मेल्है पाव उठाइ कै बक ज्यौं मांडै ध्यान।
बैठौ गटकै माछली सुन्दर कैसौ ज्ञान॥ २०॥

सुंदर जीव दया करै न्यौता मानै नाहिं।
माया छुवै न हाथ सौं परकाला ले जाहिं॥ २१॥

भेष बनावै बहुत विधि जटा वधावैं सीस।
माला पहिरैं तिलक दे सुंदर तजै न रीस॥ २२॥

केस लुचाइ न ह्वै जती कान फराइ न जोग।
सुंदर सिद्धि कहा भई वादि हंसाये लोग॥ २३॥

सुंदर गये टटांबरी बहुरि दिगम्बर होइ।
पुनि बाघम्बर वोढि कै बाघ भयौ घर पोइ॥ २४॥

रक्त पीत स्वेतांबरी काथ रंगै पुनि जैन।
सुंदर देषे भेष सब कहूं न देष्या चैन॥ २५॥

॥ इति चाणक को अंग ॥ १६ ॥

॥ अथ वचन विवेक को अंग ॥ १७ ॥

सुंदर तबही बोलिये समझि हिये मैं पैठि।
कहिये बात विवेक की नहितर चुप ह्वै बैठि॥ १॥

सुंदर मौन गहे रहे जानि सकै नहिं कोइ।
बिन बोलै गुरुवा कहैं बोलें हरवा होइ॥ २॥

---

(२१) परकाला—(फा०) टुकड़ा, हिस्सा, चिथड़ा। भावार्थ-गांठ उठाकर या जो हाथ लगे सो लेकर चंपत बनें।

(२४) टटांबरी=टाटंबरी, टाट पहिनने वाला साधु।

सुन्दर मौंन गहें रहै तब लग भारी तोल ।
मुख बोलैं तें होत है सब काहू कौ मोल ॥ ३ ॥

सुन्दर यौं ही बकि उठै बोलै नहीं बिचारि ।
सबही कौं लागै बुरौ देत ढीम सौ डारि ॥ ४ ॥

सुन्दर सुनतें होइ सुख सबही मुख तें बोल ।
आक बाक बकि और की वृथा न छाती छोल ॥ ५ ॥

सुन्दर वाही वचन है जा महिं कछू विवेक ।
नातरु झेरा में पर्यौ बोलत मानौ भेक ॥ ६ ॥

सुन्दर वाही बोलिबौ जा बोलै में ढंग ।
नातरु पशु बोलत सदा कौंन स्वाद रस रंग ॥ ७ ॥

घूघू कउवा रासिभा ये जब बोलहिं आइ ।
सुन्दर तिनकौ बोलिबौ काहू कौं न सुहाइ ॥ ८ ॥

सारो सूवा कोकिला बोलत वचन रसाल ।
सुन्दर सबकौं कान दे वृद्ध तरुन अरु बाल ॥ ९ ॥

सुन्दर वचन कुवचन मैं राति दिवस को फेर ।
सुवचन सदा प्रकासमय कुवचन सदा अंधेर ॥ १० ॥

सुन्दर सुवचन सुनत ही सीतल ह्वै सब अंग ।
कुवचन कानन मैं परै सुनत होत मन भंग ॥ ११ ॥

सुन्दर सुवचन तक्र तें रापै दूध जमाइ ।
कुवचन कांजी परत ही तुरत फाटि करि जाइ ॥ १२ ॥

सुन्दर सुवचन कै सुनै उपजै अति आनंद ।
कुवचन काननि मैं परै सुनत होत दुख द्वंद ॥ १३ ॥

---

(६) झेरा=तंग घेरा या पानी का गढ़ा ।

सुन्दर वचन सु त्रिविधि हैं एक वचन है फूल।
एक वचन है असम से एक वचन है सूल॥ १४॥

सुन्दर वचन सु त्रिविधि हैं उत्तम मध्य कनिष्ट।
एक कटुक इक चरपरै एक वचन अति मिष्ट॥ १५॥

सुन्दर ज्ञान प्रवीण अति ताकै आगै आइ।
मूरष वचन उचारि कैं वांणी कहै सुनाइ॥ १६॥

सुन्दर घर ताजी बंधे तुरकिन की घुरसाल।
ताके आगै आइ के टटुवा फेरै वाल॥ १७॥

सुन्दर जाकै वाफता पासा मलमल ढेर।
ताकै आगै चौसई आनि धरै वहुतेर॥ १८॥

सुन्दर पंचामृत भषै नितप्रति सहज सुभाइ।
ताकै आगै रावरी काहे कौ ले जाइ॥ १९॥

सूरज के आगै कहा करै जींगणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर ताहि दिषावै पोति॥ २०॥

वांणी मैं वहु भेद है सुन्दर विविधि प्रकार।
शब्द ब्रह्म परब्रह्म कौं जानै जाननिहार॥ २१॥

जा वांणी हरि कौं लियें सुन्दर वाही उक्त।
तुक अरु छन्द सबै मिलैं होइ अर्थ संयुक्त॥ २२॥

जा वांणी मैं पाइये भक्ति ज्ञान वैराग।
सुन्दर ताकौं आदरै और सकल कौ त्याग॥ २३॥

जा वानी हरि गुन विना सा सुनिये नहिं कांन।
सुन्दर जीवन देषिये कहिये मृतक समान॥ २४॥

---

(१४) असम=अश्म, पत्थर। कठोर। भारी।

(२०) जींगणा—आग्या, जुगनू। पोति=काच की पोत जिस को गहनों में पिरोते हैं या बांधते हैं पटुवे।

रचना करी अनेक विधि भलौ बनायौ धाम।
सुन्दर मूरति बाहरी देवल कौंनें काम ॥ २५॥

॥ इति वचन विवेक को अंग ॥ १७॥

॥ अथ सूरातन कौ अंग ॥ १८॥

दोहा

सुन्दर सूरातन करै सूरवीर सो जांनि।
चोट नगारै सुनत ही निकसि मँडै मैदांनि॥ १॥

सुन्दर सूर न गासणा डाकि पडै रण मांहिं।
घाव सहै मुख सांमहा पीठि फिरावै नांहिं॥ २॥

पहरि संजोवा नीसरै सुणि सहनाई तूर।
सुन्दर रण में रुपि रहै तबहिं कहावै सूर॥ ३॥

मुख तें बैंण न उचरै सुन्दर सूर सुजांण।
टूक टूक जब है पडै सबकौ करै बपांण॥ ४॥

घर में सब कोइ बंकुडा मारहिं गाल अनेक।
सुन्दर रण में ठाहरै सूर वीर कौ एक॥ ५॥

---

(२५) मूरति बाहरी=मंदिर में देवमूर्त्ति नहीं है वा बाहर है तो वह देवालय नहीं है। जीव रहित शरीर मुर्दा है।

[अंग १८] सूरातन=शूर वीरता।

(२) न गासणा=गासणां (वा गिरासणा) खानेवाला गासों का ही नहीं (अपितु रण में टूट पड़नेवाला)। 'गिरासणा' दा० बा० अं० कालका छन्द ५ में आया है।

(४) सब कौ=अन्य सब कोई। (५) बंकुड़ा=बाँका, ऐंठदार।

सुन्दर सूरातन विना वात कहै मुख कोरि।
सूरा तन तव जाणिये जाइ देत दल मोरि ॥ ६ ॥

सुन्दर सूरातन कठिन यह नहिं हांसी पेल ।
कमधज कोई रुपि रहै जवहिं होत मुख मेल ॥ ७ ॥

सुन्दर सूरा तन किये जगत मांहिं जस होइ ।
सीस समर्पै स्याम कौं संक न आनै कोइ ॥ ८ ॥

सीस उतारै हाथि करि संक न आनै कोइ ।
ऐसै मंहगे मोल का सुन्दर हरि रस होइ ॥ ९ ॥

सुन्दर तन मन आपनौ आवै प्रभु कै काम ।
रण में तें भाजै नहीं करै न लौंन हराम ॥ १० ॥

सुन्दर दोऊ दल जुरैं अरु वाजै सहनाइ ।
सूरा कै मुख श्री चढै काइर दे फिसकाइ ॥ ११ ॥

सुन्दर हय हींसै जहां गय गाजै चहुं फेर ।
काइर भागै सटकदे सूर अडिग ज्यौं मेर ॥ १२ ॥

सुन्दर धरती धडहडै गगन लगै उडि धूरि ।
सूर वीर धीरज धरै भागि जाइ भकभूरि ॥ १३ ॥

सुन्दर वरछी झलहलैं छूटै वहु दिसि वांण ।
सूरा पडै पतंग ज्यौं जहां होइ घंमसांण ॥ १४ ॥

---

(७) कमधज=कबंधज, यह बैंक राठोडों के साथ अधिक लगता है । उनके बड़ों में अनेक बिना माथे लड़े थे ।

(११) श्री चढ़ै=श्री चढ़ना, हुशियारी का बढ़ना, वीरता के जोश से शोभा बढ़ना ।

(१३) धडहडै=धर्रावै, धरधराहट करै घोड़ों की टापों से । भकभूरि=घणराया, कायर । घण कहना ।

(१४) झलहलैं=चमचमाहट करती फिरै या चलै ।

सुन्दर वाढाली वहैं होइ कडाकडि मार।
सूर वीर सनमुख रहैं जहां पलकैं सार॥ १५॥

सुन्दर देषि न थरहरै हहरि न भागै वीर।
गहर वडे घंमसांण मैं कहर धरै को धीर॥ १६॥

सुन्दर सोई सूरमा लोट पोट ह्वै जाइ।
वोट कछू रापै नहीं चोट मुहें मुंह षाइ॥ १७॥

सुन्दर सूरा तन करै छाडै तन को मोह।
हवकि थवकि पेलै पिसण जाइ चर्पावै लोह॥ १८॥

सुन्दर फेरै सांगि जव होइ जाइ विकराल।
सनमुख वाहै ताकि करि मारै मीर मुछाल॥ १९॥

सुन्दर सोभै सूरिवां मुख परि वरिपै नूर।
फौज फटावै पलक मैं मार करै चकचूर॥ २०॥

सुन्दर पैंचि कमान कौं भरि करि मारै ब्रांन।
जाकै लागै ठौर जिहिं लेकरि निकसै प्रांन॥ २१॥

सुन्दर सील सनाह करि तोप दियौ सिर टोप।
ग्यान षडग पुनि हाथ लै कीयौ मन परि कोप॥ २२॥

---

(१५) वाढाली=बाढ़ (धार) वाली तलवार। पलकैं=पड़ैं। सार=लोहे के शस्त्र। फौलादी हथियार।

(१६) हहरि=डरकर। गहर=गहरे, भारी गंभीर। कहर धरैं=ऐसे समय में धीरवीर सहमते नहीं हैं। यह जुल्म हो कि वे न लड़ैं। अवश्य लड़ैं।

(१८) हवकि=फटकारे से। फुर्त्ती से। थवकि=कूटकर। मारकर। पेलै=पीस डालै (जैसे घाणी में)। पिसण=शत्रु (काम क्रोधादिक)। लोह चखावै=तलवार से काटै।

(२२) सील=शीलव्रत, ब्रह्मचर्य। सनाह=कवच, बकतर। तोप=संतोष।

सुन्दर निस दिन साधु कै मन मारन की मूठि।
मनकै आगै भागि करि कबहुं न फेरै पूठि ॥ २३ ॥
मारै सब संग्राम करि पिसुनहु ते घट मांहिं।
सुन्दर कोऊ सूरमा साधु बराबरि नांहिं ॥ २४ ॥
साधु सुभट अरु सूरमा सुन्दर कहे बषांनि।
कहन सुनन कौं और सब यह निश्चय करि जांनि ॥ २५ ॥

॥ इति सूरातन कौ अंग ॥ १८ ॥

॥ अथ साधु कौ अंग ॥ १९ ॥

संत समागम कीजिये तजिये और उपाइ।
सुन्दर बहुते उद्धरे सत संगति मैं आइ ॥ १ ॥
सुन्दर या सतसङ्ग मैं भेदा भेद न कोइ।
जोई बैठै नाव मैं सो पारंगत होइ ॥ २ ॥
सुन्दर जो सतसङ्ग मैं बैठै आइ बराक।
सीतल और सुगंध ह्वै चन्दन की ढिग ढाक ॥ ३ ॥
सुन्दर या सतसङ्ग की महिमा कहिये कौंन।
लोहा पारस कौं छुवै कनक होत है रौंन ॥ ४ ॥
जन सुन्दर सतसङ्ग मैं नीचहु होत उतंग।
परै क्षुद्र जल गंग मैं उहै होत पुनि गंग ॥ ५ ॥

---

(२३) मूठि=दाव, वार। (तलवार को मूंठी में रखकर दाव पर रहै)।
[अङ्ग १९] (३) बराक=दुष्टजन। ढाक=छीले का वृक्ष।
(४) कहिये=कह सकैं। रौंन=रमणीय, सुन्दर।
(५) उतंग=ऊंचा।

सुन्दर या सतसङ्ग मैं शब्दन कौ औगाह।
गोष्टि ज्ञान सदा चलै जैसैं नदी प्रवाह॥ ६॥

सुन्दर जौ हरि मिलन की तौ करिये सतसङ्ग।
विना परिश्रम पाइये अविगति देव अभंग॥ ७॥

जौ आवै सतसङ्ग मैं ताकौ कारय होइ।
सुन्दर सहजैं भ्रम मिटै संसय रहै न कोइ॥ ८॥

संतनि ही तें पाइये राम मिलन कौ घाट।
सहजैं ही पुलि जात है सुन्दर हृदय कपाट॥ ९॥

संत मुक्त के पौरिया तिनसौं करिये प्यार।
कूंची उनके हाथ है सुन्दर पोलहिं द्वार॥ १०॥

सुन्दर साधु दयाल हैं कहैं ज्ञान संमुझाइ।
पात्र विना नहिं ठाहरै निकसि निकसि करि जाइ॥ ११॥

सुन्दर साधु सदा कहैं भक्ति ज्ञान वैराग।
जाकै निश्चय ऊपजै ताके पूरन भाग॥ १२॥

संतनि कै यह वनिज है सुन्दर ज्ञान विचार।
गाहक आवै लेन कौं ताही के दातार॥ १३॥

संतनि कै सो वस्तु हैं कबहूं पूटै नांहि।
सुन्दर तिनकी हाट तें गाहक ले ले जांहिं॥ १४॥

साह रमइया अति वडा पोलै नहीं कपाट।
सुन्दर वांन्यौटा किया दीन्ही काया हाट॥ १५॥

---

(६) औगाह=अवगाहन, श्रवण मनन करना।

(९) घाट=सुस्थान, ढब।

(१०) मुक्त=मुक्ति।

(१४) पूटै=घटै, कमीपर (न आवै)।

(१५) वांन्यौटा=छोटासा वनिया, व्यापारी। छन्द १३ से १६ तक

अपना करि बैठाइया कीया बहुत निहाल।
जो चाहै सो आइल्यौ सुन्दर कोठीवाल॥ १६ ॥

सुन्दर आये संतजन मुक्त करन कौं जीव।
सब अज्ञान मिटाइ करि करत जीव तें सीव ॥ १७ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै सब को भेद।
वचन अनेक प्रकार के प्रगट कहे जे वेद ॥ १८ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्गुन भक्ति।
प्रीति लगै परब्रह्म सौं सब तें होइ विरक्ति ॥ १९ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै निर्मल बुद्धि।
जानैं सकल विवेक करि जीव ब्रह्म की सुद्धि ॥ २० ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें पावै दुर्लभ योग।
आतम परमातम मिले दूरि होंहिं सब रोग ॥ २१ ॥

जन सुन्दर सतसङ्ग तें उपजै अद्वय ज्ञान।
मुक्ति होय संसय मिटै पावै पद निर्वान ॥ २२ ॥

सुन्दर सब कछु मिलत है समये समये आइ।
दुर्लभ या संसार में संत समागम थाइ ॥ २३ ॥

मात पिता सबही मिलै भइया बंधु प्रसंग।
सुन्दर सुत दारा मिलै दुर्लभ है सतसङ्ग ॥ २४ ॥

राज साज सब होत है मन वंछित हू पाइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन बड़े भाग तें पाइ ॥ २५ ॥

सुन्दरदासजी ने अपना थोड़ा हाल महाजनी का भी दरसा दिया है। और यह उनकी जीवनी से संबंधित है।

(१७) सीव=शिव, परमात्मदेव।

(२०) सुद्धि=सुध बुध, विवेक ज्ञान।

(२३) थाइ=(गु०) है। होता है। मिलता है।

लोक प्रलोक सबै मिलै देव इन्द्र हू होइ।
सुन्दर दुर्लभ संतजन क्यों करि पावै कोइ॥ २६॥

ब्रह्मा शिव के लोक लौं है वैकुंठहु वास।
सुन्दर और सबैं मिलै दुर्लभ हरि के दास॥ २७॥

राग द्वेष तें रहित हैं रहित मान अपमान।
सुन्दर ऐसैं संतजन सिरजे श्री भगवान॥ २८॥

काम क्रोध जिनि कै नहीं लोभ मोह पुनि नांहिं।
सुन्दर ऐसे संतजन दुर्लभ या जगु मांहिं॥ २६॥

मद मत्सर अहंकार की दीन्ही ठौर उठाइ।
सुन्दर ऐसै संतजन ग्रंथनि कहे सुनाइ॥ ३०॥

पाप पुन्य दोऊ परै स्वर्ग नरक तें दूरि।
सुन्दर ऐसै संतजन हरि कैं सदा हजूरि॥ ३१॥

आयें हर्ष न ऊपजै गयें शोक नहिं होइ।
सुन्दर ऐसैं संतजन कोटिनु मध्ये कोइ॥ ३२॥

कोई आइ स्तुती करै कोइ निंदा करि जाइ।
सुन्दर साधु सदा रहै सबही सौं सम भाइ॥ ३३॥

कोऊ तौ मूरप कहै कोऊ चतुर सुजांन।
सुन्दर साधु धरै नहीं भली बुरी कछु कांन॥ ३४॥

कबहू पंचामृत भषै कबहूं भाजी साग।
सुन्दर संतनि कै नहीं कोऊ राग विराग॥ ३५॥

सुखदाई सीतल हृदय देपत सीतल नैंन।
सुन्दर ऐसैं संतजन बोलत अमृत बैंन॥ ३६॥

क्षमावंत धीरज लिये सत्य दया संतोष।
सुन्दर ऐसै संतजन निर्भय निर्गत रोष॥ ३७॥

द्वंद कछू व्यापै नहीं सुख दुख एक समान।
सुन्दर ऐसैं संतजन ह्रदै प्रगट दृढ ज्ञान॥ ३८॥

घर वन दोऊ सारिषे सबतें रहत उदास।
सुन्दर संतनि कै नहीं जिवन मरन की आस ॥ ३९ ॥

रिद्धि सिद्धि की कामना कबहूं उपजै नांहि।
सुन्दर ऐसैं संतजन मुक्ति सदा जग मांहि ॥ ४० ॥

सूधि माहिं वरतै सदा और न जानहिं रंच।
सुन्दर ऐसै संतजन जिनि कै कछु न प्रपंच ॥ ४१ ॥

सदा रहै रत राम सौं मन मैं कोउ न चाह।
सुन्दर ऐसैं संतजन सबसौं बेपरवाह ॥ ४२ ॥

धोवत है संसार सब गंगा मांहें पाप।
सुन्दर संतनि के चरण गंगा बंछै आप ॥ ४३ ॥

ब्रह्मादिक इंद्रादि पुनि सुन्दर बंछहिं देव।
मनसा बाचा कर्मना करि संतनि की सेव ॥ ४४ ॥

सुन्दर कृष्ण प्रगट कहै. मैं धारी यह देह।
संतनि कै पीछै फिरौं सुद्ध करन कौं येह ॥ ४५ ॥

सन्तनि की महिमा कही श्रीपति श्रीमुख गाइ।
तातें सुन्दर छाडि सब सन्त चरन चित लाइ ॥ ४६ ॥

संतनि की सेवा किये श्रीपति होहि प्रसन्न।
सुन्दर भिन्न न जानिये हरि अरु हरि के जन्न ॥ ४७ ॥

सुन्दर हरि जन एक हैं भिन्न भाव कछु नांहि।
संतनि माहें हरि वसै संत वसै हरि मांहिं ॥ ४८ ॥

सन्तनि को सेवा किये हरि की सेवा होइ।
तातें सुन्दर एकही मति करि जानै दोइ ॥ ४९ ॥

सन्तनि की सेवा किये सुन्दर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लडाइये अति सुख पावै बाप ॥ ५० ॥

---

(४३) बंछै=बांछना करै। चाहै।

संतनि कौं कोउ दुःख दे तब हरि करै सहाइ।
सुन्दर रांभै वाछरा सुनि करि दौरै गाइ ॥ ५१ ॥

अठसठ तीरथ जौ फिरै कोटि यज्ञ व्रत दांन।
सुन्दर दरसन साधु के तुलै नहीं, कछु आंन ॥ ५२ ॥

संतनि ही कौ आसरौ संतनि कौ आधार।
सुन्दर और कछू नहीं है सतसंगति सार ॥ ५३ ॥

पावक जारै नीर कौं नीर बुझावै आगि।
सुन्दर वैरी परस्पर सज्जन छूटै भागि ॥ ५४ ॥

उलवा मारै काग कौं काक सु हनै उलूक।
सुन्दर वैरी परस्पर सज्जन हंस कहूंक ॥ ५५ ॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै सु नीच।
चल्यौ अधोगति जाइ है परै नरक के बीच ॥ ५६ ॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै लगार।
जन्म जन्म दुख पाइ है ता महिं फेर न सार ॥ ५७ ॥

सुन्दर कोऊ साधु की निंदा करै कपूत।
ताकौं ठौर कहूं नहीं भ्रमत फिरै ज्यौं भूत ॥ ५८ ॥

सन्तनि की निंदा कियें भलौ होइ नहिं मूलि।
सुन्दर बार लगै नहीं तुरत परै मुख धूलि ॥ ५९ ॥

संतनि की निंदा करै ताकौ बुरौ हवाल।
सुन्दर उहै मलेछ है वहै वडौ चण्डाल ॥ ६० ॥

॥ इति साधु कौ अंग ॥ १९ ॥

---

(५२) तुलै नहीं=साधु दर्शन के तुल्य वा बराबर और कोई वस्तु नहीं है।

(५५) उलवा=उलू पक्षी को दिन में कव्वा मारता है। और रात को उलू कव्वे को मारता है। कहूंक=कुहक, दुष्टजन।

॥ अथ विपर्ज्जय कौ अंग ॥ २० ॥

सुन्दर कहत बिचारि करि उलटी बात सुनाइ ।
नीचे कौ मूंडी करै तब ऊंचे कौं पाइ ॥ १ ॥

अन्धा तीनौं लोक कौं सुंदर देषै नैंन ।
बहिरा अनहद नाद सुनि अति गति पावै चैंन ॥ २ ॥

नकटा लेत सुगन्ध कौं यह तौ उलटी रीति ।
सुन्दर नाचै पंगुला गूंगा गावै गीति ॥ ३ ॥

[अंग २०] (१) नीचे को मूंडी करै=नम्रहोय, अथवा शीर्षासन करै, योग साधै । तव ऊंचे कौं पाई=तव ऊंचे पग होंय । दूसरा अर्थ यह कि तव ऊंचा पद वा ऊंची अवस्था वा आत्मानुभव की उच्च गति (पार) पावै । यह अंग विपर्यय का इस "साषी" ग्रन्थ में "सवैया" ग्रन्थ के विपर्यय अंग के विचारों से वहुत मिलता-जुलता है । उसमें विस्तृत टीका प्रत्येक के नीचे कर दी है । इस कारण यहां विस्तार अनावश्यक है । थोड़ा थोड़ा अभिप्राय देते हैं । वाकी टीका उस अंग को देख कर इन दोहों का अर्थ जानना चाहिये ।

(२) वाहिरी दृष्टि जिसकी रुक गई अंतर्दृष्टि खुल गई वह तीनों लोकों को दिव्य दृष्टि से देखै । जगत् के आकवाक् और वुरी भली के सुनने में श्रवणेंद्रिय जिसकी वन्द हो गई है ऐसा अंतर्नाद अनाहतनाद दश प्रकार को पाकर ब्रह्मानन्द का सुख अनुभव करै । (सवैया अंग २२ । छन्द १ का पूर्वार्द्ध देखो टीका सहित) ।

(३) नकटा नाम लोकलाज का वन्धन तोड़ कर ब्रह्म कमल की पराग का आनन्दमय सुगन्ध सूंघता है । पांगला—जिसकी लौकिक गति मिट कर गुणों की चपलता मिट कर भगवत ध्यान में भगवान के सन्मुख आत्मानन्द का नृत्य करै और गूंगा—जिसकी स्थूल वैखरी मध्यमा वाणी तक वन्द होकर परापश्यंती खुल गई, सो

कीडी कूंजर कौं गिलै स्याल सिंह कौं पाइ।
सुन्दर जल तें माछली दौरि अग्नि में जाइ॥ ४॥

समद समानौं बून्द में राई मांहे मेर।
सुन्दर यह उलटी भई सूर्य कियौ अन्धेर॥ ५॥

मछली बुगला कौं ग्रस्यौ देपहु याके भाग।
सुन्दर यह उलटी भई मूसै पायौ काग॥ ६॥

ब्रह्म विचार में ब्रह्मसांगीत गाता है। भगवान की वेद मार्ग से स्तुति गीत गाता है। संसार से वकवाद नहीं करै। (सवैया। उक्त)।

(४) कोरी=अति सूक्ष्म विचारवाली शुद्ध ब्रह्मानन्दी बुद्धि। सो कुंजर नाम काम-क्रोधादि मस्त हाथियों को निगल गई। उस ज्ञान बल से इन्हें मार दिया। स्याल-आत्मा स्वस्वरूप को भूल दीन स्याल सा हो रहा था। सो ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से अपने स्वभाव की स्मृति होने से संशयविपर्यय रूपी अध्यास जो सिंह सा प्रतीत होता था उसको खा गया—अर्थात् नाश कर दिया। आत्मानुभव से जगत् का मिथ्यात्व स्पष्ट हो गया। जल—सांसारिक कायारूपी जल में जीवरूपी मछली अज्ञानवश प्रसन्न थी। परन्तु ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होते ही ज्ञानाग्नि में जाकर पड़ी तब सच्चा सुख मिला उसही में सत्यज्ञान के उदय से दौड़ कर जा पड़ी। अर्थात् अधोगति संसार से निवृत्त हो ऊर्ध्वगति ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हुई। (स० २२। ३।)

(५) बूंद—जीव अति सूक्ष्म है उसमें ब्रह्म जो महान् अप्रमेय है सो समा गया अर्थात् जीव ब्रह्म एकता को प्राप्त हो गया। राई—अति सूक्ष्म ब्रह्माकार वृत्ति में अति विशाल मिथ्या जगत्‌रूपी मेरु था सो निवृत्त हो गया। अर्थात् ब्रह्माकारवृत्ति होते ही जगत् का लय हो गया। सूर्य—ब्रह्मज्ञानरूपी स्वप्रकाशरूपी सूर्य का उदय होते ही अज्ञानरूपी जगत् का अज्ञान मिटते ही अभावरूपी अन्धेरा हो गया। इस सूर्य ने यह बड़ा उत्पात किया कि उदय होते ही भासमान संसार को मिटा दिया। (स०। २२। ४।)

(६) मछली—मनसारूपी मछली ने दंभरूपी बुगला को खा लिया। शुद्ध

सुन्दर उल्टी वात है समुझै चतुर सुजांन।
सूवै काढे पकरि कैं या मिनिकी के प्रांन॥ ७॥

गुरु शिष के पायनि पर्यौ राजा हूवौ रंक।
पुत्र वांझ के पंगुलं सुंदर मारी लङ्क॥ ८॥

कमल मांहि पांणी भयौ पाणी मांहि भांन।
भान मांहि ससि मिलि गयौ सुंदर उलटौ ज्ञांन॥ ९॥

मन से जगत् भ्रांति मिटी। मूसा-सदा चंचल चपल मनरूपी चूहे ने अपने भक्षक शत्रु कापायरूपी कव्वे को खा लिया। मन की चंचलता मिटने से सर्व पापवासना निवृत्त हो गई। (स० २२। ५।) सवैया में सांप लिखा है।

(७) सूवा— सुवासनायुक्त अंतःकरणरूपी तोते ने वीप्सारूपी नाशक विलाई को प्राणांत कर दिया। जव अंतःकरण शुद्ध हो गया तो कामना सब मिट गई। ब्रह्म प्राप्ति सहज हुई। (स० २२। ५।)

(८) शिप=शिष्य—जो चित्त, सो अज्ञान अवस्था में मन की सीख में चलकर उसका चेला बना रहा। परन्तु जव ज्ञान पाया तो ज्ञान वल से मन को शिक्षा देने लगा। यों उल्टा मन का गुरु वन गया सो मन अव चित्त के आश्रित हो गया। राजा—रजोगुण का अभिमानी मन, अपने वल से जीव को अज्ञान अवस्था में अपने वशवर्त्ती कर रक्खा था। सो ही जीव को ज्ञान की प्राप्ति होने से तो वही मन पर शासन करने लगा। सो मन तो दीन प्रजा हो गया और जीव उसका राजा हो गया।—वांझ—बुद्धिरूपी सात्विकी वांझ नारी के ज्ञानरूपी पांगला बेटा हुआ। पांगला इस लिए कि मन की चपलतारूपी पांव जिससे विपयादि में वहिर्मुख होता था टूट गये। ऐसे पंगु पुत्र ने संसाररूपी लंका को विजय किया। अर्थात् बुद्धि जव निर्मल हुई तो ज्ञानोदय उत्पन्न हुआ। ज्ञान से भ्रमरूप जगत् नष्ट हो गया। (स० २२। ६।)

(९) कमल—हृदय कमल में प्रेमाभक्तिरूपी सुन्दर निर्मल जल उपजा। उस प्रेमाभक्ति से ज्ञान भानु उत्पन्न हुआ। उस सूर्य ने त्रिविधताप का नाश किया सो

धोवी कौं उज्जल कियौ कपरै वपुरौ धोइ।
दरजी कौं सीयौ सुई सुन्दर अचिरज होइ ॥ १० ॥
सोनैं पकरि सुनार कौं काढ्यौ ताइ कलङ्क।
लकरी छील्यौ वाढई सुन्दर निकसी वङ्क ॥ ११ ॥
जा घर में वहु सुख किये ता घर लागी आगि।
सुन्दर मीठौ ना रुचै लौंन लियौ सव त्यागि ॥ १२ ॥

शशि की सी सीतलता ब्रह्मनंद सुख की उत्पत्ति हुई। वास्तव में सूर्य ही के प्रकाश से चंद्रमा दीप्त होता है और फिर उस चन्द्रमा की शीतल किरणें पृथ्वी पर पड़ती हैं। मन शुद्ध होने से प्रेमाभक्ति हुई। उससे ज्ञान हुआ। ज्ञान से संसार-ताप निवृत्त होकर सच्चिदानन्द ब्रह्म के साक्षात्कार का अक्षय सुख मिला। (स० २२। ७।)।

(१०) धोवी—मनरूपी धोवी जब निर्मल हुआ तो उसने काया को भी निर्मल कर दिया। 'मन निर्मल तन निर्मल भाई'। मननरूपी अंतःकरण की माटी मनरूपी कुम्हार को घड़कर सुघड़ बना देता है। वैसे तो मन ही कुम्हार का काम करता है। परन्तु जब ज्ञान की प्राप्ति से मनन शक्ति बढ़ी तो मन के संकल्प तो मिट गये और मनन ने मन को ठीक बनाया। मानों इसने उसका काम किया। यों उलटा हुआ। सुरति रूपी बारीक सूक्ष्म प्रवेश करने वाली शक्ति जीवरूपी दरजी को (जो अमल में कतर ब्योंत करने वाला दरजी मानों है) सींवै नाम ब्रह्म में एकता करै। जीव को ब्रह्म में मिलाकर एक कर दे। यह सुई इतना बड़ा काम कर देती है। (स० २२। ९)।

(११) सोना—सुमिरणरूपी सुवरण ने मनरूपी सुनार को ताय (तपा) कर तपश्चर्या आदिक साधनों से निष्कलंक शुद्ध कर दिया। लयरूपी लकड़ी ने कर्मरूपी बढ़ई (खाती) को छीलकर नाम निर्विकार करके उसकी बांक निकाल दी। अर्थात् भगवान् में रत हो जाने से कर्मों का संसर्ग मिट गया। ज्ञान से कर्मों की निवृत्ति हो गई तो आवागमन होता रह गया। (स० २२। ९।)।

(१२) जाघर में—कायारूपी घर में, अज्ञान अवस्था में विषय सुख मिले वह

सुन्दर पर्वत उडि गये रुई रहो थिर होइ।
वाव वज्यौ इंहिं भांति कौ क्यौं करि मांनै कोइ ॥ १३ ॥

ल्याली पायौ गाडरैं सुसले पायौ स्वांन।
सुन्दर यह कैसी भई वयक हि लागौ वांन ॥ १४ ॥

ब्रह्मा ऊपर हंस चढि कियौ गगन दिशि गौन।
गरुड चढ्यौ हरि पीठि पर सुन्दर मांनै कौन ॥ १५ ॥

वृषभ भयौ असवार पुनि सुन्दर शिव पर आइ।
डाइन ऊपर जरप चढि भली दई दौराई ॥ १६ ॥

घर अब ज्ञानाग्नि से भस्म हो गया। अर्थात् शरीराभिमान व विषयादि वासना मिट गये। मीठा, विषयादि का स्वाद गया और अब भगवत् प्रेमरूपी सुकाराप्यारा लगा, तबसे वह नहीं रुचा, अच्छा नहीं लगा सर्वस्व त्याग एक इस भगवत्-भजन वा प्रेम को ही ग्रहण किया।

(१३) पर्वत—अहंकार का अभिमान ही पर्वत था सो ज्ञान की पवन से उड़ गया। और सात्विक वृत्तिरूपी रुई जो निर्मल स्वच्छ और गुल्ता रहित है अंतःकरण में जम कर बैठ गई दृढ़ हो गई। वाव=पौन। विचारवान् पुरुष ही मानैं, अन्य क्या समझें। (स० २२। १०)।

(१४) ल्याली=भेंड़िया। गाडरैं=भेड़ वा भेड़ा, मींढा। सात्विकी वृत्ति के रहने और अभ्यास से मन के विकाररूपी भेड़िये को खाया अर्थात् नाश कर दिया। शील संतोषरूपी सुसे ने क्रोध क्रूरता सत्कार्य में अरुचि और संतों को देख भौंकने-वाली स्वानरूपी दुष्ट वृत्ति को खाया नाम निवारण किया। (सवैया में ऐसा विपर्यय नहीं है।)

(१५) हंस=जीव। ब्रह्मा=रजोगुण। गरुड़=ज्ञान। हरि=सतोगुणी ईश्वर। वृषभ बैल=शरीर। शिव=तमोगुण। गगन=अनंत में। (देखो "सवैया" अंग २२। छंद ८ की टीका।)

(१६) डाइन=बुरी मनसा। पदार्थों की घणी लालसा। जरप=संकल्प विकल्प भरा मन। (देखो उक्त टीका)।

रजनी मैं दीसै दिवस दिन मैं दीसै राति।
सुन्दर दीपक जल गयौ रही विचारी वाति ॥ १७ ॥

सुन्दर वरिषा अति भई सूकि गये नदि नार।
मेर बूडि जल में रह्यौ झर लाग्यौ इकसार ॥ १८ ॥

कांसा पर्‌यौ पराकिदे विजली ऊपर आइ।
घर कौ सब टाबर मुवौ सुन्दर कही न जाइ ॥ १९ ॥

सुन्दर माली नीपज्यौ फल अरु फूल समेत।
हाली के कोठा भरे सूके वाडी षेत ॥ २० ॥

---

(१७) रजनी=रात=निवृत्ति (संसार का अभाव)। दिवस, दिन=ज्ञान का प्रकाश, ब्रह्मज्ञान की निष्ठा। दीपक=मोह-ममतारूपी तेल भरा विषयों का दीवा। जल गया=मिट गया, बुझ गया। वाति=वर्त्ति=वाती। ब्रह्मानन्द नामा वृत्ति। (सवैया। अं० २२।। छं० ११ की टीका देखो)।

(१८) वरिषा=वर्षा=निरंतर भजन वा अनाहतनाद ध्वनि। नदी नार=नदी नाले=सब इन्द्रियों द्वारों से बहते रहनेवाले विषय वासना। सूकि गये=सूख गये=मिट गये। मेर=मेरु पर्वत=अति ऊंचा मध्यस्थ अहंकार। जल मैं रह्यो=डूब गया, जाता रहा। झर=भजनता इकसार तार, वा धुन, रटन (सवैया। २२। १२ टीका)।

(१९) कांसा=काया, शरीर, जो विषय भोग का बरतन है। विजली=गुरु ज्ञान का चमका भरी दामिनी। पराकि=पड़ाके शब्द से, झटपट। घर कौ सब टाबर=सब इन्द्रिय और विषय मलिन अंतःकरणकी वृत्तियां। मुवौ=निवृत्त हुए। (उक्त देखो)। टाबर=बालबच्चे।

(२०) माली=क्षेत्रज्ञजीव। फल फूल कायारूपी क्षेत्र के नाना विषय भोग। हाली=अंतःकरण (वा मन) के कोठा नाम अन्तरंग वृत्तियों का स्थान। बाड़ी और खेत जो काया के विषयादिक सो सूखे नाम निवृत्त हो गये तब अंतःकरण की वृत्तियां अन्तर्मुखी होने से ब्रह्मानन्दरूपी सच्चे फलों से घर परिपूर्ण हो गया। आत्म-साक्षात्कार हो गया और जगत् की बहिर्मुखता मिट गई। (स०। २२। १३)।

भ्रमर सु तौ उज्जल भयौ हंस भयौ फिरि स्यांम ।
को जानै केते भये सुन्दर उलटे कांम ॥ २१ ॥

अग्नि मथन करि नीसरी लकरी सहज सुभाइ ।
पानी मथि घृत काढियौ सो घृत सुन्दर पाइ ॥ २२ ॥

पत्र मांहिं झोली धरै जोगी मांगै भीष ।
सोवै गोरष यौं कहै सुन्दर गुरु की सीष ॥ २३ ॥

---

(२१) हंस=जीवात्मा जो स्वभाव से सतोगुणमय उज्ज्वल है सो विषयों की कालिमा से श्याम (काला) हो गया था अथवा श्यामसुन्दर का रंग श्याम (भगवद्भक्ति का रंग व ज्ञान) उसे लग गया । भ्रमर=मनरूपी भौंरा जो विषयोंरूपी पुष्पों पर बैठता रहा सो अब भगवद्भक्ति, जपतप, और ब्रह्मज्ञान से मलविक्षेप धोकर सपेद (उज्ज्वल निर्मल) हो गया ।) (स० अ० २२ । १३ ।)

(२२) अग्नि=भक्त की विरह-अग्नि उसको मथन कहिए अत्यन्त प्रज्वलित करिके अथवा श्रवण-मनन आदिकों से ज्ञान प्रगट करके लकरी काढी नाम लय-योग से ब्रह्माकार वृत्ति निकाली उत्पन्न की । सहज=सहज योगसे आत्मा साक्षात्कार हुआ । पानी=प्रेम (भगवत् की भक्ति) अथवा अन्तःकरणरूपी तरल अथाह मनोवृत्तियों का समुद्र वा यह संसार, उसको मथि अर्थात् आलोड़न वा विलोकर विचार विवेक करके वा साधन चतुष्टय करके (ज्ञानरूपी) घृत नाम ब्रह्मानन्द निकाला । सो ज्ञानरूपी घृत नित्य खाइये अर्थात् वह तदाकार वृत्ति का आनन्द "घी सो घोट रह्यो घट भीतर" सदा ही निरंतर व्यापै । "यत्प्राप्य न निवर्त्तंते" जिसकी प्राप्ति के अनंतर उलटा आने का काम नहीं, आवागमन मिट गया ।

(२३) पत्र=नाम शुद्ध हृदय (मन) उसमें संसारी कर्मों की झोली नाम झकझोल अर्थात् गुणों की कोथली जिसमें पाप-पुन्य भरे पड़े हैं । धरै=उन कर्मों को एक तरफ उठाकर धरदे नाम त्यागदे । मन शुद्ध होते ही शुभाशुभ कर्म की गांठड़ी छुट जाती है । और जोगी=जिज्ञासु, ज्ञान की भूख का सताया हुआ ज्ञानयोगी ज्ञान की भीष अपने गुरु या अनुभवी संतों या ब्रह्मज्ञानियों से मांगै—याचना करै ।

पर धी लै करि घर धरै पर धन हरि हरि पाइ।
पर निंदा निस दिन करै सुन्दर मुक्ति ही जाइ ॥ २४ ॥

मांस भपै मदिरा पिवै वह तौ अगम अगाध।
जौ ऐसी करनी करै सुन्दर सोई साध ॥ २५ ॥

जोई हूं अति निर्दयी करै पशुन की घात।
सुन्दर सोई उद्धरै और वहे सव जात ॥ २६ ॥

सोवै गोरप="जागै जगत सोवै गोरख" ऐसा शब्द भीख मांगते समय उच्चारण करै। "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी। यस्यां जागर्त्ति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।" (गीता)।—सर्व साधारण जीव जिस रात में सोवैं उसमें योगी जागै और जिसमें वे संसारी जागैं उसमें वह योगी सोवै"। इसही के आशयपर गुरु गोरखनाथ के समय से यह कहावत है। गुरु की सीप=गुरु के उपदेश से ऐसी ऊंची अवस्था उस जिज्ञासु योगी की हो जाती है (स० २२। १५।)

(२४) परधी=परमात्मा सम्बन्धी बुद्धि। घर=हृदय, अन्तःकरण। परधन=परमात्मज्ञान वा पराभक्ति। वा संतों से प्राप्त ज्ञान धन। पर निंदा=आत्मा से परे भिन्न जो अनात्म संसार माया उसकी निंदा नाम ग्लानि करै और त्यागै। (स०। २२।१८)

(२५) मांस भपै=पदार्थों में ममतारूपी अमेध्य लालसा को भक्षण कर जाय, अर्थात् नाश कर दे। मोह की मदिरा मदांधता को पीवै, नाम (शिवजी ने जैसे गरल पी लिया वैसे) पीकर निवारण कर सिद्ध योगी वनै। अथवा भगवत्पदारविंद-मकरंदयुक्त मधु-मदिरा पीकर मस्त हो जाय। उसको पीकर ससारी मोह से मोहित न होवै। मांस कहने से यह भी अभिप्राय होता है कि संसाररूपी पशु का ज्ञानी सिंह वनकर वध करै। उसमें के ज्ञानरूपी मांस (तथ्य पदार्थ) को खाय नाम ग्रहण करै और विषयादिक अस्थि आदिक को त्याग दै।

(२६) अति निर्दयी=अति कठोर इन्द्रियरूपी (विषयरूपी चारेको चरनेवाले) पशुओं को मारनेवाला जा जितेंद्रिय पुरुष सो ही संसार सागर से तिरै। (स० २२। १६।)

सुन्दर समुझावै वहू सुनि है मेरी सास।
माइ बाप तजि धी चली अपने पिय के पास ॥ २७ ॥

बढई कारीगर मिल्यौ चरषा गढ्यौ बनाइ।
सुन्दर बहू सतेवरी उल्टौ दियौ फिराइ ॥ २८ ॥

सुन्दर सब ही सौं मिली कन्या अपन कुमारि।
वेश्या फिरि पतिव्रत लियौ भई सुहागनि नारि ॥ २९ ॥

कलिजुग मैं सतजुग कियौ सुन्दर उल्टी गंग।
पापी भये सु ऊबरे धरमी हूये भंग ॥ ३० ॥

---

(२७) बहू=शुभगुणयुक्त शुद्ध बुद्धि सो ही बहू, अपनी सास सुरत को समझाती है, अर्थात् ब्रह्मज्ञान का उपदेश देती है। माइ=माया, बाप=वपु, शरीर और उसके विषयभोग। इन मा बाप को त्यागकर धी जो शुद्धबुद्धि सो अपनी पति परमात्मा के पास चली। (स० २२। १७।)

(२८) बढई=गुरु (जो शिष्यरूपी काष्ट को सुडौल करै) ने चित्तरूपी चर्खा को बना दिया, युक्त कर दिया। यह चित्तरूपी चर्खा शुद्धबुद्धि बहू को फिराने को मिला तो उसने उलटा फिरा दिया। अर्थात् बहिर्मुख हुआ वा किया गया। (स०। २२। १९।)

(२९) कन्या=असंस्कृत जिज्ञासु की कची बुद्धि सो अनेक गुरु और शास्त्रों के पास जाकर सीखै पढ़ै। इस प्रकार वह बुद्धि व्यभिचारिणी (वेश्या) होकर अन्त में एक परम तत्व परमात्मा को पाकर उसही का व्रत धारकर पतिव्रता हो गई। अर्थात् ज्ञान पिपासा की तृप्ति के लिए गुरुओं द्वारा सत्य खोजी तब तो व्यभिचार हुआ और अन्त में सिद्धि प्राप्त हुई तब लययोग द्वारा अद्वैत ब्रह्म की प्राप्ति हुई। (स०। २२। २०।)

(३०) कलिजुग=मलीन कर्मों में लीन ऐसो काया सोही कलियुग। उसमें सत्य ज्ञान का प्रभाव होने से सतयुग हुआ। भागीरथ की नांई ज्ञान की गंगा को मोड़कर उद्धारक हुआ। इन्द्रियों और उनके विषयों को मारनेवाला ज्ञानी पुरुष

विप्र रसोई करत है चौकै काढी कार।
लकरी में चूल्हा दियौ सुन्दर लगी न वार ॥ ३१ ॥
रोटी ऊपर पोइकै तवा चढायौ आंनि।
पिचरि मांहि हण्डिका सुन्दर रांधी जांनि ॥ ३२ ॥
पहराइत घर कौं मुसै साह न जांनै कोइ।
चोर आइ रक्षा करै सुन्दर तब सुख होइ ॥ ३३ ॥

(हत्यारा होकर) ऊवरा अर्थात् संसार को तिर गया। और इन्द्रियों का पोषण और विषयों का सुख माननेवाला संसारी जीव (उनको न मारने से) धर्मी कहाया परन्तु उसकी आत्मा की हानि हुई इससे उसका नाश ही है अर्थात् दुर्गति को प्राप्त हुआ। (स० । २२ । २० ।)

(३१) विप्र=वेदादिशास्त्रों का ज्ञाता ज्ञानी पुरुष वा जीव रसोई नाम ज्ञान भक्ति करने लगा तब चौका नाम अन्तःकरण चतुष्टय में साधन चतुष्टय करने लगा वहां संसार का बहिष्कार कर दृढ़ वृत्ति की मर्यादा कर दी। और लकरी नाम अन्तर्मुख की लय तल्लीनता में चूल्हा नाम चित्त को दिया नाम लगाया। ऐसा तत्क्षण हो गया विलम्ब नहीं लगी। "क्षिप्रं भवतिधर्मात्मा" (गीता) इस वचन से ज्ञान के उदय होते ही अज्ञान तिमिर का नाश हो गया।

(३२) रोटी नाम रटन निरन्तर भगवत् का भजन उसपर नाम उसमें तवा नाम तत्वज्ञान का सुदृढ़ रक्षण तवा (ढाल) चढाया नाम योगारूढ़ हुआ। तब तत्व ज्ञान प्राप्त हो गया। खिचरी नाम भक्ति और ज्ञान मिश्रित साधन खाद्य पदार्थ तामें हडिया नाम इस काया को रांधी नाम लीन कर दी और रंधने से सिद्धान्न समान युक्त पदार्थ हो गई। "काया भई कपूर"। सिद्धों की काया नूरानी और तेजोमय हो जाती हैं। (स० । २२ । २१ ।)

(३३) पहराइत=ज्ञानेंद्रिय और कर्मेन्द्रिय जो नवद्वारों पर बैठी अपने रक्षा कर्म से विमुख होकर विषय लोलुपता उत्पन्न कर मन आदि अन्तःकरणरूपी घर को पट कर दिया। तब वह प्रसिद्ध चोर श्रीनारायण भगवान ने अपने जन पर दया कर

छत्रबंध

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

छत्रबन्ध

पढ़ने की विधि·—

"सुन्दर भजहु निरंजनं" यह उल्लाला छन्द का चरणार्ध छत्र में नीचे ऊपर सर्वत्र पढ़ा जाता है। यही छप्पय के आद्यक्षरों में उल्लाला के प्रथमार्ध तक पढ़ा जाता है। और यही बहिर्लापिका के उत्तर की छप्पय के आद्यक्षरों में दाहिनी पार्श्व में पढ़ा जाता है। बहिर्लापिका इस प्रकार है कि प्रथम छप्पय में प्रश्न हैं और द्वितीय में उत्तर हैं। अङ्क दो-दो बढ़ कर बीस तक गये हैं। इसके दो प्रयोजन प्रतीत होते हैं। एक तो उक्त पद के दो बेर के १०×२=२० अक्षर। दूसरे निरंजन का भजन ही बीसों बिस्वा सब साधनों में छत्रवत् शिरोमणि और राजा समान छत्रधारी और संसार से रक्षा करनेवाला है।

कोतवाल कौं पकरि कै काठौ राष्यौ जूरि।
राजा भाग्यौ गांव तजि सुन्दर सुख भरपूरि॥ ३४॥

नाइक लायौ उलटि करि वैल विचारै आइ।
गौन भरी लै वस्तु मैं सुन्दर हरिपुर जाइ॥ ३५॥

सुन्दर राजा विपति सौं घर घर मांगै भीष।
पाय पयादौ उठि चलै घोरा भरै न वीष॥ ३६॥

उन कृतघ्न पहरियों को मार कर अर्थात् इन्द्रिय दमनकर अन्तःकरण के घर की रक्षा की अर्थात् चित्त को भगवत् के अन्दर लगा दिया। तव संसार के त्रिविध दुःखों से छुटकारा पाकर ब्रह्मानन्द सुख पाया। (स० २२। २४।)

(३४) कोतवाल=अज्ञान काल में चंचल मन। उसे जूरि राष्यो=संकल्प से निरोध किया। राजा=रजोगुण। गांव=अन्तःकरण। कोतवाल के वल पर राजा राज करता था। जव कोतवाल कैद हो गया तो राजा का वल नष्ट होने से लज्जित हो घरवार छोड़ भाग गया। चित्तवृत्ति के निरोध से सतोगुणी वृत्ति की वृद्धि हुई तव रजोगुण नहीं रहा तो शांति मिली।

(३५) वैल=वलीवर्द वलवान अहंकार वाला यह जीव निष्काम वृत्ति धारण करके अपने कर्मभार को नाइक नाम ब्रह्म पर धर दिया। "ब्रह्मण्याधाय कर्माणि" (गीता) कर्मों को अपने ऊपर न लेकर ब्रह्म में अर्पण करै। इस वचन प्रमाण से आइ नाम इस संसार में विचारै नाम लाइलाज कर्मों के फलों के भोगवश संसार में मनुष्य देह पाकर यह सुकृत गुरु के उपदेश से किया। और गौन वा गौण—गुणानाम इदम् गौणम्—गुणों (सत-रज-तम)) से वनें सो गौंण (वोरा) अर्थात् गुणों से उत्पन्न हुए कर्मों को वस्तु—सत्य पदार्थ-ब्रह्म में भर दिये नाम अर्पण कर दिये। हरिपुर-हरि जो भगवान् ब्रह्म—उसका पुर दिसावर लोक—ब्रह्मलोक तुर्यावस्था को जाइ नाम प्राप्त हो गया। (स० २२। २२।)

(३६) राजा=रजोगुण युक्त जीव (वा मन)। विपति नानाप्रकार तृष्णाओं से लिप्त और उनके पूर्ण करने के यत्नों में पड़ा और फसा हुआ अनेक शुभाशुभ कर्म

पानी फिरै पुकारतौ उपजी जरनि अपार।
पावक आयौ पूछनै सुन्दर वाकी सार ॥ ३७ ॥

जौ तूं मेरी सीपले तौ तूं सीतल होइ।
फिरि मोही सौं मिलि रहै सुन्दर दुःख न कोइ ॥ ३८ ॥

पंथी मांहे पंथ चलि आयौ आकसमात।
सुन्दर वाही पंथ गहि उठि चाल्यौ परभात ॥ ३९ ॥

करै और अनेक पुरुषों से सहायता चाहै और इन्द्रिय द्वारों में आश्रय ढूंढे। विषयों के भोगों से शरीररूपी घोड़ा वाहन थक गया निर्बल निकम्मा हो गया तब अशक्त हुआ भी पाय पयादा नाम मनोवृत्ति से संकल्प मात्र ही से तृष्णाओं के भोगों का विचार कर मन डुलता रहै। अर्थात् मन की वासना तो शक्तिहीन होनेपर नहीं मिटी। भीप=भिक्षा। वीप=वीख, एक प्रकार की हलकी चाल घोड़े की। (स०। २२। २५।)

(३७) पानी=प्रेम से उत्पन्न विरह की तपत। उसको ज्ञानरूपी अग्नि प्रगट होकर बुझावै। अर्थात् विरह संताप पक्कज्ञान के पैदा होने से निवृत्त होता है। जिज्ञासु ज्ञानी सिद्धों को, ज्ञान-पिपासा मिटाने को, ढूंढता है तो दयाकर ज्ञानी सिद्ध अग्निरूप ज्ञान की मानों मूर्त्ति ही उस विरह कातर की सम्हाल करके उसका समाधान करके संसार जनित त्रिविध ताप को निवारण करता है। (स०। २२। २६।)

(३८) सीतल=ज्ञान प्रेम को कहता है कि मेरे उपदेश से तू (जो स्वभाव से शीतल है) शीतल हो जाय। फिर प्रेम और ज्ञान एकमेक हो जाय। भक्ति में प्रथम द्वैत भाव अवश्य रहता है तब ही तो भक्त अपने उपास्य की प्राप्ति में विह्वल होता है। जब होते होते पराभक्ति की मंजिल आ पहुंचती है तब ज्ञान (अर्थात् अद्वैत ज्ञान—अपरोक्षानुभूति) दशा प्राप्त होकर ब्रह्म साक्षात्कार हो जाता है। (स०। २२। २६।)

(३९) पंथी=मुमुक्षु संत साधक के भीतर पंथ जो स्वयम् ज्ञान आकर प्राप्त हुआ। उस ज्ञानरूपी पंथ के मुमुक्षु पंथी में प्रवेश होते ही वह सुवेला (ब्रह्म प्राप्ति

चलत चलत पहुंच्यौ तहां जहां आपनौ भौन।
सुन्दर निश्चल ह्वै रह्यौ फिरि आवै कहि कौन॥ ४०॥

वन में एक अहेरिये दीनी अग्नि लगाइ।
सुन्दर उलटै धनुष सर सावज मारै आइ॥ ४१॥

मार्‍यौ सिंह महा वली मार्‍यौ व्याघ्र कराल।
सुन्दर सवही घेरि करि मारी मृग की डाल॥ ४२॥

सुन्दर सरवर सूकतें कंवल प्रफुल्लित होइ।
हंस तहां क्रीडा करै पंषी रहै न कोइ॥ ४३॥

का विशेष समय ब्राह्मय मुहूर्त्त) में, आप ज्ञानरूप होकर योगारूढ होकर ब्रह्मरूप होने को स्वयम् चल पड़ा। (स० । २२ । २८ ।)

(४०) चलत=उस ज्ञान मार्ग में ज्ञानरूप होकर वह ज्ञानी ऊर्द्धगामी होकर ब्रह्मलोक, निज ज्ञान भवन, में जा पहुंचा। और वहां निश्चल हो गया। "यं प्राप्य न निवर्त्तते तद्धाम परमं मम" (गीता) वह परमोत्कृष्ट निज ब्रह्म का धाम है वहां पहुंच कर ज्ञानी फिर नहीं लौटता। वहीं ब्रह्ममय ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्मानन्दरूपी हो रहता है। (उक्त।)

(४१) वन में—संसार के विषय भोगरूपी वन। अहेरिया=शिकारी, साधक संत। अग्नि=ज्ञानकी अग्नि। धनुष=ध्यान। सर=वाण, लक्ष्यपर चित्त वृत्ति। सावज=शिकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिक दुष्ट पशुरूपी घातक। (स० । २२ । २९ ।)

(४२) सिंह=अहंकार वा काम। व्याघ्र=वहिर्मुख मन वा मोह। मृग की डाल=इन्द्रियों का समूह। डाल=डार, झुंड। इन सव को मारा नाम जय किया। (उक्त।)

(४३) सरवर=संसाररूपी ताल वा छोटा समुद्र। उसका सूखना=निःशेष होना। कंवल=शुद्ध हृदय वा शुद्ध वुद्धि। प्रफुल्लित=ब्रह्मानन्द पाकर परम हर्षित होना। हंस=ब्रह्मानन्द प्राप्त सन्त। क्रीडा=ब्रह्मानन्द सुख में मग्न होना। पंषी=संसारी

कूप उसास्यौ कुंभ में पानी भस्यौ अटूट।
सुन्दर तृषा सबै गई धापे चास्यौं पूंट॥ ४४॥

सुन्दर बरिषा अति भई सूकि गई सब साप।
नींब फल्यौ बहु भांति करि लागै दाड्यौं दाप॥ ४५॥

मिष्ट सु तौ करवो लग्यौ करवो लाग्यौ मीठ।
सुन्दर उलटी बात यह अपनै नैंननि दीठ॥ ४६॥

जीवरूपी पक्षी, अथवा बहिर्मुख बाहर संसार के विषयों के चुगनेवाले पक्षीरूप चित्त के विकार वा वृत्तियां।

(४४) कूप=विषयरूपी अंध कूप जिसमें वासना तृष्णारूपी जल भरा हुआ है। कुंभ=मन शुद्ध मन। उसारयो=छिटकाया। मन के एकाग्र वा शुद्ध हो जाने पर विषयादिक निवृत्त हो गये। पानी=प्रेम वा ज्ञान। अटूट=अनंत, अथाह। तृषा=मृग-तृष्णा, वा विषय वासना। गई=मिट गई। धापे=तृप्त हुए। चारयों पूंट=चारों कोने। अंतःकरण चतुष्टय। दिव्य ज्ञान की प्राप्ति से परमानन्द प्राप्त हुआ तो फिर कोई भूख प्यास, इच्छा, कामना अवशेष ही नहीं रही। सर्व परिपूर्ण हो गया।

(४५) बरिषा=गुरु शास्त्र द्वारा उपदेश प्राप्त होकर साधन चतुष्टय किया तो ज्ञानामृत की वर्षा इतनी हुई कि सांसारिक विषय भोगादि की खेती सब नष्ट हो गई, अर्थात् ज्ञानरूपी वर्षा से विषयरूपी बाड़ी सूख गई नाम निवृत्ति हो गई। और अन्य वृक्ष तो सूख गये परन्तु केवल प्रथम जो कड़ुवा लगता था उपदेशरूपी कल्पवृक्ष सो तो मीठे फलों से (दाडिम अनार और दाख अंगूर आदिक) फलवाला हो गया, नाम सत्य, निष्कामता, अमानता, अदंभ, अहिंसा, तितिक्षा आदि फल लगे।

(४६) मिष्ट=संसारका सुख जो आदि में मीठा सुप्यारा लगता था वह त्याग वैराग्य प्राप्त हुआ तब कड़ुवा लगा। और त्याग वैराग्य जो पहिले कड़ुवा लगता था वह अब मीठा प्रिय लगने लगा। सुन्दरदासजी ने यह बात निज अनुभव से कही है। अथवा निज गुरु दादूजी और अन्य महात्माओं का भी यही हालत अपने आंखों देखा है।

मित्र सु तौ वैरी भये वैरी हूये मित।
सुन्दर उलटी वात सौं भागी सबही चित ॥ ४७ ॥

ऊजर मैं वस्ती भई वस्ती भई उजारि।
सुन्दर उलटे पेच कौं पंडित देषि विचारि ॥ ४८ ॥

नीच सु तौ ऊंचौ भयौ ऊंचौ हूवौ नीच।
सुन्दर उलटौ ज्ञान है इनि साषिन के वीच ॥ ४९ ॥

सुन्दर सब उलटी कही संमुझै संत सुजांन।
और न जांनै बापुरे भरे बहुत अज्ञांन ॥ ५० ॥

॥ इति विपर्जय को अंग ॥ २० ॥

---

(४७) मित्र=मोह, ममता, सुत, कलत्र, कनक आदि सब हेय और अप्रिय हो गये। वे मोक्ष मार्ग में बंधन होने से शत्रु समान लगने लगे। और जो प्रथम वैरी समान अप्रिय लगते थे, साधु संत, शास्त्र, सत्संग, भजन, भक्ति वे अब मोक्ष के सच्चे साधन होने से मित्र समान प्यारे लगने लगे।

(४८) ऊजर=उजाड़, निर्जन स्थान, वा अंतरंग अंतःकरण का लोक जिसमें ज्ञान प्राप्ति से पहिले मन की वृत्तियां अन्तर्मुख होकर नहीं बैठती वा वसती थीं। अथवा विविक्तदेश, निर्जनस्थान में त्यागी संत बसते हैं। वस्ती=विषय-लोलुप बहिर्मुख इन्द्रिय विषयादि का संसार उजड़ गया नाम अब मन और अन्तःकरण की वृत्तियां इधर से उठ गईं। अथवा त्यागी वैरागी ने घर वार सब छोड़ दिये और वन में जा बसे।

(४९) नीच=जो प्रथम कुसंग और कुकर्मरत था वह सत्संग और सत्कर्म से उत्तम हो गया। और जो उच्चकुल का वा अच्छा था वह कुसंग और कुमार्गगामी हो जाने से अधोगति को प्राप्त होकर नीचा गिर गया।

(५०) अर्थ स्पष्ट है।

॥ इति साषी का अंग २० विपर्यय शब्द का सुन्दरानन्दी टीका सहित समाप्तम् ॥ २० ॥

॥ अथ समर्थाई आश्चर्य को अंग ॥ २१ ॥

दोहा

सुन्दर समरथ राम है जे कछु करै सु होइ।
जो प्रभु कौं कछु कहत है ता सम बुरा न कोइ ॥ १ ॥

कर्त्तुमकर्त्ता अन्यथा सुन्दर सिरजनहार।
पलक मांहि उतपति करै पलक मांहि संहार ॥ २ ॥

ज्यौं हरि भावै त्यौं करै कौंन कहै यह नांहिं।
अग्नि उपावै पलक में सुन्दर पाला मांहिं ॥ ३ ॥

ज्यौं हरि भावै त्यौं करै काले धौले रंग।
धौले तें काले करै सुन्दर आपु अभंग ॥ ४ ॥

सुन्दर संमरथ राम की मो पै कही न जाइ।
पलही में जल थल भरै पल में धूरि उडाइ ॥ ५ ॥

सुन्दर संमरथ राम कौं करत न लागै वार।
पर्वत सौं राई करै राई करै पहार ॥ ६ ॥

सुन्दर सिरजनहार कौं करतं कैसी शंक।
रङ्कहि लै राजा करै राजा कौं लै रङ्क ॥ ७ ॥

सुन्दर सिरजनहार की सबही अद्भुत बात।
गर्भ मांहि पोषत रहै जहां गम्य नहिं मात ॥ ८ ॥

सुन्दर संमरथ राम कौं कहत दूरि तें दूरि।
पलक मांहि प्रगटै सही हृदये मांहि हजूर ॥ ९ ॥

---

(२) 'कर्त्तुमकर्त्ता…'। भगवान शब्द की परिभाषा—कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुम् समर्थः। अच्छा बुरा करने न करने के लिए जो सामर्थ्य रक्खे वही भगवान (ईश्वर) है। सर्वशक्तिमान परमात्मा है।

सुन्दर संमरथ राम की महिमा कही न जाइ।
देषहु या अकाश कौं क्यौं करि राष्यौ छाइ ॥ १० ॥

सुन्दर अगम अगाध गति पल में वादल होइ।
गरजै चमकै बिज्जली बरषन लागै तोइ ॥ ११ ॥

पल में कछुव न देषिये सुद्ध रहै आकाश।
सुन्दर समरथ रामजी उतपति करै रु नाश ॥ १२ ॥

एक बूंद तें चित्र यह कैसौ कियौ बनाइ।
सुन्दर सिरजनहार की रचना कही न जाइ ॥ १३ ॥

जड चेतनि संयोग करि अद्भुत कीयौ ठाट।
सुन्दर संमरथ रामजी भिन्न भिन्न करि घाट ॥ १४ ॥

करै हरै पालै सदा सुन्दर संमरथ राम।
सवही तें न्यारौ रहै सव मैं जिन कौ धांम ॥ १५ ॥

अंजन यह माया करी आपु निरंजन राइ।
सुन्दर उपजत देषिये वहुरयौं जाइ विलाइ ॥ १६ ॥

उपजै विनसै जगत सब सुख दुख वहु संताप।
सुन्दर करि न्यारा रहै ऐसा समरथ आप ॥ १७ ॥

सुन्दर करता राम है भरता और न कोइ।
हरता वहई जानिये ऐसा संमरथ सोइ ॥ १८ ॥

जाकी आज्ञा मैं सदा धरती अरु आकास।
ज्यौं राषै त्यौं ही रहै सुन्दर मानहिं त्रास ॥ १९ ॥

---

(११) तोई=तोय, जल।

(१२) कछुव=कुछ भी।

(१३) एक बूंद तें=एक (रज वीर्य के) विन्दु से। चित्र=तसवीर, मूर्त्ति, शरीर का आकार, पशु-पक्षी, मछली वानर, मृग-मनुष्यादिक का।

(१४) घाट=घड़ंत, बनावट।

(१६) अंजन=कालुष्य, अविद्या, जड़ प्रकृति।

पावक पानी पवन पुनि सुन्दर आज्ञा मांहिं।
चन्द सूर फिरते रहें निश दिन आवें जांहिं ॥ २० ॥

जाकी आज्ञा में रहे सुन्दर सप्त समुन्द्र।
सबही मांनहिं त्रास कौं देवन सहित पुरद्र ॥ २१ ॥

जाकी आज्ञा में रहे ब्रह्मा विष्णु महेस।
सुन्दर अवनि अनादि की धारि रहे सिर सेस ॥ २२ ॥

सुन्दर आज्ञा में रहे काल कर्म जमदूत।
गण गंधर्व निशाचरा और जहां लगि भूत ॥ २३ ॥

सिध साधिक जोगी जती नाइ रहे मुनि सीस।
सुन्दर सबही कहत हैं जै जै जै जगदीस ॥ २४ ॥

आज्ञा मांहि सदा रहैं सुन्दर बरुन कुबेर।
अष्ट कुली पर्वत सहित आज्ञा मांहि सुमेर ॥ २५ ॥

सुन्दर आज्ञा में रहे दशों दिशा दिग्पाल।
हलैं चलैं नहिं ठौर तें बीति गये बहु काल ॥ २६ ॥

छपन कोटि आज्ञा करैं मेघ पृथी पर आइ।
सुन्दर भेजैं रामजी तहं तहं बरषैं जाइ ॥ २७ ॥

रिद्धि सिद्धि लौंडी सदा आज्ञा मेटैं नांहिं।
सुन्दर मानैं त्रास अति प्रभु भेजैं तह जाहिं ॥ २८ ॥

आज्ञा मांहीं लक्ष्मी ठाढी है कर जोरि।
सुन्दर प्रभु सनमुख रहै दृष्टि सकै नहिं चोरि ॥ २९ ॥

---

(२२) अवनि=पृथ्वी। सेस=शेष सहस्त्रमुख से पृथ्वी को शिर पर सदा धारे रहते हैं। ऐसा पुराण में लिखा है।

(२७) आज्ञा करैं=(प्रभु की) आज्ञा पाने से। आज्ञा करने से।

(२८) लौंडी=दासी।

(२९) दृष्टि चोरि=निगाह के अनुसार बरतें।

आज्ञा मांहिं तत्व सब होइ देह कौ संग।
सुन्दर बहुरि जुदे रहैं आज्ञा करै न भंग॥ ३० ॥

आज्ञा मांहिं रहत हैं सप्त दीप नौ षंड।
सुन्दर प्रभु की त्रास तें कंपै सब ब्रह्मंड॥ ३१ ॥

ऐसै प्रभु की त्रास तें कंपै सबही लोक।
बार बार करि कहत हैं सुन्दर तुम कौं धोक॥ ३२ ॥

उभै बाहु चहु बाहु पुनि अष्ट बाहु भुज बीस।
सहस्र बाहु नहिं लिपि सकै सुन्दर गुन जगदीस॥ ३३ ॥

एकानन चतुराननं पंचानन षटगीस।
दश सहस्रानन कहि थके सुन्दर गुन जगदीस॥ ३४ ॥*

उभै अष्ट दश द्वादशा अरु कहिये पुनि बीस।
द्वै सहस्र लोचन थके सुन्दर ब्रह्म न दीस॥ ३५ ॥

एक रसन चहुं रसन पुनि पंच षष्ट दश आहि।
द्वै सहस्र सुनि सेस के बरनि सकै नहिं ताहि॥ ३६ ॥

---

(३०) देह कौ संग=देह के संगी बनें। देह का संग दें। बहुरि=मृत्यु के समय काया जीव से पृथक् हो जाय।

(३२) धोक=ढोक कर, झुक कर।

(३३) उभै बाहु=मनुष्य। चहु बाहु=देवता। अष्ट बाहु=देवी, शक्ति। भुज बीस=रावण। सहस्रबाहु=सहस्रार्जुन।

(३४) एकानन=मनुष्य। चतुरानन=ब्रह्मा। पंचानन=महादेव=षटगीस=षडानन स्वामिकार्त्तिक। दश=दशानन=रावण। सहस्रानन=शेष *। ३४। 'सहस्रानन' को 'ए' ह्रस्व से पढ़िए।

(३५) उभै आदिक नेत्र उपरोक्त मस्तकों में प्रत्येक में दो २ करके।

(३६) एक रसन आदि उसही तरह एक २ करके उपरोक्त के जिव्हा। केवल शेष के दूनी हैं कि सर्प के दो जिव्हा एक मुख में होती है।

एक सीस चहुं सीस पुनि पंच सीस पट सीस।
दश सिर और सहस्र सिर नमत सकल जगदीस ॥ ३७ ॥

सूरति तेरी पूब है को करि सकै वपांन।
वानी सुनि सुनि मोहिया सुन्दर सकल जिहांन ॥ ३८ ॥

पलक मांहि परगट करै पल मैं धरै उठाइ।
सुन्दर तेरै ष्याल की क्यौं करि जांनी जाइ ॥ ३९ ॥

ज्यौं का त्यौं ही देपिये सुन्दर सब ब्रह्मंड।
यह कोई जांनै नहीं कबकी मांडी मंड ॥ ४० ॥

सांई तेरा अगम गति हिकमति की कुरवांन।
सब सिरजै न्यारा रहै सुन्दर यह हैरान ॥ ४१ ॥

शेष मसाइक औलिया सिध साधिक मुख मौंन।
वे भी बैठे थाकि करि सुन्दर बपुरा कौंन ॥ ४२ ॥

प्रीतम मेरा एक तूं सुन्दर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै काहि न परगट होइ ॥ ४३ ॥

धन्य धन्य मोटा धनी रच्या सकल ब्रह्मंड।
सुन्दर अद्भुत देपिये सप्त दीप नौ पंड ॥ ४४ ॥

उतपति सांई तें किया प्रथम हि यो ऊंकार।
तिसतें तीनों गुन भये सुन्दर सब बिस्तार ॥ ४५ ॥

तिनका रच्या सरीर यह महल अनूपम एक।
चौरासी लप जूनु ये सुन्दर और अनेक ॥ ४६ ॥*

---

(४०) मंड=मंडान, सृष्टि।

(४१) कुरबान=बलिहारी (अ०)।

(४५) ऊंकार=ऊंकार से सृष्टि की उत्पत्ति वेदशास्त्र में कही है।

(४६) *मूल पुस्तक (क) में 'जू जुये' ऐसा पाठ है। इसका अर्थ बारिश में छोटे रेंगनेवाले जीव भी हो सकता है। परन्तु हमें लेखक दोष या भ्रम ही प्रतीत

आप न वैठा गोपि ह्वै सुन्दर सब घट मांहि।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नांहिं ॥ ४७ ॥

ऐसी तेरी साहिवी जांनि न सक्कै कोइ।
सुन्दर सब देपै सुनै काहू लिप्त न होइ ॥ ४८ ॥

करै करावै रामजी सुन्दर सब घट मांहिं।
ज्यौं दर्पन प्रतिविंव है लिपै छिपै कछु नांहिं ॥ ४९ ॥

वाजीगर वाजी रची ताकी आदि न अंत।
भिन्न भिन्न सब देपिये सुन्दर रूप अनंत ॥ ५० ॥

काढि काढि वाहिर करै राते पीरे रंग।
सुन्दर चांवर धूरि के पंष परेवा संग ॥ ५१ ॥

कवहुं मिलावै गोटिका कवहूं वीछुरि जांहिं।
सुन्दर नाचै जगत सव ऐसी कल तुम्ह मांहिं ॥ ५२ ॥

अंजन कीया नैंन मैं सवही राषै मोहि।
सुन्दर हुन्नर वहुत हैं कोइ न जांनै तोहि ॥ ५३ ॥

ब्रह्मादिक शिव मुनि जनां थाके सवही संत।
सुन्दर कोउ न कहि सकै जाकौ आदि न अंत ॥ ५४ ॥

सुन्दर सव चक्रित भये वचन कह्या नहिं जाइ।
टग टग रहे सु देपते ठगमूरी सी पाइ ॥ ५५ ॥

वातैं कोउ न कहि सकै थकित भये सिध साध।
सुन्दर हू चुप करि रहे वह तौ अगम अगाध ॥ ५६ ॥

वचन तहां पहुंचै नहीं तहां न ज्ञान न ध्यांन।
कहत कहत यौं ही कह्यौ सुन्दर है हैरांन ॥ ५७ ॥

हुआ। स्यात् 'नु' का 'जु' लिखा हो। इससे 'जूनु ये' ऐसा पाठ वना दिया है। जूनु=जूण=योनियां। (५२) कल=कला।

(५३) अंजन=भुरकी का काजल।

नेति नेति कहि थकि रहे सुन्दर चार्‌यौं वेद।
अगह अकह अविशेप कौं कोउ न पावै भेद॥ ५८ ॥

किनहूं अंत न पाइयौ अब पावै कहि कौंन।
सुन्दर आगें होहिंगे थाकि रहे करि गौंन॥ ५९ ॥

लौंन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बिचिही गई बिलाइ॥ ६० ॥

अनल पंपि आकाश मैं उडै बहुत करि जोर।
सुन्दर वा आकास कौ कहूं न पायौ छोर॥ ६१ ॥

॥ इति समर्थाई को अंग ॥ २१ ॥

॥ अथ आपने भाव को अंग ॥ २२ ॥

सुन्दर अपनौ भाव है जे कछु दीसै आंन।
बुद्धि योग विभ्रम भयौ दोऊ ज्ञान अज्ञांन॥ १ ॥

जो यह देषै क्रूर ह्वै तौ वह होत कृतांत।
सुंदर जौ यह साधु ह्वै तौ आगै है सांत॥ २ ॥

सुन्दर जौ यह हंसि उठै तौ आगै हंसि देत।
जो यह काहू देत है तौ वह आगै लेत॥ ३ ॥

जो यह टेढौ होत है आगै टेढौ होइ।
सुन्दर परतप देषिये दर्पन मांहि जोइ॥ ४ ॥

---

(५८) अविशेप=निर्गुण, विशेप रहित।

(५९) गौंन=गमन।

[अंग २२] (२) कृतांत=यमराज। सांत=शांत, सात्विक।

(४) परतप=प्रत्यक्ष।

सुन्दर महल संवारि कै राष्यौ कांच लगाइ।
दैव योग सुनहा गयौ एक अनेक दिषाइ॥ ५॥

अपनी छाया देषि कै कूकर जानै आंन।
सुन्दर अति ही जोर करि भुसि भुसि मूवौ स्वांन॥ ६॥

सिंह कूप परि आइ कैं देषी अपनी छांहिं।
सुन्दर जान्यौ दूसरौ बूडि मुवौ ता मांहिं॥ ७॥

फटिक सिला सौं आय करि कुंजर तोरै दन्त।
आगैं देष्यौ और गज सुन्दर अज्ञ अतित॥ ८॥*

सुन्दर याकै ऊपजै काम क्रोध अरु मोह।
याही कै ह्वै मित्रता याही कै ह्वै द्रोह॥ ९॥

आपु हि फेरी लेत है फिरते दीसै आंन।
सुन्दर ऐसै जानि तूं तेरौ ही अज्ञांन॥ १०॥

सुन्दर याकै शंक ह्वै याही ह्वै निहसंक।
याही सूधौ ह्वै चलै याही पकरै वंक॥ ११॥

सुन्दर याकै अज्ञता याही करै विचार।
याही बूडै धार मैं याही उतरै पार॥ १२॥

सुन्दर अपने भाव करि पूजै देवी देव।
यह मैं पायौ पुत्र धन बहुत करी तीं सेव॥ १३॥

सुन्दर सूकै हाड कौं स्वान चचोरै आइ।
अपनौई मुख फोरि कै लोही चाटै पाइ॥ १४॥

---

(५) सुनहा=श्वान, कुत्ता।

* (८) "अत्यन्त" होता तो अनुप्रास ठीक रहता।

(११) वंक=बांकापन।

(१३) तीं=उसकी। या उसने।

(१४) चचोरै=चबावै।

सुन्दर अपने भाव करि आप कियौ आरोप।
काहू सों सन्तुष्ट ह्वै काहू ऊपर कोप॥ १५॥

अपनोई सब भाव है जो कछु दीसै और।
सुन्दर समुझै आतमा तब याही सब ठौर॥ १६॥

नीचै तें नीचौ सही ऊंचे ऊपरि ऊंच।
सुन्दर पीछै तें पछै आगै कौं न पहूंच॥ १७॥

बाहिर भीतरि सारिपौ व्यापक ब्रह्म अखण्ड।
सुन्दर अपने भाव तें पूरि रह्यौ ब्रह्मण्ड॥ १८॥

याही देषत सूर सौ याही देषत चन्द।
सुन्दर जैसौ भाव है तैसोई गोविन्द॥ १९॥*

याही देषत नूर कौं याही देषत तेज।
याही देषत जोति कौं सुन्दर याकौ हेज॥ २०॥

सुन्दर अपने भाव तें जनकी करै सहाइ।
बाहिर चढि कै बीठलौ दुष्ट हि मारै आइ॥ २१॥

सुन्दर अपने भाव तें मूरत पीयौ दुद्ध।
ठाकुर जान्यौं सत्य करि नांमां कौ उर सुद्ध॥ २२॥

सुन्दर अपने भाव तें रूप चतुर्भुज होइ।
याकौं ऐसोई द्रसैं वाकै रूप न कोइ॥ २३॥

काहू मान्यौ सींग सौ हृदये उपज्यौ चाव।
सुन्दर तैसोई भयौ जाकै जैसौ भाव॥ २४॥

काहू सौं अति निकट है काहू सौं अति दूरि।
सुन्दर अपनौ भाव है जहां तहां भरपूरि॥ २५॥

॥ इति आपनें भाव कौ अंग ॥ २२ ॥

---

* । १९ । "गोव्यंद" से अनुप्रास ठीक होता है।

(२२) बीठल और नामदेवजी की कथा भक्तमाल में प्रसिद्ध है।

॥ अथ स्वरूप विस्मरण को अंग ॥ २३ ॥

सुन्दर भूलौ आपकौं पोई अपनी ठौर ।
देह मांहिं मिलि देह सौ भयौ औरकौ और ॥ १ ॥

जा घट की उनहारि है तैसौ दीसत आहि ।
सुन्दर भूलौ आपु ही सो अब कहिये काहि ॥ २ ॥

हाथी मांहे देषिये हाथी कौ अभिमांन ।
सुन्दर चीटी मांहिं रिस चीटी कै अनुमांन ॥ ३ ॥

सिंह मांहिं है सिंह सौ स्यालमांहिं पुनि स्याल ।
जैसो घट उनहार है सुन्दर तैसौ ष्याल ॥ ४ ॥

हंस मांहिं है हंस सौ मोर मांहि है मोर ।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैसौई तिहिं वोर ॥ ५ ॥

बीछू में बीछू भयौ सर्प मांहि है सांप ।
सुन्दर जैसौ घट भयौ तैसौ ह्वै आप ॥ ६ ॥

वांदर में वांदर भयौ मच्छ मांहि पुनि मच्छ ।
सुन्दर गाइनि मैं गऊ वच्छनि मांहे वच्छ ॥ ७ ॥

जलचर थलचर व्योमचर गनै कहां लौ कोइ ।
सुन्दर जैसौ घट जहां रह्यौ तिसौही होइ ॥ ८ ॥

सुन्दर पावक दार के भीतरि रह्यौ समाइ ।
दीरघ मैं दीरघ लगै चौरे मैं चौराइ ॥ ९ ॥

रंचक काढै मथन करि वहुरि होइ वलवन्त ।
सुन्दर सबही काठ कौं जारि करै भस्मन्त ॥ १० ॥

[अंग २३] (२) उनहारि=समान, मिलता हुआ ।

(३) रिस=रीस, क्रोध ।

(९) दार=दारु, काठ ।

सुन्दर जड के संग तें भूलि गयौ निजरूप ॥
देषहु कैसो भ्रम भयौ बूडि रह्यौ भव कूप ॥ ११ ॥

सुन्दर इन्द्रिय स्वाद सौं अति गति बांध्यौ मोह ।
मीन न जानै बावरौ निगलि गयौ सठ लोह ॥ १२ ॥

मरकट मूठ न छाडई बंध्यौ स्वाद सौं जाइ ।
सुन्दर गर मैं जेवरी घर घर नाच्यौ आइ ॥ १३ ॥

जैसैं मदिरा पान करि होइ रह्या उनमत्त ।
सुन्दर ऐसैं आपु कौं भूल्यौ आतम तत्त ॥ १४ ॥

ज्यौं ठगमूरि पात ही रहै कछू नहिं बुद्धि ।
यौं सुन्दर निजरूप की भूलि गयौ सब सुद्धि ॥ १५ ॥

जैसैं बालक शंक करि कंपि उठै भय मांनि ।
ऐसैं सुन्दर भ्रम भयौ देह आपु कौ जांनि ॥ १६ ॥

जे गुन उपजै देह कौं सुख दुख बहु संताप ।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ ते सब मांनै आप ॥ १७ ॥

शीत उष्ण क्षुधा तृषा मोकौं लागै आइ ।
सुन्दर या भ्रम की नदी ताही मैं बहि जाइ ॥ १८ ॥

अंध बधिर गूंगौ भयौ मेरौ कौंन हवाल ।
सुन्दर ऐसौ मांनि करि बहुत फिरै बेहाल ॥ १९ ॥

मिलि करि या जड देह सौं रह्यौ तिसौही होइ ।
सुन्दर भूलौ आपु कौं सुधि बुधि रही न कोइ ॥ २० ॥

सुन्दर चेतनि आतमा जडसौं कियौ सनेह ।
देह षेह सौं मिलि रह्यौ रत्न अमोलक येह ॥ २१ ॥

दौरि दौरि जड देह कौं आपुहि पकरत आइ ।
सुन्दर पेच पर्‌यौ कठिन सकै नहीं सुरझाइ ॥ २२ ॥

सूवा पकरि नली रह्यौ वह कहुं पकर्‌यौ नांहि ।
ऐसैं सुन्दर आपु सौं पर्‌यौ पींजरा मांहि ॥ २३ ॥

ज्यौं गुंजनि को ढेर करि मरकट मानैं आगि।
ऐसैं सुन्दर आपही रह्यौ देह सौं लागि ॥ २४ ॥

विप्र ह्वै रह्यौ शूद्र सौ भूलि गयौ ब्रह्मत्व।
सुन्दर ईश्वर आपही मांनि लियौ जीवत्व ॥ २५ ॥

राजा सोयौ सेज परि भयौ स्वप्न मंहिं रंक।
सुन्दर भूलौ आपकौं देह लगाई पंक ॥ २६ ॥

ज्यौं नर वहुत स्वरूप है भ्रम तें कहै कुरूप।
सुन्दर भूलौ आपुकौं आतम तत्व अनूप ॥ २७ ॥

वनिया मूंधौ ह्वै रह्यौ टूंगै फेर्‌यौ हाथ।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ मेरैं तौ नहिं माथ ॥ २८ ॥

ज्यौं मनि कोऊ कंठ थी भ्रम तें पावै नांहिं।
पूछत डोलै और कौं सुन्दर आपुहि मांहिं ॥ २९ ॥

सुन्दर चेतनि आपु यह चालत जड की चाल।
ज्यौं लकरी के अश्व चढि कूदत डोलै वाल ॥ ३० ॥

भूतनि मांहें मिल रह्यौ तातें हूवौ भूत।
सुन्दर भूलौ आपु कौं उरझयौ नौ मन सूत ॥ ३१ ॥

आपुहि इन्द्री प्रेरि कै आपुहि मांनै सुक्ख।
सुन्दर जव संकट परै आपु हि पावै दुःख ॥ ३२ ॥

यौं भ्रम तें वहु दिन भये वीति गयौ चिरकाल।
सुन्दर लह्यौ न आपुकौं भूलि पर्‌यौ भ्रमजाल ॥ ३३ ॥

---

(२४) गुंजनि=लाल चिरमटी। (२६) पंक=कादा, मलिनता।

(२८) मूंधो=औंधा, उलटा। टूंगै=ढूंगे पर, चूतड पर। मूर्ख वनिये ने चूतड़ पर हाथ फेरा तो खयाल किया कि यह तो चूतड़ है सिर नहीं है तो मान लिया कि सिर नहीं रहा। ऐसा उसे भ्रम हो गया। ऐसा सुन्दरदासजी ने कहीं देखा सो ही स्वरूप-विस्मरण के दृष्टांत में लिख दिया।

देह मांहि है देह सौ कियौ देह अभिमांन।
सुन्दर भूलौ आपु कौं बहुत भयौ अज्ञांन॥ ३४॥

कामी हूवो काम रत जती हुवो जत साधि।
सुन्दर या अभिमान तें दोऊ लागी ब्याधि॥ ३५॥

कतहू भूलौ नीच है कतहू ऊंची जाति।
सुन्दर या अभिमांन करि दोनौं ही कै राति॥ ३६॥

कतहू भूलौ मौंनि धरि कतहू करि बकवाद।
सुन्दर या अभिमान तें उपज्यौ बहुत बिषाद॥ ३७॥

सुन्दर यौं अभिमान करि भूलि गयौ निज रूप।
कबहूं बैठै छांहरी कबहूं बैठै धूप॥ ३८॥

सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ छूटौ अपनौ भौंन।
दिशा भूल जानै नहीं पूरब पच्छिम कौंन॥ ३९॥

सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागौ भूत।
काहू सौं बनिया कहै काहू सौं रजपूत॥ ४०॥

सुन्दर वाकी सुधि गई जाकौं लागी बाइ।
कहै औरकी औरई जो भावै सो पाइ॥ ४१॥

काहू सौं बांभन कहै काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ यौं ही मारै गाल॥ ४२॥

ज्यौं अमली की ऊंघतें परी भूमि पर पाग।
वह जानै यह और की सुन्दर यौं भ्रम लाग॥ ४३॥

---

(३६) राति=अंधेरा, अज्ञान। अथवा आराति=दुःख।

(४२) बांभन=ब्राह्मण। ब्राह्मण शब्द का गंवारु अपभ्रंश है। हास्य के लिए ऐसा अपभ्रंश दिया है।

(४३) अमली=अमलदार, अफीमची। ऊंघ=ऊंघना।

जैसैं चिल्लीसेप ह्व कियौ मनोरथ और।
सुन्दर भूलौ आपु कौ यौं हूवो घर चौर॥ ४४॥

देह आपको जानि करि ब्राह्मन क्षत्रिय होइ।
वैश्य सूद्र सुन्दर भयौ अपनी सुधि बुधि षोइ॥ ४५॥

देह पुष्ट ह्वै दूबरी लगै देह कौं घाव।
चेतनि मांनै आपुकौं सुन्दर कौंन सुभाव॥ ४६॥

देह बाल अरु बृद्ध ह्वै जोवनि ह्वै पुनि देह।
सुन्दर मानैं आपुकौं यहु अचिरज येह॥ ४७॥

बुद्धि हीन अति बावरौ देह रूप ह्वै जाइ।
सुन्दर चेतनता गई जडता रही समाइ॥ ४८॥

सान्यौ घर मांहे कहै हूं अपने घर जांउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौ भूलौ अपनौ ठांउं॥ ४९॥

रवि रवि कौं ढूंढत फिरै चन्द हि ढूंढै चन्द।
सुन्दर हूवो जीव सौ आपु इहै गोविंद॥ ५०॥

॥ इति स्वरूप विस्मरण कौ अंग॥ २३॥

---

(४४) चिल्लीसेप="शेख चिल्ली"। अपभ्रंश 'सेखसाली'। लाहोर के प्रसिद्ध शेखचिल्ली फकीर की कहावत से दृष्टांत है।

(४५) ब्राह्मन क्षत्रिय होय=आत्मा का ज्ञान (ब्रह्मत्व) भूलकर देहाभिमान (क्षत्रियत्व) हो जाता है। वैश्य सूद्र सुन्दर भयौ=यहां यह चमत्कार है कि सुन्दरदासजी जाति के वैश्य होकर सांसारिक व्यवहार में फसकर शूद्रता को प्राप्त हुए। अथवा हे सुन्दर! (वा सुन्दर कहता है कि) उच्चवर्ण वा अवस्था (वैश्यता) से गिरकर नीचवर्ण (शूद्रता) को पहुँचा। यह ज्ञान हीनता से निंदनीय हुआ।

(४९) सान्यौ=(सं० सानु=पंडित) पंडित। स्याना, सयाना। (यदि बावला कहै तो कोई बात नहीं। सयाना ऐसा कहे यही अचरज है)।

(५०) गोविंद=ईश्वर। ब्रह्म।

॥ अथ सांख्य ज्ञान कौ अंग ॥ २४ ॥

दोहा

सुन्दर सांख्य विचार करि संमुझै अपनौ रूप ।
नहितर जड के संग तें बूडत है भव कूप ॥ १ ॥

माया कै गुन जड सबै आतम चेतनि जानि ।
सुन्दर सांख्य विचार करि भिन्न भिन्न पहिचानि ॥ २ ॥

पंच तत्व की देह जड सब गुन मिलि चौवीस ।
सुन्दर चेतनि आतमा ताहि मिलै पचीस ॥ ३ ॥

छब्बीसवौं सु ब्रह्म है सुन्दर साक्षी भूत ।
यौं परमातम आतमा यथा बाप तें पूत ॥ ४ ॥

देह रूपई ह्वै रह्यौ देह आपकौं मानि ।
ताही तें यह जीव है सुन्दर कहत बषांनि ॥ ५ ॥

देह भिन्न हौं भिन्न हौं जब यह करै विवेक ।
सुन्दर जीव न पाइये होइ एक कौ एक ॥ ६ ॥

क्षीण सपष्ट शरीर है शीत उष्ण तिहिं लार ।
सुन्दर जन्म जरा लगै यह पट देह विकार ॥ ७ ॥

क्षुधा तृषा गुन प्रान कौं शोक मोह मन होइ ।
सुन्दर साक्षी आतमा जानै विरला कोइ ॥ ८ ॥

जाकी सत्ता पाइ करि सब गुन ह्वै चैतन्य ।
सुन्दर सोई आतमा तुम जिनि जानहुं अन्य ॥ ९ ॥

[अंग २४] (७) सपष्ट=सुपुष्ट, मोटा ।

(९) गुन ह्वै चैतन्य=चेतन आत्मा की सत्ता से जड़ प्रकृति चेतन का सा काम करती है । चुम्बक के संसर्ग से जैसा लोहा चलन-हलन करने लगता है ।

बुद्धि भ्रमैं मन चित्त पुनि अहंकार वहु भाइ।
सुन्दर ये तौ तैं भ्रमैं तूं क्यौं इनि संग जाइ॥ १०॥
श्रोत्र त्वचा दृग नासिका रसना रस कौं लेत।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमै तूं क्यौं वांध्यौ हेत॥ ११॥
वाक्य पानि अरु पाद पुनि गुदा उपस्थ हि जांनि।
सुन्दर ये तो तैं भ्रमैं तूं क्यौं लीने मांनि॥ १२॥
सुन्दर तूं न्यारौ सदा क्यौं इन्द्रिनि संग जाइ।
ये तो तेरी शक्ति करि वरतैं नाना भाइ॥ १३॥
सुन्दर मन कौं मन कहै वहुरि बुद्धि कौं बुद्धि।
तोहि आपने रूप की भूलि गई सब सुद्धि॥ १४॥
कहै चित्त कौं चित्त पुनि सुन्दर तोहि वषानि।
अहंकार कौं है अहं जानि सकै तो जानि॥ १५॥
सुन्दर श्रवणनि कौ श्रवण आहि नैंन कौं नैंन।
नासा कौं नासा कहै अरु वैननि कौ वैंन॥ १६॥
सुन्दर सिर को सीस है प्राननि कौ है प्रांन।
कहत जीव कौं जीव सब शास्तर वेद पुरांन॥ १७॥
सुन्दर तूं चेतन्य घन चिदानंद निज सार।
देह मलीन असुचि जड विनसत लगै न वार॥ १८॥
सुन्दर अविनाशी सदा निराकार निहसंग।
देह विनश्वर देषिये होइ पलक मैं भंग॥ १९॥
सुन्दर तूं तौ एकरस तोहि कहौं समुझाइ।
घटै वढै आवै रहै देह विनसि करि जाइ॥ २०॥

---

(१०) (११) (१२) तौ तैं=तुझ से। हे सुन्दर (वा हे आत्मा)! सम्बोधन करके अज्ञान निवारण करने को चेतावनी देते हैं।

(१४) "मन कौं मन"।=इस कहने से यह अभिप्राय है कि इन जड़ पदार्थों को चेतन समझ कर स्वतन्त्र व्यक्तित्व देकर अज्ञानी होते हैं।

जे विकार हैं देह कै देहहि के सिर मारि।
सुन्दर याते भिन्न है अपनौ रूप विचारि ॥ २१ ॥

सुन्दर यह नहिं यह नहीं यह तौ है भ्रम कूप।
नाहिं नाहिं करते रहैं सो है तेरौ रूप ॥ २२ ॥

एक एक कै एक पर तत्व गनैं तै होइ।
सुन्दर तूं सब कै परै तौ ऊपरि नहिं कोइ ॥ २३ ॥

एक एक अनुलोम करि दीसहिं तत्व स्थूल।
एक एक प्रतिलोम तें सुन्दर सूक्षम मूल ॥ २४ ॥

सूक्षम तें सूक्षम परै सुन्दर आपुहि जांनि।
तो तें सूक्षम नाहिं कौ याही निश्चय आंनि ॥ २५ ॥

इन्द्रिय मन अरु आदि दे शब्द न जानै तोहि।
सुन्दर तोतें चपल ये तूं इनितें क्यौं होहि ॥ २६ ॥

धूलि धूम अरु मेघ करि दीसै मलिनाकाश।
सुन्दर मलिन शरीर संग आतम शुद्ध प्रकाश ॥ २७ ॥

देहनि कै ज्यौं द्वार मैं पवन लिपै कहुं नाहिं।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया माहिं ॥ २८ ॥

पावक लोह तपाइये होइ एकई अंग।
तैसें सुन्दर आतमा दीसै काया संग ॥ २९ ॥

---

(२४) अनुलोम। प्रतिलाम।=सुल्टा, उल्टा। प्रथम अति सूक्ष्म से चलकर उत्तरोत्तर अति स्थूल तक। फिर उल्टा चलकर अति स्थूल से अति सूक्ष्म तक।

(२५) सूक्षम तें सूक्षम परैं="अणोरणीयान्" अणु अत्यन्त सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म।

(२८) पवन लिपै कहुं नांहि=पवन (आकाशादि सूक्ष्म पदार्थ) जो देह के अपेक्षा सूक्ष्म है सो स्थूल देह में लिप्त नहीं होता है। देह के परमाणु आदि अवयवों में सूक्ष्म पवनादि प्रवेश करते हैं और 'लिपैं छिपैं' नहीं। वैसे ही आत्मा सर्वत्र व्यापक है और वैसे ही बुद्धिगम्य हो सकती है।

चोट परैं घन की जवहिं पावक भिन्न रहाइ।
सुन्दर दीसै प्रगट हो लोहा वधता जाइ॥ ३०॥

सुन्दर पावक एकरस लोहा घटि वढि होइ।
तैसैं सुख दुख देह कौं आतम कौं नहीं कोइ॥ ३१॥

नीर क्षीर ज्यौं मिलि रहे देह आतमा दोइ।
सुन्दर हंस विचार विन भिन्न भिन्न नहिं होइ॥ ३२॥

देह धात माहें मिलै आतम कनक कुरूप।
सुन्दर सांख्य सुनार विन होइ न शुद्ध स्वरूप॥ ३३॥

जवहिं कंचुकी हात है भिन्न न जानै सर्प।
तैसैं सुन्दर आतमा देह मिले तें दर्प॥ ३४॥

सर्प तजै जव कंचुकी वा दिसि देषै नांहिं।
सुन्दर संमुर्फ आतमा भिन्न रहै तनु मांहिं॥ ३५॥

सुन्दर काला घटै वढै शशि मंडल कै संग।
देह उपजि विनशत रहै आतम सदा अभंग॥ ३६॥

देह कृत्य सव करत है उत्तम मध्य कनिष्ट।
सुन्दर साक्षी आतमा दीसै मांहिं प्रविष्ट॥ ३७॥

अग्नि कर्म संयोग तें देह कडाही संग।
तेल लिंग दोऊ तपै शशि आतमा अभंग॥ ३८॥

सूक्ष्म देह स्थ्‌ल कौ मिल्यौ करत संयोग।
सुन्दर न्यारौ आतमा सुख दुख इनकौ भोग॥ ३९॥

---

(३०) घन की चोट से अग्नरूपी आत्माओं का विकार नहीं होता है विकार स्थूल लोहारूपी शरीर को ही होता है।

(३८) लिंग=लिंग शरीर। कड़ाहो के तप्त तेलरूपी सूक्ष्म शरीर में वड़ा, पुरी, कचोरी आदि स्थूल शरीर वा कारण शरीर। शशि आतमा=चन्द्रमा की तरह आत्मा शीतल रह कर तप्त न होकर अभंग (न्यारा) रहता है।

हलन चलन सब देह कौ आतम सत्ता होइ।
सुन्दर साक्षी आतमा कर्मन लागै कोइ॥ ४०॥

सुन्दर सूरय कै उदै कृत्य करै संसार।
ऐसैं चेतनि ब्रह्म सौं मन इंद्रिय आकार॥ ४१॥

व्योम वायु पुनि अग्नि जल पृथवी कीये मेल।
सुन्दर इनतें होइ का चेतनि पेलै पेल॥ ४२॥

सुन्दर तत्व जुदे जुदे राष्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के पंभ में कौंन वस्तु कहि वीर॥ ४३॥

देह आप करि मांनिया महा अज्ञ मतिमंद।
सुन्दर निकसै छीलकै जबहिं उचेरै कंद॥ ४४॥

काष्ट सु जोरे जुगति करि कीया रथ आकार।
हलन चलन जातें भया सो सुन्दर ततसार॥ ४५॥

तत्व कहे इकतीस लौं मत जू जुवा बपांनि।
सुन्दर जल कौनें पिया मृग तृष्णा घर आंनि॥ ४६॥

देह स्वर्ग अरु नरक है बंद मुक्ति पुनि देह।
सुन्दर न्यारौ आतमा साक्षी कहियत येह॥ ४७॥

सुन्दर नदी प्रवाह में चलत देषिये चन्द।
तैसें आतम अचल है चलत कहैं मतिमंद॥ ४८॥

---

(४१) आकार=मन, इन्द्रिय और शरीर साकार पदार्थ कर्म करते हैं। आत्मा नहीं करता। आत्मा की सत्तामात्र से कर्म है।

(४४) कन्द=कांदा, प्याज जिसमें छिलके ही छिलके होते हैं कदली खम्भ की तरह।

(४६) इकतीस तत्व=५ तत्व +५ तन्मात्राएं +५ ज्ञानेन्द्रिय +५ कर्मेन्द्रिय +४ अन्तःकरण +३ गुण +१ प्रकृति +१ जीव +१ ईश्वर +१ परमात्मा। मत जु जुवा बपानि=जुदे-जुदे मतमतान्तर (शास्त्रों में) कहते हैं। मृगतृष्णा घर आनि। मृगतृष्णा का जल मिथ्या है। उसको पीकर कौन घर आया वा उसे घर लाया।

गोमूत्रिका बंध—१—२

प्रथम गोमूत्रिका बंध "माया" इत्यादि दोहा स्पष्ट ही है।

इसके पढ़ने की विधिः—

प्रथम चित्र में प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर 'मा' को द्वितीय पंक्ति के 'या' के साथ पढ़ने से 'माया' हुआ। इसी प्रकार प्रथम और द्वितीय पंक्तियों को मिला कर पढ़ने से दोहे की प्रथम अर्धाली हो गई। और तृतिय पंक्ति के अक्षरों को द्वितीय पंक्ति के अक्षरों के साथ पढ़ने से दूसरी अर्धाली होगी। जो सारा छन्द दूसरे चित्रों में स्पष्ट है। और तीसरे चित्र में दूसरे की तरह तिरछे अक्षरों के पढ़ने से भी वही पाठ पढ़ा जायगा ॥ १ ॥ (र को ल भी पढ़ा गया है)

दूसरे गोमूत्रिका छंद के पढ़ने की विधिः—

प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर 'गो' को द्वितीय पंक्ति के प्रथम अक्षर 'वि' के साथ पढ़ कर उसी द्वितीय पंक्ति के द्वितीय अक्षर 'द' को पढ़ कर उसके ऊपर के अक्षर 'जी' के साथ पढ़ने से 'गोविंदजी' हुआ। इसही तरह आगे 'गोपालजी' और फिर 'नरहर' और फिर 'निरामये' पढ़ा जाता। यों ८—८ अक्षर के चार हुए। उत्तर अर्धाली स्पष्ट है ही ॥ २ ॥

बहुत सुगंध दुगन्ध करि भरिये भाजन अंबु।
सुन्दर सब मैं देषिये सूरय कौ प्रतिबिंबु ॥ ४९ ॥

देह भेद बहु विधि भये नाना भांति अनेक।
सुन्दर सब मैं आतमा वस्तु विचारें एक ॥ ५० ॥

तिलनि माहिं ज्यौं तेल है सुन्दर पय मैं घीव।
दार माहिं है अग्नि ज्यौं देह माहिं यौं सीव ॥ ५१ ॥

फूल माहिं ज्यौं वासना इक्षु माहिं रस होइ।
देह माहिं यौं आतमा सुन्दर जानै कोइ ॥ ५२ ॥

पोसत माहिं अफीम है वृक्षन मैं मधु जांनि।
देह माहिं यौं आतमा सुन्दर कहत बषांनि ॥ ५३ ॥

सुन्दर ब्रह्म अवर्न है व्यापक अग्नि अवर्न।
देह दार तें देषिये पावक अंतहकर्न ॥ ५४ ॥

तेज प्रकास रु कल्पना जब लग संग उपाधि।
जब उपाधि सब मिटि गई सुंदर सहज समाधि ॥ ५५ ॥

सुन्दर देह सराव मैं तेल भर्‌यौ पुनि स्वास।
बाती अंतहकरन की चेतनि जोति प्रकास ॥ ५६ ॥

सुन्दर पंद्रह तत्व कौ देह भयौ सौ कुम्भ।
नौ तत्वनि कौ लिंग पुनि मांहिं भर्‌यौ है अंभ ॥ ५७ ॥

जीव भयौ प्रतिबिंब ज्यौं ब्रह्म इंदु आभास।
सुन्दर मिटै उपाधि जब जहं के तहां निवास ॥ ५८ ॥

जाग्रत स्वप्न सुषोपती इनितें न्यारौ होइ।
सुन्दर साक्षी तुरियतत रूप आपनौ जोइ ॥ ५९ ॥

---

(५४) अवर्न=वर्णन रहित। अथवा वर्ण (रंगरूप) रहित। अंतहकर्न=अंतःकरण द्वारा दिखाई देता है आंख से नहीं।

(५७-५९) ऐसे वर्णन कई वेर आ चुके हैं वहां प्रसंग और टीका में देखें।

तीन अवस्था जड कही ये तौ है भ्रमकूप।
सुन्दर आप विचारि तूं चेतनि तत्व स्वरूप ॥ ६० ॥

जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनि अवस्था गौंन।
सुन्दर तुरिय चढ्यौ जबहिं परी चढै तब कौंन ॥ ६१ ॥

॥ इति सांख्य ज्ञान को अंग ॥ २४ ॥

॥ अथ अवस्था अंग ॥ २५ ॥

एक अंग सो आतमा सुंन अवस्था तीन।
सुंदर मिलि करि बांचिये न्यारे न्यारे कीन ॥ १ ॥

एक सुंन तें दस भये दूजी सत ह्वै जाहिं।
तीजी सुंन सहस्र ह्वै एक विना कछु नाहिं ॥ २ ॥

सुंन सुंन दस गुन बधै बहु विधि ह्वै विस्तार।
सुंदर सुंन मिटाइये एक रहै निरधार ॥ ३ ॥

तीनि अवस्था माहिं है सुन्दर साक्षीभूत।
सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत ॥ ४ ॥

---

(६१) तुरिय=यहां श्लेष है—(१) तुरी=घोड़ा। (२) तुरीय=तुरीयातीत (परमात्मा)।

[अंग २५] (१-२) सुंन=(१) शून्य (२) शून्यावस्था, मिथ्या माया। एक के अङ्क के आगे शून्य (बिन्दी) लगाने से १०, १००, १००० बन जाते हैं। चेतन परमात्मा बिन जड़ प्रकृति शून्य मात्र है। और शून्य (प्रकृति) को मिटाने से एक (१) परमात्मा ही रह जाता है। प्रकृति को जीतना ही ईश्वर प्राप्ति है।

(४) तीनि अवस्था=१ जाग्रत। २ स्वप्न। ३ सुषुप्ति।

(१) अवस्था का अन्य भेद ।

सुन्दर जागत भींत महि लिष्यौ जगत चित्रास ।
स्वप्न घौंट सनमुख भई दसैं सकल घट नास ॥ ५ ॥

चित्र कछू नहिं देपिये जवहिं अंधेरौ होइ ।
सुन्दर सुपुपति मैं गये जाग्रत स्वप्ना दोइ ॥ ६ ॥

तीन अवस्था तें जुदौ आतम व्योम समान ।
भीति चित्र पुनि घौंट तम लिप्त नहीं यौं जान ॥ ७ ॥

(२) अवस्था का अन्य भेद ।

सुन्दर जाग्रत धूप है स्वप्न जौन्ह ज्यौं जानि ।
दोऊ माहें देपिये रूप सकल पहिचानि ॥ ८ ॥

सुपुपति मावस की निसा अभ्र रहे पुनि छाइ ।
सुन्दर कछु सूझै नहीं रूप सकल छिपिजाइ ॥ ९ ॥

धूप जौन्ह तम रूप सौं नैंन लिपै कहुं नाहिं ।
सुन्दर साक्षी आतमा तीन अवस्था मांहि ॥ १० ॥

(३) अवस्था का अन्य भेद ।

वाजीगर परदा किया सुन्दर वैठा मांहिं ।
पेल दिपावै प्रगट करि आप दिपावै नांहिं ॥ ११ ॥

---

(५) चित्रास=चित्राशय, चित्र समूह । घौंट=गहरी नींद, सुपुप्ति । स्वप्न और सुपुप्ति (दोनों) अवस्थाओं में जाग्रत् के दृश्य अदृष्ट हो जाते हैं ।

(७) भीति-चित्र=जाग्रत में । घौंट=सुपुप्ति में लिपटा या छिपा हुआ । तम=अन्धेरे में स्वप्नावस्था में ।

(८) जौन्ह=जौन्हाई, जुन्हाई, चांदनी ।

(१०) नैंन=नेत्र, रूपज्ञान की शक्ति वा इन्द्रिय तीनों अवस्था में लोप नहीं होती है । वैसेही आत्मा तीनों अवस्थाओं में वर्त्तमान है । केवल अवस्था भेद ज्ञान की सामग्री के भेद से है ।

नर पशु पंषी काठ के प्रगट दिषावे षेल।
हस्त क्रिया सब करत हैं सुन्दर आप अकेल॥ १२॥

सुन्दर चेतनि शक्ति विन नाचि सकै नहिं कोइ।
त्यौं यह जाग्रत जानिये जो कछु जाग्रत होइ॥ १३॥

बहुरि वहै रजनी विषै परदा करै बनाइ।
सुन्दर बैठा गोपि ह्वै बाहरि षेल दिषाइ॥ १४॥

नर पशु पंषी चर्म के दीसहिं रूप अनेक।
सुन्दर चेतनि शक्ति करि नांच नचावै एक॥ १५॥

यौं यह स्वप्नें देषिये जाग्रत कौ आभास।
सुन्दर दोऊ भ्रम भये जाग्रत स्वप्न प्रकास॥ १६॥

अब सुनि सुषुपति की कथा सुन्दर भ्रम कछु नांहिं।
काठ कर्म कौ षेल सब धर्‍यौ पिटारा मांहिं॥ १७॥

सुन्दर बाजीगर जुदौ षेल करै दिन राति।
वहै षेल रजनी करै वहै षेल परभाति॥ १८॥

जाग्रत स्वप्न सु जमुनिका सुषुपति भई पिटार।
सुन्दर बाजीगर जुदौ षेल दिषावन हार॥ १९॥

तीन अवस्था कै परै चौथी तुरिया जांनि।
सुन्दर साक्षी आतमा ताहि लेहु पहिचांनि॥ २०॥

(४) अवस्था का अन्य भेद।

एक अवस्था के विषै तीनहुं वर्तैं आइ।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती सुन्दर कहत सुनाइ॥ २१॥

जाग्रदवस्था जानिये सब इन्द्रिय व्यापार।
अपने अपने अर्थ कौं सुन्दर करैं विहार॥ २२॥

---

(१९) जमुनिका=जवनिका, पर्दा, आवरण।

जाग्रत मैं स्वप्ना वहै करै मनोरथ आंन।
नैंन न देषै रूप कौं शब्द सुनै नहिं कांन॥ २३॥

जाग्रत मैं सुषुपति भई जवहिं तंवारौ होइ।
सुन्दर भूलै देह कौं सुधि बुधि रहै न कोइ॥ २४॥

स्वप्नै मैं जाग्रत वहै वचन कहै मुख द्वार।
ज्वाब देत हैं और कौं सुन्दर शुद्धि न सार॥ २५॥

स्वप्नै मांहैं स्वप्न है देषै नाना रूप।
जागैं तें सब कहत है सुन्दर छाया धूप॥ २६॥

सुन्दर ऐसैं जानियें सुषुपति स्वप्ना मांहिं।
स्वप्नै हो मैं अनुभवै जागै जानैं नांहिं॥ २७॥

सुषुपति मैं जाग्रत उहै जानी करि अनुमांन।
जागें तें ततपर भयौ सब इन्द्रिनि कौ ज्ञांन॥ २८॥

सुषुप्ति ही मैं स्वप्न है जागैं वक्रित चित्त।
कछूक बार लषै नहीं सुन्दर चित्त अवित्त॥ २९॥

सुषुप्ति मैं सुषुप्ति उहै सुख अनुभवै प्रभाति।
सुन्दर जागैं कहत है सुख सौं सूते राति॥ ३०॥

तीन अवस्था भेद है तीनौं ही भ्रमकूप।
चौथी तुरिया ज्ञानमय सुन्दर ब्रह्म स्वरूप॥ ३१॥

(५) *अवस्था कौ अन्य भेद।*

वर वरियान वरिष्ट पुनि तीनहुं कौ मत एक।
भिन्न भिन्न व्यौहार है सुन्दर समुझ विवेक॥ ३२॥

---

(२४) तंवारौ=तिंवाला, गश वेहोशी।

(२९) वक्रित=वक्री, चलायमान। अवित्त=वित्त रहित, शक्तिहीन, गुणहीन। थोथा। कोरा।

(३२) वर वरियान, वरिष्ट=महात्मा, गुरु और सिद्ध के ये तीन दर्जे हैं।

वर सो जीवन मुक्त है तुरिया साक्षी भूत।
लिपै छिपै नहिं सब करै अंनकरता अवधूत ॥ ३३ ॥
महा मुक्त अक्रिय सदा सो कहिये वरियान।
तुरिया तुरियातीत कै मध्य कहैं सज्ञान ॥ ३४ ॥
जाकी गति न लपि परै सो कहिये जु वरिष्ट।
तुरियातीत परातपर वचन परै उतकृष्ट ॥ ३५ ॥
ब्रह्म समुद्र जहां तहां ता महिं तीनौं लीन।
एक किनारे आइ करि सब कौं सिक्षा दीन ॥ ३६ ॥
दूजौ रहै समुद्र मैं सीस दिपावै आइ।
पूछै बोलै वचन कौं फेरि तहां छिपि जाइ ॥ ३७ ॥
ब्रह्मानंद समुद्र तें तीजौ निकसै नाहिं।
गहरै पैठौ जाइ कै मगन भयो ता मांहिं ॥ ३८ ॥
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि प्रगट कियौ निज ज्ञांन।
क्रम ही क्रम उपदेश करि किये ब्रह्म सामांन ॥ ३९ ॥
दत्तात्रय शुकदेवजी बोले वचन रसाल।
नृपति परीक्षत भूप जदु मुक्त किये ततकाल ॥ ४० ॥
ऋषभदेव बोले नहीं रहे ब्रह्ममै होइ।
गरक भये निज ज्ञान मैं द्वैत भाव नहिं कोइ ॥ ४१ ॥
जाग्रदवस्था जानिये जबहिं होइ साक्षात।
अष्टावक्र वसिष्ट मुनि कही सबनि सौं बात ॥ ४२ ॥

अष्टावक्र और वशिष्ट आदि को वर संज्ञा बताई है। और दत्तात्रेय और शुकदेवजी को वरियान अवस्था की कथा दी है। तथा ऋषभदेवादि को वरिष्ठ पद मिला है। यों उदाहरण दिये हैं। तीनों अवस्थाओं को समझाने को यह उत्तम उदाहरण महामुनियों के दिये हैं।

स्वप्न अवस्था मांहि है पूछे वोलै सैंन।
दत्तात्रय सुकदेवजी कहे कछूइक वैंन ॥ ४३ ॥

सुपुपति मैं कछु सुधि नहीं ऐसी परम समाधि।
ऋृपभदेव चुप करि रहे छूटी सकल उपाधि ॥ ४४ ॥

(६) *अवस्था का अन्य भेद ।*

मावस अति अज्ञान कै निसा अंधेरी कीन।
ससि आतमा दसै नहीं ज्ञान कला करि हीन ॥ ४५ ॥

है अज्ञान अनादि कौ जीव पर्‍यौ भ्रम कूप।
श्रवन मनन निदिध्यास तें सुन्दर ह्वै चिद्रूप ॥ ४६ ॥

श्रवण सु कहिये प्रतिपदा ज्ञान कला दरसाइ।
दुतिया तृतिया चतुर्थी सुनि पंचमी दिपाइ ॥ ४७ ॥

मनन किये पष्टी दसै अर्थ लेइ पहिचांनि।
होइ सप्तमी अष्टमी नवमी दशमी जांनि ॥ ४८ ॥

निदिध्यास एकादशी पुनि द्वादशी वदंति।
आगै होइ त्रयोदशी चतुर्दशी पर्यंति ॥ ४९ ॥

तदाकार पूरन कला पूरनमासी होइ।
पूरन ज्ञान प्रकाश शशि भ्रम संदेह न कोइ ॥ ५० ॥

ताहि कहत हैं ब्रह्मविदु शास्त्र वेद् पुरांन।
सुन्दर या अनुक्रम विना और सकल अज्ञांन ॥ ५१ ॥

(४५ से ५१) तक—प्रकाश के अनुकम और व्यतिक्रम का उदाहरण देकर तीनों अवस्थाएं समझाई हैं। चन्द्रमा के अभाव में अमावस्या से लेकर जो सुपुप्ति है, प्रतिपदा से दशमी तक थोड़े प्रकाश को स्वप्न और ११ से पूर्णिमा तक वर्द्धमान प्रकाश को जाग्रत कह कर दरसाया है। परन्तु ये उदाहरण पूरे नहीं घटते हैं। कुछ सहायक होते हैं। ब्रह्मविदु=ब्रह्मवित्=ब्रह्मवेत्ता=ब्रह्मज्ञानी।

छप्पय ।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै ।
द्वुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै ॥
तृतिय भूमिका निदिध्यास नीकी विधि करई ।
चतुर्भूमि साक्षातकार संशय सब हरई ॥
अब तासौं कहिये ब्रह्म-विदुवर वरयान वरिष्ट है ।
यह पंच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुन्दर कहे ॥ ५२ ॥

॥ इति अवस्था कौ अंग ॥ २५ ॥

॥ अथ विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

सुन्दर साधन सब थके उपज्यौ हृदय विचार ।
श्रवन मनन निदिध्यास पुनि याही साधन सार ॥ १ ॥

सुन्दर या साधन बिना दूजौ नहीं उपाइ ।
निस दिन ब्रह्म विचार तें जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥ २ ॥

सुन्दर एक विचार है सुरझावन कौं सूत ।
उरझि रह्यौ संसार में नखशिख प्रानी भूत ॥ ३ ॥

उपजै एक विचार जब तब यह पावै ठौर ।
भरमावन कौं जगत महिं सुन्दर साधन और ॥ ४ ॥

---

(५२) सात भूमिका ज्ञान की बताई हैं । परन्तु इनका अधिक सम्बन्ध तीनों अवस्थाओं से नहीं है । प्रसंगवश कह दिया है । चतुर्भूमि=चौथी भूमिका । महात्मा ऐन साहिब ने अपने 'ब्रह्मविलास' में ज्ञान की सात भूमिकाएं इस प्रकार बताई हैं:—(ज्ञान की सात भूमिकाएं)—शुभेच्छा । २ शुभ विचार । ३ तनमनसा । ४ सत्वापत्ति । ५ असंसक्ति । ६ पदार्थाभावनी । ७ तुरीया ।

सुन्दर एक विचार तें हिरदौ निर्मल होइ।
फिरत रहै जौ मसक लौं काटन लागै कोइ ॥ ५ ॥
सुन्दर साधन सब किया बरकति दीसै नांहिं।
आयौ हृदय विचार जब तब संमुफै हरि मांहिं ॥ ६ ॥
करत देह के कृत्य सब जौ उर होइ विचार।
सुन्दर न्यारौई रहै लिपै न एक लगार ॥ ७ ॥
दधि मथि घृत कौं काढि करि देत तक्र मंहि डार।
सुन्दर बहुरि मिलै नहीं ऐसैं लेहु विचार ॥ ८ ॥
जैसैं जल मंहि कंवल है जल तैं न्यारौ सोइ।
सुन्दर ब्रह्म विचार करि सब तैं न्यारौ होइ ॥ ९ ॥
मनि अहि के मुख मैं सदा विष नहिं लागै ताहि।
सुन्दर ब्रह्म विचारि तैं सबसौं न्यारौ आहि ॥ १० ॥
सुन्दर एक विचार तैं सुख दुख होइ समांन।
राग दोष उपजै नहीं तजै मान अपमांन ॥ ११ ॥
सुन्दर एक विचार सौं बुद्धि तजै नानत्व।
जानै एकै आतमा उपजै भाव समत्व ॥ १२ ॥
सुन्दर ब्रह्म विचार है सब्र साधन कौ मूल।
याही मैं आये सकल डाल पान फल फूल ॥ १३ ॥
कीयौ ब्रह्म विचार जिनि तिनि सब साधन कीन।
सुन्दर राजा कै रहै प्रजा सकल आधीन ॥ १४ ॥
परा पश्यंति मध्यमा हृदये होइ विचार।
सुन्दर मुख तैं वैषरी वांणी कौ विस्तार ॥ १५ ॥

---

(५) मसक=मच्छर। काटन लागै=काटै, डंक मारै। अर्थात् मतमतान्तर के वाद-विवाद कर दूसरों को दंश लगावै।

(६) बरकति=सिद्धि, फायदा, सै।

(१२) नानत्व=नानात्व (छन्द के अर्थ संक्षेप हुआ है)।

सुन्दर रूप रहै नहीं रूप रूप मिलि जाइ।
एक अखंडित आतमा सब में रह्यौ समाइ॥ १६॥

इनि दहुंवनि के मध्य है नव तत्वनि कौ लिंग।
सुन्दर करै विचार जब उहै होत तब भंग॥ १७॥

पंच तत्व सौं मिलि रह्यौ सूक्ष्म लिंग शरीर।
सुन्दर एक विचार बिन चेतन मानत सीर॥ १८॥

ज्यौं काहू के रोग हैं नारी देषै वैद।
सुन्दर अपनी सी कहै वायु कियौ तन कैद॥ १६॥

बहुरि बुलायौ जोतिषी उन यह कियौ विचार।
सुन्दर ग्रह लागे सबै कीये पुन्य उवार॥ २०॥

भोपैं भोपी आइ कै बहुत लगायौ दोष।
सुन्दर या ऊपर कियौ देवी देवन रोष॥ २१॥

अपनी अपनी सब कहैं अटकर परै न कोइ।
सुन्दर बहुत मता सुनैं कछू विचार न होइ॥ २२॥

जे विषई अत्यन्त करि रहै विषै फल पाइ।
सुन्दर मावस की निसा अभ्र रहे अति छाइ॥ २३॥

कोऊ एक मुमुक्षु कौं दीयौ गुरु उपदेश।
सुन्दर वासौं यौं कह्यौ यह संसार कलेश॥ २४॥

जन्म मरण बहु भांति के आगे जम की त्रास।
चौरासी के दुःख सुनि सुंदर भयौ उदास॥ २५॥

बादल गये बिलाइ कैं तारनि कैं उजियार।
देष्यौ रजु कौं सर्प तब सुन्दर बिना विचार॥ २६॥

सुंदर कियौ विचार जब प्रगट भयौ तब भान।
अंधकार रजनी गई सर्प मिट्यौ रजु जान॥ २७॥

---

(२२) अटकर=अटकल, अनुमान।

सूतौ जीव नरेस यह सुख सज्जा परि आइ।
वडी अविद्या नींद में सुंदर अति सुख पाइ॥ २८॥
आयौ कर्म पवास चलि नृपति जगावन हेत।
सुंदर दीनी पुटपरी अतिगति भयौ अचेत॥ २९॥
देष्यौ भक्त प्रधान जव राजा जाग्यौ नांहि।
सुन्दर संक करी नहीं पकरि झंझेरी वांहि॥ ३०॥
तव उठि करि वैठौ भयौ वहुरि जंभाई षात।
सुंदर कियौ विचार जव तव जाग्यौ साक्षात॥ ३१॥
देह वोर जो देषिये पंच तत्व कौ देह।
सुन्दर ब्रह्मा कीट लौं करहु विचार सु येह॥ ३२॥
प्रान वोर जो देषिये सवकौ एकै प्रान।
सुन्दर क्षुधा तृषा लगै सवकौ एक समान॥ ३३॥
मनहूं कौ जो देषिये मन सवहिन कौ एक।
सुन्दर करै विकल्पना अरु संकल्प अनेक॥ ३४॥
सुन्दर एकै आतमा जव यह करै विचार।
तव कछु भ्रम दीसै नहीं एक रहै निरधार॥ ३५॥

प्रश्न

कै दुख पावै देह यह कै इन्द्रिनि दुख होइ।
सुन्दर कै दुख प्रान कौ यह संमुझावौ कोइ॥ ३६॥
कै दुख अंतहकरण कौं मन वुधि चित अहँकार।
सुन्दर कै दुख त्रिगुन कौं यह तुम कहौ विचार॥ ३७॥
कै दुख है महतत्व कौं कै दुख प्रकृति हि मांनि।
सुन्दर कै दुख पुरुष कौं श्री गुरु कहौ वषांनि॥ ३८॥

---

(३०) भक्त प्रधान=भक्त अमात्य जो सच्चा हितू है। यह प्रधान विचार है।

(३६) यही विचार 'सवैया" ग्रन्थ में देखो "विचार" के अंग में।

बहु विधि देष्यौ सोच करि कछु जान्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर यह दुख कौन कौं सद्गुरु कहि संमुझाइ ॥ ३६ ॥

उत्तर

सुन्दर दुख नहिं देह कौं इंद्रिनि कौं दुख नांहि।
दुख नहिं दीसै प्रान कौं स्वास चलै तनु मांहि ॥ ४० ॥

दुख नहिं अंतहकरन कौं जिनतें देह प्रवृत्य।
सुंदर दुख नहिं त्रिगुन कौं यह तुम जानहु सत्य ॥ ४१ ॥

दुःख नहीं महतत्व कौं प्रकृति सु तौ जडरूप।
सुन्दर दुख नहिं पुरुष कौं सूक्षम तत्व अनूप ॥ ४२ ॥

जड चेतन संयोग तें उपज्यौ एक अज्ञान।
सुन्दर दुख ताकौं भयौ सद्गुरु कहै सुजान ॥ ४३ ॥

जौ विचार यह ऊपजै तुरत मुक्त ह्वै जाइ।
सुन्दर छूटै दुखन तें पद आनंद समाइ ॥ ४४ ॥

यह विचार सुख रूप है और सवै दुख रासि।
सुन्दर यातैं कटत है नाना विधि की पासि ॥ ४५ ॥

भरमावन कौं और सब पहुंचावन कौं एक।
सुन्दर साधू कहत हैं जाकौ नाम विवेक ॥ ४६ ॥

याही एक विचार तें आतम अनुभव होइ।
सुन्दर संमुझै आपुकौं संशय रहै न कोइ ॥ ४७ ॥

जाही कौं चिंतवन करै तैसौ ही ह्वै जाइ।
सुन्दर ब्रह्म विचार तें ब्रह्म हि मांहि समाइ ॥ ४८ ॥

करत विचार विचारिया एकै ब्रह्म विचार।
सुन्दर सकल विचार में यह विचार निज सार ॥ ४९ ॥

---

(४९) विचारिया=विचार किया । इस विचार को पहुंचे कि 'ब्रह्म एक है'।

ब्रह्म विचारत ब्रह्म ह्वै और विचारत और।
सुन्दर जा मारग चलै पहुंचै ताही ठौर ॥५०॥

॥ इति विचार कौ अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ अक्षर विचार अंग ॥ २७ ॥

ऐंन नहीं अरु ऐंन है गैंन नहीं अरु गैंन।
सुन्दर नुकता आरसी दूरि किये तें ऐंन ॥ १ ॥
सुन्दर नुक़ता भिन्न है मिल्यौ ऐंन सौं नांहिं।
मिलि करि दोऊ वांचिये मिले अमिल यौं मांहिं ॥ २ ॥
ऐंन आतमा जानिये नुकता भयौ शरीर।
सुन्दर दोऊ भिन्न हैं मिले देषियें वीर ॥ ३ ॥
ऐंन सु दीरघ देषिये नुकता तनक दिषाइ।
सुंदर नुकता तनक तैं ऐंन गैंन ह्वै जाइ ॥ ४ ॥
उहै ऐंन उह गैंन है नुकता ही कौ फेर।
सुंदर नुकता भ्रम लग्यौ ज्ञान सुपेदा हेर ॥ ५ ॥

[अंग २७] (१) (ऐन), गैंन='ज्ञानझूलना अष्टक' में इस पर टीका देखो। ऐंन=प्रत्यक्ष। गैंन=अप्रत्यक्ष, विकारमय। नुकता=विन्दु, फ़ारसी के ऐंन (अ़) अक्षर पर विन्दु लगाने से गैन अक्षर (ग़) बन जाता है। यहां विन्दु माया का विकार अभिप्रेत है। आर=आड़, (मल, विक्षेप आवरण) रुकावट। अमिल=नुकता (माया) ऐंन (ब्रह्म) से भिन्न है। ऊपर (आरोपित) रहने से उसमें मिला सा प्रतीत होता है। शरीर=शरीर मायाकृत है।

(५) सुपेदा=अक्षर मिटाने को अक्षर पर (हरताल की तरह) लगाने को।

ऐंन गेंन के ऊपरैं नुकता फूला होइ।
ऐंन गैंन ह्वै जात है ऐंन न सूझै कोइ॥ ६॥

नुकता फूला ऊपरै सुन्दर अंजन लाइ।
नुकता फूला दूरि ह्वै ऐंन हि ऐंन दिपाइ॥ ७॥

ज्यौं आकार अक्षरनि मैं त्यौं आतम सब मांहिं।
सुन्दर एकै देषिये भिन्न भाव कछु नांहिं॥ ८॥

जैसैं विंजन मिलत है पर अक्षर सौं जाइ।
अहंकार सुन्दर गयें आतम ब्रह्म समाइ॥ ९॥

विंजन पर अक्षर मिलैं द्वैत भाव दरसाइ।
भक्त मिलैं भगवंत कौं सुन्दरदास कहाइ॥ १०॥

विंजन पर अक्षर मिलै द्वैत भाव नहिं कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय एक मेक मिल होइ॥ ११॥

विंजन स्वर अक्षर मिलैं होइ और ही रूप।
रज वीरज संयोग तें उपजैं देह स्वरूप॥ १२॥

देषत दीसै एक ही अरथ विचारय दोइ।
सुन्दर अद्भुत वात है संमुझै पंडित कोइ॥ १३॥

---

(७) फूला=आंखकी पुतली पर दाग वा छोटी सी टिकड़ी (रोग)।

(८) अकार से ही सब व्यंजनों का उच्चारण होता है।

(९) अहंकार गयें=दूसरे (अगले) व्यंजन से मिल कर अपना रूप खो देता है। यही अहंता का नाश होना है।

(१०) द्वैतभाव दरसाया=जब पर व्यंजन में मिल कर भी अपना रूप बना रहे तो अहंकार नष्ट न होने से द्वैत भाव बना रहेगा।

(१२) होइ और ही रूप=इकारादि स्वर मिलने से अकारवाले अक्षर विकृत से हो जाते हैं। जैसे इ का ए। औ का अव।

(१३) अद्भुत बात=प्रकृति में ब्रह्म सर्व व्यापक है परन्तु विवेक शून्य बुद्धि को

सोरठा

विंजन होइ तकार तालिव होइ शकार जो।
सुन्दर होइ छकार उभय वरन नहिं देषिये ॥ १४ ॥
यौं द्विज सूद्र सु एक ज्ञान विषै नहिं भेद है।
उभय वरन तजि टेक ब्रह्म रूप सुन्दर भये ॥ १५ ॥

दोहा

दीरघ के पीछे भये ह्वै अनयास गुरुत्व।
सुन्दर लघु दीरघ करै ज्यौं अक्षर संयुत्व ॥ १६ ॥
आपुन लघु ह्वै जात है और हि दे सनमांन।
सुन्दर रीति बडेन की जानहिं संत सुजांन ॥ १७ ॥
जो कोउ आइ बडो कहै धरै बडाई सीस।
तौ हू आप समा करै सुन्दर बिस्वा बीस ॥ १८ ॥
सुन्दर लघुता गहि रहै दूरि करै जब गर्व।
गुरु ताही कौं देत है वित्त आपनौ सर्व ॥ १९ ॥
जौ गुरु कै पीछै रहै तौ लघु दीरघ होइ।
आगैं लघु कौ लघु रहै सुन्दर पुस्तक जोइ ॥ २० ॥

॥ इति अक्षर विचार अंग ॥ २७ ॥

ब्रह्म का ज्ञान भिन्न नहीं होता। जैसे स्वर मिले व्यंजन साधारण दृष्टि में अक्षर ही दीखते हैं। परन्तु उनका विच्छेद करने से व्यंजन स्वर पृथक् ही दिखाई देते हैं। यही विवेक के अभ्यास का फल होता है।

(१४) होइ छकार=हलत् के आगे तालव्य श का छ हो जाता है। ऐसे ही ज्ञान के संस्कार से वर्ण भेद नहीं रहता है।

(१६) गुरुत्व="संयुक्ताद्यं दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रं। विज्ञेय मक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन"। संयुक्ताक्षर के पहिला अक्षर सदा ही गुरु हो जाता है। संयुत्व=संयुक्त। सत्संगति और गुरु भक्ति से लघु शिष्य समय पाय स्वयम् गुरु हो

॥ अथ आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

मुख तें कह्यौ न जात है अनुभव कौ आनंद ।
सुन्दर संमुझै आपु कौं जहां न कोई द्वंद ॥ १ ॥

उमगि चलत है कहन कौं कछू कह्यौ नहिं जाइ ।
सुन्दर लहरि समुद्र में उपजै वहुरि समाइ ॥ २ ॥

कह्यौ कछू नहिं जात है अनुभव आतम सुक्ख ।
सुन्दर आवै कंठ लौं निकसत नाहिं न मुक्ख ॥ ३ ॥

सुन्दर जैसें सर्करा गूंगै पाई होइ ।
मुख सों कहि आवै नहीं कांप वजावै सोइ ॥ ४ ॥

सदा रहै आनंद में सुन्दर ब्रह्म समाइ ।
गूंगा गुड कैसें कहै मनही मन मुसकाइ ॥ ५ ॥

जाकै निश्चय ऊपजै अनुभव आतम ज्ञांन ।
सुन्दर सो बोलै नहीं सहज भया गलतांन ॥ ६ ॥

जाकौ अनुभव होत है सोई जानै सार ।
सुन्दर कहैं बनैं नहीं मुख तें एक लगार ॥ ७ ॥

कामी जानैं काम सुख सोऊ कह्यौ न जाइ ।
आतम अनुभव परम सुख सुन्दर वचन बिलाइ ॥ ८ ॥

जाता है । जो गुरु की सेवा नहीं करें वह लघु (गुण रहित) रह जाता है । जो चेले तो हो जाते हैं परन्तु अपनी एंठ में गुरु से सीखते नहीं वे अयोग्य रह जाते हैं । इस बात को अक्षरों के उदाहरण से समझाया है ।

[अंग २८] (४) कांप वजावैं=कांख में हथेली धर कर दबाने से एक शब्द होता है । वह हर्ष का द्योतक है ।

(८) वचन बिलाइ=वचन काम नहीं देता है । क्योंकि कहने में नहीं आता है ।

सो जानै जाके भयौ आतम अनुभव ज्ञान।
मुख सौं कहें वनै नहीं सुन्दर जानै जान ॥ ६ ॥

सुन्दर जिनि अमृत पियौ सोई जानै स्वाद।
विन पीये करतौ फिरै जहां तहां वकवाद ॥ १० ॥

सुन्दर जाकै वित्त है सो वह रापै गोइ।
कौडी फिरै उछालतौ जो टटपूंज्यौ होइ ॥ ११ ॥

जाकै घट अनुभव नहीं ताकै सुख नहिं लेश।
सुन्दर वहु वकवाद करि करतौ फिरै कलेश ॥ १२ ॥

जाकै अनुभव होत है ताही कै सुख चैन।
सुन्दर मुदित रहै सदा पूछै वोलै वैन ॥ १३ ॥

सुन्दर डुवकी मारि कै सुख मैं रहै समाइ।
वह सव कौं देपत फिरै वह नहिं देप्यौ जाइ ॥ १४ ॥

अनुभव करिकै आतमा जानैं ज्यौं आकास।
सदा अखंडित एकरस सुन्दर स्वयं प्रकास ॥ १५ ॥

ताकौ आदि न अंत है मध्य कह्यौ नहिं जाइ।
सुन्दर ऐसौ आतमा सव मैं रह्यौ समाइ ॥ १६ ॥

नां वह सूक्षम स्थूल है नां वह एक न दोइ।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव ही गमि होइ ॥ १७ ॥

नां वह रूप अरूप है नां वह मूल न डाल।
सुन्दर ऐसौ आतमा नां वह वृद्ध न वाल ॥ १८ ॥

---

(९) जान=जानने वाला। ज्ञानी।

(११) गोइ=गुप्त। टटपूंज्या=टाटकी कीमत की पुंजीवाला। अथवा टूटी पूंजीवाला। दरिद्र। दिवालिया।

(१७) गमि=गम्य। जाना जाय।

लघु दीरघ दीसै नहीं नां वह भीत अभीत।
सुन्दर ऐसौ आतमा कहिये वचनातीत ॥ १९ ॥
इन्द्रिय पहुंचि सकै नहीं मन हू की गमि नांहिं।
सुन्दर जानै आपु कौं आपु आपु ही मांहिं ॥ २० ॥
बुद्धि हु पहुंचि सकै नहीं करै दूरि लग दौर।
सुन्दर ऐसौ आतमा पहुंचि सकै क्यौं और ॥ २१ ॥
शब्द तहां पहुंचै नहीं बहु विधि करै बषांन।
सुन्दर ऐसौ आतमा अनुभव होइ प्रमांन ॥ २२ ॥
वेद कह्यौ बहु भांति करि शास्त्र कही बहु युक्ति।
सुन्दर स्मृती पुरान पुनि कही बहुत विधि उक्ति ॥ २३ ॥
क्यौं ही कर्‌यौ न जात है व्योम माहिं चित्रांम।
सुन्दर कहि कहि सब थके है अनुभव विश्रांम ॥ २४ ॥
रवि ससि तारा दीप पुनि हीरा होइ अनूप।
सुन्दर उनकै तेज तें दीसै उनकौ रूप ॥ २५ ॥
त्यौं आतम के तेज तें आतम करै प्रकास।
सुन्दर इन्द्रिय जड सबै कोइ न जाणैं तास ॥ २६ ॥
कोई थापत कर्म कौं कोई थापत काल।
को कहै सृष्टि सुभाव तें सुन्दर वाइक जाल ॥ २७ ॥
को कहै माया ब्रह्म पुनि दोऊ सदा अनादि।
जैसें छाया वृक्ष की सुन्दर यौं प्रतिपादि ॥ २८ ॥
नास्ति वादी यौं कहै कर्त्ता नाहीं कोइ।
सुन्दर मिल्या संजोग सब पुनि वियोग हू होइ ॥ २९ ॥

---

(१९) भीत=डरा हुआ। अभीत=निर्भय।

(२८) प्रतिपादि=प्रतिपादित, समर्थित।

(२९) 'नास्तिवादी'=छन्द के निबाहने को नास्ति को नास्ती या नास्तिक

पट दरसन सब अंध मिलि हस्थी देष्या जाइ।
अंग जिसा जिनि कर गह्या तैसा कह्या बनाइ॥ ३०॥

झगरन लागे परस्पर काकी मानै कौंन।
सुन्दर देष्या दृष्टि सौं तिनि तौ पकरी मौंन॥ ३१॥

बांधि गरगदा सब चले करी मुक्ति कौं दौर।
सुन्दर धोपा मैं परे मुक्ति कहौ किहिं ठौर॥ ३२॥

मुक्ति बतावत व्योम परि कहि धोषे के बैंन।
सुन्दर अनुभव आतमा उहै मुक्ति सुख चैंन॥ ३३॥

कोऊ मुक्ति शिला कहै दूरि बतावत प्रोक्ष।
सुन्दर अनुभव आतमा यह ई कहिये मोक्ष॥ ३४॥

सुन्दर साधन सब करैं कहै मुक्ति हम जांहि।
आतम के अनुभव बिना और मुक्ति कहुं नांहि॥ ३५॥

सुन्दर मीठी बात सुनि लागे करवा पांन।
कष्ट करै बहु भांति के तातें अति अज्ञांन॥ ३६॥

दूरि करै सब वासना आशा रहै न कोइ।
सुन्दर वहई मुक्ति है जीवत ही सुख होइ॥ ३७॥

सुन्दर कोऊ कहत हैं नाभि कंवल मैं ईस।
कोऊ ऐसें कहत हैं हृदय माहिं जगदीस॥ ३८॥

पढ़ना उचित है। पाठ तो दोनों पुस्तकों में यही है। संयोग=तत्वों के संयोग से जीवादिसृष्टि, और वियोग से प्रलय मृत्यु आदि होते हैं, चार्वाकमत में।

(३२) गरगदा=भारी कमर बंधा। तयारी करके।

(३७) जीवत ही सुख=जीवन्मुक्ति, ब्रह्मानन्द का सुख।

(३० से ३१) तक को मिलावैं 'सवइया' अंग २८ के छन्द १७ से।

(३२ से ३७) तक का विचार "सवैया' अंग २८ छन्द १३ व १४ से मिलावैं।

(३८ से ४२) तक का विचार "सवइया" अंग २८ छन्द १६ से मिलावैं।

कोऊ कंठ विषै कहैं अग्र नासिका कोइ।
कोऊ भृकुटी मैं कहैं सुन्दर अचिरज होइ॥ ३९॥

कोऊ कहैं लिलाट मैं कोऊ तालु मांहि।
कोऊ भौंर गुफा कहैं सुन्दर अनुभव नांहि॥ ४०॥

अनुभव बिन जानै नहीं सुन्दर व्यापक रूप।
बाहिर भीतर एकरस ऐसा तत्व अनूप॥ ४१॥

पंच कोस तें भिन्न है सुन्दर तुरिय स्थांन।
तुरियातीत हि अनुभवै तहां न ज्ञान अज्ञांन॥ ४२॥

श्रवन ज्ञान है तब लगै शब्द सुनै चित लाइ।
सुंदर माया जल परै पावक ज्यौं बुझि जाइ॥ ४३॥

मनन ज्ञान नहिं जात है ज्यौं बिजुरी उद्दोत।
माया जल बरपत रहै सुन्दर चमका होत॥ ४४॥

निदिध्यास है ज्ञान पुनि वडवा अनल समांन।
माया जल भक्षन करै सुन्दर यह हैरांन॥ ४५॥

आतम अनुभव ज्ञान है प्रलय अग्नि की अंच।
भस्म करै सब जारि कैं सुन्दर द्वैत प्रपंच॥ ४६॥

नित्य कहत गुरु आतमा सो है शब्द प्रमांन।
जैसैं व्यापक व्यौम पुनि सुन्दर यह उपमांन॥ ४७॥

जाकी सत्ता इन्द्रियनि यह कहिये अनुमांन।
सुन्दर अनुभव आतमा यह प्रत्यक्ष प्रमांन॥ ४८॥

सुन्दर तत्व जुदे जुदे राख्या नाम शरीर।
ज्यौं कदली के षम्भ मैं कौंन वस्तु कहि वीर॥ ४९॥

(४३ से ४६) तक का विचार 'सवइया' अंग २८ छन्द २९ से मिलावैं।

(४५) हैरांन=हैरांनी, आश्चर्य, आपत्ती।

है सो सुन्दर है सदा नहीं सु सुन्दर नांहिं।
नहीं सु परगट देषिये है सौ लहिये मांहिं ॥ ५० ॥
विरवा वुद्धि गुलाव है शब्द सु फूल प्रकास।
सुन्दर आतम ज्ञान कौं अनुभौ मध्य सुवास ॥ ५१ ॥

॥ इति आत्मानुभव कौ अंग ॥ २८ ॥

॥ अथ अद्वैत ज्ञान कौ अंग ॥ २९ ॥

सुन्दर हूं नहिं और कछु तूं कछु और न होइ।
जगत कहा कछु और है एक अखंडित सोइ ॥ १ ॥
सुन्दर हौं नहिं तूं नहीं जगत नहीं व्रह्मण्ड।
हौं पुनि तूं पुनि जगत पुनि व्यापक व्रह्म अखंड ॥ २ ॥
सुन्दर पहली व्रह्म था अवहू व्रह्म अखंड।
आगै हू यह व्रह्म है मृपा पिण्ड व्रह्मण्ड ॥ ३ ॥
वृक्षन कौं वन कहत हैं वन मैं वृक्ष अनेक।
सुन्दर द्वैत कछू नहीं वृक्ष रु वन तौ एक ॥ ४ ॥

---

(५०) है सो सुन्दर है सदा=नित्य, शुद्ध, बुद्ध चेतन आत्मा सदा एकरस रहता है। उसमें विकार वा नाश नहीं है। नहीं सो सुन्दनर नांहि=जो अभावरूप है उसका कभी भी भाव नहीं होता। अथवा जो माया है सो मिथ्या है यह तीन काल ही सत्व नहीं रखती है। नहीं सु परगट देषिये=जो क्षर, नाशमान माया है सो व्यवहार में भासमान होतो है वास्तव में नहीं है।

(५१) विरवा वुद्धि .....ज्ञानकी तीन अवस्थाएं इसमें वताई हैं। (१) साधारण ज्ञान—जैसे गुलाव के (विरवा) वृक्ष को देखने से यह ज्ञान हुआ कि यह अमुक वृक्ष है। (२) परन्तु उस पर फूल खिलने से फूल के ज्ञान से एक विशेषज्ञान

घर कहिये सब भूमि पर भूमि घरनि मैं होइ।
सुन्दर एकै देषिये कहन सुनन कौं दोइ ॥ ५ ॥

सुन्दर घर सब गांव मैं गांव सकल घर मांहिं।
घर अरु गांव विचारिये तौ कछु दूजा नांहिं ॥ ६ ॥

वापी कूप तलाव मैं सुन्दर जल नहिं और।
एक अखंडित देषिये व्यापक सबही ठौर ॥ ७ ॥

कोरि किये चित्राम बहु एक शिला कै मांहिं।
यौं सुन्दर सब ब्रह्ममय ब्रह्म बिना कछु नांहिं ॥ ८ ॥

दीप मसाल चिराक बहु दौं लागी घर लाइ।
सुन्दर पावक एक ही ऐसैं ब्रह्म दिषाइ ॥ ९ ॥

सुन्दर यह सब ब्रह्म है नाम धर्यौ संसार।
एक बीज तें पलटि कैं हूवौ वृक्षाकार ॥ १० ॥

सुन्दर सबकी आदि है सुन्दर सबका मूल।
यथा वृक्ष मैं देषिये डाल पांन फल फूल ॥ ११ ॥

भयौ सरकरा ईक्षु रस व्यापि मिठाई मांहिं।
सुन्दर ब्रह्म सु जगत है जगत ब्रह्म ह्वै नांहिं ॥ १२ ॥

हुआ। (३) जब उस फूल की सुगन्ध को सूंघा तो दिमाग मस्त हो गया। और उसका पूर्ण ज्ञान या अनुभव हुआ कि जो एक वृक्ष था, जिसमें वह फल लगा था, उसमें ऐसी उत्तम सुगन्ध है। आत्मा का साक्षात्कार भी सुगन्ध के ज्ञान की तरह है। केवल वृक्ष या फूल के दर्शण से गन्ध का ज्ञान नहीं हो सकता है इसही तरह आत्मा का ज्ञान समझिये।

[अंग २९] नोट—इस अंगकी साखियों के भाव के लिए देखें 'सवइया' का अंग अद्वैत ज्ञान का।

(८) कोरि=कोर कर, खुदाई करके।

(९) दौं=प्रज्वलित अग्नि।

सुन्दर घृतई वन्धि गयौ धस्यौ डरा सौ नाम।
ऐसैं रामहि जगत है जगत देषिये राम॥ १३॥

सुन्दर पांनी तैं कछू पाला भिन्न न होइ॥
ऐसैं जगत सु ब्रह्म है जगत ब्रह्म नहिं दोइ॥ १४॥

सुन्दर नीर समुद्र कौ जमि करि हूवौ लौंन।
तैसैं यह सव ब्रह्म है दूजा कहिये कौंन॥ १५॥

सुन्दर जैसैं लोह के किये वहुत हथियार।
ऐसें यह सव ब्रह्म है जौ दीसै विस्तार॥ १६॥

कारन तैं कारज भयौ कारन कारज एक।
जैसैं कंचन तैं कियौ सुन्दर घाट अनेक॥ १७॥

जैसैं कीये मैंन के हय हाथी वहु जन्त।
सुन्दर ऐसैं ब्रह्म है आदि मध्य अरु अन्त॥ १८॥

जैसैं मनिका सूत के वीचि सूत कौ तार।
ऐसैं सुन्दर ब्रह्म सव याही है निरधार॥ १९॥

सुन्दर तांना सूत का वानै वुनियां सूत।
नाव धस्यौ फिरि और ही यथा वाप तैं पूत॥ २०॥

सुन्दर मैं सुन्दर जगत सुन्दर है जग मांहिं।
जल सु तरंग तरंग जल जल तरंग द्वै नांहिं॥ २१॥

सुन्दर ब्रह्म अखंड पद सुन्दर यह विस्तार।
ज्यौं सागर मैं वुदवुदा फेन तरंग अपार॥ २२॥

सुन्दर मैं जग देषिये जग मैं सुन्दर सोइ।
कुंजर मैं नारी प्रगट नारी कुञ्जर होइ॥ २३॥

---

(१८) मैंन=मैंण, मोम।

(२३) कुंजर में नारी=यह उदाहरण लीला को संकेत करता है जिसमें गोपियों ने प्रेमवश मिल कर अपने शरीरों से हाथी वना कर श्रीकृष्ण को उसपर सवार किया था। इसके चित्र भी मिलते हैं। इसको "गोपीकुंजर" कहते हैं।

जैसें बुनत महीर में फुलरी परती जांहिं।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न कछु नांहिं॥ २४॥

चीर मांहिं ज्यौं चूनरी गिलम मांहिं बहु भांति।
ऐसें सुन्दर देषिये जगत ब्रह्म नहिं द्वांति॥ २५॥

राजा प्रजा तुरंग गज पशु पंषी बहु जन्त।
सुन्दर पट ज्यौं आतमा जग चित्राम अनंत॥ २६॥

इक क्रीडहिं इक मारियंहिं वस्तर कौं कछु नांहिं।
सुन्दर जग चित्राम ज्यौं पट आतम के मांहिं॥ २७॥

कोट कांगुरे एक हैं देषत दीसहिं दोइ।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं होइ॥ २८॥

लोक हाथ पर देषिये ज्यौं सीतला सरीर।
ऐसें सुन्दर ब्रह्म तें जगत भिन्न नहिं बीर॥ २९॥

सुन्दर में संसार है ज्यौं सरीर में अंग।
हस्त पांव मुख नासिका नैंन श्रवन सब संग॥ ३०॥

हस्त पांव अरु अंगुली नैंन नासिका कांन।
सुन्दर जगत सरीर ज्यौं निंदे कौंन स्थांन॥ ३१॥

सुन्दर जिह्वा आपुनी अपने ही सब दंत।
जो रसना बिदलित भई तौ कहा बैर करंत॥ ३२॥

सुन्दर ज्यौं आकाश में अभ्र होइ मिटि जांहिं।
त्यौं आतम तें जगत है ताही मध्य समांहि॥ ३३॥

---

(२४) बुनत महीर में=महीर एक प्रकार का वस्त्र होता है जिसमें जुलाहे बुनते समय फूल बूंटे पाड़ते हैं। देखो 'सवैया' अंग ३२। छन्द १८। 'जैसी विधि देखियत फूलरी महीर में'। वहां टीका में दूसरा अर्थ भी किया है जो इसको देखते अनावश्यक है।

(२५) द्वांति=(भांति के अनुप्रास के कारण ऐसा रूप दिया)—दो, द्वैत।

(३२) बिदलित=पिस गई (दांतों के नीचे)।

ज़ीन पोश बंध।

उल्लाला छंद। सरस इसुक तन मन सरस। सरस नवनि करि अति सरस।
सरस तिरत भव जल सरस। सरस. लगति हरि लइ सरस॥
सरस कथा सुनि के सरस। सरस विचार उहै सरस।
सरस ध्यान धरिये सरस। सरस ज्ञान सुन्दर सरस॥८॥

इस के पढ़ने की विधिः—

मध्य के 'स' अक्षर से जिसपर १ का अंक है, 'सरस' शब्द ऊपर को पढ़ते हुए दाहिनी ओरको 'मन' शब्द को पढ़कर अंदर 'सरस' में प्रथम चरण पूर्ण करें। फिर उस ही 'सरस' से दूसरा चरण प्रारंभ करें उलटे पढ़ते हुए, दाहिनी पार्श्व के शेष विभाग को पढ़ते हुए, 'अति' शब्द को पढ़कर 'सरस' शब्द पर अंदर दूसरे चरण को पूर्ण करें। इसही प्रकार तीसरे, चौथे चरणों को पढ़ें। दूसरे छन्द को भी अंदर के उसही 'स' अक्षर से प्रारंभ कर 'सरस' शब्द को पढ़कर अंदर के पार्श्व के शब्दों को पढ़ते हुए उस 'सरस' शब्द में प्रथम चरण को पूरा करें। दूसरे चरण को उसही 'सरस' को उलटा पढ़ते हुए अंदर के पार्श्व के शेप टुकड़े को पढ़ते हुए 'सरस' शब्द में पूरा करें। इसही प्रकार तीसरे चौथे चरणों को 'सरस' शब्द से प्रारंभ करके अंदर के पार्श्वों के शब्दों को पढ़ते हुए 'सरस' शब्द ही में पूर्ण करें।

जहं सुन्दर तहं जग नहीं जग तहं सुन्दर नित्य।
जहं पृथ्वी तहं घट नहीं घट तहं पृथ्वी सत्य॥ ३४॥

वोहं सोहं एकही तूं ही हूं ही एक।
कहिबे ही कौं फेर है सुन्दर संमुझि विवेक॥ ३५॥

ज्यौं माता हाऊ कहै बालक मांनै त्रास।
त्यौं सुन्दर संसार है मिथ्या वचन विलास॥ ३६॥

जगत नाम सुनि भ्रम भयौ मान्यौ सत्य स्वरूप।
सुन्दर मृग जल देषिये है सूरय की धूप॥ ३७॥

जैसें महदाकाश तें घटाकाश नहिं भिन्न।
यौं आतम परमातमा सुन्दर सदा प्रसन्न॥ ३८॥

आतम अरु परमातमा कहन सुनन कौं दोइ।
सुन्दर तब ही मुक्त है जबहिं एकता होइ॥ ३९॥

देह धरें यह जीव है ईश्वर धरें विराट।
कारज कारन भ्रम गयें सुन्दर ब्रह्म निराट॥ ४०॥

जगत जगत सबको कहै जगत कहौ किहिं ठौर।
सुन्दर यह तो ब्रह्म है नाम धर्‍यौ फिरि और॥ ४१॥

पोज करत ही जगत को जगत बिलै ह्वै जाइ।
सुन्दर यह सब ब्रह्म है जगत कहां ठहराइ॥ ४२॥

जगत कहे तें जगत है सुन्दर रूप अनेक।
ब्रह्म कहे तें ब्रह्म है वस्तु विचारें एक॥ ४३॥

प्रगट भयौ भ्रम जगत कौ करतें जगत विचार।
सुन्दर ब्रह्म विचार तें जगत न रह्यौ लगार॥ ४४॥

ज्यौं रवि के उद्योत तें अंधकार भ्रम दूरि।
सुन्दर ब्रह्म विचार तें ब्रह्म रह्या भरपूरि॥ ४५॥

---

(४०) निराट=निरा, अकेला।

सुन्दर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" कहतु हैं वेद।
चतुर श्लोकी मांहिं पुनि सकल मिटायौ भेद ॥ ४६ ॥

सुन्दर कह्यौ वसिष्ट पुनि रामचन्द्र सौं ज्ञांन।
ब्रह्म बतायौ एक ही दूरि कियौ भ्रम आंन ॥ ४७ ॥

सुन्दर अष्टावक्र ऋषि ब्रह्म बतायौ एक।
दूरि कियौ भ्रम सकल ही जो नानात्व अनेक ॥ ४८ ॥

दत्तात्रय मुनि यौं कह्यौ ब्रह्म बिना कछु नांहिं।
सुन्दर सोई कृष्णजी भाष्यौ गीता मांहिं ॥ ४९ ॥

सुन्दर यहै निरूपियौ बहु बिधि करि वेदांत।
ब्रह्म बिना दूजा नहीं सबकौ यह सिद्धांत ॥ ५० ॥

॥ इति अद्वैतज्ञान कौ अंग ॥ २९ ॥

---

(४६) "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किंचन"। यह सब (जगत्) निश्चय ब्रह्म है इसमें नानात्व जो भासता है वह कुछ नहीं है।

चतुर श्लोकी=चतुः श्लोकी भागवत। अर्थात् भागवत में सब सन्देह मिटा दिया है। नारदजी को प्रथम चार श्लोक भागवत के प्राप्त हुए। उस पर ही इतना विस्तार हुआ।

(४७) वसिष्ठ=योगवाशिष्ट ग्रन्थ में रामचन्द्रजी को वशिष्ठजी ने वेदान्त का उपदेश दिया।

(४८) अष्टावक्र=अष्टावक्र गीता में ब्रह्मज्ञान कहा।

(४९) दत्तात्रेय=दत्तात्रेय महामुनि ने दत्तात्रेय संहिता में अद्वैत ज्ञान प्रतिपादन किया।

(५०) वेदान्त=उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और शंकर भाष्य आदिक में वेदान्त सिद्धान्त विधिपूर्वक है।

॥ अथ ज्ञानी कौ अंग ॥ ३० ॥

सुन्दर ज्ञानी जगत में बिचरैं सदा अलिप्त।
यह गुन जानै देह कै भूषो रहै क तृप्त ॥ १ ॥

पाइ पिवै देषै सुनै सुन्दर ले पुनि स्वास।
सांधै तीर पताल कौं फिरि मारै आकास ॥ २ ॥

देषै परि देषै नहीं सुनता सुनै न कांन।
जानै सब जानै नहीं सुन्दर ऐसा ज्ञांन ॥ ३ ॥

भक्ष करै न भषै कछू संघत सूंघै नांहि।
ऐसे लक्षण देषिये सुन्दर ज्ञानी मांहि ॥ ४ ॥

बोलत ही अनबोलता मिलता ही अनमेल।
सोवत ही अनसोवता सुन्दर ऐसा षेल ॥ ५ ॥

बैठें तें बैठा नहीं ऊठत ऊठ्या न मांनि।
चलतें सो चाले नहीं सुन्दर ज्ञानी जांनि ॥ ६ ॥

देत कछू नहिं देत है लेत कछू नहीं लेइ।
यह सब जानै स्वप्न करि सुन्दर ज्ञानी सेइ ॥ ७ ॥

काज अकाज भलौ बुरौ भेदा भेद न कोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब होइ ॥ ८ ॥

काइक वाइक मानसी कर्म न लागै ताहि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय देह-क्रिया सब आहि ॥ ९ ॥

पहलैं कियौ न अब करौं आगै की नहिं आस।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान करि काटे बंधन पास ॥ १० ॥

[३० ज्ञानी का अंग]=इस अंग के लिए देखें "सवैया" ग्रन्थ में ज्ञानी का अंग २९।

विधि निषेद जाकै नहीं नां कछु पाप न पुंन्य।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान मैं सब करि जानै शुंन्य ॥ ११ ॥

हर्ष शोक उपजै नहीं राग द्वेष पुनि नांहिं।
सुन्दर ज्ञानी देषिये गरक ज्ञान के मांहिं ॥ १२ ॥

बंध मोक्ष जाकै नहीं स्वर्ग नरक नहिं दोइ।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय संशय रह्यौ न कोइ ॥ १३ ॥

घर वन दोऊ सारिषे ना कछु ग्रहण न त्याग।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ना कहुं राग विराग ॥ १४ ॥

निंदा स्तुती देह की कर्म शुभाशुभ देह।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय कछू न जानै येह ॥ १५ ॥

कोहू सौं घटि वढि नहीं काहू निकट न दूरि।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञानमय ब्रह्म रह्या भरपूरि ॥ १६ ॥

शब्द सुनै सो ब्रह्ममय कहै ब्रह्ममय वैन।
सुन्दर ज्ञानी ब्रह्ममय ब्रह्महि देषै नैंन ॥ १७ ॥

पंच तत्व पुनि ब्रह्ममय ब्रह्मा कीट पर्यंत।
ज्ञानी देषै ब्रह्ममय सुन्दर संत असंत ॥ १८ ॥

सुंदर विचरत ब्रह्ममय ब्रह्म रह्या भरपूर।
जैसैं मच्छ समुद्र मैं कहां जाइ कहु दूर ॥ १९ ॥

जौ पग पहरी पानही कांटा चुभै न कोइ।
सुंदर ज्ञानी सुखमई जहां तहां सुख होइ ॥ २० ॥

जलचर थलचर व्योमचर जीवनि की गति तीन।
ऐसैं सुंदर ब्रह्मचर जहां तहां ल्यलीन ॥ २१ ॥

अपनैं मन आनंद है तौ सगरैं आनंद।
सुन्दर मन शीतल भयौ दह दिशि शीतल चन्द ॥ २२ ॥

ऊठत बैठत फिरत हू पातहुं पीवत प्रांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन ॥ २३ ॥

जागत सोवत जोवतें सुख सों करत वषांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन॥ २४॥

भूत हु भव्य हु वर्त्तते दूजा नांहीं आंन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन॥ २५॥

अध ऊरध दश हूं दिशा पूरन ब्रह्म समांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन॥ २६॥

घटाकाश ज्यौं मिलि गयौ महदाकाश निदांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन॥ २७॥

मुक्ति शिला मूर्यें कहै ते तौ अति अज्ञांन।
सुन्दर ज्ञानी कै सदा कहिये केवल ज्ञांन॥ २८॥

भावै तनु काशी तजौ भावै वागड मांहिं।
सुन्दर जीवन मुक्त कै संसय कोऊ नांहिं॥ २९॥

जैसौ कासी क्षेत्र है तैसौ वागड देश।
सुन्दर जीवन मुक्त कै संक नहीं लवलेस॥ ३०॥

अज्ञानी कौं जगत सब दीसै दुख संताप।
सुन्दर ज्ञानी कै सकल ब्रह्म विराजै आप॥ ३१॥

अज्ञानी कौ जगत यह दुखदाइक भै त्रास।
सुन्दर ज्ञानी कै जगत है सब ब्रह्म विलास॥ ३२॥

अज्ञ क्रिया कछु करत है अहं वुद्धि कौं आंनि।
सुन्दर ज्ञानी करत है अहंकार विनु जांनि॥ ३३॥

---

(२५) भूत हु भव्य हु वर्त्तते=भूत, भविष्यत, वर्त्तमान ये तीनों काल वर्त्तमान से भासते हैं।

(२६) अध ऊरध···=न दिशाएं ज्ञानी में वर्त्तती हैं। सर्वत्र एक ब्रह्म समान रहता है। "दिक् कालादि—अनवच्छिन्न"। ब्रह्म में काल, कर्म, दिशा, कारण कार्य कुछ नहीं हैं। इससे ये ज्ञानी में भी नहीं हैं, जो ब्रह्म ही है।

अज्ञानी सुख दुखनि कौं जानत अपने मांहि।
सुन्दर ज्ञानी आपु में सुख दुख मानै नांहि ॥ ३४ ॥

सुन्दर अज्ञ रु तज्ञ कै अंतर है वहु भांति।
वाकै दिवस अनूप है वाहि अंधेरी राति ॥ ३५ ॥

ज्ञानी शुभ कर्मनि करै लोक आचरन हेत।
वहुत भांति के शब्द कहि सुन्दर सिष्या देत ॥ ३६ ॥

जानत है सब स्वप्न करि इन्द्रिनि कौ व्यवहार।
सुन्दर ज्ञानी ज्ञान तैं भिन्न न होइ लगार ॥ ३७ ॥

सुन्दर ज्ञानी ज्ञान में गरक भयौ निज ठौर।
दंत दिपावै और गज दसन पान के और ॥ ३८ ॥

तम रज गुण करि जगत है भक्त सतोगुण रुद्ध।
सुन्दर तीनों गुन परै ज्ञानी सात्विक सुद्ध ॥ ३९ ॥

तवा अधोमुख आरसी दर्पण सूधौ होइ।
ऐसै तम रज सत्व गुण सुन्दर देषहु जोइ ॥ ४० ॥

तवा माहिं नहिं देपिये सूरय कौ उद्योत।
सुन्दर मूंधी आरसी तामैं कछूक होत ॥ ४१ ॥

जब दर्पन सूधौ करै रवि आभासै आइ।
सुन्दर दर्पन मिटि गयें सूरयई रहि जाइ ॥ ४२ ॥

जीव ब्रह्म मिलि जात है सुन्दर उपजें ज्ञांन।
दूर भयौ प्रतिबिंब जब रह्यौ एक ही भांन ॥ ४३ ॥

---

(३५) तज्ञ=ज्ञानी।

(४१) मूंधी=उलटी। पुराने समय में आरसी फौलाद लोहे की बनती थी। एक ओर सैकल से चमक होती थी। दूसरे ओर कम होती थी। उसमें अधिक नहीं दिखाई देता था। सूर्य के सामने चमक उसमें अधिक और इसमें कम होती थी। यह लोहे का कारण था। (४३) उपजें ज्ञान=ज्ञान के उत्पन्न होने से, जीव

सुन्दर ज्ञान प्रकास त धोपौ रहै न कोइ।
भावै घर माहें रहौ भावै वन मैं होइ॥ ४४॥

वन तैं घर आवै नहीं घर तैं वन नहि जाइ।
सुन्दर रवि उद्दोत तैं तिमिर कहां ठहराइ॥ ४५॥

पंपी की पर टूट कै भूमि पर्‍यौ जिहिं ठौर।
सुन्दर उडिवे तें रह्यौ मिटी सकल ही दौर॥ ४६॥

एक क्रिया पेती करै बंधन होत अपार।
एक क्रिया भोजन करत बंधन उतनी वार॥ ४७॥

एक क्रिया मल मूत्र कौं तजत नहीं कछु प्यार।
सुन्दर ज्ञानी की क्रिया बंधन नहीं लगार॥ ४८॥

चौपरि पेलहिं द्वै जने सुन्दर वाजी लाइ।
जीतै सु तौ पुसाल है हारै सौ मुरझाइ॥ ४९॥

एक जनौ दुहुं वोर कौं चौपरि पेलै आंनि।
सुन्दर हारनि जीत कछु ऐसैं ज्ञानी जांनि॥ ५०॥

सुन्दर देष्या आपुकौं सुनै आपुनै वैंन।
वूझ्या अपनी वूझि कौं समुझ्या अपनी सैंन॥ ५१॥

सुन्दर भाया आपु कौं आया अपुनी ठांम।
गाया अपने ज्ञान कौं पाया अपना धांम॥ ५२॥

अंत्यज ब्राह्मण आदि दै दार मथै जो कोइ।
सुन्दर भेद कछू नहीं प्रगट हुतासन होइ॥ ५३॥

ब्रह्म एक हो जाते हैं जैसे दर्पण हट जाय तब सूर्य ही रह जाय। जीव तो ब्रह्म का प्रतिविंब मात्र है।

(५३) दार मथै=(दारु) लकड़ी को अग्नी से अग्नि, रगड़ कर, उत्पन्न करै। (५३) और (५६) तक ज्ञान की भेदभाव रहित व्यापकता और सर्व के लिए समान पावनशक्ति के कैसे सुन्दर उदाहरण हैं। वर्णाश्रम, सम्प्रदाय, छोटे बड़े का कुछ भी भेद नहीं। जो करै सो ही पावै।

दीपग जोयौ विप्र घर पुनि जोयौ चण्डाल।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौ ततकाल ॥ ५४ ॥

अंत्यज कै जल कुम्भ मैं ब्राह्मन कलस मंझार।
सुन्दर सूर प्रकाशिया दुहुंवनि मैं इकसार ॥ ५५ ॥

अंत्यज ब्राह्मन आदि दै किवा रंक कि भूप।
सुन्दर दर्पन हाथ लै सो देषै निज रूप ॥ ५६ ॥

सुन्दर सब कौं ज्ञान की बातैं कहै अनेक।
ज्यौं दर्पन बहु भांति कै अग्नि परै कहुं एक ॥ ५७ ॥

देह चलै आतम अचल चलत कहैं मतिमंद।
अभ्र चलत ज्यौं देषिये सुन्दर चलै न चन्द ॥ ५८ ॥

सूरय करि कैं देषिये तवा आरसी दोइ।
सूरय सूरय सौं दसै सुन्दर संमुखै कोइ ॥ ५९ ॥

जो भिक्षा मांगत फिरै कै जौ भुक्तै राज।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है नां कछु काज अकाज ॥ ६० ॥

इंद्री अर्थनि कौं ग्रहै लिप्त न कबहूं होइ।
सुन्दर ज्ञानी मुक्त है कर्म न लागै कोइ ॥ ६१ ॥

---

(५७) अग्नि परै कहुं एक=आतशी शीशे से आग पड़ै अर्थात् उत्पन्न होय, शीशे चाहे जिस आकार के वा तरह के हों, अग्नि तो भिन्नरूप की नहीं होगी, वही एकरूप अग्नि ही होगी। ऐसे ही ज्ञान एक ही है सच्चा, वर्णन उसका पृथक्-पृथक् भले ही करैं।

(५९) सूरज के सामने चाहे तवा करो चाहे आरसी करो उसमें सूरज तो सूरज ही दीखैगा। ऐसे ही आत्मा का सब प्राणियों या भूतों में (घड़ों की नांई) प्रतिबिंब पड़ता है सो इकसार है।

(६०) भुक्तै राज=जनक राजा की तरह जिसके भोग मोक्ष साथ-साथ थे।

ज्ञानी चारि प्रकार

रागी त्यागी शांति पुनि चतुर्थ घोर वषांनि।
ज्ञानी चारि प्रकार हैं तिनहिं लेहु पहिचांनि ॥ ६२ ॥

रागी राजा जनक है त्यागी शुक सम थोर।
शांति जानि जमदग्नि कौं दुर्वासा अति घोर ॥ ६३ ॥

क्रिया सु तिनकी भिन्न है भिन्न देह व्यवहार।
ज्ञान विषै नहिं भेद है सुंदर एक लगार ॥ ६४ ॥

क्रिया देषि ज्ञानीनि की सब कोऊ भ्रमि जांहिं।
सुन्दर देषैं देह कृत आशय पावै नांहिं ॥ ६५ ॥

॥ इति ज्ञानी कौ अंग ॥ ३० ॥

॥ अथ अन्योऽन्य भेद अंग ॥ ३१ ॥

सुन्दर ज्ञानी नृपति कै सेना है चतुरङ्ग।
रथ अश्व गज त्रय अवस्था इन्द्रिय पाइक संग ॥ १ ॥

तुरिया सिंघासन कियौ तुरियातीत सु वोक।
ज्ञान छत्र है सीस पर सुन्दर हर्ष न शोक ॥ २ ॥

रथ चौवीस हु तत्व कौ कर्म सुभासुभ वैल।
सुन्दर ज्ञानी सारथी करै दशौं दिशि सैल ॥ ३ ॥

---

(६२) शान्ति=शान्त (ज्ञानी का एक प्रकार वा अवस्था का विशेषण)।

[अं० ३१]—(२) वोक=(सं० ओक) स्थान, निज भवन। आखिरी मंजिल वा पद। परमगति।

(३) "आत्मानं रथिनं विद्धि। शरीरं रथमेव च"। (उप०। गीता)

तीनों गुन इंद्रिय सकल ये सब चाले गैल।
सुन्दर विचरत जगत मंहिं ताहि न लागै मैल॥ ४॥

(२) अन्य भेद।

देह तमूरा ठाट जड जीभ तार तिहिं लाग।
सुन्दर चेतन चतुर बिन कौंन बजावै राग॥ १॥
जीभ तार दोऊ बजहिं सुन्दर देषहु आइ।
एक बजावत देपिये एक न देष्या जाइ॥ २॥
एक कह्या अनुमानि करि एक देपिये अक्ष।
सुन्दर अनुभव होइ जब तब देपियें प्रत्यक्ष॥ ३॥
किनहूं पूछ्यौ फेरि कैं अनुभव कैसी होइ।
सुन्दर तुम अनुभव कही चिन्ह बतावौ कोइ॥ ४॥
तेरें अनुभव होइ है तबहिं जानि हैं बीर।
मुख तें कही न जात है सुन्दर सुख की सीर॥ ५॥
कन्या पूछत और त्रिय पुरुष मिलै कौ सुक्ख।
सुंदर परसी पीव कौं तब कछु कहै न मुक्ख॥ ६॥
गूंगै पाई सरकरा सुन्दर मन मुसक्याइ।
सैंन बतावै हाथ सौं मुख तें कही न जाइ॥ ७॥
जिन जिन कौ अनुभव भयौ तिन तिन पकरी मौंन।
सुन्दर अनुभव गोपि है चिन्ह बतावै कौंन॥ ८॥
सुन्दर जैसैं पुरुष तें अंगुरी ह्वै चेतन्य।
अंगुरी जंत्र बजावई राग अन्य ही अन्य॥ ९॥
पुरुष सु तौ चेतन्य है अंगुरी अंतहकर्ण।
सुंदर बाजै जंत्र तनु शब्द कहै बहु वर्ण॥ १०॥ १४॥

---

(१०) जंत्र=यंत्र, बाजा। तनु=देह।

(३) अन्य भेद

सत् अरु चित्त आनंदमय ब्रह्म विशेषण तीन ।
अस्ति भाति प्रिय आतमा वहै विशेषण कीन ॥ १ ॥
असद् जानि जड दुःख मय तीन विशेषण देह ।
उपजै वर्तै लीन ह्वै सब विकार को गेह ॥ २ ॥
ब्रह्म देह के मध्य है अंतहकरण उपाधि ।
तत् संबंधी आतमा ताहि लगी यह व्याधि ॥ ३ ॥
वाही सुद्ध असुद्ध है याकै ज्ञान अज्ञान ।
जड सौं मिलि जडवत भयौ जीवातम सो जांन ॥ ४ ॥
अस्ति असत सौ जानिये भाति भयौ जड रूप ।
प्रिय पुनि हूवौ दुःख मय भूलि पर्यौ भ्रम कूप ॥ ५ ॥
यह लक्षण अज्ञान कौ देह सु मान्यौ आप ।
सुन्दर या अभिमान तैं व्यापैं तीनौं ताप ॥ ६ ॥
ताही तें यह जीव है अहं ममत जब होइ ।
भूलि गयौ निज रूप कौं सुधि बुधि अपनी पोइ ॥ ७ ॥
जो कोई जिज्ञास ह्वै सद्गुरु सरणै जाइ ।
सुन्दर ताहि कृपा करै ज्ञान कहै समुझाइ ॥ ८ ॥
वासौं सद्गुरु यौं कहै समझि आपनौ रूप ।
सकल भेद भ्रम दूरि करि तूं है तत्व अनूप ॥ ९ ॥

[अन्यभेद ३ ग्रा.] (२) और (१)=सत् का अस्ति । चित् का भाति । आनन्द का प्रिय । क्रमशः । उपजै वर्तै लीन व्है=उत्पत्ति, स्थिति, संहार को प्राप्त होवै । विकार=विकृति जो प्रकृति से गुणभेद संस्कार से होती है सो प्रपंच का कारण है, चेतन की सत्ता से ।

(७) अहं ममत=(१) अहंता (२) ममता ।

अस्त होइ सत रूप तब भाति होइ चैतन्य।
प्रिय पुनि है आनन्दमय आतम ब्रह्म न अन्य ॥ १० ॥

जीव भयौ अनुलोम तें ब्रह्म होइ प्रतिलोम।
सुन्दर दारु जराइ कें अग्नि होइ निर्धोम ॥११॥२५॥

(४) *अन्य भेद।*

गऊ देह के मद्धि है पय अरु उत्तम ज्ञान।
सुन्दर घृत ज्यौं आतमा व्यापक एक समान ॥ १ ॥

चारि श्रवन जब नीरिये वांट मनन अभ्यास।
सुद्दर दुहिये धेनु कौं सो कहिये निदिध्यास ॥ २ ॥

दुग्ध ज्ञान जब पाइये जा मन निश्चै तात।
सुन्दर दधि मथि अनुभवै निकसै घृत साक्षात ॥ ३ ॥

सुन्दर या अनुक्रम बिना ज्ञान प्रगट नहिं होइ।
बात कहें का होत है भ्रम मति भूलै कोइ ॥ ४ ॥ २९ ॥

(५) *अन्य भेद।*

क्रिया करत है बहुत विधि ज्ञान दृष्टि जो नांहिं।
अंध चल्यौ मग जात है परै कूप के मांहिं ॥ १ ॥

ज्ञान दृष्टि करि निपुनि है क्रिया नहीं पग दौर।
अग्नि लगी जब सदन मैं पंगु जरै वहि ठौर ॥ २ ॥

ज्ञान क्रिया दोऊ मिलहिं तबही होइ उधार।
यथा अंध के कंध पर पंगु होइ असवार ॥ ३ ॥

---

(१०) अस्त=अस्ति।

(११) निर्धोम=निर्धूम्र। धूम (धुवां) अग्नि में उपाधि है। जैसे आत्मा पर माया। "धूमेनाग्निरिवावृता" (गीता)।

[अन्य भेद ४ थे में] (२) चारि=चारा। तृणादिक। वांट=वांटा, सानी दाल खली बिनोला दाना आदि।

कूप अग्नि दोऊ वचहिं तामैं फेर न कोइ।
सुन्दर ज्ञान क्रिया विना मुक्त कहे नहिं होइ॥ ४॥

क्रिया भक्ति हरि भजन है और क्रिया भ्रम जांन।
ज्ञान ब्रह्म देषै सकल सुन्दर पद निर्वांन॥ ५॥ ३४॥

(६) *अन्य भेद।*

कर्त्ता कर्म न भोगता पुद्गल जीव न कोइ।
सुन्दर यह भ्रम स्वप्न मैं जागें एक न दोइ॥ १॥

भ्रम कर्त्ता भ्रम भोगता भ्रम सु कर्म भ्रम काल।
भ्रम पुद्गल भ्रम जीव है सुन्दर सव भ्रम जाल॥ २॥

वचन जाल उरभै सवै सुरभावैं गुरु देव।
नेति नेति करते रहैं सुन्दर अलप अभेव॥ ३॥

एक अखंडित ब्रह्म है दूसर नांही आंन।
सुन्दर भ्रम रजनी मिटैं प्रगट होइ जव भांन॥ ४॥

कठिन वात है ज्ञान की सुन्दर सुनी न जाइ।
और कहीं नहि ठाहरै ज्ञानी हृदय समाइ॥ ५॥ ३६॥

॥ इति अन्योऽन्य भेद अंग॥ ३१॥

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित सापी समाप्तम्॥

---

(४) कूप अग्नि=कूप से और अग्नि से (पड़ने जलने से वचै)।

इस (५) अन्यभेद में सुन्दरदासजी ने दादूजी की सम्प्रदाय का और निजमत को कह दिया है।

[अन्य भेद (६) में] (१) पुद्गल=देह, शरीर।

(४) भांन=भानु, सूर्य (ज्ञानरूपी सूर्य)।

(५) और कहीं नहिं ठाहरै=ज्ञानरूपी अमृत सिंहनी के दूध के समान है, सो

ज्ञानी के शुद्ध हृदयरुपी कनकपात्र ही में ठहर सकता है अन्य पात्र तो इसके लिए अपात्र, अनधिकारी और अयोग्य है उसमें यह पय (ज्ञान) नहीं ठहरे सकता है। अर्थात् पहिले अपने आपको गुरु उपदेश, साधन और भक्ति से इस योग्य बनावै तब ज्ञान समा सकता है। अन्यथा लाक्षज्ञान वा स्मशानज्ञान की तरह क्षणभंगुर होगा। इधर सुना उधर निकल गया।

ⓒ अङ्ग ३१ के अन्त में मूल (क) पुस्तक में ६ ठैं अन्य भेद की समाप्ति के भी अनन्तर—दो श्लोक शार्दूल (विक्रीडित), एक अनुष्टुप, १ भुजंगप्रयात छन्द, फिर १ अनुष्टुप छन्द—यों संस्कृतमय ये पांच छन्द हैं। सो (ख) पुस्तकानुसार हमने फुटकर काव्य के अन्त में, अर्थात् यों समस्त ग्रन्थों के अन्त में, दिये हैं। सो संगति प्रतीत होगी। सुन्दरदासजी "साषी" पर सब ग्रन्थ समाप्त कर चुके थे ऐसा भासित होता है।

॥ इति श्री स्वामी सुन्दरदासजी की "साषी" पर सुन्दरानन्दी टीका समाप्तम् । अंग ३१ । साखी संख्या १३५१ ॥

—:*:—

पद (भजन)

॥ अथ पद (भजन)† ॥

जकडी राग गौडी

(१)

(ताल रूपक)

देह कहै सुनि प्रांनियां काहे होत उदास वे।
अरस परस हम तुम मिले ज्यौंव् पहुप अरु वास वे ॥ (टेक)

इक पहुप वास मिलाप जैसौ दूत घृत ज्यौं मेल वे।
काष्ट मैं ज्यौं अग्नि व्यापक तिलनि मैं ज्यौं तेल वे ॥
जैसें उदक लवना मध्य गवना एकमेक वपानियां।
सुन्दरदास उदास काहे देह कहै सुनि प्रानियां ॥ १ ॥
जीव कहै काया सुनौ हम तुम होइ विवोग वे।
हम निर्गुण तुम गुणमयी कैसै रहत संयोग वे ॥
संयोग कैसैं रहत तोसौं हौं अमर अविनास वे।
तूं क्षण भंगुर आहि वौरी कौन ताकी आस वे ॥
इक आस ताकी कहा करिये नास होवै तिहिं तनौ।
सुन्दरदास उदास यातैं जीव कहै काया सुनौ ॥ २ ॥
देह कहै सुनि प्रानियां तोहि न जानत कोइ वे।
प्रगट सु तौ हमतैं भयौ कृतघनी जिनि होइ वे ॥

---

† पदों की रागों के लक्षण और समय की तालिका परिशिष्ट में देखें।

(१) विवोग=वियोग, भिन्न। वौरी=बावली, अल्प बुद्धि की।

इक होइ जिनि कृतघनी कव हौं भोग वहु विधि तैं किये ।
शब्द सपरस रूप रस पुनि गंध नीकैं करि लिये ॥
इक लिये गंध सुवास परिमल प्रगट हम तैं जानियां ।
सुन्दरदास विलास कीने देह कहै सुनि प्रानियां ॥ ३ ॥
जीव कहै काया सुनौ तूं काहू नहिं काम वे ।*
सोभ दई हम आइकैं चेतनि कीया चांम वे ॥
इक चाम चेतनि आइ कीया दिया जैसैं भौन वे ।
वोलन चालन तवहिं लागी नहिंतु होती मौंन वे ॥
यह मौंन तेरौ जवहिं छूटै तवहि तुम नीकी वनौ ।
सुन्दरदास प्रकास हमतैं जीव कहै काया सुनौ ॥ ४ ॥
देह कहै सुनि प्रानियां तेरैं आंपि न कांन वे ।
नासा मुख दीसै नहीं हाथ न पांव निसांन वे ॥
इक हाथ पांव न सीस नाभी कहा तेरौ देपिये ।
भिन्न हमतैं जवहिं वोलै तवहिं भूत विशेपिये ॥
डरैं सव कोई शव्द सुनि कै भरम भै करि मांनियां ।†
सुन्दरदास आभास ऐसौ देह कहै सुनि प्रांनियां ॥ ५ ॥
जीव कहै काया सुनौ तो महिं वहुत विकार वे ।
हाड मांस लोहू भरी मज्जा मेद अपार वे ॥
इक मेद मज्जा वहुत तोमैं चरम ऊपर लाइया ।
जा घरी हम होंहि न्यारे सवैं देपि घिनाइया ॥

---

* "नहिं" के स्थान में "नाहीं" पाठ छन्द को और भी ठीक वनाता है । सोभ=शोभा । तवहि तुम नीकी वनौ=यदि वाणी वन्द हो जाय तो गूंगा रहै वा मृतक समझा जाय । उत्तम वाणी ही से मनुष्य की वड़ाई और इहलोक और परलोक का हित साधन होता है ।

† "कोई" में ह्रस्व इ हो तो (कोइ) छन्द ठीक रहै ।

(५) अभास=जो प्रगट में लोगों को जान पड़ै(भूत प्रेत का होना, या प्रभाव)।

घ्रिन करै सबको दूपि तो कौं नांक मूंदै जन जनौं।
सुन्दरदास सुवास हमतैं जीव कहै काया सुनौं ॥ ६ ॥
देह कहै सुनि प्रांनियां तेरै ठौर न ठांव वे।
लेत हमारो आसिरो धरत हमहीं को नांव वे॥
तूं नांव कैसैं धरत हम कौं बात सुनिये एक वे।
जा हांडी मैं पाइ चलिये ताहि न करिये छेक वे॥
अब छेक कीयें नाहिं सोभा करि हमारी कांनियां।
सुन्दरदास निवास हममैं देह कहै सुनि प्रांनियां ॥ ७ ॥
जीव कहै काया सुनौ मेरै ठौर अनंत वे।
आयौ थो इस काम कौं भजन करन भगवंत वे॥
भगवंत भजनै कारनि आयो प्रभु पठायौ आप वे।
पीछली सुधि सबै बिसरी भयौ तोहि मिलाप वे॥
इक मिले तोसौं कहा कोसौं अंतरा पार्‍यौ घनौं।
सुन्दरदास बिसास घातनि जीव कहै काया सुनौं ॥ ८ ॥

(२)

अलष निरंजन ध्यावउं और न जाचउं रे।
कोटि मुक्ति देइ कोई तौ ताहि न राचउं रे॥ (टेक)
ब्रह्मा कहियेइ आदि पार नहीं पावै रे।
कीयौ करम कुलाल सुमन नहि भावै रे॥ १ ॥
विष्णु हुते अधिकारि सुतौ भ्रम जनम्यौं रे।
संकट माहिं आइ दसौं दिस भरम्यौं रे॥ २ ॥

---

(६) सबकौं=सब कोई।

(७) कानियां=कांन, कांण मानना, आदर करना। लोहा मानना।

(८) कहा कोसौं=तुझ से मिलना क्या हुआ कोसों का आंतरा पड़ गया।

शंकर भोलानाथ हाथ वरु दीनौं रे।
अपनौं काल उपाइ मरम नहिं चीन्हौं रे॥ ३॥
औरौं देविय देव सेव हम त्यागिय रे।
सब तें भयौ उदास ब्रह्म लय लागिय रे॥ ४॥
जाचिक निकट अवास आस धरि गावै रे।
बाहरि ठाढो रहै कि भीतरि आवै रे॥ ५॥
पवरि भईय दातार सार मोहि बूझिय रे।
इहां आवन की गैलि तोहि कस सूझिय रे॥ ६॥
जाचिक बोलै बैंन सकल फिरि आयौ रे।
तोहि जैसौ कोउ अवर कहूं नहीं पायौ रे॥ ७॥
सब साहिन पर साहि नृपति पर राइय रे।
सब देवन पर देव सुन्यौं सुख दाइय रे॥ ८॥
पुसिय भये दातार कहा तुम मांगै रे।
रिधि सिधि मुकति भंडार सु तेरै आगै रे॥ ९॥
जाकर इन कीये चाहि ताहि कौं दीजै रे।
हम कंहं नाम पियार सदा रस पीजै रे॥ १०॥
देष्यौ बहुत डुलाइ न कतहूंव डोलै रे।
दियौ अभै पद दान आन नहीं तोलै रे॥ ११॥
जाचिक देइ असीस नाम लेइ ताकौ रे।
माइ बाप कुल जाति बरन नहीं वाकौ रे॥ १२॥
सब तेरौ परिवार न तेरौ कोइय रे।
बहुत कहा कहौं तोहि सबद सुनि दोइय रे॥ १३॥
धनि धनि सिरजनहार तौ मंगल गायौ रे।
जन सुन्दर कर जोरि सीस तोहि नायौ रे॥ १४॥

---

२ का (३) वरु=वरदान वीरभद्रगण को भस्मागर कड़ा देकर।

(३)

ताहि न यह जग ध्यावई, जातैं सब सुख आनंद होइ रे।
आन देव कौं ध्यावतैं, सुख नहिं पावै कोइ रे ॥ (टेक)
कोई शिव ब्रह्मा जपै रे कोई विष्णु अवतार।
कोई देवी देवता इहां उरझि रह्यौ संसार ॥ १ ॥
घट धारी सब एक हैं रे तासौं प्रीति न लाइ।
भेड सरन गहै भेडका तौ कैसैं उबरयो जाइ ॥ २ ॥
प्रांण पिंड जिन सिरजिया रे सो तो विसरै दूरि।
और और के ह्वै गये तातैं अंत परै मुख धूरि। ३ ॥
लोक कहैं हम करत हैं रे सेवा पूजा ध्यान।
काति मुई सब जन्म लौं वह भयौ कपास निदान ॥ ४ ॥
गुनधारी गुन सौं रंजै रे निर्गुन अगम अगाध।
सकल निरंतर रमि रह्या ताहि सुमिरै कोइ एक साध ॥ ५ ॥
जरा मरन तैं रहित है रे कीजै ताकी सेव ॥
जन सुन्दर वासौं लग्या जौ है अविनासी देव ॥ ६ ॥

(४)

(पूर्वी बोली मिश्रितं)

हरि भजि बौरी हरि भजु त्यजु नैहर कर मोहु।
पिव लिनहार पठाइहि इक दिन होइहि विछोहु ॥ (टेक)*

---

३ का (४)—काति मुई...=उम्र भर सूत काता (काम धंधा किया) और अन्त सब वृथा गया। इसीसे मुहाविरा है कि "काता पींदा सब कपास हो गया"।

४ पद की टेक=नैहर कर=नेहर (पीहर) का।—पिव लिनहार=पिया (गौणे पर) लेने को आवेगा तब।

* "भजु" को "भजू" पढ़ना वा उच्चारण करना ठीक होगा। "पठाइहि" को "पठाइही" और "होइहि" को "हुइहि" पढना ठीक होगा। छन्द और राग की सुविधा के कारण से ही।

आपुहि आपु जतन करु जौं लगि बारि वयेस।
आन पुरुष जिनि भेटहु केंहूके उपदेस ॥ १ ॥
जबलग होहु सयानिय तबलग रहव संभारि।
केहूं तन जिनि चितवहु ऊंचिय दृष्टि पसारि ॥ २ ॥
यह जोबन पिय कारन नीकैं रापि जुगाइ।
आपनौ घर जिनि छोडहु पर घर आगि लगाइ ॥ ३ ॥
यहि विधि तन मन मारै दुइ कुल तारै सोइ।
सुन्दर अति सुख विलसई कंत पियारी होइ ॥ ४ ॥

(५)

ये तहां झूलहि संत सुजान सरस हिंडोलवा। (टेक)
जत सत दोउ षंभ व रे श्रद्धा भूमि विचारि।
क्षमा दया धृति दीनता ये सपि सोभित डांडी चारि ॥ १ ॥
उत्तम पटली प्रेम की रे डोरी सुरति लगाइ।
भईया भाव झुलावई ये सपि हरपि हरपि गुन गाइ ॥ २ ॥
चहुं दिशि बादल उनइये रे रिमिझिमि बरिषै मेंह।*
अंतर भीजै आतमा ये सपि दिन दिन अधिक सनेह ॥ ३ ॥
झूलहिं नाम कबीरजी रे अति आनंद प्रकास।
गुरु दादू तहां झूलहीं ये सपि झूलै सुन्दरदास ॥ ४ ॥

(६)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई पानी विन कछु नांहीं।
तौ दर्पन प्रतिविंब प्रकाशै जौ पानी उस मांहीं ॥ (टेक)

---

४ का (१) बारि वयेस=बालपन।

५ वां पद—झूलेका रूपक काया और आत्मापर है।—नाम=नामदेव भक्त।

* 'उनइये रे' के स्थान में 'उनइये' वा कनये पढ़ना।

६ टा पद—"पानी" शब्द का श्लेष अनेक अर्थ में। हाथी का मद भी उसकी

पानी तें मोती की सोभा मंहिगे मोल विकावै।
नहिं तो फटकि शिला की सरिभरि कौडी बदले पावै॥ १॥
जब गजराज मस्तमद होई करिये बहु विधि सारा।
जब मद गयौ भयौ बसि अपनें लादि चलायौ भारा॥ २॥
जब सरवर जल रहै पूरि कै सब कोइ देषन चाहा।
सूकि गये ताही कै भीतरि पोदै जाइ बराहा॥ ३॥
याही सापि कहै सिधि साधू बिंद रापि कैं लीजै।
सुन्दरदास जोग तब पूरण राम रसांइन पीजै॥ ४॥

(७)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई सुनिये एक समासा।
चुप करि रहौं त कोई न जानैं कहतैं आवै हासा॥ (टेक)
नारी पुरुष के ऊपर बैठी बूझै एक प्रसंगा।
जौ तूं मेरे कहे न चालै तौ कछु रहै न रंगा॥ १॥
कंत कहै सुनि सर्व-सोहागनि तेरा बोल न टालौं।
अबकै क्योंही छूटन पाऊं बहुरि न तोहि संभालौं॥ २॥
बहुरि त्रिया इक बात विचारी यह कब हौं नहिं मेरौ।
अबकै आइ पर्यौ बप मांही करि छाडोंगी चेरौ॥ ३॥
दोऊ मेल रहत नहिं दीसै इक दिन होंहि निराले।
सुन्दरदास भये बैरागी इनि बातन के घाले॥ ४॥

शोभा है जो पानी से है। पानी वीर्य के अर्थ में भी। बराहा=शूकर (कादे को टूंड से उधेड़े)।

७ वां पद—(टेक) त=तो। पुरुष=जीव। नारि=माया (काया) निराले=(१) मत्यु से। (२) मोक्ष से, असंग से।

(८)

(ताल तिताला)

देषौ भाई कामिनि जग मैं ऐसी ।
राजा रंक सबनि के घर मैं बाघनि ह्वै कर बैसी ॥ (टेक)
कबहीं हंसै कबही इक रोवै कोई मरम न पावै ।
झीनी पैसि हरै बुधि सबकी छल बल करि गटकावै ॥ १ ॥
ज्ञानी गुनी सूर कवि पण्डित होते चतुर सयाना ।
सनमुख होइ परे फन्द मांही जुवती हाथ विकाना ॥ २ ॥
बस्ती छाडि बसैं बन मांहैं चावैं सूके पाता ।
दाउ परै उनहूं कौं मारै दे छाती पर लाता ॥ ३ ॥
नागलोक नग पतनी कहिये मृत्युलोक मैं नारी ।
इन्द्रलोक (मैं) रंभा ह्वै बैठी मोटी पासि पसारी ॥ ४ ॥
तीनि लोक मैं बच्यौ न कोई दीये डाढ तर सारे ।
सुन्दरदास लगे हरि सुमिरन ते भगवन्त उबारे ॥ ५ ॥

(९)

(ताल तिताला)

सन्तो भाई पद मैं अचिरज भारी ।
समझै कौं सुनतैं सुख उपजै अन समझैं कौं गारी ॥ (टेक)
माय मारि करि ऊपरि बैठा बाप पकरि करि बांध्यौ ।
घर के और कुटंबी ऊपरि बिन कमान सर सांध्यौ ॥ १ ॥

---

८ वां पद—झीनी पैसि=बारीक वा गहरी घुस कर । अपना काबू बड़ी चतुराई के साथ पुरुष पर करके । गटकावै=अपना स्वार्थ सिद्ध करै । माल मारै ।

(४) नाग पतनी=नाग कन्या । (५) 'दीये'—इसको 'दिये' पढ़ैं ।

९ वां पद—इस पद में विपर्य शब्द का उपयोग है । 'सवैया' और 'साषी' के विपर्यय अंगों की टीका देखैं । माय=माया । बाप=अहंकार । कुटुंबी=इन्द्रिय और

त्रिया त्रास करि वाहरि काढी लहुडी घी घरि घाली।
जेठी धी कै गलै छुरी दे वहू अपूठी चाली ॥ २ ॥
सास विचारी ज्यौं त्यौं नीकी सुसरौ वडौ कसाई।
तास्यौं संगति वनै न कवहूं निकसिइ भयौ जंवांई ॥ ३ ॥
पुत्र हुवौ परि पाइ पांगुलौ नैंन अनन्त अपारा।
सुन्दरदास इसौ कुल दीपग कियौ कुटंव संहारा ॥ ४ ॥

(१०)

(ताल चरचरी)

पल पल छिन काल ग्रसत, तोहिं दृग नाहिं द्रसत,
हँसत मूढ अज्ञान तें।
करत है अनेक धन्ध, और कौन वदत अन्ध,
देपत शठ विनस जाइ झूठे अभिमान तें ॥ (टेक)
पर्यौ जाइ विषै जाल होइगें वुरे हवाल,
वहुत भांति दुःख पंहै निकसत या प्रान तें।
सुत दारा छाडि धाम अरथ धरम कौन काम
सुन्दर भजि राम नाम छूटै भ्रम आन तें ॥ १ ॥

(११)

(तिताला)

भया मैं न्यारा रे। सतगुरु के जु प्रसाद भया मैं न्यारा रे ॥
श्रवन सुन्यौ जव नाद भया मैं न्यारा रे।
छूटौ वाद विवाद भया मैं न्यारा रे ॥ (टेक)

विषय तथा कामक्रोधादिक । सर=ज्ञान का तीर । त्रिया=तृष्णा । लहुडी=लघुता, निरभिमानता । सास=वुद्धि । सुसरो=मात्सर्य । जंवाई=अभिमान, क्रोध । पुत्र=ज्ञान । अनंत नैन=दिव्य दृष्टि, प्रकाश । कुल दीपग=जिज्ञासु ज्ञानी जीव संत महात्माओं का सत्संग ।

१० वां पद—द्रसत=दीसत, दिखता । आन=अन्य । भिन्न ।

लोक वेद को संग तज्यौ रे साधु समागम कीन।
माया मोह जञ्जाल तें हम भागि किनारौ दीन॥ १॥
नाम निरंजन लेत हैं रे और कछू न सुहाइ।
मनसा वाचा कर्मना सब छाडी आन उपाइ॥ २॥
मनका भरम विलाइया रे भटकत फिरता दूरि।
उलटि समाना आप मैं तब प्रगट्या राम हजूरि॥ ३॥
पिंड ब्रह्मण्ड जहां तहां रे वा बिन और न कोइ।
सुन्दर ताका दास है जातैं सब पैदाइस होइ॥ ४॥

(१२)

(तिताला)

काहे कौं तूं मन आनत भै रे। जगत बिलास तेरौ भ्रम है रे॥ (टेक)
जन्म मरन देहनि कौं कहिये सोऊ भ्रम जब निश्चय ग्रहिये॥ १॥
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शंका तूंही राव भयौ तूं रंका॥ २॥
सुख दुख दोऊ तेरे कीये तैंही बन्ध मुक्त करि लीये॥ ३॥
द्वैत भाव तजि निर्भै होई तब सुन्दर सुन्दर है सोई॥ ४॥१२॥

(१) राग माली गौडो

(ताल रूपक)

हरि नाम तें सुख ऊपजै मन छाडि आन उपाइ रे।
तन कष्ट करि करि जौ भ्रमै तौ मरन दुःख न जाइ रे॥ (टेक)
गुरु ज्ञान कौ विश्वास गहि जिनि भ्रमै दूजी ठौर रे।
योग यज्ञ कलेश तप ब्रत नाम तुलत न और रे॥ १॥

---

११ वां पद=उलटि समाना आपमें=अंतर्मुख वृत्ति हो गई। पिंड=शरीर, काया। ब्रह्मण्ड=सकल सृष्टि।

[राग माली गौडो] १ ला पद—नाम तुलत=नाम के बराबर।

सब सन्त योंही कहत हैं श्रुति स्मृति ग्रन्थ पुरान रे।
दास सुन्दर नाम तें गति लहै पद निर्वान रे॥ २॥

(२)

(ताल रूपक)

सतसंग नित प्रति कीजिये मति होइ निर्मल सार रे।
रति प्रानपति सौं ऊपजै अति लहै सुक्ख अपार रे॥ (टेक)
मुख नाम हरि हरि उच्चरै श्रुति सुनै गुन गोविन्द रे।
रटि ररंकार अखंड धुनि तहां प्रगट पूरन चन्द रे॥ १॥
सतगुरु विना नहिं पाइये यह अगम उलटा पेल रे।
कहि दास सुन्दर देषतें होइ जीव ब्रह्म हि मेल रे॥ २॥

(३)

(ताल रूपक)

ब्रह्म ज्ञान विचारि करि ज्यौं होइ ब्रह्म स्वरूप रे।
सकल भ्रम तम जाय मिटि उर उदित भान अनूप रे॥ (टेक)
यह दूसरौ करि जबहिं देषै दूसरौ तब होइ रे।
फेरि अपनी दृष्टि ही कौं दूसरौ नहिं कोइ रे॥ १॥
दिवि दृष्टि करि जब देषिये तब सकल ब्रह्म विलास रे।
अज्ञान तें संसार भासै कहत सुन्दरदास रे॥ २॥

(४)

(ताल रूपक)

परब्रह्म है परब्रह्म है परब्रह्म अमिति अपार रे।
नहिं जगत है नहिं जगत है नहिं जगत सकल असार रे॥ (टेक)

---

२ रा पद—"सुख" को छन्द सौन्दर्य के लिए "सुक्ख" लिखना पड़ा है। श्रुति=कान।

३ रा पद—दिवि दृष्टि=दिव्य दृष्टि, भेद रहित ज्ञान।

नहिं पिंड है न ब्रह्मांड है नहिं स्वर्ग मृत्यु पाताल रे।
नहिं आदि है नहिं अंत है नहिं मध्य माया जाल रे ॥ १ ॥
नहिं जन्म है नहिं मरन है नहिं काल कर्म सुभाव रे।
जीव नहिं जमदूत नहिं अनुस्यूत सुन्दर गाव रे ॥ २ ॥

(५)

जग तै जन न्यारा रे। करि ब्रह्म विचारा
ज्यौं सूर उज्यारा रे। (टेक)
जल अंबुज जैसैं रे, निधि सींप सु तैसैं रे
मणि अहि मुख ऐसैं रे ॥ १ ॥
ज्यौं दर्पन माहीं रे, दीसै परछांही रे, कछु परसै नहीं रे ॥ २ ॥
ज्यौं घृत हि समीपै रे, सब अंग प्रदीपै रे, रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥
ज्यौं है आकसा रे, कछु लिपै न तासा रे, यौं सुंदरदासा रे ॥ ४ ॥

(६)

गुरु ज्ञान बताया रे, जग झूठ दिपाया रे, यौं निश्चै आया रे ॥ (टेक)
ज्यौं मृग जल दीसै रे, कोइ पिया न पीसै रे, यौं बिस्वा बीसै रे ॥ १ ॥
ज्यौं रैनि अंधारी रे, रजु सर्प निहारी रे, भ्रम भागा भारी रे ॥ २ ॥
ज्यौं सींप अनूपा रे, करि जान्यौ रूपा रे, कोइ भयौ न भूपा रे ॥ ३ ॥
वंध्या सुत झूलै रे, आकास कै फूलै रे, नहिं सुन्दर भूलै रे ॥४॥१८॥

(१) राग कल्याण

(तिताला)

तोहि लाभ कहा नर देह कौ।
जो नहिं भजे जगतपति स्वामी तौ पशुवन में छेह कौ। (टेक)

---

४ था पद—अनुस्यूत=सर्वव्यापक, ओतप्रोत

६ ठा पद—पीसै=पीवैगा (रा०)।

पान पान निद्रा सुख मंथुन सुत दारा धन गेह कौ ।
यह तौ ममत आहि सबहिंन कौं मिथ्या रूप सनेह कौ ॥ १ ॥
समझि विचारि देषि या तन कौं बंध्यौ पूतरा पेह कौ ।
सुन्दरदास जानि जग झूठौ इनमैं कोउ न केह कौ ॥ २ ॥

(२)

(ताल तिताला)

नर राम भजन करि लीजिये ।
साध संगति मिलि हरि गुन गइये प्रेम मगन रस पीजिये । (टेक)
भ्रमत भ्रमत जग मैं दुख पायौ अब काहे कौं छीजिये ।
मनिषा जन्म जानि अति दुर्लभ कारिज अपनौ कीजिये ॥ १ ॥
सहज समाधि सदा ल्य लागै इहि विधि जुग जुग जीजिये ।
सुंदरदास मिलै अविनाशी दंड काल सिर दीजिये ॥ २ ॥

(३)

(ताल तिताला)

नर चिंत न करिये पेट की ।
हलै चलै तामैं कछु नांही कलम लिपी जो ठेट की ॥ (टेक)
जीव जंत जल थल के सबही तिनि निधि कहा समेट की ।
समय पाय सबहिंन कौं पहुचैं कहा बाप कहा बेटकी ॥ १ ॥
जाकौ जितनौ रच्यौ विधाता ताकौ आवै तेटकी ।
सुंदरदास ताहि किन सुमिरौ जौ है ऐसा चेटकी ॥ २ ॥

[राग कल्याण] १ ला पद (जारी)—पूतरा=पुतला, मूर्त्ति । केह=किसी का ।

२ रा पद—दंड काल सिर=काल के माथे में सोंटा मारो । । काल जंतो । अमर बनो ।

३ रा पद—बेटकी=बेटी, पुत्री । तेटकी=तितनो (वा, उतने टके भर, वजन भरी) । चेटकी=चेटक करने वाला । इस अद्भुत सृष्टि का रचने, पालने और फिर मिटा देने वाला ।

(४)

(धीमा तिताला)

जग झूठौ है झूठौ सही। पूरन ब्रह्म अकल अविनाशी।
मन वच क्रम ताकौं गही ॥ (टेक)

उपजै विनसै सो सब बाजी वेद पुराननि मैं कही।
नाना विधि के पेल दिपावै बाजीगर सांचौ उही ॥ १ ॥
रज भुजंग मृगतृष्णा जैसी यह माया विस्तरि रही।
सुन्दर वस्तु अखंड एक रस सो काहू विरलै लही ॥ २ ॥

(५)

(तिताला)

तत थेई तत थेई तत थेई ता धी। नागड धी नागड धी
नागड धी मा धा । (टेक)

थुंगनि थुंगनि थुंगनि थुंगा त्रिघट उघटितत तुरिय उतंगा ॥ १ ॥
तन नन तन नन तन नन तन्ना गुप्ता गगनवत आतम भिन्ना ॥ २ ॥
तत् त्वं तत् त्वं तत् सो त्वं असि साम वेद यौं वदत तत्वमसि ॥३॥
अद्भुत निरतत नासत मोहं सुंदर गावत सोहं सोहं ॥ ४ ॥ २३ ॥

---

४ था पद—सही=यह बात सही है, निश्चित है, सिद्धांत की है।

५ वां पद—इसका अध्यात्म अर्थ। तत्=वह ब्रह्म। थे ई=तुमही निश्चय करके हो। ता धी=वह बुद्धि, ब्रह्मवृत्ति वाली। नागड़ धी=नागी बुद्धि, असंप्रज्ञात समाधि में जो अंतःकरण की अवस्था। नागड़ धी=नहीं गहरी गढ़नेवाली बुद्धि। नागड़ धी=नागर+धी=शुद्ध संस्कृत हुई बुद्धि। मा धी=मत हठसे ढकेल। यहां केवल उक्त शुद्ध बुद्धि का काम है। (जारी)—थुंग निथुंग..=थू+अंग=थ्वंग=थुंग—अंग, काया माया हेय हैं थूकने योग्य। तीन वेर कहने से वचन की प्राधान्यता हुई। त्रिघट=स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों ही नाशमान शरीर हैं। उघटित=ये तीनों उद्घाटित, खुल जांय अर्थात् इनका अन्त हो जाय। (तब) वह तत्

(१) राग कानडौ

राम छबीले कौ व्रत मेरैं।

सुख तौ सुखी दुखी तौ हू सुख ज्यौं रापै त्यौं नेरैं॥ (टेक)

निश तौ निश बासर तौ बासर जोई जोई कहैं सोई सोई वेरैं।

आज्ञा मांहि एक पग ठाढी तब हाजरि जब टेरैं॥ १॥

रीसि करहिं तौ हू रस उपजै प्रीति करहिं तौ भाग भलेरैं।

सुन्दर धन के मन मैं ऐसी सदा रहूंगी केरैं॥ २॥

(२)

संत सुखी दुख मय संसारा।

संत भजन करि सदा सुखारे जगत दुखी गृह के विवहारा॥ (टेक)

संतनि कै हरि नाम सकल निधि नाम सजीवनि नाम अधारा।

जगत अनेक उपाइ कष्ट करि उदर पूरना करै दुखारा॥ १॥

संतनि कौं चिंता कछु नाहीं जगत सोच करि करि मुख कारा।

सुन्दरदास संत हरि सनमुख जगत विमुख पचि मरै गंवारा॥ २॥

(३)

संत समागम करिये भाई।

जानि अजानि छुवै पारस कौं लोह पलटि कंचन होइ जाई॥ (टेक)

नाना विधि वतराइ कहावत भिन्न भिन्न करि नाम धराई।

जाकौं बास लगै चन्दन की चन्दन होत बार नहिं काई॥ १॥

सत् ब्रह्म) उत्तंग अर्थात् सर्वोच्च सबसे ऊपर प्राप्त हो जो तुरीय है। अर्थात् रीयावस्था। तननन...ततन=न इति जो प्रगट विश्व दृश्यमान भासता है सो पर-ब्रह्म नहीं है यह तो माया मात्र है। ब्रह्म तो आकाश की तरह अति सूक्ष्म परन्तु र्व व्यापक है। आगे स्पष्ट अर्थ है।

[राग कानडौ] १ ला पद—नेरैं=निकट। वेरैं=वेला, समय। हर वक्त हाजिर। न=धण, पत्नी। केरैं=केडै (रा०) गिर्द फिरी।

नवका रूप जानि सतसंगति तामैं सब कोई बैठहु आई।
और उपाइ नहीं तरिबे कौ सुन्दर काढी राम दुहाई॥ २॥

(४)

हरि सुख की महिमां शुक जांनैं।
इंद्रपुरी शिव ब्रह्मलोक पुनि वैकुंठादिक नजरि न आंनैं। (टेक)
ता सुख मगन रहैं सनकादिक नारद हू निर्मल गुन गांनैं।
ऋषभदेव दत्तात्रय तन मैं वामदेव महा मुक्त बषानैं॥ १॥
ता सुख कौ क्षय होइ न कबहूं सदा अखंडित संत प्रवांनैं।
सुन्दरदास आस वा सुख की प्रगट होइ तबही मन मांनैं॥ २॥

(५)

सब कोउ आप कहावत ज्ञानी।
जाकौं हर्ष शोक नहिं व्यापै ब्रह्मज्ञान की ये नीसांनी॥ (टेक)
ऊपर सब विवहार चलावै अंतहकरण शून्य करि जांनी।
हानि लाभ कछु धरै न मन मैं इहिं विधि विचरै निर अभिमांनी॥ १॥
अहंकार की ठौर उठावैं आतम दृष्टि एक उर आंनी।
जीवन-मुक्त जांनि सोइ सुन्दर और बात की बात बषांनी॥ २॥

(६)

तूं अगाध परब्रह्म निरंजन को अब तोहि लहै।
अजर अमर अविगति अविनासी कौंन रहनि रहै॥ (टेक)
ब्रह्मादिक सनकादिक नारद से सहु अगम कहै।
सुन्दरदास बुद्धि अति थोरी कैसं तोहि गहै॥ १॥

---

३ रा पद — काई=कुछ। राम दुहाई=संत समागम से बढकर मोक्ष का उपाय अन्य नहीं। इस बात को राम की दुहाई देकर कहते हैं।

४ था पद — शुक=शुकदेव मुनि। भागवत में ब्रह्मानन्द को भक्ति द्वारा प्राप्त करने का उपदेश है।

५ वां पद—बात की बात=कोरी बात है। ६ ठा पद—गहै=प्राप्त करैं। पकड़ै।

(७)

ज्ञान तहां जहां द्वंद्व न कोई।
याद विवाद नहीं काहू सौं गरक ज्ञान में ज्ञानी सोई ॥ (टेक)
भेदाभेद दृष्टि नहिं जाकै हर्ष शोक उपजै नहिं दोई।
समता भाव भयौ उर अंतर सार लियौ सब ग्रंथ बिलोई ॥ १ ॥
स्वर्ग नरक संशय कछु नांहीं मनकी सकल वासना धोई।
वाही कैं तुम अनुभव जानौं सुन्दर उहै ब्रह्ममय होई ॥ २ ॥

(८)

पंडित सो जु पढै यह पोथी।
जा में ब्रह्म विचार निरंतर और बात जानौं सब थोथी ॥ (टेक)
पढत पढत केते दिन बीते विद्या पढी जहां लग जो थी।
दोष बुद्धि जौ मिटी न कबहूं यातैं और अविद्या को थी ॥ १ ॥
लाभ पढै कौ कछू न हूवौ पूंजी गई गांठि की सो थी।
सुन्दरदास कहै समुझावै बुरौ न कबहूं मानौं मो थी ॥ २ ॥ ३१ ॥

(१) राग बिहागड़ौ

(ताल त्रिवट)

हो वैरागी राम तजि किंहि देश गये।
ता दिन तें मोहि कल न परत है परवसि प्रांन भये ॥ (टेक)
भूष पियास नींद नहिं आवै नैंननि नेम लये।
अंजन मंजन सुधि सब बिसरी नख शिष बिरह तये ॥ १ ॥

---

७ वा पद—गरक=डूबा हुआ, गहरी पहुंच वाला। विलोई=मथन करके। मनन करके।

८ वां पद—को थी=कौन सी थी। इससे बढकर अज्ञान और क्या हो सकता है। मो थी=मुझ से, मेरे कहे का।

[राग बिहागड़ौ]१ ला—तये=तपाये।

आपु कृपा करि दरसन दीजै तुम कौंनैं रिझये।
सुन्दर विरहनि तब सुख पावै दिन दिन नेह नये ॥ २ ॥

(२)

(भीमा तिताला)

माई हो हरि दरसन की आस।
कब देषों मेरा प्रान सनेही नैंन मरत दोऊ प्यास ॥ (टेक)
पल छिन आध घरी नहिं विसरौं सुमिरत सास उसास।
घर बाहरि मोहि कल न परत है निस दिन रहत उदास ॥ १ ॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी सूके रगत र मांस।
सुन्दर विरहनि कैसें जीवै विरह विथा तन त्रास ॥ २ ॥

(३)

(तिताला)

हमारै गुरु दीनी एक जरी।
कहा कहौं कछु कहत न आवै अंमृत रसहि भरी ॥ (टेक)
ताकौ मरम संत जन जानत वस्तु अमोल परी।
यातें मोहि पियारी लागत लैकरि सीस धरी ॥ १ ॥
मन भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक पात सब जग कौं सो भी देप डरी ॥ २ ॥
त्रिविधि विकार ताप तनि भागी दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन मुनि मीच पलाई और कवन वपुरी ॥ ३ ॥
निस वासर नहिं ताहि विसारत पल छिन आध घरी।
सुन्दरदास भयौ घट निरविप सबही व्याधि टरी ॥ ४ ॥

---

१ ला कौंनैं=क्यों नहीं (अर्थात् क्यों नही रिझाये)।२ रा पद—रगत र=रक्त (रुधिर) र (और)।

३ रा पद—तनि=काया में। मीच=मौत। पलाई=भागी।

(४)

(तिताला)

मन मेरे उलटि आपु कौं जांनि ।

काहे कौं उठि चहुं दिशि धावै कौंन परी यह वांनि ॥ (टेक)

सत गुरु ठौर वताई तेरी सहज सुंनि पहिचांनि ।

तहां गये तोहि काल न व्यापै होइ न कवहूं हांनि ॥ १ ॥

तूं ही सकल वियापी कहिये संमुझि देपि भ्रम भांनि ।

तूं ही जीव शीव पुनि तूं ही तूं ही सुन्दर मांनि ॥ २ ॥

(५)

(तिताला)

हाहा रे मन हाहा ।

हाइ हाइ तोहि टेरि कहत हौं अव चलि सीधी राहा ॥ (टेक)

वार वार संमुझायौ तो कौं दे दे लंवी धाहा ।

निकसि जाइ पल मांहि धूम ज्यौं कतहूं ठौर न ठाहा ॥ १ ॥

तेरौ वार पार नहिं दीसै वहुत भांति औगाहा ।

डुवकी मारि मारि हम थाके कतहुं न पायौ थाहा ॥ २ ॥

जौ तूं चतुर प्रवीन जांन अति अवकै करि निर्वाहा ।

छाडि कलपना राम नाम भजि यातैं और न लाहा ॥ ३ ॥

चञ्चल चपल चाहि माया की यह गुलांम-गति काहा ।

सुन्दर सँमुझि विचार आपुकौं तू तौ है पतिसाहा ॥ ४ ॥

---

४ था पद सहज सुंनि=सहज योग से शून्यावस्था (वृत्ति रहित भूमि का ज्ञान की)। शीव=शिवा। कैवल्य।

५ वा पद—धाहा=जोर से चीख मार कर पुकारना। औगाहा=विचार किया। काहा=काह, क्या वस्तु है ? कैसी है ?

(६)

(तिताला)

तूं ही रे मन तू ही।

कौंन कुबुद्धि लगी यह तोकौं होत सिंह तैं चूही॥ (टेक)

छानत छार फिरै निसवासर कौडी कौं सब भू ही।

अंमृत छाडि निलज्ज मूढ-मति पकरत नीरस छूही॥ १॥

अंत न पार कलपना तेरी ज्यौं वरिषा ऋतु* फूही।

सुख निधान अपनौं सुख तजि कैं कत ह्वै दुःख समूही॥ २॥

शिव सनकादिक पुनि ब्रह्मादिक प्रहल्लाद॰ अरु ध्रू ही।

नाम कबीरा सोभा पीपा कहे सतगुरु दादू ही॥ ३॥

वाती देषि कहा तूं भूलै यह तौ है सब रूही।

सुन्दर ऐसैं जानि आपुकौं सुन्दर काहि न हू ही॥ ४॥

(७)

गुजराती भाषा

(ताल दीपचन्दी-होली का ठेका)

भाई रे आपणपौ जू ज्यौं। सांभलि नैं जिमना तिम हूं ज्यौं॥ (टेक)

जीव थया ज्यारैं देह हूं जारायौं। निज सरूप नथी आप पिछाण्यौं॥ १॥

मूलगौं ज्ञान† तुम्हे वीसर्यौ ज्यारैं। जीव थया तुम्हें ततक्षण त्यारैं॥ २॥

सद्गुरु मिलैं संसय जाये। पोतानी जांणै महिमाये॥ ३॥

हूं हूं करतौ तेहूं भोलै। हूंतौ तेजे सोहं बोलै॥ ४॥

हम जाणै हूं वस्तु अनामैं। सुन्दर तें सुन्दर पद पामै॥ ५॥

---

६ ठा पद— भू ही=पृथ्वी को ही। फूही=फफोंद। भुरं पानी की छींटों की। रूही=रुई। हू ही=हो जाता।

* रितु पाठ भी है।

॰ उच्चारणार्थ ल को ह्ल लिखा। † 'ग्यान' पाठ।

(१) राग केदारो

व्यापक ब्रह्म जानहु एक।

और भ्र दूरि सब मकरिये इहै परम विवेक॥ (टेक)

ऊंच नीच भलौ बुरौ सुभ असुभ यह अज्ञांन।

पुन्य पाप अनेक सुख दुख स्वर्ग नरक वषांन॥ १॥

द्वंद्व जौं लौं जगत तौं लौं जन्म मरण अनंत।

हृदै में जब ज्ञान प्रगटै होइ सबकौ अन्त॥ २॥

दृष्टि गोचर श्रुति पदारथ सकल है मिथ्यात।

स्वप्न तें जाग्यौ जबहिं तब सब प्रपंच विलात॥ ३॥

यथा भांन प्रकाश तें कहुं तम रहै न लगार।

कहत सुन्दर संमुझि आई तब कहा संसार॥ ४॥

(२)

देषहु एक है गोविंद।

द्वैत भाव हि दूरि करिये होइ तब आनन्द॥ (टेक)

आदि ब्रह्मा अन्त कीट हु दूसरौ नहिं कोइ।

जो तरंग विचारिये तौ वहै एकै तोइ॥ १॥

पंच तत्व रु तीन गुन कौ कहत है संसार।

तऊ दूजौ नाहिं एकहि बीज कौ बिस्तार॥ २॥

अतत निरसन कीजिये तौ द्वैत नहिं ठहराइ।

नहिं नहीं करते रहै तहां वचन हूं नहिं जाइ॥ ३॥

हरि जगत में जगत हरि में कहत है यौं वेद।

नाम सुन्दर धर्‍यौ जब ही भयौ तब ही भेद॥ ४॥

[राग केदारो] २ रा पद—अतत निरसन=अतत्व जो माया उसका निरसना नाम बाध होने से। (जारी) नाम=नाम रूप मय जगत है।

(३)

ज्ञान बिन अधिक अरूझत है रे।

नैंन भये तौ कौंन काम के नैंक न सूझत है रे॥ (टेक)

सब में व्यापक अन्तरजांमी ताहि न बूझत है रे।

भेद दृष्टि करि भूलि पर्‌यौ है तातैं जूझत है रे॥ १॥

कठिन करम की परत भापसी मांहि अमूंझत है रे।

सुन्दर घट में कांमधेन हरि निश दिन दूझत है रे॥ २॥

(४)

हरि बिन सब भ्रम भूलि परे हैं।

नाना विधि के क्रिया कर्म करि बहु विधि फलन फरे हैं॥ (टेक)

कोऊ सिर परि करवत धारैं कोऊ हीम गरे हैं।

कोऊ झंपापात लेइ करि सागर बूडि मरे हैं॥ १॥

कोऊ मेघाडम्बर भीजहिं पंचा अग्नि जरे हैं।

कोऊ सीतकाल जल पैठैं बहु कामना भरे हैं॥ २॥

कोऊ लटिकि अधोमुख झूलहिं कोऊ रहत परे हैं।

कोऊ बन में पात कन्द पणि बलकल बसन धरे हैं॥ ३॥

कोऊ तीरथ कोऊ व्रत करि कष्ट अनेक करे हैं।

सुन्दर तिनकौं को समुझावै पुहपित वचन छरे हैं॥ ४॥

---

३ रा पद—अरुझत=उलझता, कठिनाई में फसता। जूझत=लड़ता। अमूंझत=चित्त में अवगाई पाता है। दूझत=दूध देती।

४ था पद—फरे=फले। हीम=हिमालय में। कंद पणि=कंद जमीन से खोदकर निकाल कर (?)। पुहपित=पुष्प भरे। छरे=टपक पड़े, फड़ पड़े, अर्थात् उनका वचनाडंबर ही बड़ा सुन्दर है। अथवा "पुष्पितां वाचं" (गीता) इससे अभिप्राय है।

(१) राग मारू

लगा मोहि राम पियारा हो।
प्रीति तजि संसार सौं मन किया न्यारा हो ॥ (टेक)
सत गुरु शब्द सुनाइया दिया ज्ञान विचारा हो।
भरम तिमर भागे सबै गहि कीया उज्यारा हो ॥ १ ॥
चापि चापि सब छाडिया माया रस पारा हो।
नाम सुधारस पीजिये छिन बारम्बारा हो ॥ २ ॥
मैं बन्दा ब्रह्म का जाका वार न पारा हो।
ताहि भजै कोइ साधवा जिनि तन मन मारा हो ॥ ३ ॥
आन देव कौं ध्यावई ताके मुख छारा हो।
अलप निरञ्जन ऊपरै जन सुन्दर वारा हो ॥ ४ ॥

(२)

मेरे जिय आई ऐसी हो।
तन मन अरप्यौ राम कौं पीछे जानौ जैसी हो ॥ (टेक)
सत गुरु कही मरम की हिरदै मैं वैसी हो।
संमुझि परी सब ठौर की कहौं रही न कैसी हो ॥ १ ॥
अन जानै जो कछु किया अब होय न वैसी हो।
रीति सकल संसार की मोहि लगत अनैसी हो ॥ २ ॥
मनसा बाहरि दौरती अभि अन्तर पैसी हो।
अगम अगोचर सुंनि में तहां लागी लै सी हो ॥ ३ ॥
जो आगै सन्तनि करी उपजी है तैसी हो।
सुन्दर काहे कौं डरै जब भागी भै सी हो ॥ ४ ॥

[राग मारू] २ रा पद—अनैसी=अप्रिय, बुरी। लै=लय, लग्न। भै सी=भय-
ली। भयानक।

(३)

सुन्यों तेरौ नीकौ नांऊं हो।
मोहि कछू दत दीजिये बलिहारी जांऊं हो॥ (टेक)
सब ठाहर होइ आइयौ रुचि नहीं कहांऊं हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं अरु किते बताऊं हो॥ १॥
मैं अनाथ भूषौ फिरौं तोहि पेट दिपांऊं हो।
धका लगे तें गिर परौं तबही मरजांऊं हो॥ २॥
दुर्बल की कछु बूझिये कबकौ बिललांऊं हो।
तेरै कछु घटि है नहीं मैं कुटम्ब जिवांऊं हो॥ ३॥
राम राम रटिबौ करौं निर्मल गुन गांऊं हो।
सुन्दर रङ्क निवाजिये यहु रोजी पांऊं हो॥ ४॥

(४)

सोई जन राम कौं भावै हो।
कनक कामिनी परहरै नहिं आप बन्धावै हो॥ (टेक)
सबही सौं निरवैरता काहू न दुपावै हो।
सीतल बानी बोलिकै रस अंमृत प्यावै हो॥ १॥
कैतौ मौंन गहे रहै के हरिगुन गावै हो।
भरम कथा संसार की सब दूरि उडावै हो॥ २॥
पंचौ इन्द्री बसि करै मन मनहिं मिलावै हो।
काम क्रोध अरु लोभ कौं पनि पोदि बहावै हो॥ ३॥
चौथा पद कौ चीन्ह कैं ता. मांहिं समावै हो।
सुन्दर ऐसे साधु की ढिग काल न आवै हो॥ ४॥

---

३ रा पद—कहांऊं=कहीं भी।

पद ४ था—चौथा पद=तुरीया अवस्था। गुणातीत हो जाना।
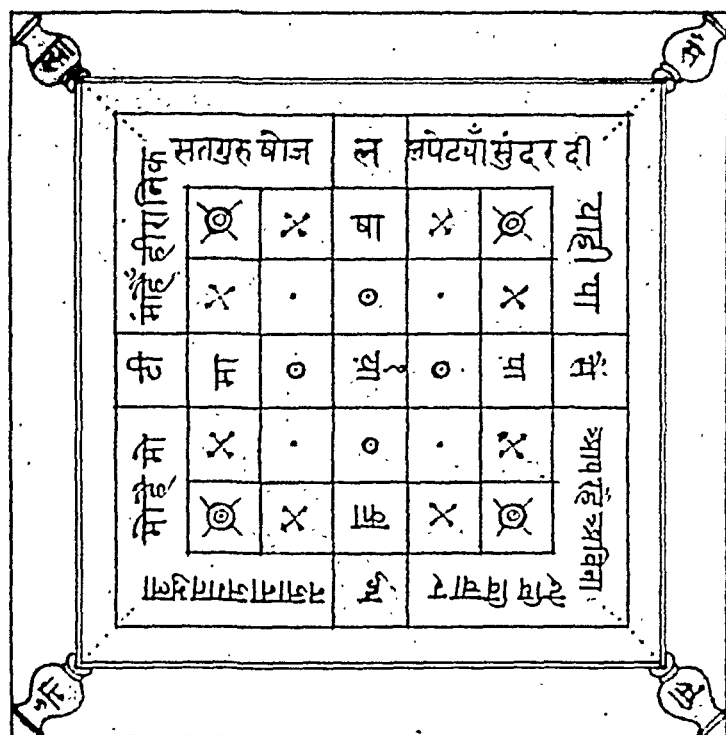
चौकी बंध

चौपइया

या पासैं आप रहै अविनाशी देषि विचारहु काया।
या काहु न जाना जगत भुलाना मोहै मोटी माया॥
या मांटी माहैं हीरा निकस्या सतगुरु षोज लपाया।
या पाल लपेट्यौं सुन्दर दीसैं याही पासैं पाया॥ ५॥

इसके पढ़ने की विधि

इस चित्रकाव्य के चित्र के गर्भ में या अक्षर से प्रारंभ करके दाहिनी ओर पढ़ें। और सैं फिर दाहिनो ओर पढ़ते हुए चौकी के प्रथम पागे में सी अक्षर में चरणार्ध वा यति को ण करके आगे पार्श्व के देषि आदि शब्दों को पढ़ कर हु अक्षर को पढ़ अंदर काया शब्द पर चरण पूर्ण करें। फिर उसही या अक्षर से काहु में होकर मोटी माया तक अंदर आ पढ़ें। दूसरा चरण पूरा हुआ। आगे इसही प्रकार उसही या अक्षर से शेष दोनों चरणों को पढ़ कर दीसैं याही पासैं पाया। यहां समाप्त कर दें। चारों चरणों के चरणार्धों में चार अक्षर पागोंमें हैं।

(५)

जुवारी जूवा छाडौ रे।

हारि जाहुगे जन्म कौं मति चौपडि मांडौ रे ॥ (टेक)

चौपड अंतहकरण की तीनौं गुन पसा रे।
सारि कुबुद्धी धरत हो यौं होइ विनासा रे॥ १ ॥

लष चौरासी घर फिरै अव नरतन पायौ रे।
पाकी काची सारि ह्वै जो दाव न आयौ रे॥ २ ॥

भूठी बाजी है मंडी तामैं मति भूलौ रे।
जीव जुवारी वापडा काहे कौं फूलौ रे॥ ३ ॥

सारि संमुभि कैं दीजिये तौ कवहु न हारौ रे।
सुन्दर जीतौ जन्म कौं जौ राम संभारौ रे॥ ४ ॥

(६)

ऐसी मोहि रैनि विहाई हो।

कौंन सुनै कासौं कहौं वरनी नहि जाई हो॥ (टेक)

पूरन ब्रह्म विचार तैं मोहि नींद न आई हो।
जागत जागत जागिया सूतैं न सुहाई हो॥ १ ॥

कारण लिंग स्थूल की सब शंक मिटाई हो।
जाग्रत स्वप्न सुषोपती तीनौं विसराई हो॥ २ ॥

तुरिया तत्पद अनुभयौ ताकी सुधि पाई हो।
"अहं ब्रह्म" यौं कहत हौ हौं गयौ विलाई हो॥ ३ ॥

वचन तहां पहुंचै नहीं यह सैंन वताई हो।
सुन्दर तुरियातीत मैं सुन्दर ठहराई हो॥ ४ ॥

---

६ ठा पद—कहत हौ=कहते कहते। कहता रहता था, (इसके अभ्यास से फिर)। गयो विलाई=ब्रह्म में लीन हो गया।

(७)

ज्ञानी ज्ञान कौं जानै हो ।
मुक्त भयौ विचरै सदा कछु शंक न आनै हो ॥ (टेक)
समुझि बूझि चुपचाप है बकवाद न ठानै हो ।
दूरि भई सब कल्पना भ्रम भेदहि भानै हो ॥ १ ॥
देषै हस्तामलक ज्यौं कछु नांहि न छानै हो ।
सुन्दर ऐसौ है रहै तबही मन मानै हो ॥ २ ॥ ४९ ॥

(१) राग भैरूं

वेगि वेगि नर राम संभाल, सिर पर मूंछ मरोरत काल (टेक)
या तन का लेपा है ऐसा, काचा कुंभ भस्या जल जैसा ।
विनसत बार कछू नहिं होई, पीछे फिरि पछितावै सोई ॥ १ ॥
को तेरी तूं काकौ पूत, धर धर नौ मन अरभ्यौ सूत ।
नीकैं समुझि देषि मन मांहिं, आठ वाट सब कोई जांहिं ॥ २ ॥
ममता मोह कौन सौं करै, वाट वटोही क्यौं नहीं डरै ।
संगी तेरे सबै सिधाये, तोकौं देन संदेसा आये ॥ ३ ॥
मनुष देह दुर्लभ है सही, शिव विरंचि शुक नारद कही ।
सुंदरदास राम भजि लेह, यह औसर वरियां पुनि येह ॥ ४ ॥

---

७ वां पद—हस्तामलक=हाथ के आंवले के समान । स्पष्ट । यथा तुलसीदासजी ने कहा है:—"जानहि तीनि काल निज ज्ञाना । करतलगत आमलक समाना ।"

[राग भैरूं] १ ला पद—लेपा=लेखा, हिसाब । अंत निश्चय । आठ घाट=आठ रस्ते । बुरे रस्ते में । वरियां=वरियान=अतिश्रेष्ठ ।

(२)

घट विनसै नहीं रहै निदांना।

षुदइ (कहुं) देष्या अकलि तैं जांना॥ (टेक)

ब्रह्म विष्णु महेसुर षपिया, इंद्र कुबेर गये तप तपिया॥ १॥

पीर पैकंवर सवैं सिधाये, मुहमद सिरिषे रहन न पाये॥ २॥

धरनि गगन पानी अरु पवना, चंद सूर पुनि करिहैं गवना॥ ३॥

एक रहै सो सुन्दर गावै, मुष्टि न माइ दृष्टि नहिं आवै॥ ४॥

(३)

वीरज नास भये फल पावै, ऐसा ज्ञान गुरू संमुझावै॥ (टेक)

मन कौं जानि सकल का मूल, सापा डाल पत्र फल फूल।

मन कै उदै पसारा भासै, मन कै मिटैं जु ब्रह्म प्रकासै॥ १॥

कौ हौं आहि कहां तें आया, क्यौं करि दूजा नाम धराया।

ऐसैं निस दिन करै बिचारा, होइ प्रकास मिटै अंधियारा॥ २॥

वाहिर दृष्टि सो भीतरि आनै, भीतरि दृष्टि ब्रह्म पहिचांनै।

जो भीतरि सो वाहरि सूझै, यह परमारथ विरला वूझै॥ ३॥

मृतिका कै घट भये अपार, जल तरंग नहिं भिन्न विचार।

सुन्न कहन सुनन कौं दोइ, पाला गलि पानी ही होइ॥ ४॥

(४)

सोई है सोई है सोई है सब मैं।

कोई नहिं कोई नहिं कोई नहिं तव मैं॥ (टेक)

पृथ्वी नहिं जल नहिं तेज नहिं तन मैं।

वायु नहिं व्योम नहिं मन आदि मन मैं॥ १॥

---

२ रा पद—यह पद किसी मुसलमान फकीर को सुनाया है। माइ=मावैं, समावैं

शब्दादि रूप रस गन्ध नहिं घर मैं।
श्रोत्र त्वकू चक्षु घ्राण रसना न चर मैं॥ २॥
सत रज तम नहिं तीन गुन हित मैं।
काल नहिं जीव नहिं कर्म नहिं कृत मैं॥ ३॥
आदि नहिं अंत नहिं मध्य नहिं अस मैं।
सुन्दर सुभाव नहिं सुन्दर है तस मैं॥ ४॥

(५)

(गुजराती भाषा में)

किम छै किम छै काम निहकाम छै।
जिमनौ तिम छै ठाम नौं ठाम छै॥ (टेक)
आम छै आम छै आम छै आम छै।
अधो नै ऊरधै दश दिशा धाम छै॥ १॥
दिवस नहिं रैंनि नहिं शीत नहिं घाम छै।
एक नहिं वे नहिं पुरुष नहिं वांम छै॥ २॥
रक्त नहिं पीत नहिं सेत नहिं स्याम छै।
कहत इम सुन्दर नाम न अनाम छै॥ ३॥

(६)

ऐसा ब्रह्म अखंडित भाई, वार पार जान्यौ नहिं जाई॥ (टेक)
अनल पंपि उडि चढि आकास, थकित भई कहुं छोर न तास॥ १॥

---

४ था पद—चर मैं=चरमावस्था वा वास्तव में। अथवा चर (जीव सृष्टि) में इन्द्रियां केवल देखने मात्र हैं। हित=जीव की भलाई गुणों में ग्रसित वा लिप्त रहने में नहीं है। कृत=कृत्य, वा किया हुआ कर्म। अस=ऐसा। तस=तैसा, वैसा। इतने किसी में भी मेरा (आत्मा का) रूप नहीं है।

५ वा पद—(गुजराती भाषा है)

लौंन पुत्तरी थाघै दरिया, जात जात ता भीतरि गरिया ॥ २ ॥
अति अगाध गति कौंन प्रवानै, हेरत हेरत सबै हिरानै ॥ ३ ॥
कहि कहि संत सबै कोउ हारा, अब सुन्दर का कहै विचारा ॥ ४ ॥

(७)

सोवत सोवत सोवत आयौ, सुपनै ही मैं सुपनौ पायौ ॥ (टेक)
प्रथमहिं सुपनो आयौ येह, आपु भूलि करि मान्यौ देह ।
ताकै पीछै सुपनौ और, सुपनै ही मैं कीन्ही दौर ॥ १ ॥
सुप्न इन्द्री सुपना भोग, सुपना अन्तहकरण विवोग ।
सुपनै ही मैं वांध्यौ मोह, सुपनै ही मैं भयौ विछोह ॥ २ ॥
सुपनै सुर्ग नरक मैं वास, सुपनै ही मैं जम की त्रास ।
सुपनै मैं चौरासी फिरै, सुपनै ही मैं जनमै मरै ॥ ३ ॥
सतगुरु शब्द जगावनहार, जब यह उपजै ब्रह्म विचार ।
सुन्दर जागि परै जे कोइ, सब संसार सुप्न तब होइ ॥ ४ ॥

(८)

तूं हीं तूं हीं तूं हीं तूं, जोई तूं है सोई हूं ॥ (टेक)
ज्यौं ज्यौं आवै त्यौं त्यौं यौं, ना कछु यौं नहिं ना कछु त्यौं ॥ १ ॥
तूंमति जाणौं है या स्यौं, ज्यौं कौ त्यौं ही ज्यौं कौं त्यौं ॥ २ ॥
यौं हीं यौं हीं यौं ही यौं, सुन्दर धोपौ रापै क्यौं ॥ ३ ॥

---

६ ठा पद—अनल पंष=एक पक्षी जो सदा ही आकाश में उड़ा करता है। वहीं अंडा देता है। अंडा जमीन पर पड़ने से पहिले फूट जाता है और बच्चा निकलते उड़कर मां-बापों के पास चला जाता है।—(हिन्दी शब्दसागर)। जीव भी ब्रह्मरूपी आकाश में (इस पक्षी की तरह) रहकर उसका पता नहीं पाता है।

८ वां पद—त्यौं यौं=जैसे २ जन्म लेता हूं कर्म करने-लेने देने का व्यवहार चलता है। परन्तु यह सब मिथ्या है। इससे न लेना कोई वस्तु है न देना कुछ

(१) राग ललित

तूं अगाध तूं अगाध, तूं अगाध देवा।
निगम नेति नेति कहैं, जानैं नहिं भेवा॥ (टेक)
ब्रह्मादिक विष्णु शंकर, सेस हू वपानैं।
आदि अन्ति मद्धि तुमहि, कोऊ नहिं जानैं॥ १॥
सनकादिक नारदादि (क) सारदादि (क) गावैं।
सुर नर मुनि गन गँधर्व, कोऊ नहिं पावैं॥ २॥
साध सिद्धि थकित भये, चतुर वहु सयांनां।
सुन्दरदास कहा कहै, अति ही हैरांनां॥ ३॥

(२)

द्वार प्रभु कै जाचन जइये।
विविधि प्रकार सरस गुन गइये॥ (टेक)
जाचिक होइ सु नींद निवारै, वड़े प्रात दाता हि संभारै॥ १॥
नित प्रति ताकै कान जगावै, वह पुनि जानै जाचिक आवै॥ २॥
दाता के मन चिन्ता होई, दान करन की उपजै कोई॥ ३॥
सुन्दरदास पहाऊ गावै, मांगत इहै जु दरसन पावै॥ ४॥

(३)

अव हूं हरि कौं जाचन आयौ।
देषे देव सकल फिरि फिरि मैं, दालिद्र भंजन कोउ न पायौ (टेक)
नाम तुम्हारौ प्रगट गुसांई, पतित उधारन वेदन गायौ।
ऐसी सापि सुनि संतनि मुख, देत दान जाचिक मन भायौ॥ १॥

वस्तु है। या स्यों=निरामय ब्रह्म को इस विकारवाली माया जैसा मत जान। (या स्यों=इस जैसा)। अर्थात् ब्रह्म अक्षर अखंड सत् है।

[राग ललित] १ ला पद—साद्धि=सिद्ध। अथवा सिद्धि को साध कर प्राप्त करके।
२ रा पद—पहाऊ=सुबह वा सुबह का गीत, परभाती।

तेरै कौंन वात कौ टोटौ, हौं तौ दुख दलिद्र करि छायौ।
सोई देह घटै नहिं कब हौं, वहुत दिवस लग जाइ न पायौ॥ २॥
अति अनाथ दुर्वल सवही विधि, दीन जानि प्रभु निकट वुलायौ।
अंतहकरण उमगि सुन्दर कौ, अभैदान दे दुःख मिटायौ॥ ३॥

(४)

तुम प्रभु दीन दयाल मुरारी।
दुःख हरण दालिद्र निवारण, भक्त वछल संतनि हितकारी॥ (टेक)
जे जे तुमकौं भजत गुसांई, तिन तिन की तुम विपति निवारी।
आप सरीपे करिकैं रापे, जनम मरन की संका टारी॥ १॥
वार वार तुम सौं कहा कहिये, जानराइ भय-भंजन भारी।
सुन्दरदास करत है विनती, मोहू कौं प्रभु लेहु उवारी॥ २॥

(५)

आजु मेरैं गृह सत गुरु आये।
भरम करम की निसा वितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिपाये। (टेक)
अति आनन्द कन्द सुख सागर, दरसन देपत नैंन सिराये।
प्रफुलित कमल अंग सव पुलकित, प्रेम सहित मन मंगल गाये॥ १॥
वचन सुनत सवही दुख भागे, जागे भाग चरन सिर लाये।
सुन्दर सुफल भयौ सवही तनु. जन्म जन्म के पाप नसाये॥ २॥

---

३ रा पद—देह=देहु, दीजिए।

४ था पद—जानराइ=सव कुछ जाननेवाले।

५ वा पद—सिराये=शीतल हुए। जो नेत्र विरह की तपत से तपे हुए थे वे दर्शनों की शीतलता से तृप्त हो गये। (यह पद स्वा० सुन्दरदासजी ने रज्जवजी या जगजीवणजी के आने पर कहा।)

(६)

जागि सवेरं जागि सवेरे, जागि परें तें तू ही है रे ॥ (टेक)
सोइ सुपन में अति दुख पावै, जागि परें जीवत्व मिटावै ॥ १ ॥
सोइ सुपन में आनत भैसौ, जागि परें जैसे कौ तैसौ ॥ २ ॥
सोइ सुपन में ह्वै गयौ रंका, जागि परें रावत है वंका ॥ ३ ॥
सोइ सुपन में सुधि बुधि पोई, जागि परें सुन्दर है सोई ॥ ४ ॥ ६३ ॥

(१) राग काल्हेड़ौ

(गुजराती भाषा में)

जो वो पूरण ब्रह्म अखंड अनावृत एक छै।
नथी बीजों अवर न कोइ यह विवेक छै॥ (टेक)
इम बाह्याभ्यंतर व्योम तिम व्यापी रह्यौ।
जेन्हो आदि न अन्त न मध्य महा वाक्यें कह्यौ ॥ १ ॥
ये जे देहादिक भ्रम रूप ते इम※ जांणि ज्यौ।
इम मृग तृष्णा में नीर निश्चय आंणिज्यौ ॥ २ ॥
ये जे शेष नाग पर्यंत ऊर्द्ध लोक छै।
ये तो जे दीसै नानात्व ते सब फोक छै॥ ३ ॥
जेन्हें उपनो आतमज्ञान तेन्हों भ्रम टल्यौ।
कहै छै सुन्दर पानी माहिं इम पालौ गल्यौ ॥ ४ ॥

६ ठा पद—'रावत है वंका'=प्रबल राजा वा शासक। स्वयम् ब्रह्म ही। स्वप्न से जागना ज्ञान प्राप्ति है।

[राग काल्हेड़ौ] १ ला पद—जेन्हो=जिसका। फोक=फोक, मरुभूमि में एक तुच्छ घास होता है। फोकट। तुच्छ।

※ 'यम' पाठान्तर है।

(२)

(गुजराती भाषा में)

काईं अद्भुत वात अनूप कही जानी नथी।
ये जे वांणी ते निर्वांण महापुरुषैं कथी ॥ (टेक)
ये जे परा पश्यंती मध्य रिदै मुख वैपरी।
ते न्हैं नेति नेति कहैं वेद कारण छै हरी ॥ १ ॥
ये जे पछै रहै अवशेष ते न्हैं स्यौं कहै।
जे न्हैं अनुभव आतम ज्ञान इम छै तिम लहै ॥ २ ॥
इम कस्तूरी कर्पूर केसरि किम छिपैं।
तेन्हीं सगलै आवैं वास प्रगट ते तिम दिपैं ॥ ३ ॥
जैन्हैं जे कांइ पाधौ होइ डकारें जांणिये।
तिम सुन्दर अनुभव गोपि वचन प्रमांणिये ॥ ४ ॥

(३)

(गुजराती भाषा में)

तम्हे सांभलिज्यो श्रुति सार वाक्य सिद्धांतना।
एतां सर्व खल्विदं ब्रह्म वचन छै अंतना ॥ (टेक)
एतां जगत नथी त्रय काल एक जगदीस छै।
इम सर्प रज्जु नै ठामि न विश्वावीस छै ॥ १ ॥
ए जे उपनौं भ्रम मिथ्यात जिहां लग रात्र छै।
काई नथी वस्तु तां अन्य कल्पना मात्र छै ॥ २ ॥

---

२ रा पद—निर्वांण=इस शब्द का सम्बन्ध वाणी से भी है और महापुरुषों से भी। निर्वाण देनेवाली वाणी। अथवा निर्वाण प्राप्ति के योग्य पुरुष। परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी—ये चार प्रकार की वाणियां हैं। स्यौं=ऐसा। नेति नेति कहने में

ज्यारें कीधौ भांन प्रकास भ्रम ततक्षण गयौं।
ज्यारें लीधौ निज कर साहि रजु नो रजु थयौं ॥ ३ ॥
तिम "एक मेव" छे ब्रह्म बीजौं को नथी।
कहे छे सुन्दर निश्चय धारि निज अनुभव कथी ॥ ४ ॥

(४)

(गुजराती भाषा में)

जेन्हैं हृदयें ब्रह्मानन्द निरन्तर थाइ छे।
जेन्हैं अनुभव जाणै तेहज किम कहवाइ छे ॥ (टेक)
ज्यारें अन्तर थी आनन्द उमगि कंठेरमैं।
त्यारें मुख थी नवि कहवाइ वली पांछूसमै ॥ १ ॥
इम लहरी उठै समुद्र मूकि जाये किहां।
एतां पाल लगणि आविनै समै जिहांनी तिहां ॥ २ ॥
तेन्ही पटतर नथी अनेक सर्व सुख स्वर्गना।
नथी ब्रह्मलोक शिवलोक नथी अपवर्गना ॥ ३ ॥
ये जे ब्रह्मानन्द अपार कहे किम जे भणी।
कांई सुन्दर नवि कहवाइ जिह्वा ते भणी ॥ ४ ॥ ६७ ॥

जो अवशिष्ट रहै अथवा मिथ्या माया के मिटने पर जो अखंड चिदानन्द सदा बना रहनेवाला परमात्मा रहता है। वह आत्मज्ञानियों को प्राप्त होता है। सगलैं=सर्वत्र। पायो=खाया।

३ रा निज अनुभव कथी=अपना निज का अनुभव ज्ञान—ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर प्राप्त हुआ उसही को स्व० सु० दा० जी ने यहां कहा है।

४ था पद—इस पद में भी ब्रह्मानन्द के अनुभव का कथन है। जेन्हैं=जिन्हैं। कंठे=कंठ में। रमैं=खेलैं। विराजै।

(१) राग देवगंधार

अब के सतगुरु मोहि जगायौ ।
सूतौ हुतौ अचेत नींद मैं, बहुत काल दुख पायौ ॥ (टेक)
कबहूं भयौ देव कर्मनि करि, कबहूं इन्द्र कहायौ ।
कबहूं भूत पिशाच निशाचर, पात न कबहूं अघायौ ॥ १ ॥
कबहूं असुर मनुष्य देह धरि, भू मंडल मैं आयौ ।
कबहूं पशु पंषी पुनि जलचर, कीट पतंग दिषायौ ॥ २ ॥
तीनौं गुन के कर्मनि करिकैं, नाना योनि भ्रमायौ ।
स्वर्ग मृत्यु पाताल लोक मैं, ऐसौ चक्र फिरायौ ॥ ३ ॥
यह तौ स्वप्नौ है अनादि कौ, बचन जाल बिथरायौ ।
सुन्दर ज्ञान प्रकास भयौ जब, भ्रम संदेह बिलायौ ॥ ४ ॥

(२)

अब तौ ऐसैं करि हम जांन्यौ ।
जो नानात्व प्रपंच जहांलौं मृगतृष्णा कौ पांन्यौ ॥ (टेक)
रजु कौ सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तैं अति भय आंन्यौ ।
रवि प्रकाश जब भयौ प्रात ही रजु कौ रजु पहिचांन्यौ ॥ १ ॥
ज्यौं बालक बेताल देषि कैं यौं ही वृथा डरांन्यौ ।
ना कछु भयौ नहीं कछु ह्वै है यह निश्चय करि मांन्यौ ॥ २ ॥
शशा-श्रृङ्ग बंध्या-सुत भूलै मिथ्या बचन बषांन्यौ ।
तैसैं जगत कालत्रय नाहीं संमुझि सकल भ्रम भांन्यौ ॥ ३ ॥

[राग देवगंधार] १ ला पद—"कबहूं' इसे 'कबहुं' उच्चारण करना ठीक होगा । बिथरायौ=फैला वा फैलाया ।

२ रा पद—(टेक में) पान्यौं=पानी । भूलै=पल्ने में (बालक) ।

जौ कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया भाव बिलांन्यौ।
सुन्दर आदि अन्त मधि सुन्दर सुन्दर ही ठहरांन्यौ ॥ ४ ॥

(३)

पद में निर्गुण पद पहिचांना।
पद कौ अर्थ बिचारै कोई पावै पद निर्वांना ॥ (टेक)
पद बिन चलै जहां पद नाहीं पद है सकल निधांना।
ज्यौं हस्ती के पद में सब पदकाहू पद न भुलांना ॥ १ ॥
देव इन्द्र बिधि शिव वैकुंठहिं ये पद ग्रंथनि गांना।
जीवत पद सौं परचै नाहीं मूये पद किन जांना ॥ २ ॥
पद प्रसिद्ध पूरण अविनाशी पद अद्वैत वपांना।
पद है अटल अमर पद कहिये पद आनन्द न छांना ॥ ३ ॥
पद पोजें तें सब पद बिसरें बिसरै ज्ञान रु ध्यांना।
पद कौ तातपर्य सो पावै सुन्दर पद हि समांना ॥ ४ ॥

(४)

अब हम जान्यौ सब में सापी।
सापि पुरातन मुनी आगिली देह भिन्न करि नांपी। (टेक)
सापी सनकादिक अरु नारद दत्त कपिल मुनि आपी।
अष्टावक्र वसिष्ट व्यास-सुत उन प्रसिद्ध यह भापी ॥ १ ॥
सापी रामानन्द गुसांई नाम कबीर हि रापी।
सापी संत सकल ही कहिये गुरु दादू यह दापी ॥ २ ॥
सापी कोऊ और जानतें मन में यह अभिलापी।
अबनौ सापी भये आपुही सुन्दर अनुभव चापी ॥ ३ ॥ ७१ ॥

---

२ रा पद—दुतिया=द्वैत। ३ रा पद—'पद' शब्द पर श्लेषार्थ कथन। पद=उच्च स्थान। पद=पांव। पद=स्थान, थल, लोक। पद=मोक्ष।

४ था पद—"सापी" शब्द में श्लेषार्थ कथन। सापी=साक्षी, परमात्मा कूटस्थ

(१) राग विलावल

संत भलैं या जग मैं आये, मनसा वाचा राम पठाये।
परम दयाल सकल सुख दाता, पर उपगारी किये विधाता ॥ (टेक)
कीये विधाता वडे ज्ञाता, शील संयम उर धरैं।
काम क्रोध कलेश माया, राग द्वेपहिं परहरैं ॥
गुन निधान रु ज्ञान सागर, अति सुजान प्रवीन हैं।
यौं कहत सुन्दर मुक्त विचरत, सदा ब्रह्महि लीन हैं ॥ १ ॥
जिन के दरसन पातक जाहीं, परसन सकल बिकार नसाहीं।
वचन सुनत भै भ्रम सब भागै, नखशिख रोम रोम तब जागै ॥
जागै जु नख शिख रोम सबही, प्रेम उमगै पलक मैं।
पुनि गलित ह्वै करि अङ्ग भीजै, सुख समुद्र की झलक मैं ॥
वै हरन दुरगति करन शुभ मति, परम दुल्लभ गाइये।
यौं कहत सुन्दर सन्त ऐसै, वड़े भागनि पाइये ॥ २ ॥
साध कि पटतर कोई न तूलै, वाजी देपि कहा कोउ भूलै।
चिंतामनि पारस कहा कीजै, हीरा पटतरि कैसैं दीजै।
दीजै न पटतर चन्द सूरिज, दीप की अव को कहै।
वह कामधेन रु कल्पतरवर, चन्दन पटतर क्यौं लहै ॥
पुनि मेरु सागर नदी वोहिथ, धरनि अंवर पेषिया।
यौं कहत सुन्दर साध सरभरि, कोइ न जग मै देषिया ॥ ३ ॥
साधु की महिमा अगम अपारा, कही न जाइ कोटि मुख द्वारा।
जिनकी पद रज वंदहिं देवा, इंद्र सहित विनवै करि सेवा ॥

निःसंग है। सापि पुराणी=पुरातन ग्रन्थों वा महात्माओं के वचन। वा वाक्य विवेक। नांपी=डाली, रक्खी। आपी=कही। व्यास-सुत=शुकदेव मुनि। दापी=कही, वा देखी।

[राग विलावल] १ ला पद—भलैं=भलेही। सौभाग्य है। मनसा वाचा राम

सेवा करहिं पुनि इन्द्र ब्रह्मा, धूप दीपनि आरती।
वे हमहिं दुर्लभ दास हरि के, करैं अस्तुति भारती॥
अति परम मंगल सदा तिनकै, साध महिमा जे कहैं।
जनम साफिल होइ सुन्दर, भक्ति दृढ हरि की लहैं॥ ४॥

(२)

सोइ सोइ सब रैंनि विहांनी, रतन जन्म की षवरि न जांनि। (टेक)
पहिले पहर मरम नहिं पावा, मात पिता सौं मोह बंधावा।
पलत पात हंस्या कहुं रोया, बालापन ऐसैं ही षोया॥ १॥
दूजै पहर भया मतवाला, परधन परत्रिय देषि षुसाला।
काम अन्ध कामिनि संगि जाई, ऐसैं ही जोवन गयौ सिराई॥ २॥
तीजै पहर गया तरनापा, पुत्र कलत्र का भया संतापा।
मेरै पीछे कैसी होई, घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई॥ ३॥
चौथे पहरि जरा तन व्यापी, हरि न भज्यौ इहिं मूरष पापी।
कहि समुझावै सुन्दरदासा, राम विमुख मरि गये निरासा॥ ४॥

(३)

किति विधि पीव रिझाइये, अनी सुनु सषिय सयानी।
जोवन जाइ उतावला कछु साथ न मानी॥ (टेक)
केस गुहे मांग भरी सिंदूर घनेरा, हार हमेला पहरिया,।
भूषन बहुतेरा, काजल नैंननि मैं कीया अवे पिय नेकु न हेरा॥ १॥

पठायें=परमात्मा ने संसार का हित विचार और आज्ञा देकर। १ ला पद में ४ अंतर-पद दिये हैं और प्रत्येक में आभोग "सुन्दरदास" है। साफिल=साफल्य, सफल। यह १ ला पद साधु-महिमा का अत्यन्त मनोरम और सार-भरा है।

२ रा पद—लरिका जोई=(अपने पुत्र मर जाने पर) दत्तक पुत्र को ढूढता फिरा।

वस्तर वहु विधि फेरिकैं, वोढे अति झीना।
दर्पन मे मुख देपि कें, सिर तिलक जु दीना॥
सव सिंगार फीका भया, अवे पिय पुस नहिं कीना॥ २॥
सेज अनूप संवारि कैं, तहां फूल विछाया।
चोवा चन्दन अरगजा, सव अंग लगाया॥
दीपग धस्था जलाइ कैं, अवे पिय मुख न दिषाया॥ ३॥
दारुन दुख कैसैं सहौं, क्यौं रहौं अकेली।
अति अरीझ मेरा सांईया, क्या करौं सहेली॥
सुन्दर विरहनि यौं कहै, अवे हौं परी दुहेली॥ ४॥

(४)

जौ पिय कौ व्रत ले रहै सो पिय हि पियारी।
काहे कौं पचि पचि मरत है मूरष विभचारी (टेक)
अंजन मंजन क्या करै क्या रूप सिंगारा।
ऊपर निर्मल देपिये दिल मांहिं विकारा।
इन वातनि क्यौं पाइये अवे प्रीतम पिय प्यारा॥ १॥
पतिव्रत कवहुं न देपिये मन चहुं दिश धावै।
और सपिन मैं वैसि कैं पतिव्रता कहावै।
हौंस करै पिय मिलन की अवे तोहि लाज न आवै॥ २॥
कोटि जतन कीयें कहा पिय एक न मांनै।
नाना विधि की चातुरी वहुतेरी ठांनै॥
तन कौं वहुत वनावई अवे मन सौंपि न जांनै॥ ३॥

---

२ रा पद—अनी=री, अरी, ओ (संवोधन—पंजा० भा०)। अवे=हैफ, अफसोस। ऐ! हे!। साध=साधन की वा हित की वात। अरीझ=रुष्ट, नाखुश, रीझा नहीं।

अपना वल जौ छाडि कैं सब सुधि विसरावै।
लोक वडाई नैंकहू कछु यादि न आवै।
सुन्दर तव पिय रीझि कैं अवे तोहि कंठ लगावै ॥ ४ ॥

(५)

(पंजाबी भाषा)

आव असाडे यार तूं चिरकि कूं लाया।
हाल तुसा मालूम है तनु जोवन आया ॥ (टेक)
जदि में हों दीनि कडी तद कुझ न जाना।
हुंण मैंनों कल ना पवे सभ पेड भुलाना ॥ १ ॥
मा में नूं ई आपदी तूं धीय असाडी।
प्योंदी गल्ह अभावणी मैं सभो छाडी ॥ २ ॥
हिक सहा उभि राउदा में नूं संमुझावे।
नालि तुसांडे हों चला जे कंतु न आवे ॥ ३ ॥
जे तेंहुण आया नहीं तामें हुंणु आंवां।
सुन्दर आपे विरहनी मनु कित्थं लांवां ॥ ४ ॥

(६)

ऐसें राम मिलै मोहि संतो यह मन थिर न रहाई रे।
निहचल निमप होत नहि कवहो चहुं दिशि भागा जाई रे ॥ (टेक)
कौन उपाय करौं या मन को कैसी विधि अटकाऊं रे।
ऐसें छूटि जाइ या तन सें कतहूं पोज न पाऊं रे ॥ १ ॥

४ था पद—विभचारी=व्यभिचारिणी। अपना वल=अपनपे का गर्व। सौंदर्य, शृंगार, यौवन आदि की टसक और घमंड जो स्त्रियों में होता है।

सोयें स्वर्ग पताल निहारै जागैं जात न दीसै रे।
पेलत फिरै विषै वन मांहीं लीयें पांच पचीसै रे॥ २॥
मैं जांन्यौ मन अब थिर होई दिन दिन पसरन लागा रे।
नाना चोज धरौं ले आगैं तऊं करंक पर कागा रे॥ ३॥
ऐसे मन का कौंन भरोसा छिन छिन रंग अपारा रे।
सुन्दर कहै नहीं बस मेरा रापे सिरजन हारा रे॥ ४॥

(७)

रे मन राम सुमरि राम सुमरि राम की दुहाई।
ऐसौ औसर विचारि, कर तें हीरा न डारि,
पसु के लषिन निवारि, मनुष देह पाई॥ (टेक)
सकल सौंज मिली आइ, श्रवन नैंन बैंन गाइ,
संतनि कौं सिर नवाइ, लेषै तनु लाई।
दासिन कौ होइ दास, छूटै सब आस पास,
कर्मनि कौ करै नास, सुद्ध होइ भाई॥ १॥
सतगुरु की करहु सेव, जिन तें सब लहै भेव,
मिलि हैं अविनासी देव, सकल भुवनराई।
सँमुझै अपनौं सरूप, सुन्दर है अति अनूप,
भूपति कौ होइ भूप, सांची ठकुराई॥ २॥

---

६ ठा पद—निमष=एक भी निमेष (पलक)। जात=जाता हुआ (विषयांतर में)। पांच पचीसे=पांचों इन्द्रियें और २५ तत्व।

७ वां पद—लेषै=हिसाब की रू से अच्छी बातों में तन का प्रयोग करै। दास=हरि भक्त, ज्ञानी। पास=पाश, फांसी।

(८)

सबकै आहि अन्न मैं प्रांन।

बात बनाइ कहौ कोऊ केती, नाचि कूदि कै तूटत तांन ॥ (टेक)

पंडित गुनी सूर कवि दाता, जो कोउ और कहावत जांन।

जठरा अग्नि प्रगट होइ जबही, तबही बिसर जाइ सब ज्ञांन ॥ १ ॥

मीर मलिक उमराव छत्रपति, औरउ कहियत राजा रांन।

जद्यपि सकल संपदा घर मैं, तद्यपि मुख देषियत कुमिलांन ॥ २ ॥

आसन मार रहे बन मांहीं, तेऊ उठत होत मध्यांन।

सुन्दर ऐसी क्षुधा पापिनी, रहै नहीं काहू कौ मांन ॥ ३ ॥

(९)

है कोई योगी साधै पौंना।

मन थिर होइ बिंद नहिं डोलै, जितंद्री मुमरै नहिं कौंना ॥ (टेक)

यम अरु नेम धरै दृढ आसन, प्राणायाम करै मन मौंना।

प्रत्याहार धारणा ध्यानं, लै समाधि लावै ठिक ठौंना ॥ १ ॥

इडा पिंगला सम करि राषै, सुषमन करै गगन दिशि गौंना।

अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै, सापनि द्वार छाडि दे जौंना ॥ २ ॥

बहुदल षटदल दशदल पोजै, द्वादशदल तहां अनहद भौंना।

षोडशदल अंमृतरस पीवै, ऊपरि द्वै दल करै चतौंना ॥ ३ ॥

चढि आकास अमर पद पावै, ताकौं काल कदे नहिं पौंना।

सुन्दरदास कहै सुनु अवधू, महा कठिन यह पंथ अलौंना ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मलिक=(अ०) बादशाह। मीर=(अ०) सरदार, शासक। उच्च कुल का उच्च पुरुष।

९ वां पद—मरै नहिं कौंना=अमर होय कोई भी योग कर देखै। योग के अंगों और साधनों का वर्णन 'ज्ञानसमुद्र २ रे उल्लास में देखै। ब्रह्म अग्नि परजारै=ब्रह्मज्ञान

(१०)

गुरु विन गति गोविंद की जांनी नहिं जाई।
हौं सेवग उस पुरुष का मोहि देइ लपाई ॥ (टेक)
योगी थंगम सेवडा अरु वोध संन्यासी।
सेष मसाइक औलिया वूझे वनवासी ॥ १ ॥
जोगी तौ गोरष जपै जंगम शिव ध्यावै।
अरिहंत अरिहंत सेवडा कहुं पार न पावै ॥ २ ॥
वोध संन्यासी वापुरे लीये अभिमाना।
सेष मसाइक दीनका उनि कलमा ठाना ॥ ३ ॥
वडे अवलिया यौं कहैं हमही निज वंदा।
वन वासी वन सेइ कैं षनि षाये कंदा ॥ ४ ॥
अपने अपने पंथ मैं सव दरसन राता।
जन सुन्दर रस राम कै कोई विरला माता ॥ ५ ॥

(११)

ऐसा सतगुरु कीजिये करनी का पूरा।
उनमनि ध्यांन तहां धरै जहां चन्द न सूरा ॥ (टेक)
तन मन इंद्री वसि करै फिरि उलटि समावै।
कनक कामिनी देषि कैं कहुं चित्त न चलावै ॥ १ ॥

की अग्नि प्रज्वलित रक्खै। सापनि=कुंडलिनी=मूलाधार चक्र पर साढे तीन आंटे मारे त्रिकोणाकार यह सर्पिणी सी नाड़ी सोती है। मूलवन्ध लगा कर योगी इसे जगाते हैं। यह षट्चक्र भेदती हुई ऊपर चढती है सुषुम्ना में होकर और ऊपर सहस्र दल कमल में जा पहुंचती है। वहां योगी इसे रोकते हैं। यह मुक्तिदायिनी है। (ह० योग)।

द्वै पप हिंदू तुरक की विचि आप संभालै।
ज्ञान षडग गहि झूझता मधि मारग चालै॥ २॥
जानैं सबकौं एकही पांनी की बूंदा।
नीच ऊंच देषै नहीं कोई बाभण सूदा॥ ३॥
सब संतनि का मत गहै सुमिरै करतारा।
सुन्दर ऐसे गुरु बिना नहिं ह्वै निस्तारा॥ ४॥

(१२)

प्याली तेरे प्यालका कोई अंत न पावै।
कब का षेल पसारिया कछु कहत न आवै॥ (टेक)
ज्यौंका त्यौं ही देषिये पूरन संसारा।
सरिता नीर प्रवाह ज्यौं नहिं खंडित धारा॥ १॥
दीप जरत ज्यौं देषिये जैसैं का तैसा।
को जानैं केता गया जग पावक ऐसा॥ २॥
जैसैं चक्र कुलाल का फिरता बहु दीसै।
ठौर छाडि कतहु न गया यह बिसवा बीसै॥ ३॥
प्रगट करै गुप्त करै घट घूंघट ओटा।
सुन्दर घटत न देषिये यह अचिरज मोटा॥ ४॥

(१३)

एकै ब्रह्म बिलास है सूक्षम अस्थूला।
ज्यौं अंकुर तें वृक्ष है साषा फर फूला॥ (टेक)
जैसैं भाजन मृतिका, अंतर नहिं कोई।
पांनी तैं पाला भया, पुनि पांनी सोई॥ १॥

---

११ वां पद—सूदा=शूद्र। नीच जाति। उनमनि=उनमनी मुद्रा के साधन से ध्यान। कबीरजी का वचन है "निराकास ओ लोकनिराश्रय निर्णयान विसेषा। सूक्षम वेद है उनमनि मुद्रा उनमनि वाणी लेषा"। हठ्योग प्रदीपिका उ० ४ के श्लो० ६४

जैसें दीपक तेज तैं, ऐसा यहु पेला।
घाट घरे बहु भांति के, है कनक अकेला ॥ २ ॥
वायु बबूरा कहन कौं, ऐसा कछु जांना।
बादर दीसत गगन मैं, तेउ गगन बिलांना ॥ ३ ॥
सतगुरु तैं संसा गया, दूजा भ्रम भागा।
सुन्दर पटहि विचार तें, सब देषे धागा ॥ ४ ॥

(१४)

एक अखंडित देषिये सब स्वयं प्रकाशा।
छता अनछता ह्वै गया यह बडा तमासा ॥ (टेक)
पंच तत्त दीसै नहीं नहिं इन्द्री देवा।
मन बुधि चित दीसै नहीं है अलष अभेवा ॥ १ ॥
सत्त रज तम दीसै नहीं नहिं जाग्रत सुपना।
सुषुपति हौं तुरिया नहीं नहिं और न अपना ॥ २ ॥
काल कर्म दीसै नहीं नहिं आहि सुभावा।
प्रकृति पुरुष दीसै नहीं नहिं आव न जावा ॥ ३ ॥
ज्ञे ज्ञाता दीसै नहीं नहिं ध्याता ध्यानं।
सुन्दर सोधत सोध तैं सुन्दर ठहरानं ॥ ४ ॥

और ८० में "मनोन्मनी" वा उन्मनी मुद्रा का विवरण है। यह राज-योग की तुरीयावस्था की प्राप्ति का साधन है। भ्रकुटी के मध्य में ध्यान प्रारंभ होता है। फिर साधन से आगे बढ़ता है।

१३ वां पद—अस्थूला=स्थूल, इन्द्रिय गोचर।

१४ वां पद—छता अनछता=नित्य सत्य ब्रह्म है सो अदृष्ट है, बुद्धादिक से अगम्य है। इसही कारण नास्तिकों को उसके अस्तित्व में संदेह रहता है।

(१५)

जाकै हिरदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै।
सब परि बैठै मक्षका पावक तैं भागै॥ (टेक)
जहां पाहरू जागहीं तहां चोर न जांहीं।
आंपिन देषत सिंह कौं पशु दूरि पलांहीं॥ १॥
जा घर मांहिं मंजार है तहां मूषक नासै।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै॥ २॥
ज्यौं रवि निकट न देपिये क्वहूं अंधियारा।
सुन्दर सदा प्रकास मैं सबही तैं न्यारा॥ ३॥ ८६॥

(१) राग टोडी

राम रमइयौ, यौं संमुमइयौ, ज्यौं दर्पन प्रतिबिंब समइयौ॥ (टेक)
करै करावै सब घट आपै, भिन्न रहै गुन कोइ न व्यापै॥ १॥
रवि कै उदै करहिं कृत लोई, सूर्य कर्म लिपै नहिं कोई॥ २॥
शब्द रूप रस गन्ध सपरसै, मन इन्द्रिनि तैं न्यारौ दरसै॥ ३॥
ऐसं ब्रह्म जबहिं पहिचानै, सुन्दरदास तबै मन मानै॥ ४॥

(२)

राम बुलावै राम बुलावै, राम बिना यह स्वास न आवै॥ (टेक)
रामहिं श्रवनहुं शब्द सुनावै, रामहिं नैनहुं रूप दिपावै॥ १॥
रामहिं नासा गन्ध लिवावै, रामहिं रसना रसहि चपावै॥ २॥

१५ वां पद मक्षका=मक्षिका, मक्खी।

[राग टोडी] १ ला पद—लोई=लोग, लोक। "सूर्य" को 'सूरय' उच्चारण करैं।

रामहिं दोऊ हाथ हलावै, रामहिं पाँवहु पन्थ चलावै ॥ ३ ॥
रामहिं तनकौं वसन उढावै, राम सुवावै राम जगावै ॥ ४ ॥
रामहिं चेतन जगत नचावै, रामहिं नाना षेल षिलावै ॥ ५ ॥
रामहिं रङ्कहिं राज करावै, रामहिं राजहि भीष मंगावै ॥ ६ ॥
रामहिं वहु विधि जलचर पावै, रामहिं पल मैं धूरि उडावै ॥ ७ ॥
रामहिं सवमैं भिन्न रहावै, सुन्दर वाकी वाही पावै ॥ ८ ॥

(३)

राम नाम राम नाम, राम नाम लीजै ।
राम नाम रटि रटि, राम रस पीजै ॥ (टेक)
राम नाम राम नाम, गुरु तैं पाया ।
राम नाम मेरैं, हिरदै आया ॥ १ ॥
राम नाम राम नाम, भजि रे भाई ।
राम नाम पटतरि, तुलै न काई ॥ २ ॥
राम नाम राम नाम, है अति नीका ।
राम नाम सव साधन का टीका ॥ ३ ॥
राम नाम राम नाम, अति मोहि भावै ।
राम नाम निसि दिन, सुन्दर गावै ॥ ४ ॥

(४)

भजि रे भजि रे, भजि रे भाई ।
लै रे लै रे, लै सुख दाई ॥ (टेक)
दै रे दै रे, तन मन अपना, है रे है रे, है सव सुपना ॥ १ ॥
मेटि रे मेटि रे मेटि अहंकारा, भेटि रे भेटि रे प्रीतम प्यारा ॥ २ ॥

---

२ रा पद—बुलावै=मुख जिह्वा से शब्द उच्चारण करावै । वाणी प्रदान करै । पावै=पा सकै, जान सकै ।

गाइ रे गाइ रे गुन गोविन्दा, ध्याइ रे ध्याइ रे परमानन्दा ॥ ३ ॥
पोलि रे पोलि रे भरम कपाटा, बोलि रे सुंदर शब्द निराटा ॥ ४ ॥

(५)

पोजत पोजत सतगुरु पाया।
धीरैं धीरैं सब संमुझाया ॥ (टेक)
चिन्तत चिन्तत चिन्ता भागी, जागत जागत आतम जागी ॥ १ ॥
बूझत बूझत अन्तरि बूझ्या, सूझत सूझत सब कछु सूझ्या ॥ २ ॥
जानत जानत सोई जांन्या, मानत मानत निश्चय मांन्या ॥ ३ ॥
आवत आवत ऐसी आई, अबतौ सुन्दर रही न काई । ४ ॥

(६)

एक तूं एक तूं व्यापक सारै।
एक तूं एक तूं वार न पारै ॥ (टेक)
एक तूं एक तूं पृथवी जाना, एक तूं एक तूं भाजन नाना ॥ १ ॥
एक तूं एक तूं नीर प्रसंगा, एक तूं एक तूं फेन तरंगा ॥ २ ॥
एक तूं एक तूं तेज तपन्ता, एक तूं एक तूं दीप अनन्ता ॥ ३ ॥
एक तूं एक तूं पवन प्रचूरा, एक तूं एक तूं फिरत बघूरा ॥ ४ ॥
एक तूं एक तूं ज्यौं आकासा, एक तूं एक तूं अभ्र निवासा ॥ ५ ॥
एक तूं एक तूं कनक स्वरूपा, एक तूं एक तूं घाट अनूपा ॥ ६ ॥
एक तूं एक तूं सूत्र समाना, एक तूं एक तूं ताना बाना ॥ ७ ॥
एक तूं एक तूं और न कोई, एक तूं एक तूं सुन्दर सोई ॥ ८ ॥

---

४ था पद—निराटा=निराला, निर्मल ।

५ वां पद—आई=ज्ञानगति, समझ । काई=कोई । अथवा ऊपर का मैल ।

६ ठां पद—प्रसगा=प्रकरण । जल से क्या पदार्थ बनते बिगड़ते हैं इसका ज्ञान विज्ञान । प्रचूरा=प्रचुर, बहुतता । घाट=घडाई वस्तु ।

(७)

मेरौ धन माधौ माई री, कबहूं बिसरि न जांऊं।
पल पल छिन छिन घरी घरी तिहिं, बिन देषें न रहांऊं ॥ (टेक)
गहरी ठौर धरौं उर अन्तर, काहू कौं न दिषांऊ।
सुन्दर कौं प्रभु सुन्दर लागत, लै करि गोपि छिपांऊं ॥ १ ॥

(८)

मेरौ मन लागौ माई री, परम पुरुष गोविन्द।
चितवत नैंननि मोहत सैंननि, बोलत बैंननि मन्द ॥ (टेक)
अद्भुत रूप अरूप सकल अंग, दुःख हरन सुखकन्द।
सुन्दर प्रभु अति सुन्दर सोभित, निरषत नित आनन्द ॥ १ ॥

(९)

एक पिंजारा ऐसा आया।
रूह रूई पींजण कै कारण, आपन राम पठाया (टेक)
पींजण प्रेम मूठिया मन कौं लै की तांति लगाई।
धुनि ही ध्यांन बंध्यौ अति ऊंचौ, कबहू छूटि न जाई ॥ १ ॥
कर्म काटि काढै नीकैं करि, गज ज्ञान कै सकेलै।
पहल जमाइ सुपेदी भरि करि, प्रभु कै आगै मेल्है ॥ २ ॥
जोइ जोइ निकट पिनावन आवै, रूई सबनि की पींजै।
परमारथ कौं देह धर्यौ है, मसकति कछू न लीजै ॥ ३ ॥
बहुत रूई पीनी बहु विधि करि, मुदित भये हरि राई।
दादू दास अजब पीनारा, सुन्दर बलि बलि जाई ॥ ४ ॥

---

८ वां पद—मन्द=धीमा,मधुर। अरूप=निराकार को साकार ध्यान कर के साथ ही अरूप भी कहा है।

९ वां १० वां पद—इन दोनों पदों में स्वा सु० दा० जी ने अपने गुरु श्री दादू-

(१०)

आया था इक आया था, जिनि, दरसन प्रगट दिपाया था (टेक)
श्रवण हू शब्द सुनाया था, तिन, सत्य स्वरूप बताया था ॥ १ ॥
ब्रह्मज्ञान संमुझाया था, तिन, संसा दूरि वहाया था ॥ २ ॥
अलष पजीना ल्याया था, तिन, बांटि सबनि सौं पाया था ॥ ३ ॥
ऐसा दादूराया था, सो, सुन्दर कै मनि भाया था ॥ ४ ॥९६॥

(१)   राग आशावरी

कैसें घों प्रीति रामजी सौं लागै।
मन अपराधी चहुं दिश भागै ॥ (टेक)
निस वासर भरमै अति भारी, कह्या न मानै वडा विकारी ॥ १ ॥
भटकत डोलै विन ही काजा, वेसरमी कौ नेंकु न लाजा ॥ २ ॥
मेरो वस नांहीं कछु यातैं, वारंवार पुकारत तातैं ॥ ३ ॥
आपुही कृपा करै हरि सोई, तौ सुन्दर थिर काहे न होई ॥ ४ ॥

दयाल की कुछ गुणावली वर्णन की है। पिंजारा=पिंदारा, रुई पींदनेवाला। दादूजी ने कुछ दिन यह काम भी साधारण निर्वाह के लिए किया था। रूह=आत्मा। आत्मा के विकारों को जप तप नाम ध्यान से दूर करने को। जगत के लोगों को यही लाभ पहुंचाने को। मूठिया—जिससे तांत पर देकर रुई पींदी जाती है। धुनि ही=श्लेष है। (१) ध्वनि, सुरत। (२) रुई धुन कर। गज=गजवेल लोहा भी। गज=जिस में पींदी हुई सकेलते, इकट्ठी की जाती है। पींदण की लकड़ी को भी गज कहते हैं। सकेलना=इकट्ठा करना। ममकति=(अ०) मशक्कत, मजदूरी। गजवेल=एक प्रकार का लोहा और उस की तलवार भी।

(२)

अवधू आतम काहे न देषै।
जाहि हते सोई तुझ मांही कहा लजावत भेषै॥ (टेक)
हिंसा बहुत करै अपस्वारथ स्वाद लग्यौ मद मांसै।
महा माइ भैरूं कौ सिरदै आपुहि बैठौ ग्रासै॥ १॥
गोरष भांगि भषी नहिं कबहौं सुरापान नहिं पीया।
झूठहि नांव लेत सिद्धन कौ नरक जाहिगौ भीया॥ २॥
कान फारि कैं भस्म लगाई योगी कियौ शरीरा।
सकल बियापी नाथ न जान्यौ जन्म गमायौ हीरा॥ ३॥
नाटक चेटक जन्त्र मन्त्र करि जगत कहा भरमावै।
सुन्दरदास सुमरि अविनासी अमर अभै पद पावै॥ ४॥

(३)

साधो साधन तन कौ कीजै।
मन पवना पंचौं वसि राषै सूंन्य सुधा रस पीजै॥ (टेक)
चन्द सूर दोउ उलटि अपूठा सुषमनि कै घर लीजै।
नाद बिंद जब गांठि परै तब काया नेंकु न छीजै॥ १॥
राजस तामस दोऊ छाडै सातिक बरतै तीजै।
चौथा पद मैं जाइ समावै सुन्दर जुग जुग जीजै॥ २॥

[राग आसावरी] २ रा पद—अपस्वारथ=निज स्वारथ को। सिर दै=सिर चढ़ावै बकरे आदि का। भीया=भाई। हे भाई!। बियापी=व्यापक। अमर अभै पद=जोगियों में अमर पद पाने की बड़ाई है। अविनाशी पूर्ण ब्रह्म को भजने से वह पद प्राप्त हो सकता है, अन्यथा वाममार्ग के ढोंगों और गर्हित कर्मों से नहीं। यह पद जोगी जंगम शाक्तों आदि वाम-मार्गियों को कहा है। अवधू=जोगियों का साधु अघोरी। ३ रा पद—नाद नादानुसंधान, अनाहदनाद। बिंद=वीर्यको ब्रह्मचर्य से जीत कर वश में रखना। चौथा पद=तुरीया।

(४)

मेरा गुरु है पप रहित समांना।

पिंड ब्रह्म निरन्तर पेलै ऐसा चतुर सयांना ॥ (टेक)

पाप पुन्य की बेरी काटी हर्ष शोक नहिं आंना।
राग दोष तें भया विवर्जित शीतल तपति बुझांना ॥ १ ॥
हिन्दू तुरक दुहूं तें न्यारा देषै वेद कुरांना।
मैं तें मेटि तज्यौ आपा पर नीच ऊंच सम जांना ॥ २ ॥
दिवस न रैंनि सूर नहिं ससि हरि आदि अंत भ्रम भांना।
जन्म मरन का सोच न कोई पूरण ब्रह्म पिछांना ॥ ३ ॥
जागि न सोवै पाइ न भूपा मरै न जीवै प्रांना।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू देष्या अति हैरांना ॥ ४ ॥

(५)

मेरा गुरू लागै मोहि पियारा।

शब्द सुनावै भ्रम उडावै करै जगत सौं न्यारा ॥ (टेक)

जोग जुगति की सब विधि जानै, बातैं कछू न छानै।
मन पवना उल्टा गहि आनै, आनै छानै जानै ॥ १ ॥
पंचौ इंद्री दृढ करि रापै, सूंन्य सुधा रस चापै।
बानी ब्रह्म सदा ही भाषै, भाषै चापै रापै ॥ २ ॥
परमारथ कौं जग मैं आया, अलप पजीना ल्याया।
बांटि बांटि सबहिन सौं पाया, पाया ल्याया आया ॥ ३ ॥
परम पुरुष सो प्रगटे आदू, श्रवन सुनाया नादू।
सुन्दरदास ऐसा गुरु दादू, दादू नादू आदू ॥ ४ ॥

---

४ था पद—शीतल=आप शीतल हुआ दूसरों की तपत बुझानेवाला है। आपा=निज। पर=दूसरा। ससिहरि=शशधर=चन्द्रमा।

५ वां पद—इस पद में एक प्रकार का शब्दालङ्कार भी है—अंतरे के दूसरे

(६)

कोई पिवै राम रस प्यासा रे।

गगन मंडल मैं अंमृत सरवै उनमनि कै घर वासा रे॥ (टेक)

सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे।

ऐसा महिंगा अमी विकावै छह रिति बारह मासा रे॥ १॥

मोल करै सो छकै दूर तैं तोलत छूटै वासा रे।

जो पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुं न होइ बिनासा रे॥ २॥

या रस काजि भये नृप जोगी छाडे भोग बिलासा रे।

सेज सिंघासन वैठै रहते भस्म लगाइ उदासा रे॥ ३॥

गोरषनाथ भरथरी रसिया सोई कबीर अभ्यासा रे।

गुरु दादू परसाद कछूइक पायौ सुन्दरदासा रे॥ ४॥

(७)

संतौ लषन विहूंनी नारी।

अङ्ग एकहू स्यावति नाहीं, कंत रिझायौ भारी॥ (टेक)

अन्धली आंषिन काजल कीया, मुंडली मांग संवारै।

बूची काननि कुंडल पहिरै, नकटी वेसरि धारै॥ १॥

पाद में अर्द्ध के अन्तिम शब्द को दोहरा कर प्रथम पाद के अन्तिम शब्द को उसके पीछे रख अनुप्रास कर फिर प्रथम के अर्द्ध के अन्तिम शब्द को अन्त में रख कर अनुप्रास किया है। दोनों पादों (चरणों) के अर्द्धों के अन्तिम शब्द परस्पर अनुप्रास युक्त हैं। सौंदर्य यह है कि वे तीनों शब्द द्वितीय पादार्द्ध में उक्त रीति से एकट्ठे होते हैं।—यथाः—आनै छानै जानै। भापै चापै रापै। दादू नादू आदू।

६ ठा पद—सीस उतारना=आपा मारना। छूटै वासा रे=वैराग्य पावै। विरक्त हो जाय। वैठे रहते=जो वैठे रहते सो ही।

कंठ विहूंनी माला पहिरै, कर विन चूडा सोहै।
पाइ विहूंनी पहरि घूघरूं, पति अपनै कौ मोहै॥ २॥
दंत विहूंनी वीडा चावै जीभ विहूनी वोलै।
निस दिन ता फूहरि कै पीछै संग लग्यौ पिव डोलै॥ ३॥
मन विन काम करै सब घर कौ जीव विहूनी जीवै।
सुन्दर सांई सेज विराजै तेल न वाती दीवै॥ ४॥

(८)

संतहु पुत्र भया एक धी कै।
पुरुष संग कबहूं का छाड्या जानत सब कोई नीकै॥ (टेक)
पिता आइ कीयौ संयोगा यहु कलियुग वरताना।
शब्द सु विंद श्रवन द्वारै करि हृदै माहिं ठहराना॥ १॥

---

७ वां पद—इस पद में विपर्यय शब्द का विन्यास कर पुरुष और प्रकृति (माया) का रूपक बांधा है। कंत=परम पुरुष। नारी=माया (जो अरूप और जड़ है, और पुरुषकी सत्ता से सब करती है। उस नारी (माया) के अरूपा होने मे कोई अंग साबत नहीं फिर वह इतने नानारूप रंग धार कर सृष्टि में अद्भुत रचनाएं करती है। तेल न वाती दीवै=परमात्मा स्वयम् प्रकाश है—"न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः।" उसे सूर्य चन्द्र विद्युत् अग्नि दीपक की किसी की भी दरकार नहीं। वह आप सबको प्रकाशित करता है। उसके साथ नित्य निरंतर यह महामाया विराजती और रमण करती रहती है। जो साकार उपासना में शिव+शक्ति, सीता+राम, राधा+कृष्ण का ध्यान है वही माया+ब्रह्म का (साकार ध्यान) है। "टरै न नित्य विहार"। "लैरो लाग्यो ही आवै"। वह कृष्ण, राधिका विना एक निमेष नहीं रहता, न राधिका, कृष्ण विना। इस लीला का आध्यात्मिक रहस्य माया और ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध और नित्य सहज लीला ही है। और कुछ नहीं है। यह निश्चय है॥

ता वीरज का सौं सुत उपना निस दिन करै तमासा।
कर विन उचकि चन्द कौं पकरै पग विन चढै अकासा॥ २॥
भूल न दूध धाइ का पीवै माकै चूषै फूलै।
सदा मुदित रोवै नहिं कवहूं पस्या पिंघूरै भूलै॥ ३॥
अति वलवन्त अङ्ग विन वालक करै काल कौं चोटा।
सुन्दर डर किसहू का नाहीं, रहै ब्रह्म की वोटा॥ ४॥

(९)

मुक्ति तौ धोषै की नीसानी।
सो कतहूं नहिं ठौर ठिकाना जहां मुक्ति ठहरानी॥ (टेक)
को कहै मुक्ति व्योम कै ऊपर को पाताल के मांहीं।
को कहै मुक्ति रहै पृथवी पर ढूंढै तौ कहुं नांहीं॥ १॥
वचन विचार न कीया किनहूं सुनि सुनि सव उठि धाये।
गोदंडा ज्यौं मारग चाले आगै पोज विलाये॥ २॥
जीवत कष्ट करैं वहुतेरे मुये मुक्ति कहैं जाई।
धोषै ही धोषै सव भूले आगै ऊवावाई॥ ३॥

---

८ वां पद—इस पद में भी विपर्यय शब्द का प्रयोग करके वुद्धि, मन, आत्मा (ब्रह्म) का और ज्ञानरूपी पुत्र का परस्पर सम्वन्ध और व्यवहार दरसाया है।— धी=वुद्धि वा महत्तत्व। पुरुष=(यहां) मन। पिता=ब्रह्म (वा ब्रह्मा)। धी जो वुद्धिरूपी पुत्री उसके साथ ब्रह्म जो ब्रह्म उसने संयोग किया। यही आध्यात्मिक तत्व कथारूप विपर्यय शब्द में "ब्रह्म और सरस्वती" की कथा है जो पुराणों में वर्णित है और जिसका तात्विक अभिप्राय समझ कर मन्द और संस्कारहीन वुद्धि के पुरुष हास्य करते हैं। उसही को स्वामीजी ने इस पद में विस्तृत रूपक से वताया है। पुत्र=ज्ञान। शुद्ध सच्चिदानन्द का अपरोक्ष ज्ञान ही पुत्र हुआ। निर्मल वुद्धि परमात्मा ब्रह्म से मिलने से ही दिव्य ज्ञान उत्पन्न होता है। और वह ऐसा महावली है कि काल को भी जीतता है। अर्थात् ज्ञानी योगी अमर है और काल उसके वश में है।

निज स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौंका त्यौंही रहिये ।
सुन्दर कछू ग्रहै नहिं त्यागै वहै मुक्ति पद कहिये ॥ ४ ॥

(१०)

राम निरंजन तूंही तूंही ।
अहंकार अज्ञान गयौ जब सौ तूंही सौ हूंही ॥ (टेक)
तूंही तूंही तब लग कहिये जब लग मैं मैं आगै ।
मैं मैं मैं मैं होइ विलै जब सोहं सोहं जागै ॥ १ ॥
सोहं सोहं कहैं जबै लग तब लग दूजा कहिये ।
सुन्दर एक न दोइ तहां कछु ज्यौं का त्यौं ह्वै रहिये ॥ २ ॥

(११)

मन मेरे सोई परम सुख पावै ।
जागि प्रपंच मांहि मति भूलै यह औसर नहिं आवै ॥ (टेक)
सोवै क्यौं न सदा समाधि मैं उपजै अति आनन्दा ।
जो तू जागै जग उपाधि मैं क्षीन होइ ज्यौं चन्दा ॥ १ ॥
सोइ रहै तै ह्वै अखंड सुख तौ तूं जुग जुग जीवै ।
जो जागै तौ परै मृत्यु मुख वादि वृथा विष पीवै ॥ २ ॥
सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जांनी ।
सुन्दर अर्थ विचारै याकौ सोई पंडित ज्ञांनी ॥ ३ ॥

---

९ वां पद—गोदटा=गुबरेला कीड़ा जो गोबर की गोली कर के उसे उलटे पांव ढकेल कर बिलमें ले जाता है। सुन्दरदासजी जीवन्मुक्ति को मानते हैं। मुक्ति एक अवस्था मात्र है। शरीर छूटने पर मृत्यु हो जाने पर मुक्ति होने का क्या निश्चय हो सकता है। निजानंद निजस्वरूप जीव ही ब्रह्म है यह अनुभव परिपक्व होना ही मोक्ष है।

१० वां पद—चारों अवस्थाओं का वर्णन है।

११ वां पद—स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीरों में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति के उदाहरण

चौपड़ बंध

चौपई
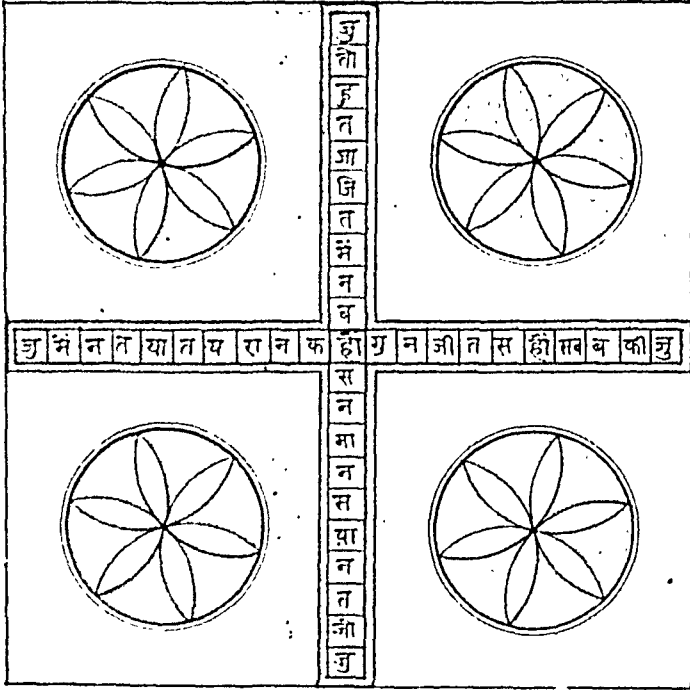
हौं गुन जीत महां सब की जु। हौं मनमान सयान तजौ जु॥
हौं कन राखन यानन में जु। हौं वन में तजि जात हुतौ जु॥

पढ़ने की विधि

चौपड़ के मध्यवर्ती 'हौं' अक्षर से प्रारंभ कर के दाहिनी, फिर बांई, फिर ऊपर की ओर पढ़ें।

(१२)

संतो घर ही मैं घर न्यारा ।

पिंड ब्रह्मंड तहां कछु नाहीं निरालम्ब निरधारा ॥ (टेक)

दिवस न रैंनि सूर नहिं ससिहर अग्नि पवन नहि पांनी ।
धर आकाश तहां कछु नाहीं ता घर सुरति समानी ॥ १ ॥
वेद पुरान शव्द नहिं पहुंचै मनही मन मैं जांना ।
उलटा पंथी मीन का मारग सूंन्य हि सूंन्य पयांना ॥ २ ॥
आदि न अन्त मध्य तहां नाहीं उतपति प्रलय न होई ।
तीन हुं गुन तें अगम अगोचर चौथा पद है सोई ॥ ३ ॥
अलष निरंजन है अविनासी आपै आप अकेला ।
दादूदास जाइ तहां कीया जीव ब्रह्म सौं मेला ॥ ४ ॥

(१३)

हरि का निज घर कोइक पावै ।

जापरि कृपा होइ सतगुरु की सो वही ठौर समावै ॥ (टेक)

कोई नाभि कमल मैं सोधै कोई हृदय विचारै ।
कोई कदली कुसम अष्टदल ताकै मध्य निहारै ॥ १ ॥
कोइ कंठ कोइ अग्र नासिका कोई भ्रूवस्थाना ।
कोई लिलाट कोइ तालू भीतरि कोइ ब्रह्मंड समाना ॥ २ ॥
सव कोइ वर्नन करै देह कौ सूक्षम ठौर न सूझै ।
पिंड ब्रह्मंड तहां कछु नाहीं उलटि आप मैं बूझै ॥ ३ ॥

दिये हैं। अज्ञान अवस्था, मध्यावस्था, ज्ञानावस्था यों तीनों को सोने जागने और समाधि से वताया है।—"या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्त्ति संयमी'...(गीता)।

१२ वां पद—धर=धरा, पृथ्वी। मीन का मारग=मछली उल्टे जल चढती है।

काया सूंन्य तजै ता आगै आतम सूंन्य प्रकासै।
परम सूंन्य सौं परचा होई तवहिं सकल भ्रम नासै ॥ ४ ॥
पूरन ब्रह्म प्रकाश अखंडित वर्नन कैसैं होई।
दादूदास जाइ वा घर में जानैगा जन सोई ॥ ५ ॥

(१४)

औधू एक जरी हम पाई।
पिंड ब्रह्मंड जहां तहां पसरी सद्गुरु मोहि वत ई ॥ (टेक)
सातौं धात मिलाइ एकठी तामे रङ्ग निचोया।
अष्ट पहर की अग्नि लगाई पीत वरण तव जोया ॥ १ ॥
चेला सकल मंढी में आये कहै गुरू स्यौं वैंना।
घर घर भिष्या मांगत फिरते कवहुं न होतो चैंना ॥ २ ॥
अवतौ वैठे करैं वोगरा चिंता गई हमारी।
कोई कलपना उपजै नांही सोवै पांव पसारी ॥ ३ ॥
और करैं सो छिपतैं डोलैं मेरै कछू न भायें।
सुन्दरदास कहत है वावा प्रगट ढोल वजायें ॥ ४ ॥

(१५)

औधू पारा इहिं विधि मारौ।
है रसाइनी करहु रसाइन दुख दालिद्र निवारौ ॥ (टेक)
सीसी सुमति चढाइ जुगति करि ब्रह्म अग्नि प्रजारौ।
है भसमन्त उड़ै नहिं कवहूं ऐसी धवनी धारौ ॥ १ ॥

---

१३ वां १४ वां पद—तीन शून्य कही हैं—(१) काया की। (२) आत्म-शून्य। (३) परम शून्य। इनसे परे पारब्रह्म है। इन दोनों पदों में अपना आभोग न देकर अपने गुरु का दिया है। इस पद में एक प्रकार की रसायन का वर्णन कर आत्म रसायन की सिद्धि से अभिप्राय रक्खा है काया के साथ धातों को

पलटै धात होइ सब कंचन जीवन जडी विचारौ।
भागै रोग भूष अति लागै जागै भाग तुम्हारौ ॥ २ ॥
और कलाप करहु काहे कौ क्रियां कर्म सब डारौ।
मिथ्या वूंटी पौदि मरौ जिनि वृथा जन्म कत हारौ ॥ ३ ॥
सद्गुरु भेद बतावै जबही तबही थिर ह्वै पारौ।
सुन्दरदास कहै संमुझावै वाजै प्रगट नगारौ ॥ ४ ॥ १११।

(१) राग सिंधूडौ

दादू सूर सुभट दलथम्भण रोपि रह्यौ रन माहीं रे।
जाकी साषि सकल जग बोलै टेक टली कहुं नाहीं रे ॥ (टक)
ऐसी मार करै बाणन की जिहिं लागै सो जाणैं रे।
माता पूत एकहो जायौ वैरो वहुत वषाणैं रे ॥ १ ॥
हाक सुणैं तैं हीयौ फाटै सनमुख कोइ न आवै रे।
जहां पडै तहां टूक टूक करि अति घमसांण मचावै रे ॥ २ ॥
अंग उघाडै उतरि अषाडै परदल पाडै सूरा रे।
रहै हजूरि राम कै आगै मुख परि वरपै नूरा रे ॥ ३ ॥
काम धणीं कौ सवै संवार्‍यौ साहिव कै मन भायौ रे।
कछू एक जस गुरु दादू कौ सुन्दरदास सुनायौ रे ॥ ४ ॥

तप से निर्मल कर दिया मानों स्वर्ण हो गई। वोगरा=वोंगालना, जुगाली । अर्थात् आनंद से भोजन करते और पचाते हैं।

१५ वां पद—इस पद में भी रसायन का ही दृष्टांत है । यहां पारे से चंचल मन वा वीर्य का प्रयोजन है। रसायन में पारा अग्नि और जड़ी बूंटियों से स्थिर होता है तव ही स्वर्ण होता है। मन भी जप तप वैराग्य की बूंटी और ज्ञान अग्नि से बंध कर थिर होता है। मिथ्या बूंटी=झूंठे मत मतांतर, वा झूठा सुख।

(राग सिंधूड़ी) १ ला पद—दादूजी का सूरातन वर्णन किया है। पाड़ै=मारैं।

(२)

सोई सूरवीर सावंत सिरोमनि, रन मैं जाइ गलारै रे।
आप आपणा घर मैं बैठा गाल सवै कोई मारै रे॥ (टेक)
नागो लडै पहरि केसरियौ सत वादी सत भापै रे।
स्याम भरोसै संक न कोई और वोट नहिं रापै रे॥ १॥
है मरणीक आस तजि तनकी रोपि रहै रन मांहीं रे।
दोनौं प्रांणी जुडैं जब सनमुख तब पाछा दे नांही रे॥ २॥
पीसै दांत पिसण कै ऊपरि कै ऊपरि हाथ गहै हथियारा रे।
नेजा धारी निरपि फौज मैं मारै मन सिरदारै रे॥ ३॥
जहां छूटैं तीर झड़ाझड़ि वींचै तहां स्यावतौ आवै रे।
सुन्दर लटकौ करै स्याम कौं तबतौ सूर कहावै रे॥ ४॥

(३)

द्वै दल आइ जुडे धरणी पर विच सिंधूडौ वाजै रे।
एक वोर कौं नृप विवेक चढि एक मोह नृप गाजै रे॥ (टेक)
प्रमथ काम रन मांहिं गल्यारौ को हम ऊपरि आवै रे।
महादेव सरिपा मैं जीत्या नर की कौंन चलावै रे॥ १॥
आइ विचार वोलियो वांणी मुख पर नीकैं डार्‌यौ रे।
ज्ञान पडग ले तुरत काम कौं हाथ पकडि सिर कार्‌यौ रे॥ २॥
क्रोध आइ वोल्यौ रन मांहीं हौं सबहिन कौ काला रे।
देव दयंत मनुप पशु पंपी जरैं हमारी ज्वाला रे॥ ३॥
पिमा आइकैं हंसने लागी सीस चरन कौं नायौ रे।
चूक हमारी वकसहु स्वामी इतनैं क्रोध नसायौ रे॥ ४॥

---

२ रा पद—गाल मारना=अपनी बड़ाई करना। वोट=सहारा, बचाव। अणी=सेना।

तवहिं लोभ रन आइ पचार्‌यौ मैं तौ सवही जीते रे।
जौं सुमेर घर भीतरि आवै तौ पेट सवन के रीते रे॥ ५॥
इत संतोष आइ भयौ ठाढ़ौ वोलै वचन उदासा रे।
होनहार सो ह्वै है भाई कीयौ लोभ कौ नासा रे॥ ६॥
महा लोभ कौं लागी चटपटी अति आतुर सौं आयौ रे।
मेरे जोधा सवही मारे ऐसौ कौंन कहायौ रे॥ ७॥
ता पर राइ विवेक पधार्‌यौ कीनी वहुत लराई रे।
इततें उततें भई झड़ाझड़ि काहू सुद्धि न पाई रे॥ ८॥
वहुत वार लग जूझे राजा राइ विवेक हंकार्‌यौ रे।
ज्ञान गदा की दई सीस मैं महा मोह कौं मार्‌यौ रे॥ ९॥
फीटौ तिमिर भान तव ऊगौ अंतर भयौ प्रकासा रे।
युग युग राज दियौ अविनासी गावै सुन्दरदासा रे॥ १०॥

(४)

तडफडै सूर नीसान घाई पडै, कोट की वोट सव छोडि चाले।
स्यांम कै काम कौं लोट अरु पोट ह्वै, निकसि मैदान मैं चोट घालै (टेक)
जहां, कडकडै वीर गजराज हय हडहडै, धडहडै धरनि ब्रह्मंड गाजै।
झलहलै सार हथियार अति पडहडै, देषिता दूरि भकभूरि भाजै॥१॥
जहां तुपक तरवारि अरु सेल टक टूक ह्वै, वांण की तांण चहुं फेर हुई।
गहर घंमसांण मैं कहर धीरज धरै, हहरि भाजै नहीं सुभट सोई॥२॥
पिसुन सव पेलि झडझेलि सनमुख लडै, मर्द कौं मारि करि गर्द मेलै।
पंच पचीस रिपु रीस करि निर्दलै, सीस भुइ मेल्हि को कमध पेलै॥३॥

---

३ रा पद—गलार्‌यो=ललकारा। पचार्‌यो=प्रचारा, फैला। फीटो=फीटा पड़ा। नाश हो गया। हंकारयो=हकाला, ललकारा।

अगम कौ गमि करै दृष्टि उलटो धरै, जीति संग्राम निज धाम आवै।
दास सुन्दर कहै मोज मोटी लहै, रीझि हरि राइ दरसन दिपावै ॥४॥

(५)

महासूर तिनकौ जस गाऊं जिनि हरि सौं लै लाई रे।
मन मैवासी कियौ आपवसि और अनीति उठाई रे॥ (टेक)
प्रथम सूर सतयुग में कहिये ध्रुव दृढ ध्यान लगायौ रे।
माया छल करि छलने आई डिग्यौ न बहुत डिगायौ रे ॥ १ ॥
सनक सनन्दन नारद सूरा नौ योगेसुर न्यारा रे।
तीनि गुणां कौं त्यागि निरन्तर कीयौ ब्रह्म विचारा रे ॥ २ ॥
ऋषभदेव नृप सूर सिरोमनि जाइ वस्यौ वन मांहीं रे।
एक मेक ह्वै रह्यौ ब्रह्म सौं सुधि सरीर की नाहीं रे ॥ ३ ॥
जन प्रहिलाद जोध जोरावर पिता दई बहु त्रासा रे।
राम नाम की टेक न छाडी प्रगट भयौ हरिदासा रे ॥ ४ ॥
सूर वीर दत्तात्रय ऐसौ विचरत इच्छाचारी रे।
भयौ सुतन्त्र नहीं परतन्त्रा सकल उपाधि निवारी रे ॥ ५ ॥

---

४ था पद—यह विचित्र आनंद है कि स्वा० सुं० दा० जी जहां वीररस की कविता करते हैं तो बहुत ओजभरी होती है, क्योंकि शांतिरस प्रधान महात्मा की रचना वीररस में इतनी उत्कृष्ठ काव्य रचना की कुशलता प्रदर्शित करते हैं। तड़फड़ै =युद्ध के लिए अधीर हों। नीसान=निशान सहित बाजा, रणवाद्य। घाई=नक्कारे का गोंजदार शब्द। कोट की वोट—अब किले से बाहर मैदान की लड़ाईको जाते हैं। किला छोड़ मैदान में लड़ना अधिक शूरवीरता है। कडकडै=शस्त्रों की आपस की टक्कर का शब्द वीर पुरुषों के तीव्र शब्दों से मिली हुई एक वीरता की ध्वनि। धरहरै=धर्रावै, धूजै। गाजै=बाजों के शब्दोंसे। टक=शरीर में घुस कर। कहर= क्रोध (और साथ ही धैर्य)। हहरि=हरांटे भर्राटे से।

व्यास-पुत्र शुकदेव शुभट अति जनमत भयौ विरक्ता रे।
रम्भा मोहि सकी नहि ताकौं सदा ब्रह्म अनुरक्ता रे॥ ६॥
गोरषनाथ भरथरो सूरा कमधज गोपी चन्दा रे।
चरपट कांणेरी चौरङ्गी लीन भये तजि द्वन्दा रे॥ ७॥
रामानन्द कियौ सूरातन काशीपुरी मंझारी रे।
लोक उपासक शिव के होते आनि भक्ति बिस्तारी रे॥ ८॥
नामदेव अरु रंकावंका भयौ तिलोचन सूरा रे।
भक्ति करी भय छाडि जगत कौ बाजहिं तिनके तूरा रे॥ ९॥
कलियुग मांहिं कियौ सूरातन दास कबीर निसंका रे।
ब्रह्म अग्नि परजारि पलक मैं जीति लियौ गढ वंका रे॥ १०॥
जन रैदास साधि सूरातन विप्रनि मार मचाई रे।
सोझा पीपा सेन धना तिन जीती बहुत लराई रे॥ ११॥
अंगद भुवन परस हरदासा ज्ञान गह्यौ हथियारा रे।
नानक कान्हा बेण महाभट भलौ वजायौ सारा रे॥ १२॥
गुरु दादू प्रगटे सांभरि मैं ऐसौ सूर न कोई रे।
वचन वान लायौ जाकै उर थकित भयौ सुनि सोई रे॥ १३॥
आदि अन्ति कीयौ सूरातन युग युग साध अनेका रे।
सुन्दरदास मोज यह पावै दीजै परम विवेका रे॥ १४॥११६।

(१) राग सोरठ

ऐसौ तैं, जूझ कियौ गढ घेरी।
कोई, जान न पायौ सेरी॥ (टेक)
दल जोरि कियौ सब एका, गहि शील सन्तोष विवेका।

---

५ वां पद—मैवासी=किलेवाले को। अनीति उठाई=ज़ुल्म को मिटा दिया। चौरंगी, चरपट, काणेरी=जोगी नाथ प्रसिद्ध हुए हैं। (हठयोग प्रदीपिका उ० १।

गुरु ज्ञान सदाई आया, उन सूरातन उपजाया ॥ १ ॥
पहिलैं करि नांव अवाजा, तब रोके दश दरवाजा।
गहि शस्त्र अग्नि परजारी, जरि मुई पचीसों नारी ॥ २ ॥
वै पंच पयादा कोपै, तहां उठि विवेक पग रोपे।
पुनि ज्ञान भयौ परचण्डा, तिनि मारि किये सत पण्डा ॥ ३ ॥
वै काम क्रोध दोउ भाई, गये लोभ मोह पैं धाई।
तुम बैठे कहा गँवारा, उनि मार्यौ सब परिवारा ॥ ४ ॥
जब चार्यों मिलि करि आये, तब सील सूर उठि धाये।
ता पीछैं उठ्यौ संतोषा, तिनि कछू न राष्यौ धोषा ॥ ५ ॥
जब जूझि परे अगवांनी, तब आये नृप अभिमांनी।
उठि प्रांन भंवाल गलारे, गहि राजा मांन पछारे ॥ ६ ॥
यह जीत्यौ षेत नरेसा, सो सुनियौ सेस महेसा।
घट भीतरि अनहद बाजे, तहां दादू दास बिराजे ॥ ७ ॥
दत गोरष ज्यौं जस तेरा, यौं गावै सुन्दर चेरा।
इक दीन वचन सुनि लीजै, मोहि मौज दरस की दीजै ॥ ८ ॥

(२)

गु० भा० (ताल)

भाजे कांई रे भिडि भारथ साम्हौं सूरा सत जिणिहारैं।
दुहौं पवाड सुजस ताहरौ कैं मरसी कैं मारैं ॥ (टेक)

श्लो० ५-६-७) रामानंद आदि भक्तों के नाम 'नाभाजी की भक्तमाल' में देखें, और दादूजी आदिका जन्म लीला परचा और 'राघवदासजी की भक्तमाल' में आख्यान हैं।

(राग सोरठ) १ ला पद—सेरी=छोटा रास्ता। (निकल कर न जा सका ऐसा घेरा लगाया)। परजारी=प्रज्वलित की।

चोट नगारैं सुनैं सुभट जब सिधूडौ सहनाई।
छोडि सनाह हुलसि करि आवौ फूल्यौ अंग न माई॥ १॥
झलहल तीर तरवारि बरछी देपि कांदरैं काचा।
छूटैं तोर तुपक अरु गोला घाव सहै मुख सांचा॥ २॥
गाढा रोपि रहे रन माहें फिरि पाछौ जिणि आवै।
घोडौ घाति पिसुंण सब पेलै तब तूं सोभा पावै॥ ३॥
भला सूर सावन्त सराहै सो सूरातन कीजैं।
सुन्दर सीस उतारि आपणौं स्यांम काम कौं दीजैं॥ ४॥

(३)

सोई औ गाढ रे रण रावत बांकौ, पाछा पाव न मेल्है।
साचैं मतै स्यांम रै आगै, सीस उतार्यां पेल्है॥ (टेक)
चढि चढि सूर चहुं दिसि आया, हय हींसै गै गाजैं।
वीजल ज्यौं चमकै बाढाली, काइर कांदरि भाजैं॥ १॥
मौंह मिलि हूवां मौंह नहीं मोडै, होइ जाइ विकराला।
सांगि सबाहि फेरि सिर ऊपरि, मारैं मीर मुछाला॥ २॥
चूकै नहीं चौट यौं घालै मारै मार सुणावै।
करडी कमरि बांधि करि कमधज परकी फौज फिटावै॥ ३॥
खण्ड विहण्ड होइ पल मांहीं करै न तन कौ लोभा।
सुन्दर मरैं त मुकती पहुंचै, जीवैं त जग मैं सोभा॥ ४॥

---

२ रा पद—पवाड=पँवाडा=सुजस जो जोगी वडवे गाते हैं। कांदरैं=कदराइल हो जाय, डरपोक।

३ रा पद—गैं=गज, हाथी। मरैंत=मरने से। जीवैंत=जीने से। सबाहि=यह 'सुबाहि' पाठ होने से ठीक अर्थ होगा। अर्थात् अच्छी तरह वाह करके।

(४)

जो कोइ सुनें गुरू की वांनी, सो काहे कौ भरमै प्रांनी ॥ (टेक)

घट भीतरि सब दिपलावै, वडभागी होइ सु पावै ।
जो शब्द माहिं मन रापै, सो राम रसाइन चापै ॥ १ ॥
घट भीतरि विष्णु महेसा, ब्रह्मादिक नारद सेसा ।
घट भीतरि इन्द्र कुबेरा, घट भीतरि प्रगट सुमेरा ॥ २ ॥
घट भीतरि सूरज चंदा, घट भीतरि सात समन्दा ।
घट भीतरि नो लप तारा, घट भीतरि सुरसरि धारा ॥ ३ ॥
घट भीतरि है रस भोगी, गोदावरि गोरप जोगी ।
घट भीतरि सिद्धन मेला, घट भीतरि आप अकेला ॥ ४ ॥
घट भीतरि मथुरा काशी, घट भीतरि गृह बनवासी ।
घट भीतरि तीरथ न्हांना, घट भीतरि आव न जांना ॥ ५ ॥
घट भीतरि नाचै गावै, घट भीतरि बेन बजावै ।
घट भीतरि फाग बसन्ता, घट भीतरि कामिनि कन्ता ॥ ६ ॥
घट भीतरि स्वर्ग पताला, घट भीतरि है क्षय काला ।
घट भीतरि युग युग जीवै, घट भीतरि अंमृत पीवै ॥ ७ ॥
जब घट सौं परचा होई, तब काल न व्यापै कोई ।
जन सुन्दर कहि संमुझावै, सतगुरु बिन कोइ न पावै ॥ ८ ॥

(५)

मेरा मन राम नाम सौं लागा ।
तातें भरम गया भै भागा ॥ (टेक)

४था पद—'भ्रमै' को 'भरमै' पाठ छन्द सौन्दर्य के लिए लिखा है । इसके अर्थ की समझ दादूवाणी में 'कायाबेली' का पद पढ़ने समझने से आ सकती है । वहां देखें और चन्द्रिकाप्रसादजी की उस पर टीका देखें ।

आसा मनसा सब थिर कींनी, सत रज तम त्यागै तींनी।
पुनि हरप सोक गये दोऊ, मद मच्छर रहे न कोऊ॥ १॥
नख शिख लौं देह पपारी, तब सुद्ध भई सब नारी।
भया ब्रह्म अग्नि सुप्रकासा, किया सकल कर्म का नासा॥ २॥
इडा पिंगला उलटी आई, सुपमन ब्रह्मण्ड चढ़ाई।
जब मूल चापि दिढ बैठा, तब बिंद गगन मैं पैठा॥ ३॥
जहां शब्द अनाहद बाजै, तहां अन्तर जोति बिराजै।
कोई देपै देपनहारा, सो सुन्दर गुरू हमारा॥ ४॥

(६)

ऐसौ योग युगति जब होई।
तब काल न व्यापै कोई॥ (टेक)
धरि आसन पद्म रहंता, सब काया कर्म दहंता।
तजि निद्रा खंडि अहारा, करि आपुहि आप बिचारा॥ १॥
गहि बिंद गगन दिशि जाता, भषि पवन पियाला माता।
सुनि अनहद सींगी बाजै, धुनि मांहि निरंजन गाजै॥ २॥
सो अवधू गुरु का पूरा, जिनि एक किया ससि सूरा।
अभि अंतरि जोति जगावै, तहां उनमनि ताली लावै॥ ३॥
यह गंग जमुन बिचि पेला, तहां परम पुरुष का मेला।
गुरु दादू दिया दिपाई, तहां सुंदर रह्या समाई॥ ४॥

---

५ वां पद—पपारी=धोई, स्नान कराई। नारी=नाड़ी (१०८ नाड़ियां)। मूलचापि=मूलाधार चक्र को सिद्धासन दृढ़ करके सिद्ध कर लिया। बिन्द=वीर्य। गगन=मस्तिष्क, सहस्रार चक्र में।

६ ठा पद—गंग=पिंगला (दाहिने स्वर की) सूर्य नाड़ी। जमना=इड़ा (बाये स्वर की) चन्द्रनाड़ी। यथा—"गंगा जमना अन्तर वेद। सुरसति नीर बहै परसेद।" दादूवाणी पद ४०७।

(७)

हमारे साहु रमइया मोटा, हम ताके आहि वनौटा ॥ (टेक)
यह हाट दई जिनि काया, अपना करि जांनि बैठाया ※ ।
पूंजी को अंत न पारा, हम बहुत करी भंडसारा ॥ १ ॥
लई वस्तु अमोलक सारी, सब छाडि विषै पलि पारी ।
भरि राख्यौ सबही भौंना, कोई षाली रह्यौ न कौंना ॥ २ ॥
जो गाहक लेनें आवै, मन मान्यौ सौदा पावै ।
देषै बहु भांति किरांना, उठि जाइ न और दुकांना ॥ ३ ॥
सम्रथ की कोठी आये, तब कोठीवाल कहाये ।
बनिजै हरि नांव निवासा, यह वनिया सुंदरदासा ॥ ४ ॥

(८)

देषहु साह रमइया ऐसा, सो रहै अपरछन वैसा ॥ (टेक)
यहु हाट कियौ संसारा, तामैं विविधि भांति ब्यौपारा ।
सब जीव सौदागर आया, जिनि बनज्या तैसा पाया ॥ १ ॥
किनहूं बनिजी पलि पारी, किनहुं लइ लौंग सुपारी ।
किनहूं लिये मूंगा मोती, किनहूं लइ काच की पोती ॥ २ ॥
किनहूं लइ औषध मूरी, किनहूं केसर कस्तूरी ।
किनहूं लियौ वहुत अनाजा, किनहूं लियौ ल्हसण प्याजा ॥ ३ ॥

---

७ वां पद—वनौटा=बनाया हुआ वनिया जिसको बड़ा दूकानदार कुछ पूंजी देकर पृथक् दूकान पर बिठाकर साहूकार बना देता है । बनाया हुआ आदमी । प्रतिपालित ।

※ "बैठाया" को 'बिठाया' पढ़ना ठीक होगा । भंडसार=बिगाड़ वा भंडार की भरती । पलि पारी=खली निःसत्व पदार्थ । पारी=क्षार वा खारी नमक जिसको हीन समझते हैं । निवासा=भंडार भर-भर कर ।

संतनि लीयौ हरि हीरा, तिनस्यौं कीयौ हम सीरा।
दुख दालिद्र निकट न आवै, यौं सुन्दर वनिया गावै ॥ ४ ॥

(९)

मोहि, सतगुरु कहि संमुझाया हो।
परम पुरुष विन और न परसौं, पीव निरंजन राया हो ॥ (टेक)
सब ऊपरि सोई मेरा स्वांमी, उसपरि कोई न बताया हो।
मनसा वाचा और कर्मना, वाही सौं मन लाया हो ॥ १ ॥
घट धारी सौं प्रीति न मेरी, जौ अवतार कहाया हो।
वै हम भइया वंध आप मैं, एकहि जननी जाया हो ॥ २ ॥
ब्रह्मा विष्णु महेस विचारा, उहां लग जान न पाया हो।
वाजी मांहि वीचि ही अटके, मोहि लिये सब माया हो ॥ ३ ॥
तहां गये गोरक्ष भरथरी, जहां घांम नहिं छाया हो।
तहां कबीर गुरू दादू पहुंचे, सुन्दर उहिं दिशि धाया हो ॥ ४ ॥

(१०)

मेरे, सतगुरु वड़े सयाने हो।
लोक वेद मरजाद उलँघिकैं, गये गगन के थांने हो ॥ (टेक)
अगम ठौर कै आसन वैठे, वेहद सौं मन मांते हो।
सांचि सिंगार किया उर अंतर, भेप भरम सब भांने हो ॥ १ ॥

---

८ वां पद—अपरछन=अप्रच्छन्न, प्रगट। परन्तु यहां तो गुप्त का अर्थ है अर्थात् प्रच्छन्न। सीरा=सांजा, सांझो। 'लियो' को 'लीयो' और 'कियो' को 'कीयो' बनाया गया।

९ वां पद—इसमें अवतारादि को भी शरीरधारी होने से माया के विकार कहे हैं। यही निर्गुण मत का चरम सिद्धान्त है।

तिमिर मिट्यौ जब ब्रह्म प्रकाशे, कैसें रहत छिपांने हो।
शिव विरंचि सनकादिक नारद, सेस नाग पुनि जांने हो ॥ २ ॥
योगी यती तपी संन्यासी, ये सब भरम भुलांने हो।
तीरथ ब्रत जप तप बहु करि करि, उरैं उरैं उरझांने हो ॥ ३ ॥
गोरष भरथर नाम कबीरा; संतनि मांहिं प्रवांने हो।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू, पहुंचे जाइ ठिकांने हो ॥ ४ ॥

(११)

उस, सत गुरु की वलिहारी हो।
बंधन काटि किये जिनि मुकता, अरु सब विपति निवारी हो ॥ (टेक)
बानी सुनत परम सुख पायौ, दुरमति गई हमारी हो।
भरम करम के संसै पोले, दिये कपाट उघारी हो ॥ १ ॥
माया ब्रह्म भेद समुझायौ, सो हम लियौ विचारी हो।
आदि पुरुष अभि अंतरि रापे, डांइनि दूरि विडारी हो ॥ २ ॥
दया करी उनि सब सुख दाता, अबकैं लिये उबारी हो।
भवसागर मैं बूडत काढे, ऐसे परउपगारी हो ॥ ३ ॥
गुरु दादू के चरण कंवल परि, मेल्हौं सीस उतारी हो।
और कहा ले आगै रापै, सुन्दर भेट तुम्हारी हो ॥ ४ ॥

(१२)

सोई संत भला मोहि लागै हो।
राम निरंजन सौं मन लावै, कनक कांमिनी त्यागै हो ॥ (टेक)
तजि संसार उलटि नहिं आवै, जो पग धरै स आगै हो।
ज्ञान पडग ले सनमुख झूझै, फिरि पीछै नहिं भागै हो ॥ १ ॥

---

१० वां पद—थानें=स्थान। वेहद=सीमा रहित। अनन्त। नाम=नामदेव।
११ वां पद—डांइनि=माया डाकिनी।

पंच तीन गुन और पचीसौं, ब्रह्म अग्नि मैं दागै हो।
सहज सुभाइ फिरै जन मुकता, ऐसैं जग मैं जागै हो ॥ २ ॥
आसा तृष्णा करै न कबहों, काहू पै नहिं मांगै हो।
कबहों पंचा अमृत भोजन, कबहौं भाजी सागै हो ॥ ३ ॥
अंतर-जांमी नैंकु न विसरै, वार वार चित धागै हो।
सुन्दरदास तास कौं बंदै, सून्य सुधा रस पागै हो ॥ ४ ॥

(१३)

वैं सन्त सकल सुखदाता हो।
जिनकै हृदै नांव निज निर्मल, प्रेम मगन रस माता हो ॥ (टेक)
रोमंचित अरु गद गद वांनी, पल पल पुलकति गाता हो।
सर्व भूत सौं दया निरन्तरि, सीतल बैंन सुहाता हो ॥ १ ॥
दरसन करत ताप त्रय भागै, परसन पाप नसाता हो।
मौंन रहै बूझै तैं वोलै, कहै ब्रह्म की वाता हो ॥ २ ॥
कोई निंदै कोई बंदै, सम दृष्टी तत-ज्ञाता हो।
कोप न करै हरप नहिं मांनै, परम पुरुष सौं राता हो ॥ ३ ॥
जग मैं रहै जगत सौं न्यारे, ज्यौं जल पुरइनि पाता हो।
सुन्दरदास संत जन ऐसे, सिरजे आप विधाता हो ॥ ४ ॥

(१४)

भाई रे सतगुरु कहि संमुझाया।
मोहि एक विचार बताया ॥ (टेक)

---

१२ वां पद—दागै=जलावै। भाजी=तरकारी। धागै=जोडै (जैसे तागे में पिरोकर वा सुई से सीकर)। पागै=मग्न हो, डूबै।

१३ वां पद—नांव निज=निज नांव, वा निर्मल नितान्त (निर्मल से सम्बन्ध रक्खैं तो) पुरइनि-पाता=कमल का पत्ता।

तीरथिया तीरथ कौं दौडे हज कौं दौडै हाजी।
अन्तर गति कौं षोजै नाहीं भ्रमणै ही सौं राजी॥ ३॥
अपने अपने मद के मांते लरैं न फूटी साजी।
सुन्दर तिनहिं कहा अब कहिये जिनकै भई दुराजी॥ ४॥१३२॥

राग जैजैवन्ती

(१)

काहे कौं भ्रमत है तूं बावरे अनित्र जाइ।
जासूं तूं कहत दूरि सोतो तेरे पास है॥ (टेक)
ऐसें तूं विचारि देषि व्यापक है तोहि मांहिं।
दूध मांहिं घृत जैसें फूलनि में बास है॥ १॥
बाहरि कूं दौरे तेरे हाथ न परत कछु।
उलटि अपूठौ तेरौ तोही में प्रकास है॥ २॥
जाकें रूपरेष कछु बरणि कह्यौ न जाइ।
अलष अमूरति अमर अविनास है॥ ३॥
सोहं सोहं बार बार होतई रहत नित्य।
याही में समुझि जो उठत तेरे स्वास है॥ ४॥
एकता विचारें जब सुन्दर ही स्वामी होइ।
दूसरौ विचारें तब सुन्दर ही दास है॥ ५॥

(२)

आपुकौं संभारें जब तूं ही सुख सागर है।
आपकूं बिसारें तब तूं ही दुख पाइ है॥ (टेक)

---

१६ वां पद—पाजी=छोटा आदमी। पयादा नोकर। निवाजी=नमाज पढ़ते हैं। फूटी साजी=बिगड़ी हुई साझी या मेल। द्वन्द्व, द्वैतभाव।

[राग जैजैवन्ती] १ ला पद—अनित्र=अन्यत्र, और तरफ।

तूं ही जब आवै ठौर दूसरौ न भासै और।
तेरी ही चपलता तें दूसरौ दिपाइ है॥ १॥
वांवैं कानि सुनि भावै दाहिनै पुकारि कहूं।
अबकै न चेत्यौ तो तूं पीछै पछिताइ है॥ २॥
भावै आज भावै कल्पन्त बीतैं होइ ज्ञान।
तबही तूं अविनासी पद मैं समाइ है॥ ३॥
सुन्दर कहत सन्त मारग बतावैं तोहि।
तेरी पुसी परै तहां तूं हीं चलि जाइ है॥ ४॥ १३४॥

(१) राग रामगरी

अवधू भेष देषि जिनि भूलै।
जबलग आतम दृष्टि न आई तबलग मिटै न सूलै॥ (टेक)
मुद्रा पहरि कहावत जोगी, युगति न दीसै हाथा।
वह मारग कहुं रह्यौ अनत ही, पहुंचै गोरषनाथा॥ १॥
लै संन्यास करै बहु तामस, लम्बी जटा बधावै।
दत्तदेव की रहनि न जानै, तत्त कहां तैं पावै॥ २॥
मूंड मुण्डाइ तिलक सिर दीयौ, माला गरै झुलाई।
जो सुमिरन कीनौ सब सन्तनि, सौ तौ पवरि न पाई॥ ३॥
तहबन्ध बांधि कुतका लीना, दम दम करै दिवाना।
महमद की करनी नहिं जानै, क्यौं पावै रहिमाना॥ ४॥
दरसन लियौ भली तुम कीनी, क्रोध करौ जिनि कोई।
सुन्दरदास कहै अभिअन्तरि, वस्तु विचारौ सोई॥ ५॥

पद १ ला—और २ रा—दोनों ही छन्द के अनुसार "सवैया" के अन्दर आने योग्य हैं।

[राग रामगरी] पद १ ला—इसमें ढोंगी साधुओं, जोगियों, फकीरों को कसणी

(२)

सन्त चले इस ब्रह्म की तजि जग व्यवहारा।
सीधें मारग चालतें निंदै संसारा ॥ (टेक)

सन्त कहैं सांची कथा मिथ्या नहिं बोलैं।
जगत डिगावैं आइकें तौ कबहूं न डोलैं ॥ १ ॥

जे जे कृत संसार के ते सन्तनि छांडे।
ताकौ जगत कहा करै पग आगैं मांडे ॥ २ ॥

जे मरजादा बेद की ते सन्तनि मेटी।
जैसें गोपी कृष्ण कौं सब तजि करि भेटी ॥ ३ ॥

एक भरोसे राम कै कछु शंक न आंनैं।
जन सुन्दर सांचैं मतैं जग की नहिं मांनैं ॥ ४ ॥

(३)

सतगुरु शब्दहुं जे चले तेई जन छूटे।
जग मरजादा मैं रहे ते महुकम लूटे ॥ (टेक)

कुल की मोटी संकला पग बांधे दोई।
गलें तौक कर हथकरी क्यौं निकसै कोई ॥ १ ॥

नाना बिधि के बांधनें सब बांधे बेदा।
सूर बीर कोई निकसि है जो पावै भेदा ॥ २ ॥

बाबा अरु दादा चले ते मारग पोटा।
सो व्यापार न कीजिये जिहिं आवै टोटा ॥ ३ ॥

लगाई है। ४थे अन्तरे के पढ़ने से पाया जाता है कि स्वामीजी अन्य मतों के आचार्यों का भी आदर करते थे। दरसन=बाना, भेष (जैसे 'षट् दरसन' में)।

२ रा पद—सीधे मारग=जिस मार्ग सन्त चलते हैं वह सीधा रास्ता है। मरजादा वेद की=कर्मकाण्ड यज्ञादिक।

पन्थ पुरातम कहत हैं सब चलता आया।
सुन्दर सो उलटा चलै जिन सतगुरु पाया॥ ४॥

(४)

यह सब जानि जग की पोट।
छाडि श्रीपति सरन सांचौ गहैं झूठी वोट॥ (टेक)
दगावाज प्रचण्ड लोभी कामना नहिं छेह।
भूत आगै पूत मांगै परैगी सिर षेह॥ १॥
देव देवी सकल भ्रमि भ्रमि कहूं न पूजो आस।
मानुषा तनु पाइ ऐसो कियौ यौंही नास॥ २॥
कष्ट करि करि स्वर्ग बंछहि और पृथवी राज।
महा मूढ अज्ञान अपनौं करहिं वहुत अकाज॥ ३॥
सुख निधान सुजान सम्रथ ताहि भजत न कोइ।
कहत सुन्दरदास ऐसैं काज कैसैं होइ॥ ४॥

(५)

नटवट रच्यौ नटवै एक।
वहु प्रकार बनाइ बाजी किये रूप अनेक॥ (टेक)
चारि पानी जीव तिनकी और औरैं जाति।
एक एक समान नांहीं करी ऐसी भांति॥ १॥
देव भूत पिसाच राक्षस मनुष पशु अरु पंखि।
अगिन जलचर कीट कृमि कुल गनै कौंन असंखि॥ २॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार।
भिन्न भिन्न हि युक्ति रापी भिन्न भिन्न विहार॥ ३॥

---

३ रा पद—महुकम=(अ०) मोहकम-मजबूत, गहरे, वहुत।
४ था पद—भूत=भूत प्रेत। देवताओं या भोमिया पीर के भाव भरते हैं वे।

भिन्न बांनी सकल जांनी एक एक न मेल।
कहत सुन्दर मांहि बैठ्य करैं ऐसा पेल॥ ४॥

(६)

यहु तन ना रहै भाई।
दिना दहुं चहुं मांहि सबको चल्यौ जग जाई। (टेक)
विष्णु ब्रह्मा शेष शंकर सो न थिर थाई।
देव दानव इन्द्र केते गये विनसाई॥ १॥
कहत दश अवतार जग में औतरे आई।
काल तेऊ झपटि लीने बस नहीं काई॥ २॥
कौरवा पांडवा रावन कुम्भकरनाई।
गरद वैसे भये जोधा पवरि नां पाई॥ ३॥
घट धरें कोइ थिर न दीसैं रङ्क अरु राई।
दास सुन्दर जानि ऐसी राम ल्यौ लाई॥ ४॥

(७)

एक निरञ्जन नाम भजहु रे।
और सकल जंजाल तजहु रे॥ (टेक)
योग यज्ञ तीरथ व्रत दाना, लौंन विना ज्यौं विंजन नाना॥ १॥
जप तप संजम साधन ऐसैं, सकल सिंगार नाक विन जैसैं॥ २॥
हेमतुला बैठैं कहा होई, नाम बराबरि धर्म न कोई॥ ३॥
सुन्दर नाम सकल सिरताजा, नाम सकल साधन कौ राजा॥ ४॥

---

५ वां पद—नटखट=नटबाजी का आडम्बर। सृष्टि का पसारा जो एक बाजीगरी सी है।

६ ठा पद—विनसाई=नष्ट होकर। कुम्भकरनाई=(अनुप्रासार्थ ऐसा रूप है) रावन का भाई। घट धरें=शरीरधारी।

(८)

ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई।
तीन अवस्था मैं दिन वीतै, सो सुख कह्यौ न जाई॥ (टेक)
जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन, स्वप्नै ध्यान लै ल्यावै।
सुषुपति प्रेम मगन अंतिरगति, सकल प्रपंच भुलावै॥ १॥
सोई भक्ति भक्त पुनि सोई, सो भगवंत अनूपं।
सो गुरु जिन उपदेश वतायौ, सुन्दर तुरिय स्वरूपं॥ २॥

(९)

तूंहीं राम हूंहीं राम वस्तु विचारैं भ्रम द्वै नाम॥ (टेक)
तूं ही हूं ही जवलग दोइ, तवलग तूं ही हूं ही होइ॥ १॥
तूं ही हूं ही सोहं दास, तूं ही हूं ही वचन विलास॥ २॥
तूं ही हूं ही जवलग कहै, तवलग तूं ही हूं ही रहै॥ ३॥
तूं हां हूं ही जब मिट जाइ, सुन्दर ज्यौं कौ त्यौं ठहराइ॥ ४॥१४३॥

(१) राग बसन्त

इनि योगी लीनी गुरु की सोष।
नाम निरञ्जन मांगै भीष॥ (टेक)
कंथा पहरी पंचरङ्ग, ज्ञान विभूति लगाई अङ्ग।
मुद्रा गुरु कौ शब्द कान, ऐसौ भेष कियौ अवधू सुजान॥ १॥
सींगी सुरति वजाई पूरि, वस्ती देखी बहुत दूरि।
जहां शब्द सुनै नगरी मंझारि, तहां आसन करि वैठौ विचारि॥ २॥

---

८ वां पद—अन्तिरगति=अन्तरगति।

९ वां पद—इस पद में अद्वैत प्रतिपादन किया है। "तत्वमसि" (वह तू ही है) के अर्थ को दरसाया है।

अंमृत कौ तहां आवै ग्रास, चेला चांटी रहै पास।
सब काहू सौं बांटि पाइ, तहां बिछुरि जमात कहूं न जाइ ॥ ३ ॥
यह भोजन पावै बार बार, भरि भरि पेट करै अहार।
भागी भूप अघाइ प्रान, ऐसी सुन्दर नगरी सुख निधान ॥ ४ ॥

(२)

मेरे हिरदै लागी शब्द बान, ताकि मारे सत गुरु सुजान ॥ (टेक)
यह दशौं दिशा मन करतौ दौड, बेधन ही रहि गयो ठौड।
चलि न सकै कहुं पेंड एक, देषौ मांहि कलेजै भयौ छेक ॥ १ ॥
ऊपरि घाव न दीसै कोइ, भीतरि नख शिख लीयौ पोइ।
कोउ न जानै मेरी पीर, सो जानै जाकै लग्यौ तीर ॥ २ ॥
जीवत मृतक किये मारि, रोम रोम उठे पुकारि।
प्रेम मगन रस गलित गात, मोहि बिसरि गई सब और बात ॥ ३ ॥
गति मति पलटी पलट्यौ अंग, पंच पचीसनि एक संग।
उलटि समाने सून्य मांहि, अब सुन्दर कहुं अनत नांहि ॥ ४ ॥

(३)

ऐसौ बाग कियौ हरि अलप राइ।
कछु अद्भुत रचना कही न जाइ ॥ (टेक)
यह पंच तत्व कौ सघन बाग, मूल बिना तरु सरस लाग।
बहु बिधि बिरवा रहे फूलि, जो देषै सो जाइ भूलि ॥ १ ॥

[राग बसन्त] १ ला पद—पंचनगर=पंच ज्ञानेन्द्रियों को बस करना। अमृत=ज्ञानरूपी अमृत। अथवा योग के अनुसार माथे में कुण्डलिनी अमृत बिन्दु पीवै।

२ रा पद—सतगुरु (दादूदयाल) का उपदेश—भक्तिमय ज्ञान का—हृदय में ऐसा लगा कि अहंकार आदिक मिट कर अन्तरात्मा में प्रवृत्ति हो गई और निरन्तर ज्ञान ध्यान में ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई।

यह बारा मास फलै सुफाल, तहां पंखी बोलैं डाल डाल।
जब यह आवैं ऋतु बसंत, ये तब सुख पावैं सकल जंत ॥ २ ॥
ताहि सींचत है प्रभु बार बार, पुनि पल पल मांहि करै संभार।
प्रभु सबही द्रुम कौ मर्म जांन, तामैं कोइक बाकै मनहिं मांन ॥ ३ ॥
जो फलै न फूलै बाग मांहि, ऐसौ सतगुरु चन्दन और नांहि।
ताकी रञ्चक लागी आइ बास, तिन पलटि लियौ सुन्दर पलास ॥ ४ ॥

(४)

ऐसौ फागुन षेलै संत कोइ।
जामैं उतपति प्रलै जीव होई ॥ (टेक)

इनि मोह गुलाल लगायौ अङ्ग, पुनि लोभ अरगजा लियौ संग।
केसरि कुमति करो बनाइ, अरु माया कौ मद पियौ अघाई ॥ १ ॥
तहां मंदल मदन बजावै भेरि, आसा अरु तृष्णा गावैं टेरि।
हाथनि में लीने क्रोध बंस, इनि करि करि क्रीड़ा हत्यौ हंस ॥ २ ॥
जब पेलि माल्हि कैं चले न्हांन, पुनि सोक सरोवर कियौ सनान।
संसै को तिलक दियौ लिलाट, गये आप आपकौं बारह बाट ॥ ३ ॥
इहै जांनि तुरत हम छूटे भागि, यह सब जग देष्यौ जरत आगि।
अपने सिर की फिरि डारी पोट, जन सुन्दर पकरी हरि की वोट ॥ ४ ॥

---

३ रा पद—संसार को बाग की उपमा देकर उसमें सतगुरुरूपी चन्दन के वृक्ष से अन्य वृक्षों के चन्दन बनने की बात कही। पलास=छीला वृक्ष। निर्गन्ध अन्य वृक्ष (जो चन्दन की सुगन्ध से चन्दन हो जाते हैं) गुरु के वचनरूपी सुगन्ध से जिज्ञासु भी ज्ञानी हो गये वा हो जाते हैं।

४ था पद—मंदल=मन्द-मन्द। अथवा मण्डल=डफ का घेरा। इस पद में किसी भ्रष्ट दम्भी साधु का वर्णन है, जिसकी बुरी बातें देख स्वामीजी घबराए और संसार की असारता का पक्का प्रमाण मिला।

(५)

हम देषि वसंत कियौ विचार ।

यह माया षेलै अति अपार ॥ (टेक)

यहु छिन छिन मांहि अनेक रङ्ग, पुनि कहुं बिछुरै कहुं करै संग ।
यहु गुन धरि बैठी कपट भाइ, यहु आपुहि जनमैं आपु पाइ ॥ १ ॥
यहु कहुं कामिनि कहुं भई कन्त, यहु कहुं मारै कहूं दयावंत ।
यहु कहुं जागै कहुं रही सोइ, यहु कहूं हंसै कहुं उठै रोइ ॥ २ ॥
यहु कहुं पाती कहुं भई देव, पुनि कहुं युक्ति करि करै सेव ।
यहु कहुं मालनि कहुं भई फूल, यहु कहूं सूक्ष्म कहूं है है स्थूल ॥ ३ ॥
यहु तीन लोक में रही पूरि, भागी कहां कोई जाइ दूरि ।
जो प्रगटै सुन्दर ज्ञान अङ्ग, तौ माया मृग जल रजु भुजंग ॥ ४ ॥

(६)

तुम षेलहु फाग पियारे कन्त ।

अब आयौ है फागुन ऋतु वसंत ॥ (टेक)

घसि प्रेम प्रीति केसरि सुरङ्ग, यह ज्ञान गुलाल लगावै अङ्ग ।
भरि सुमति पिचरकी अपनै हाथ, हम भरिहैं तुमहिं त्रिलोकनाथ ॥ १ ॥
तुम हमहिं भरहु करि अधिक प्यार, हम तुमहिं भरहिं प्रभु वार वार ।
निसवासर षेल अखंड होइ, यह अद्भुत षेल लषै न कोइ ॥ २ ॥
तहां शब्द अनाहद अति रसाल, धुनि दुन्दभि ढोल मृदंग ताल ।
सुख उपजै श्रवननि सुनत नाद, मन मगन होइ छूटै विषाद ॥ ३ ॥
हम तुमहिं पकरि आंजि हैं नैंन, सब हो हो हो हो कहै बैंन ।
तुम छूट्यौ चाहत फगुवा देइ, यह सुन्दर नारि कछू न लेइ ॥ ४ ॥

---

५ वां पद—मृगजल=मृगतृष्णा का पानी (भ्रममात्र वा उपाधिमात्र) ।

६ ठा पद—धुनि दुन्दुभि···।=योग ध्यान वा समाधि में प्रथम अनेक शब्द होते हैं । देखो 'ज्ञानसमुद्र' में । अंजि है नैंन=ब्रह्म तो निरंजन है उसके नेत्रों में अंजन

(७)

देषौ, घट घट आतम राम निरन्तर. षेलत सरस वसंत।
ऐसौ, ष्याली ष्याल कियौ है, कवहुं न आवत अंत ॥ (टेक)
चारि पानि विस्तार जगत यह, चौरासी लष जंत।
षेचर भूचर अरु जल चारी, वहु विधि सृष्टि रचन्त ॥ १ ॥
धरती गगन पवन अरु पानी, अग्नि सदा वरतंत।
चन्द सूर तारागन सवही, देव यक्ष अगनन्त ॥ २ ॥
ज्यौं समुद्र मैं फेन वुदवुदा, लहरि अनेक उठंत।
तरवर तत्व रहैं एक रस, झरि झरि पत्र परन्त॥ ३ ॥
ज्यौं का त्यौंही षेल पसारा, वीत्यौ काल अनन्त।
सुन्दर ब्रह्म विलास अखंडित, जानत हैं सव संत ॥ ४ ॥ १५०॥

(१) राग गौंड

मेरा प्रीतम प्रान अधार कव घरि आइ है।
कहुं सो दिन ऐसा होइ दरस दिषाइ है ॥ (टेक)
ये नैंन निहारत माग इक टग हेरहीं।
वाल्हा जैसैं चन्द चकोर दृष्टि न फेरहीं ॥ १ ॥

देना वा फाग खेलना पराभक्ति की काष्ठा है। परम प्रेम का भाव है। कछु न लेइ=निष्काम भक्तिमय ज्ञान को छोड़ और कुछ नहीं चाहिए।

७ वां पद—वसन्त के रूपक के साथ सृष्टि का वर्णन करने यह प्रयोजन है कि वसन्त शव्द से सदा वसने वा व्यापक रहना और फिर वसन्त शव्द से वसन्त ऋतु का अर्थ लेने से पुष्प के खिलने और आनन्द वाहुल्य होने से भी है। ऐसा वर्णन कवीरजी आदिक महात्माओं ने भी किया है। तरवर तत्व······।—जैसे वृक्षों के पत्ते झड़ भी जाते हैं और फिर नये आ जाते हैं तव वृक्ष वैसा ही सरसव्ज हो जाता है, वैसे ही यह संसार स्वल्प परिवर्त्तन पाकर फिर वैसा ही रूप धारे रहता है।

यहु रसना करत पुकार पिव पिव प्यास है।
वाल्हा जैसैं चातक लीन दीन उदास है॥ २॥
ये श्रवन सुनन कौं बैंन धीरज नां धरैं।
वाल्हा हिरदै होइ न चैन कृपा प्रभु कब करैं॥ ३॥
मेरैं नख शिख तपति अपार दुःख कासौं कहौं।
जब सुन्दर आवै यार सब सुख तौ लहौं॥ ४॥

(२)

मुझ वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरैं विरह वियोग फिरौं बेहाल रे॥ (टेक)
हौं निस दिन रहौं उदास तेरैं कारनै।
मुझै विरह कसाई आइ लागा मारनै॥ १॥
इस पंजर माहिं पैठि विरह मरोरई।
जैसैं वस्तर धोबी ऐंठि नीर निचोरई॥ २॥
मैं का सनि करौं पुकार तुम विन पीव रे।
यहु विरहा मेरी लार दुखी अति जीव रे॥ ३॥
अब काहे न करहु सहाइ सुन्दरदास की।
वाल्हा तुमसौं मेरी आइ लगी है आस की॥ ४॥

(३)

विरहनि है तुम दरस पियासी।
क्यौं न मिलौ मेरे पिय अविनासी॥ (टेक)

[राग गौंड] १ ला पद—वाल्हा='वाल्हा' वा 'वाला' ऐसा शब्द गीतों में अनेक अन्तरे में पादपूर्त्यर्थ स्त्रियां भी गाती हैं—'हांजी वाला'।

२ रा पद—लाल=प्यारा। लालन।

येते दिन हौं काइ विसारी, निस दिन झूरि मरत है नारी ॥ १ ॥
विभचारनि हौं होती नांहीं, लै पतिव्रतहि रही मन मांहीं ॥ २ ॥
तुम तौ वहुत त्रियन संग कीनौ, मैं तौ एक तुमहिं चित दीनौ ॥ ३ ॥
सुन्दरदास भई गति ऐसी, चातक मीन चकोर हि जैसी ॥ ४ ॥

(४)

लागी प्रीति पिया सौं साँची।
अवहूं प्रेम मगन होइ नाँची ॥ (टेक)
लोक वेद डर रह्यौ न कोई, कुल मरजाद कदे की षोई ॥ १ ॥
लाज छोड़ि सिर फरका डारा, अब किन हंसौ सकल संसारा ॥ २ ॥
भाँवै कोई करहु कसौटी, मेरै तनकी वोटी वोटी ॥ ३ ॥
सुन्दर जवलग संका राषै, तवलग प्रेम कहां ते चाषै ॥ ४ ॥

(५)

आज दिवस धनि राम दुहाई।
आये सन्त सकल सुखदाई ॥ (टेक)
मंगलचार भयौ आनन्दा, कमल षिलै ज्यौं देषै चन्दा ॥ १ ॥
भाव अधिक उपज्यौ जिय मेरै, तन मन धन नौछावर फेरै ॥ २ ॥
विनती जोरि करूं दोइ हाथा, वारम्वार नवांऊँ माथा ॥ ३ ॥
मस्तक भाग उदै करि जाना, सुन्दर भेटे संत सयाना ॥ ४ ॥१५५॥

---

३ रा पद—काइ=काहे को। क्यों। झूरि=रो-रो कर। विसूर-विसूर कर।

४ था पद—कदे की=(जैपुरी) कब की ही, बहुत समय की। फरका डारा=पल्ला वा घूंघट उतार डाला।

५ वां पद—देखै चंदा=नील कमल चन्द्रमा की चांदनी से खिलते हैं। अथवा ऐसे खिलै जैसे पूर्ण चन्द्र होता है। मस्तक भाग उदै करि जाना=सतगुरु की प्राप्ति का होना सिर में लिखा वा सिर पर सूर्य सा भाग्य का उदय हुआ। ऐसा जाना गया। सयाना=बुद्धिमान, ज्ञानी, सतगुरु।

(१) राग नट

यह तौ एक अचम्भौ भारी।
करहु आप सिर देहु और कै, कैसी रीति तुम्हारी ॥ (टेक)
पंच तत्व गुन तीन आंनि कै, जुक्ति मिलाई सारी।
आपुन निर्विकार होइ बैठे, हमकौं किये विकारी ॥ १ ॥
जड़ कौं शक्ति कहां की स्वामी, देषहु दृष्टि निहारी।
हलन चलन चम्बक तें दीसै, सुई न चलत विचारी ॥ २ ॥
माया मोह लगाई सबन कौं, मोहे नर अरु नारी।
ममता मच्छर अहंकार की, पांसि गरे मैं डारी ॥ ३ ॥
ठग विद्या नीकी जानत हौ, बड़े चतुर व्यापारी।
हम कौं दोष न देहु गुसांई, सुन्दर कहत उचारी ॥ ४ ॥

(२)

बाजी कौंन रची मेरे प्यारे।
आपु गोपि ह्वै रहे गुसांई, जग सब ही तें न्यारे ॥ (टेक)
ऐसौ चेटक कियौ चेटकी लोग भुलाये सारे।
नाना विधि के रङ्ग दिपावै, राते पीरे कारे ॥ १ ॥
पांन परेवा धूरि सु चावल, लुक अंजन बिस्तारे।
कोई जानि सकै नहिं तुमकौं, हुन्नर बहुत तुम्हारे ॥ २ ॥

[राग नट] १ ला पद—करहु आप......। इस पद में ईश्वर के कर्त्ता और अकर्त्ता होने को सुन्दरता से दिखाया है। जड़माया केवल चेतन ब्रह्म के प्रकाश से सृष्टि रचना करती है। इस कारण वास्तव में कर्तृत्व की शक्ति ब्रह्म ही में घटती है। परन्तु ईश्वर सिद्धांत में अकर्त्ता ही माना जाता है, निर्गुण निर्विकार होने से। यही तो विचित्रता है। व्यापारी—व्यापारी को भी ठग कहने से इन्द्रजाल का अभिप्राय है।

ब्रह्मादिक पुनि पार न पावैं, मुनि जन षोजतु हारे।
साधक सिद्ध मौंन गहि बैठे, पंडित कहा बिचारे॥ ३॥
अति अगाध अति अगम अगोचर, च्यारौं वेद पुकारे।
सुन्दर तेरी गति तूं जानै, किनहुं नहीं निरधारे॥ ४॥

(३)

तेरी अगम गति गोपाल।
कौंन जानै यह कहां तैं कियौ ऐसौ ष्याल॥ (टेक)
को कहत है करम करता, को कहत है काल।
को कहत है न को करता, सबै मारत गाल॥ १॥
को कहत है ब्रह्म माया, हैं अनादि बिसाल।
को कहत है सब सुभावैं, स्वर्ग मृति पाताल॥ २॥
जूवा जूवा मत बषानै, जूई जूई चाल।
अंति सबही कूदि थाके, मृग की सी फाल॥ ३॥
वार पार कहूं न दीसै, कहूं मूल न डाल।
देषि सुन्दर भये चक्रित, सब ठगे से लाल॥ ४॥

(४)

देषहु, अकह प्रभू की बात।
एक बून्द उपाइ जल की, रची सातौं धात॥ (टेक)

---

२ रा पद—पांख परेवा=पांख का पखेरू (परिंद) बना देना। धूरि चावल=मिट्टी के चांवल बना देना। ये सब बाजीगर खेल दिखाते हैं। लुक अंजन=भुरकी का काजल, जिससे आदमी गुप्त हो जाय ऐसा भी।

३ रा पद—न को कर्त्ता=अकर्त्ता। मारत गाल=बकने, जल्पना करते हैं। जूवा, जुदा,—भिन्न भिन्न। ठगे से लाल=बालक जो ठगा गया।

साजि नख सिख अति अनूपम, कियौ चेतनि गात।
जोनि द्वारें जनम पायौ, पुत्र जान्यौ मात ॥ १ ॥
पुष्टि नित प्रति होंन लागौ, चलत पीवत पात।
बाल लीला रमत बहु विधि, सबन अंग सुहात ॥ २ ॥
बहुरि जोबन निरपि निज तन, कहीं ते न सँकात।
मन मनोरथ बहुत कीनें, छल छदम उतपात ॥ ३ ॥
जरा झंप्यौ सीस कंप्यौ, तज्यौ सब संघात।
कहत सुन्दर मरन पायौ, जीव धौं कहां जात ॥ ४ ॥ १५६ ॥

(१) राग सारंग

मेरौ पिय परदेश लुभानौ री।
जानत हौं अजहूं नहि आये, काहू सौं उरझानौ री ॥ (टेक)
ता दिन तें मोहि कल न परत है, जबतें कियौ पयानौ री।
भूप पियास नींद नहि आवें, चितवत होत विहानौ री ॥ १ ॥
विरह अग्नि मोहि अधिक जरावें, नेंननि में पहिचानौ री।
बिन देपे हौं प्रान तजौंगी, यह तुम सांची मानौरी ॥ २ ॥
बहुत दिनन की पंथ निहारत, किनहुं संदेस न आनौ री।
अब मोहि रह्यौ परत नहि सजनी, तन तें हंस उडानौ री ॥ ३ ॥
भई उदास फिरत हौं व्याकुल, छूटौ ठौर ठिकानौ री।
सुन्दर विरहनि कौ दुख दीरघ, जो जानें सौ जानौ री ॥ ४ ॥

४ था पद—छदम=छद्म, कपट लीला।

[राग सारंग] १ ला पद—उरझानौं=उलझा। विमला। रम गया। पयानौं=प्रयाण, गमन। विहानौं=बेहाल, व्यग्र। हंस=जीवरूपी पखेरू (उड़नेवाला है)।
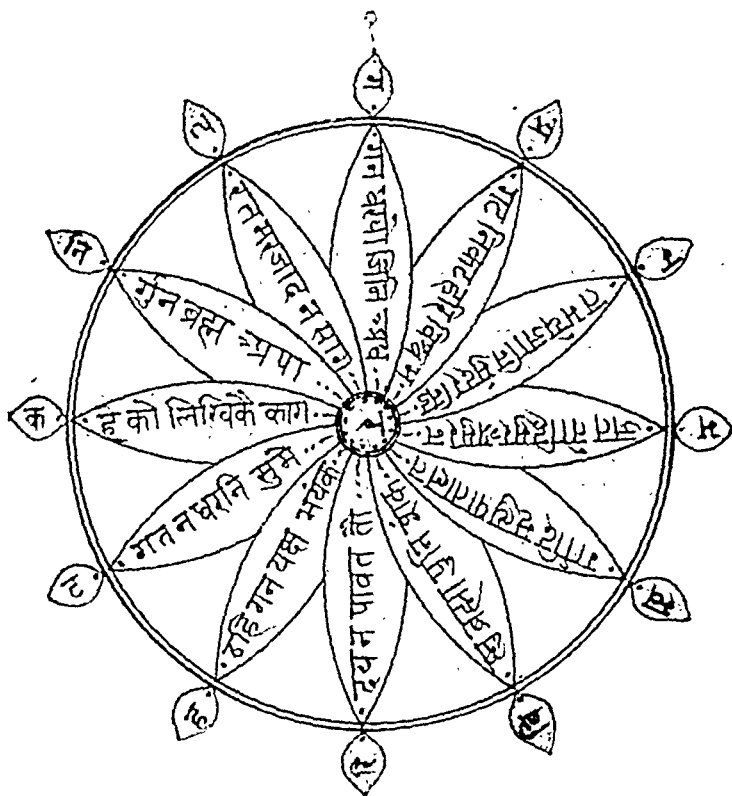
कमल वन्ध

छप्पय

गगन धस्यो जिनि अधर टरत मरजाद न सागर।
निर्गुन ब्रह्म अपार कहै को लिखि कै कागर॥
टगत न धरनि सुमेर हठहि गन यक्ष भयंकर।
रिदय न पावत तौर विष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर॥
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजत तोहि सुर असुर नर।
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निकट हरि विश्व भर॥

पढ़ने की विधि

"गगन" शब्द के 'गकार' पर १ का अङ्क है—वहाँ से प्रारम्भ करके बाई ओर की पँखुड़ियों के चरणों को पढ़ते जाँय। अन्त का चरण 'सुंदर' वाली पंक्ति में है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही में है, ग्रन्थ में नहीं है।

(२)

अंधे, सो दिन काहे भुलायौ रे।

जा दिन गर्भ हुतौ ऊंधै मुख, रक्त पीत लपटायौ रे॥ (टेक)

बालपनै कछु सुधि नहीं कीनी, मात पिता हुलरायौ रे।

खेलत पात गये दिन यौंही, माया मोह बंधायौ रे॥ १॥

जोवन मांहिं काम रस लुबधी, कामनि हाथ बिकायौ रे।

जैसें बाजीगर कौ बानरा, घर घर बार नचायौ रे॥ २॥

तीजापन मैं कुटंब भयौ तब, अति अभिमान बढ़ायौ रे।

मेरी सरभरि करै न कोई, हौं बाबा कौ जायौ रे॥ ३॥

बिरध भयौ सिर कंपन लागौ, मरनै कौ दिन आयौ रे।

सुन्दरदास कहै संमुझावै, कबहूं राम न गायौ रे॥ ४॥

(३)

कौनै भ्रम भूले अंधला।

अपना आप काटि कैं मूरष, आपुहि कारन रंधला॥ (टेक)

मात पिता दारा सुत सम्पति, बहु विधि भाई बंधला।

अन्तकाल कोइ काम न आवै, फोकट फाकट धंधला॥ १॥

गये बिलाइ देव अरु दाना, होते बहुतक मंधला।

तुम कहा गर्व गुमान करत हौ, नख शिख लौं दुरगंधला॥ २॥

या सुख मैं कछु नाहिं भलाई, काल विनासै कंधला।

सुन्दरदास कहै संमुझावै, राम भजहु निरसंधला॥ ३॥

---

२ रा पद—हुलरायौ=हालरा दिया, पलने में लडाया, हिलाया झुलाया। बार=द्वार पर, बाहर।

३ रा पद—रंधला=रंध गया, सीझ गया। 'ला' अक्षर प्रायः स्वार्थ प्रत्यय वा बहुत का बोधक है यह गुजराती भाषा का लटका दिखाता है। बंधला=बंधा। या

(४)

देषहु दुरमति या संसार की।

हरि सो हीरा छाडि हाथ तें बांधत मोट बिकार की॥ (टेक)

नाना बिधि के करम कमावत, षबरि नहीं सिर भार की।

झूठें सुष में भूलि रहे हैं, फूटी आंषि गंवार की॥ १॥

कोई षेती कोई बनजी लागे, कोई आस हथ्यार की।

अंध धंध में चहुं दिशि धाये, सुधि बिसरी करतार की॥ २॥

नरक जानि कें मारग चाले, सुनि सुनि बात लबार की।

अपने हाथ गले में बाही, पासी माया जार की॥ ३॥

बारम्बार पुकार कहत हौं, सौं है सिरजनहार की।

सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक में छार की॥ ४॥

(५)

या में कोऊ नहीं काहू को रे।

राम भजन करि लेहु बावरे, औसर काहे चूको रे॥ (टेक)

जिनसौं प्रीति करत है गाढी, सो मुख लावै लूको रे।

जारि बारि तन षेह करैंगे, देदे मूंड ठलूको रे॥ १॥

जोरि जोरि धन करत एकठौ, देत न काहू टूको रे।

एक दिना सब यौं ही जैहै, जैसैं सरवर सूको रे॥ २॥

अजहूं बेगि संमुझि किन देषौ, यह संसार बिभूको रे।

माया मोह छाडि करि बौरे, सरन गहौ हरिजू को रे॥ ३॥

मद्र भारे बन्धु। मंभरूा=मन्दिरवाले। स्वर्ग वाले। कंधला=केले के गोने की तरह या कंधा-गर्दन तोड़कर।

४ था पद—दुरमति=दुर्मति=खोटी बुद्धि। उल्टी समझ। लबार=झूठा उरवैनक या गुरु। बाही=मारी, डाली। जार=जाल। सौं=सोगन्द, दुहाई।

प्रान पिंड सिरजे जिनि साहिब, ताकौं काहे न कूकौ रे।
सुन्दरदास कहै संमुझावै, चेला है दादू कौ रे॥ ४॥

(६)

स्वामी पूरन ब्रह्म विराजहीं।
सदा प्रकाश रहै जिनके उर, भरम तिमिर सब भाजहीं॥ (टेक)
भाव भगति अरु प्रेम मगन अति, रोम रोम धुनि बाजहीं।
ज्ञान ध्यान सबही विधि पूरन, सकल भवन मैं गाजहीं॥ १॥
दीनदयाल परम सुखदाई, करत सबनि कौ काजहीं।
जिनकी महिमा जाइ न बरनी, फेरि संवारत साजहीं॥ २॥
अति अपार भवसागर तारत, दैकरि नाम जिहाजहीं।
अनायास प्रभु पारि करत हैं, बांह गहे की लाजहीं॥ ३॥
किये प्रगट जगदीस जगत मैं, नाना भांति निवाजहीं।
सुन्दरदास कहै गुरु दादू, हैं सबके सिरताजहीं॥ ४॥

(७)

बलिहारी हूं उन संत की।
जिनकै औंर झौंर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवंत की॥ (टेक)
शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जंत की।
देपि देपि वै मुदित होत हैं, लीला आप अनन्त की॥ १॥
जिन तें गोपि कहूं कछु नाहीं, जानत आदि रु अन्त की।
सुन्दरदास कहै जन तेई, रापत बात सिद्धन्त की॥ २॥

---

५ वां पद—या मैं=इस सृष्टि में। लूकौ=लूका, फीका। ठरुकौ=ठरका, कपाल क्रिया में नरिल से कपाल में ब्रह्मरंध्र पर ठकोरा लगा कर माथा खोलना जिससे भेजे का दाह शीघ्र हो जाय। विझूका=चमका। कूकौ=पुकारो रटो।
७ वां पद—औंर झौंर=अन्य झोड़, झगड़ा। वा उरझार, उलझन।

(८)

आये मेरे अलष पुरुष के प्यारे ।
परम हंस अतिसै करि सोभित निर्मल दशा निहारे ॥ (टेक)
देषत ही शीतलता उपजी, मिलत सकल अघ जारे ।
वचन सुनत भै भ्रम सब भागे, संसै सोक निवारे ॥ १ ॥
चरणामृत लेत ही परम सुख, उपज्यौ आज हमारे ।
शीत पाइकैं मुक्त भये हैं, काटे बन्धन सारे ॥ २ ॥
महिमा अनंत कहां लग बरनौं, कहित कहित कहि हारे ।
आप सरीषे किये तुरतही, सुन्दर पार उतारे ॥ ३ ॥

(९)

सन्तनि जब गृह पाव धरे ।
धन्य दिवस सोइ घरी महूरत, जा क्षण दृष्टि परे ॥ (टेक)
अति आनन्द भयौ मन मेरै, बिगसत अंक भरे ।
करि दण्डौत प्रदक्षिण दीनी, नखशिख अंग ठरे ॥ १ ॥
विनती बहुत करी तिन आगे, दीन वचन उच्चरे ।
होइ प्रसन्न मन्दिर महिं आये, पावन धाम करे ॥ २ ॥
चरण पषालि लियौ चरनौदिक, पूरब पाप गरे ।
सुन्दर तिनकौ दरसन पावत, कारिज सकल सरे ॥ ३ ॥

(१०)

करि मन उनि सन्तनि की सेवा ।
जिनकैं आंन भरोसा नाहीं, भजहिं निरंजन देवा ॥ (टेक)

---

८ वां पद—शीत=महा प्रसाद ।
९ वां पद—ठरे=ठड़े=दंडायमान हुए । पसरे ।

सील सन्तोष सदा उर जिनकै, राम नाम के लेवा।
जीवत मुक्त फिरै जग महिया, उरझे कौ सुरझेवा ॥ १ ॥
जिनके चरण कंवल कौ वंछत, गंगा जमुना रेवा।
सुन्दरदास उनहुं की संगति, मिलि हैं अलष अभेवा ॥ २ ॥

(११)

राम निरञ्जन की वलिहारी।
रूप रेष कछु दृष्टि परै नहिं कौन सकै निरधारी ॥ (टेक)
जाकौ कीयौ जगत नाना विधि यह माया विस्तारी।
कीमति कोऊ कहै कहा कहि नहिं हलुका नहिं भारी ॥ १ ॥
सब घट व्यापक अन्तरजामी चेतनि शक्ति तुम्हारी।
सुदर शक्ति काढि जब लीनी रूसि रहे नर नारी ॥ २ ॥

(१२)

अहो यहु ज्ञान सरस गुरुदेव कौ, जाकै सुनत परम सुख होई।
सहज मिलै परब्रह्म कौं कष्ट कलेश न कोई ॥ (टेक)
कछु संसय सोक रहै नहिं निकसि जाइ सब सालो।
ज्यौं अंमृत के पीवतें अमर होइ ततकालो ॥ १ ॥
सत संगति मिलि पेलिये जुग जुग फाग बसन्तो।
राम रसांइण पीजिये कबहुं न आवै अन्तो ॥ २ ॥
अनहद बाजा बाजही अन्तहकरण मंझारो।
कंवल प्रफुल्लित होत है लागै रङ्ग अपारो ॥ ३ ॥

---

१० वां पद—महियां=मांही, अन्दर। रेवा=रेवा नदी, नर्मदा नदी। अभेवा=अखंड, अद्वैत, भेद रहित।

११ वां पद—रूसि रहे…।-शक्तिहीन पुरुष को स्त्री पसन्द नहीं करती। और शक्ति रहित स्त्री को पुरुष नहीं चाहता। अर्थात् व्यर्थ निरर्थक निकम्मे हो गये।

भांन उदै ज्यों होतही अन्धकार मिटि जाये।
सुन्दर ज्ञान प्रकाशतें ब्रह्मानन्द समाये ॥ ४ ॥

(१३)

पहली हम होते छोकरा।
ब्रह्म विचार वनिज हम कीयौ ताही तैं भये डोकरा ॥ (टेक)
भली वस्तु संचय करि राषी लेनें आवै लोकरा।
यह उधारि कौं सोदा नाहीं दीजे लीजे रोकरा ॥ १ ॥
जो कोइ गाहक लेत प्यार सौं ताकौ भागै सोकरा।
सुन्दर वस्तु सत्य यह योंही और बात सब फोकरा ॥ २ ॥

(१४)

पहली हम होते छोहरा।
कौडी वेच पेट निठि भरते अवतौ हूये वोहरा ॥ (टेक)
दे इकोतरासई सवनि कौं ताही तें भये सोहरा।
ऊंचौ महल रच्यौ अविनाशी तज्यो परायो नोहरा ॥ १ ॥
हीरा लाल जवाहिर घर में मानिक मोती चौहरा।
कौंन वात की कमी हमारै भरि भरि राषे भौंहरा ॥ २ ॥
आगैं विपति सही वहुतेरी वै दिन काटे दोहरा।
सुन्दरदास आस सब पूगी मिलियौ राम मनोहरा ॥ ३ ॥

---

१३ वां पद—लोकरा=लोगवाग। लोक के पुरुष। सोकरा=शोक, दुःख। फोकरा=तुच्छ (फोक घास जैसी रद्दी)।

१४ वां पद—इकोतरासई=एक रुपया सैंकड़ा पीछे व्याज। सोहरा=सुखी। नोहरा=मुख्य मकान के सम्बन्धी दूसरा मकान जिसमें पशु, घास आदि रक्खे जाते हैं। चौहरा=मोती की चौ बहुत कीमती। अथवा गुथरी पुई हुई चौसर मोतियों

(१) राग मलार

अब हम गये राम (जी) कै सरनैं।
वा बिन और नहीं कोइ समर्थ, मेटै जामन मरनैं॥ (टेक)
भटकत फिरे बहुत दिन तांई, कहूं न पार उतरनैं।
आन देव की सेवा करि करि, लागे बहुत हिंजरनैं॥ १॥
काहू ऊपरि कियौ बहुत हठ, काहू ऊपर धरनैं।
दीजै दोष करम अपनै कौ, वै दिन यौं ही भरनैं॥ २॥
औतारनि की महिमा सुनि सुनि, चाले तीरथ फिरनैं।
हम जान्यौं येई परमेश्वर, पायौ उनहुं कौ निरनैं॥ ३॥
बहुत कृपा कीनी तब सतगुरु, आये कारजि करनैं।
दियौ बताइ पुरुष वह एकै, सुन्दर का कहि बरनैं॥ ४॥

(२)

देषौ भाई आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत॥ (टेक)
राम नाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहि भई शीतलता, गये विकार जुदागत॥ १॥
जा कारनि हम फिरत बिवोगी, निशि दिन उठि उठि जागत।
सुन्दरदास दयाल भये प्रभु, सोई दियौ जोई मांगत॥ २॥

(३)

पिय मेरै वार कहा धौं लाई।
ऋतु बसन्त मोहि वा विधि वीती, अब बरिषा ऋतु आई॥ (टेक)

और जवाहरात की। चौलड़ी मोती की। चौगुनी। भौंहरा=तहखाना। गोदाम। दोहरा=दोरैं रहकर, दुःखी होकर।

[राग मलार] १ ला पद—जामन मरनैं=जन्म मरण, जन्मांतर। हिंजरनैं=शोक करने, पछताने।

बादल उमगि चले चहुं दिशि तें, गरज सुनी नहिं जाई।
दामिनि दमक करेजा कम्पै, बून्द लगत दुखदाई॥ १॥
कारी रैंनि अन्धारी देषत, बारी बैंस डराई।
जारी विरह पुकारी कोकिल, भारी आगि लगाई॥ २॥
दादुर मोर पपीहा पापी, लहत न पीर पराई।
ये सु जरे परि लौंन लगावत, क्यों जीऊं मेरी माई॥ ३॥
ऐसी विपति जानि प्रभु मेरी, जो कहुं देहि दिषाई।
सुन्दरदास विरहनी व्याकुल, मृतकहिं लेहु जिवाई॥ ४॥

(४)

हम पर पावस नृप चढि आयौ।
बादल हस्ती हवाई दामिनि, गरजि निसान बजायौ॥ (टेक)
पवन तुरङ्गम चलत चहुं दिश, बून्द बान झर लायौ।
दादुर मोर पपीहा पाइक, मारै मार सुनायौ॥ १॥
दशहू दिशा आइ गढ घेर्‌यौ, विरहा अनल लगायौ।
जइये कहां भागि कैं सजनी, रजनी दुन्द उठायौ॥ २॥
को अब करै सहाइ हमारी, पिय परदेश हि छायौ।
सुन्दरदास विरहनी व्याकुल, करिये कौंन उपायौ॥ ३॥

(५)

करम हिंडोलना झूलत सब संसार।
है हिंडोल अनादि कौ यह फिरत बारम्बार॥ (टेक)
दोइ षम्भ सुख दुख अडिग रोपे, भूमि माया मांहिं।
मिथ्यान ममता कुमति कुदया, चारि डांडी आहिं॥

३ रा पद—बारी बैंस=बाल अवस्था।

४ था पद—हवाई=गुब्बारा। पाइक=पैदल सिपाही।

पाप पटली पुन्य मरवा, अधो ऊरध जांहिं।
सत्व रज तम देहिं झोटा सूत्र पैंचि झुलाहिं ॥ १ ॥
तहां शब्द सपरश रूप रस वन, गन्ध तरु विस्तार।
तहां अति मनोरथ कुसम फूले, लोभ अलि गुंजार ॥
चक्रवाक मोर चकोर चातक पिक ऋषीक उचार।
तरल तृष्णा वहत सरिता, महा तीक्षण धार ॥ २ ॥
यह प्रकृति पुरुष मचाइ राख्यौ, सदा करम हिंडोल।
सजि विविधि रूप विकार भूपन, पहरि अंगनि चोल ॥
एक नृत्यत एक गावत, मिलि परस्पर लोल।
रति ताल मदन मृदंग बाजत, दुन्दु दुन्दुभि ढोल ॥ ३ ॥
यहि भांति सबही जगत झूलै, छ रुति बारह मास।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन मैं, करत विविधि विलास ॥
यौं झूलतैं चिरकाल बीत्यौ, होत जनम विनास।
तिनि हारि कबहूं नांहि मानी, कहत सुन्दरदास ॥ ४ ॥

(६)

देषौ भाई ब्रह्माकाश समानं।
परब्रह्म चैतन्य व्योम जड यह विशेषता जानं ॥ (टेक)
दोऊ व्यापक अकल अपरमिति दोऊ सदा अखंड।
दोऊ लिपैं छिपैं कहुं नांहीं पूरन सब ब्रह्मण्ड ॥ १ ॥

---

५ वां पद—इस पदमें कर्म बन्धन को हिंडोले से रूपक बांधा है। इस प्रकार का वर्णन अन्य महात्माओं ने भी किया है। सूत्र=रस्सी। तीन गुण (तंतु वा तार) से बनी है। अलि=भौंरा। चक्रवाक=चकवा पक्षी। ऋषीक=ऋषि पुत्र। वा ऋष्यक=हिरन। (यह शब्द किस प्रयोजन से दिया गया है सो स्पष्ट नहीं होता है। स्यात् लेख दोष हो)। लोल=लटके से खेल करते हुए वा चंचल। वा लालची। दुंदु=द्वंद्व, द्वैत भाव। सुखदुःखादि।

ब्रह्म मांहि यह जगत देपियत व्यौम मांहिं घन यौंहीं।
जगत अभ्र उपजैं अरु विनसैं वैहैं ज्यौं के त्यौं हीं॥ २॥
दोऊ अक्षय अरु अविनाशी दृष्टि मुष्टि नहिं आवैं।
दोऊ नित्य निरंतर कहिये यह उपमान बतावैं॥ ३॥
यह तौ येक दिपाई है रुप, भ्रम मति भूलहु कोई।
सुन्दर कंचन तुलै लोह संग, तौ कहा सरभरि होई॥ ४॥

(१) राग काफी

इन फाग सबनि कौ घर पौयौ, हो।
अहो हौं, कहत पुकारि पुकारि॥ (टेक)
सुनि सुनि लीला कृष्ण की हो, दूनौं उपज्यौ काम।
बूडे काली धार मैं हो, कतहूं नहिं बिश्राम॥ १॥
पंडित पैंडौ मारियौ हो, कहि कहि ग्रन्थ पुरान।
सूतौ सर्प जगाइयौ हो, फिरि फिरि लागौ पान॥ २॥
पहलैं आगि बरैं हुती हो, पूला नाप्यौ आइ।
रोगी कौं रोगी मिलै तौ, व्याधि कहां तैं जाइ॥ ३॥
माया ऐसी मोहनी हो, मोहे हैं सब कोइ।
ब्रह्मा विष्णु महेस की हो, घर घरनी भइ सोइ॥ ४॥
चन्दवदन मृगलोचनी हो, कहत सकल संसार।
कामिनि विष की बेलडी हो, नख शिख भरी विकार॥ ५॥
देषत ही सब परत हैं हो, नरक कुंड के मांहिं।
या नारी के नेह सौं हो, वेगि रसातलि जांहि॥ ६॥

---

६ ठा पद—इसमें आकाश से ब्रह्म की तुलना की है। आकाश से ब्रह्म की सूक्ष्मता, व्यापकता आदि बताये हैं। "खं ब्रह्म" इस श्रुति वाक्य से (ख) आकाश का ब्रह्म से सादृश्य है।

नारी घट दीपग भयौ हो, ता मैं रूप प्रकाश।
आइ परै निकसै नहीं, करत सबनि कौ नाश ॥ ७ ॥
जरि जरि मुये पतंग ज्यौं हो, गये जन्म कौं रोइ।
सुन्दरदास कहा कहै हो, संत कहै सब कोइ ॥ ८ ॥

(२)

मेरे मीत सलौने साजना हो।
अहो तुम, काहे न दरसन देहु ॥ (टेक)
आयौ फाग सुहावनौ हो, सब कोई करत सिंगार।
मेरी छतिया दौं जरै हो, कबहु न बुझत अंगार ॥ १ ॥
अपनै अपनै घर घर कांमनि, पेलत पिय की जोर।
देषि देषि सुख और सषिन कौ, कटत करेजा मोर ॥ २ ॥
चोवा चन्दन केसरि कुम कुम, उडत गुलाल अबीर।
हौं तुम बिन मेरे प्रान पियारे, कैसैं कँ राषौं धीर ॥ ३ ॥
बाजत चङ्ग उपंग पषावज, राइ गिरगिरी ढोल।
सुनि सुनि बिरहनि के मन महिया, सालत तब के बोल ॥ ४ ॥
बार बार मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल एक।
कहि जु गये ते बेगि मिलन की, बीते दिवस अनेक ॥ ५ ॥
तुम जिनि जानौं है बिभचारनि, हौं पतिवरता नारि।
और पुरुष भईया सब मेरे, यह तुम लेहु बिचारि ॥ ६ ॥
सुरति कोकिला रसना चातक, पिव पिव करत बिहाइ।
नैंन चकोर भये मेरे प्यारे, निश दिन निरषत जाइ ॥ ७ ॥
अब मोहि दोष कछु नहिं लागै, सुनियौ दोऊ कान।
सुन्दर बिरहनि कहत पुकारै, तुरत तजौंगी प्रान ॥ ८ ॥

[राग काफी] १ ला पद—घर घरनी=पत्नी, स्त्री। २ रा पद—दौं=अग्नि।

(३)

मोहि फाग पिया विन दुख भयौ हो ।
अहो हौं कैसी करौं कत जांउं ॥ (टेक)
जब हौं देषों उडत गुलाल हिं, केसरि की झकझोरि ।
तबहि सु मेरै आगि लगत है, हियरे मैं उठत मरोरि ॥ १ ॥
जब हौं सुन्यौ झिझ डफ बाजत, बीना ताल मृदंग ।
तबहि सु बिरह बान मोहि मारै, वेधत नख शिख अंग ॥ २ ॥
कै हौं जाइ परौं गिरवर तें, कैब कूप धस दैंव ।
कै हौं तलफि तलफि तन त्यागौं, कै सिर करवत लैंव ॥ ३ ॥
है कोउ पथिक* संदेस हमारौ, प्रीतम सौं कहै जाइ ।
सुन्दर बिरहनि प्रान तजत है, वेगि मिलहु किन आइ ॥ ४ ॥

(४)

रमइया मेरा साहिबा हो ।
अहो मैं सेवग पिजमतिगार ॥ (टेक)
पाव पलौटौं पंपा ढोलौं, निस दिन रहौं हजूरि ।
जो फुरमावौ सो करि आऊं, कबहुं न भाजौं मैं दूरि ॥ १ ॥
जो पहिरावौ सोई पहिरौं, जो तुम देहु सु पाउं ।
द्वार तुम्हारौ कबहुं न छाडौं, अनत कहूं नहि जाउं ॥ २ ॥
तुम्हरे घरके पाले पोसे, तुमही लिये मुलाइ+ ।
ज्यौं जानै त्यौं रापि गुसांई, उजर कियौ नहि जाइ ॥ ३ ॥

जोर=जोड़, जोड़ी बनकर । राइ गिरगिरी=एक प्रकार की सारंगी या बड़ा चिकारा । घोल=बाजा, दोष=आत्मघात का पाप ।

३ रा पद—झिझ=झांझ । दैंव=देवैं । लैंव=लेवौं । * मूललि० पु० में 'रथक' पाठ है जो लेख दोष ही जानें ।

जौ रीझहु तौ इतनौ दीज्यौ, लैउं तुम्हारौ नाम।
और कछू अब मांगत नाहीं, सुन्दरदास गुलाम ॥ ४ ॥

(५)

पिय पेलहु फाग सुहावनौ हो।
अहो यह आयौ है फागुन मास ॥ (टेक)
ज्ञान गुलाल करौं नाना विधि, तन मन केसरि घोरि।
चित चन्दन लै छिरकौं ललना, जौं न चलौ मुख मोरि ॥ १ ॥
अनहद शब्द झांझि डफ बाजैं, ताल मृदंग उपंग।
सुमिति पिचक लै धाऊं ललना, भरहिं परस्पर अंग ॥ २ ॥
उततैं तुम इततैं हम होइ करि, मांझ करहिं झकझोर।
देषैं अबहिं कवनधौं जीतै, बहुत करत तुम सोर ॥ ३ ॥
हम हैं पंच पचीस सहेली, तुम जु अकेले राइ।
चहूं दिशातैं पकरि राषिहैं, कैसैं कै जाहु छुड़ाइ ॥ ४ ॥
जोरावर तुम अधिक सुने हो, बहुतनि पै गये भागि।
तौ जानौं जौ अबहि छूटि हौ, लपटि रहौं गर लागि ॥ ५ ॥
अबहि सु मेरौ दाव बन्यौ है, गारी देत हौं तोहि।
और और त्रिय कै संग राते, विसरि गये कहा मोहि ॥ ६ ॥

---

४ था पद—खिजमतिगार=(फा०) खिदमतगार=नोकर, सेवक। +'भुलाइ'= भुलाइ, वैला पुचकार कर बच्चों की तरह रक्खे। यह लेख दोष से भ का म लिखा गया ऐसा प्रतीत होता है, क्यों कि 'मुलाइ' का कुछ अर्थ नहीं होता है (?)। परंतु व्यापारियों की बोली में 'मुलाई करना' सोदा करना, मोल लेना देना करना कहा जाता है। इस पर से 'लिये मुलाइ' का अर्थ 'मोल लिये' ऐसा हो सकता है। यह अर्थ बा० रघुनाथप्रसादजी सिंहाणिया से हमें ज्ञात हुआ तदर्थ धन्यवाद। यही अर्थ उत्तम और संगत है। इस अर्थ को लेने से 'मुलाइ' पाठ

माइ न बाप कुटंब नहिं तुम्हरे, निगुसायें हो नाहु।
समय जानिके हंसि बोलत हौं, जिनि कछु जियहि रिसाहु॥ ७॥
फगुवा हमसु कछू नहिं लैहैं, तुमहि न दैहैं जांन।
सुन्दर नारि छाडिहैं कैसैं, हो हो कंत सुजान॥ ८॥

(६)

हरि आप अपरछन ह्वै रहे हो।
नाहि लिपैं छिपै कछु नाहिं॥ (टेक)
ॐकार की आदि दै हौं और सकल ब्रह्मण्ड।
पेलत माया मोहनी हो सप्त दीप नौ षंड॥ १॥
ब्रह्मा सावत्री मिले हो विष्णु लक्ष्मी संग।
शंकर गौरि प्रसिद्ध है हो ये माया के रंग॥ २॥
नाना विधि ह्वै विस्तरी हो पेलन लागी फाग।
ब्रह्म न काहू मिलन दे हो रोकि रही सब माग॥ ३॥
माया जड़सु कहा करै हो प्रेरक औरै कोइ।
ज्यौं बाजीगर पूतली हो हाथ नचावै सोइ॥ ४॥
लोक चेष्टा करत हैं हो सूरज कै जु प्रकास।
नाहि कछू व्यापै नहीं हो हरप सोक दुख त्रास॥ ५॥

ठीक है और 'मुलाइ' बनाना आवश्यक नहीं रहता है। इस अर्थ की सहायता से 'शब्दसागर कोष' में 'मोलाई' शब्द मिल गया जिसका अर्थ मोल पूछना वा बात करना है। (सं०)

५ वां पद—पिचक=पिचकारी। निगुसायें=बिन धणी गुसांई वाला। नाहु=नाह, नाथ। सुंदर नारि=सुंदरदास नाम की नारी। अथवा रूपवती नारी, स्त्री। जो तुम्हें नहीं छोड़ैगी। अथवा ऐसी सुंदरी नारी को फिर तुम क्यों छोड़ोगे अर्थात् सदा ही अपनी कर रक्खोगे।

अहंकार कौं धरत है हो तबलग जीव प्रमांन।
अंधकार तब भागि है हो जब सु उदै होइ भांन ॥ ६ ॥
जीव शीव अंतर इहै हो देषहु प्रगट हि नैंन।
जैसैं जलतैं ऊपजै हो तरंग बुद्‌बुदा फैंन ॥ ७ ॥
परमारथ करि देषिये तौ है सब ब्रह्म विलास।
कहन सुनन कौं दूसरौ हो गावत सुन्दरदास ॥ ८ ॥

(७)

बहुतक दिवस भये मेरे समरथ सांईया।
कोऊ कागर हू न पठाइ संदेस सुनांईया ॥ (टेक)
पंथ निहारत जाइ उपाइ किये घने।
मोहि असन वसन न सुहाइ तजे सुख आपने ॥ १ ॥
कल न परत पल एक नहीं जक जीयरा।
यह सूकि गई सब देह भया मुख पीयरा ॥ २ ॥
भूप न प्यास उदास फिरौं निस वासरा।
इन नैंन न आवत नींद नहीं कछु आसरा ॥ ३ ॥
दूभर रैनि विहाइ रहौं क्यौं एकली।
मैं छाडे सकल सिंगार लई गलि मेषली ॥ ४ ॥
चन्दन पौरि तजीर भस्म लगाई है।
कछु तेल फुलेल न सीस जटा सु वढ़ाई है ॥ ५ ॥
जोगनि होइ रही जग मोहन कारनै।
तुम काहे न दरसन देहु करौं तन वारनै ॥ ६ ॥

---

६ ठा पद—ऊँकार की आदि दै... ।—"ओंकार थे ऊपजै . । पहली कीया आपथैं उतपति ओंकार। ओंकार थैं ऊपजै पंचतत्त आकार।...। (दादू वाणी । अंग २२)।

मेरी पून पता अब कौंन कहौं किन रावरे।
तेरी सूरति की बलि जाउं मेरे गृह आवरे॥ ७॥
सुन्दर विरहनि के पीव गहर न लाइये।
मोहि मिहरि मया करि वेगि दरस दिपाइये॥ ८॥

(८)

तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही तूंही सांईं।
क्यौं ही क्यौं ही क्यौं ही क्यौं ही दरस दिपाई॥ (टेक)
पीव पीव पीव पीव रसना पुकारै।
रटत रटत तोहि कबहूं न हारै॥ १॥
निस दिन नख शिख रोम रोम टेरैं।
पल पल छिन छिन नैंन मग हेरैं॥ २॥
सोचि सोचि ससकत सास उसासा।
धपि धपि उठत रगत अरु मांसा॥ ३॥
बार बार सुन्दर विरहनी सुनावै।
हाइ हाइ हाइ तुम्ह मिहर न आवै॥ ४॥

(९)

पीव हमारा, मोहि पियारा,
कब देषौंगी मेरा प्रान अधारा॥ (टेक)

---

७ वां पद—कागर=कागज़ (फा०)। गलि=गले में। मेपली=साधुओं के पहनने का छोटा चोकोरा वस्त्र जिसको बीच में से कटा या खुला रखकर गले में डाल लेते हैं जिससे अंग ढक जाय। तजीर=तज दी, और। अथवा तजीर=तजतेही तुरंत। (भस्म लगाली)। गहर=गाढ़ी, कढ़ापन।

८ वां पद—धपि धपि=जल कर, या धड़क २ कर।

ये सपी इहै अंदेसा, पायौ न संदेसा।
काहे तैं बिरमि रहे परदेसा॥ १॥
ये सपि फिरौं उदासा, भूप न प्यासा।
कब पुरवैंगे मेरे मन की आसा॥ २॥
ये सपि विरह सतावै, नींद न आवै।
कठिन कठिन करि रैंनि विहावै॥ ३॥
ये सपि अजहुं न आया, किन बिरमाया।
सुन्दर विरहनि अति दुख पाया॥ ४॥

(१०)

आज तौ सुन्यौ है माई संदेसौ पिया को।
प्रफुलित भयौ मेरौ कंवल हिया को॥ (टेक)
करौंगी सिंगार घसि चन्दन लगाऊं।
सेजरी संवारूं तहां फूलरे बिछाऊं॥ १॥
मेरौ गृह आइ मोहि देहिंगे सुहागा।
पेलौंगी परसपर वडे मेरे भागा॥ २॥
परम पुरुप मेरा पीव अविनासी।
देपौंगी नैंन भरि सव सुख रासी॥ ३॥
जन्म सुफल करि लैउंगी मैं लाहा।
सुन्दर विरहनि कै भयौ है उछाहा॥ ४॥

(११)

पूव तेरा नूर यारा पूव तेरे वाइकैं।
काहे न निहाल करौ दरस दिपाइकैं॥ (टेक)

९ वां पद—विहावैं=निकलैं, कटैं।

१० वां पद—फूलरे=फूल (प्यार का शब्द फूलरे है।)। लाहा=लाभ।

तेरे काज चली हौं तौ पलक हंसाइ कैं।
ढूंढत फिरत पिय कहां रहे छाइकैं ॥ १ ॥
इश्क लिया है मेरा तन मन ताइकैं।
कल न परत मुझ विन देषैं राइकैं ॥ २ ॥
मिहरि करहु अब लेहु अंग लाइकैं।
निस दिन रहौं सांई नैंननि समाइकैं ॥ ३ ॥
जानत तुम हि सब कहूं क्या बनाइकैं।
हिलि मिलि सुख दीजै सुंदर कौं आइकैं ॥ ४ ॥

(१२)

महबूब सलौंनै मैं तुझ काज दिवाना।
आसिक कौं दीदार दे मेरा देपि दरद सुबिहाना ॥ (टेक)
इसक आगि अति परजली अब जारत तन मन प्राना।
निस दिन नींद न आवई इन नैंन तुम्हारौ ध्याना ॥ १ ॥
यह दुनिया सब फीकी लगी अरु फीका जुमल जिहाना।
सुन्दर तेरे नूर कौं कब देषैगा रहिमाना ॥ २ ॥

(१३)

सहज सुंन्नि का पेला अभि अन्तरि मेला।
अविगति नाथ निरंजना तहां आपै आप अकेला ॥ (टेक)
यह मन तहां बिलमाइये गहि ज्ञान गुरू का चेला।
काल करम लागै नहीं तहां रहिये सदा सुहेला ॥ १ ॥

---

११ वां पद—यारा=हे यार ! हे प्यारे !।

१२ वां पद—सुबिहाना=हे सुबहान ! (अ०) हे ईश्वर !। जुमल=(अ०) जुमल, सारा। रहिमाना=हे रहमान (अ०) रहमतका करनेवाला, दीनदयाल परमात्मा।

परम जोति जहां जगमगै अरु शब्द अनाहद भेला।
संत सकल पहुंचे तहां जन सुन्दर वाही गैला ॥ २ ॥

(१४)

अलप निरंजन थीरा कोई जानै वीरा।
कृत्तम का सब नाश है अजर अमर हरि हीरा ॥ (टेक)
सुंन्नि सरोवर भरि रह्या तहां आपै निरमल नीरा।
वार पार दीसै नहीं कहुं नाहीं तट न तीरा ॥ १ ॥
कछु रूप वरण जाकै नहीं वह स्वेत स्याम नहिं पीरा।
ता साहिव कै वारनै यह सुन्दरदास फकीरा ॥२॥१९४॥

(१) राग ऐराक

लालन मेरा लाडिला तूं मुझ बहुत पियारा।
रापौं रे नैंननि वाहिकैं पलक न पोलौं किवारा ॥ (टेक)
सूरति रे तेरी पूब है नूर न वरन्या जाई।
ताकै सब कोई सामुहा दिठि जिनि लागै माई ॥ १ ॥
वानी रे तेरी मोहिनी मोह्या सकल जिहाना।
पीर पैकंवर औलिया ये सब भये हैं दिवाना ॥ २ ॥
मैं भी रे तेरी आसिकी तूं महवूव रे सांई।
वलि वलि तेरे नूर की तुझ परि घोलि गुसांई ॥ ३ ॥

---

१३ वां पद—अभिअंतर=अभ्यंतर=बहुत ही अंदर, अंतरात्मा में। मेला=समागम, ब्रह्म की प्राप्ति। सुहेला=आनंद में। सुखी।

१४ वां पद—थीरा=स्थिर वा अचल हृदय हो जाने पर वहां विराजमान हुआ। कृत्तम=कृत्रिम, बनावटी माया।

कीरति रे तेरी मैं सुनी तीन्यौ लोक मंझारा।
आया रे बन्दा बन्दगी सुन्दरदास विचारा॥ ४॥

(२)

ढोलन रे मेरा भावता मिलि मुझ आइ संवेरा।
जिय तरसै दीदार कौं कब मुख देषौं तेरा॥ (टेक)
जोबन रे मेरा जात है ज्यौं अंजुरी का पांनी।
हौं तलफौं तुझ कारनै तैं मेरी एक न जांनी॥ १॥
अन्दरि रे सांई मेरडै पैठा इसक दिवाना।
झाहि लगी इस पिंजरै जारत नख शिख प्राना॥ २॥
निस दिन रे पन्थ निहारतें नैंना भये हैं उदासा।
कल न परत पल एक हू मुझ दरसन की प्यासा॥ ३॥
अवहिं न रे ऐसी बूझिये बात विचारहु येहा।
सुन्दर विरहनि यौं कहै वोर निवाहौ नेहा॥ ४॥

(३)

प्रीतम रे मेरा एक तूं और न दूजा कोई।
गुप्त भया किस कारनै काहे न परगट होई॥ (टेक)
हृदै रे मेरै तूं बसै रसना नाम तुम्हारा।
श्रवनहुं तेरे गुन सुनौं नैंनहु पीव पियारा॥ १॥
नख शिख रे तूंही रमि रह्या रोम रोम घट सारै।
मन मनसा मैं तूं बसै छिन छिन सुरति संभारै॥ २॥

[राग फिराक] १ ला पद—दिठि=नजर, बुरी दृष्टि। घोलि=घुल कर वारी जाऊं।
२ रा पद—मेरडै=(पं०) मेरे। झाहि=दाह, अग्नि। पिंजरै=शरीर में।
अवहिं न...=अबतक भी मेरी सुध नहीं ली। यह बात विचारने योग्य है, बड़ा अफसोस है।

व्यापक रे तीनौं लोक मैं जल थल अग्नि मंझारी।
पवन अकाश जहां तहां सब मैं सिफति तुम्हारी ॥ ३ ॥
हम तुम रे अंतरि क्यौं भया यह मोहि अचिरज आवै।
बार बार करि बीनती सुन्दरदास सुनावै ॥ ४ ॥

(४)

रासा रे सिरजनहार का सौ मैं निस दिन गाऊं।
करजोरें विनती करौं क्यौं ही जौ दरसन पाऊं ॥ (टेक)
उतपति रे सांई तैं किया प्रथम हि वो ओंकारा।
तिसतें तीन्यौं गुन भये पीछै पंच पसारा ॥ १ ॥
तिनका रे यह औजूद है सो तैं महल बनाया।
नव दरवाजे साजि कैं दसवैं कपाट लगाया ॥ २ ॥
आपन रे बैठा गोपि ह्वै व्यापक सब घट मांहीं।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नांहीं ॥ ३ ॥
ऐसी रे तेरी साहिबी सो तूं ही भल जांनै।
सिफति तुम्हारी सांइया सुन्दरदास बषानै ॥ ४ ॥१९८॥

(१) राग संकराभरन

मन कौंन सौं जाइ अटक्यौ रे।
ऐसैं बंध्यौ छोर्‌यौ न छूटै कैउक बरियां झटक्यौ रे ॥ (टेक)
जाही दिश तूं भ्रमतौ ही आयौ ताही दिश कौं लटक्यौ रे ॥ १ ॥

---

३ रा पद—रसना=जिव्हा पर। सिफति=(अ०) सिफ़त=गुण। अंतरि= अंतर, फर्क, भेद।

४ था पद—रासा=यशगान। लड़ाई की ख्याति। दशवें=भृकुटी के मध्य तीसरा नेत्र। अथवा ब्रह्मरंध्र।

भूलि रह्यौ विषया सुख मांहीं याही तें निश दिन भटक्यौ रे ॥ २ ॥
गुरु साधन कौ कह्यौ न मानै बहु विधि करि उनि हटक्यौ रे ॥ ३ ॥
सुन्दर मंत्र न लागत कोई माया सांपनि गटक्यौ रे ॥ ४ ॥

(२)

मन कौंन सौं लगि भूल्यौ रे ।
इन्द्रिनि के सुख देषत नीके जैसें सैंवरि फूल्यौ रे ॥ (टेक)
दीपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥ १ ॥
झूठी माया है कछु नांहीं मृग तृष्णा मैं भूल्यौ रे ॥ २ ॥
जित जित फिरै भटकतौ यौंही जैसैं वायु बघूल्यौ रे ॥ ३ ॥
सुन्दर कहत संमुझि नंहि कोई भवसागर मैं डूल्यौ रे ॥ ४ ॥२००॥

(१) राग धनाश्री

आवौ मिलहु रे संत जना हो हो होरी ।
सब मिलि षेलहु फाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥
राम नाम गुन गाइये रङ्ग हो हो होरी ।
देषहु मोटे भाग रंगनि रंग हो हो होरी ॥ (टेक)
काया कलश भराइये रङ्ग हो हो होरी ।
प्रेम प्रीति घसि घोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी ॥
सहज सील सत अरगजा रङ्ग हो हो होरी ।
भाव भगति झकझोरि रंगनि रङ्ग हो हो होरी ॥ १ ॥

[राग संकराभरन] १ ला पद—साधन=साधुओं । मंत्र=गारुडी मंत्र । गटक्यौ=खाया । काटा ।

२ रा पद—सैंवरि=सेंमल का फूल निर्गंध होता है वैसे ही विषय भोग तुच्छ है ।

ज्ञान गुलाल उडाइये रङ्ग हो हो होरी।
सुमति पिचक कर लेहु रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
भरहु परसपर आतमा रंग हो हो होरी।
हरि जस गारी देहु रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ २॥
शब्द अनाहद बाजहीं रङ्ग हो हो होरी।
बीना ताल मृदंग रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
रोम रोम सुख ऊपजै रङ्ग हो हो होरी।
पेल मच्यौ सत संग रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ ३॥
अमी महा रस पीजिये रङ्ग हो हो होरी।
पूरणब्रह्म विलास रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥
मतिवाले सब साधवा रङ्ग हो हो होरी।
माते सुन्दरदास रंगनि रङ्ग हो हो होरी॥ ४॥

(२)

मींयां हर्दम हर्दम रे अपने सांईं को संभाल।
मुसलमान ईमान रापिलै करद हाथ तैं डाल॥ (टेक)
सुनि यह सीष पुकार कहत हौं मिहरवानगी पाल।
सब अरवाहैं सिरजी साहिब किसकी काटत पाल॥ १॥
पांच सात मिलि पकै सहनक ह्वै बैठै बेहाल।
मुरदा पाइ भये तुम मोमिन कीया कहत हलाल॥ २॥
ये जु तुम्हारे काजी मुलना झूठे मारत गाल।
अपनै स्वारथ तुमहिं बतावैं उनकौ दोजग हाल॥ ३॥

[राग धनाश्री] १ ला पद—रंगनि=बहुत से रसरंग प्रेम भक्ति ज्ञान के हैं उनमें रंग कर, मस्त होकर। भरहु परसपर आतमा=आत्मारूपी रंग भरा जल पिचकारी में भरो। मतिवाले=मतवाले, मस्त। अथवा सुमति धारण करनेवाले, बुद्धिमान, ज्ञानी।

इला इलाहि इल्ला की सब घट में बरत मसाल।
कलमा का तुम भेद न पाया फूटा करम कपाल॥ ४॥
यह तो महमद नां फुरमाया जो तुम पकरी चाल।
कीया पून तुम्हारी गरदनि ह्वै हैं बुरा हवाल॥ ५॥
मादर पिदर पिसर बिरादर झूठ मुलक सब माल।
इनमें काहे जरत दिवाने देपि अग्नि की झाल॥ ६॥
अजहूं समझ तरस करि जिय में छाडि सकल जंजाल।
करि दिल पाक पाक में मिलि है नियरै आवत काल॥ ७॥
सांई सेती साटि मिलावै सोई पूछ दलाल।
सुन्दरदास अरस के ऊपरि रहै धनी कै नाळ॥ ८॥

(३)

हौं तौ तेरी हिकमति की कुरबान मौले सांई वे।
सकल जिहान किया पुनि न्यारा वह गति किनहूं न पाई वे (टेक)
शेप मसाइक पीर अवलिया बहु बंदगी कराई वे।
कुदरति कौंन कहै तूं ऐसा हेरत गये हिराई वे॥ १॥

---

२ रा पद—हर्दम=(फा०) हर=प्रत्येक, दम=स्वास। स्वास स्वास में भगवान को याद कर। करद=छुरी। अरवाहे= (अ०) रूह (आत्मा) का बहुवचन। सब जीव। पकै सहनक=हंडिया में मांस पकाया। मोमिन=(अ०) ईमानदार। हलाल=कलमा को पढ़कर मुसलमान बकरे या पशु को काटते हैं उसे हलाल करना कहते हैं। दोजग=दोजख=नरक (फा०)। इलाइला...। मुसलमानों का कलमा नामक मंत्र—"लाइलाहे लिल्लिा मोहम्मद रसूलिल्लाहे'। (नहीं है कोई पूजने योग्य सिवाय परमेश्वर के और मोहम्मद उसका पैगम्बर है, उसके हुक्मों को संसार में पहुंचाने वाला हरकारा है)। किया पून=जो पून किया सो (तुम्हारी गर्दन पर है, अर्थात् इसका दंड भगवान तुम्हें देगा)। तरस=दया। साटि=मेल। अरस=आकाश, स्वर्ग। नाल=(पं०) पास।

सुर नर मुनि जन सिध अरु साधक शिव विरंचि उन तांई वे ।
उनमनि ध्यान रहत निस वासर वै भी कहत डरांई वे ॥ २ ॥
अति हैरान भये सब कोई तेरी पनह रहांई वे।
मुझ गरीव की क्या गमि येती सुंदर वलि.वलि जाई वे ॥ ३ ॥

(४)

सांई तेरे बंदौं की बलिहारी ।
सुहवति रहैं परम सुख उपजै वातैं कहत तुम्हारी ॥ (टेक)
चलतैं फिरतैं जागत सोवत दरदवंद अति भारी ।
दुनियां सौं फारिक ह्वै वैठे राह गही कछु न्यारी ॥ १ ॥
निर्मल ज्ञान ध्यान पुनि निर्मल निर्मल दृष्टि उघारी ।
निर्मल नांव जपत निसवासर निर्मल गति मति सारी ॥ २ ॥
अपना आप करत नहिं परगट ऐसैं बडे विचारी ।
सुन्दरदास रहैं क्यों छाने जिनकै घट उजियारी ॥ ३ ॥

(५)

अहो हरि देहु दरस अरस परस तरसत मोहि जाई ।
प्रान त्याग हौंन लाग मिलिहौ कब आई ॥ (टेक)
फिरत हौं उदास वास आस एक तेरी ।
निस वासर कल न परत देहु दादि मेरी ॥ १ ॥
अति विवोग लिये जोग भोग कांहि भावै ।
तुही तुही मन मांहि जपत और न कहि आवै ॥ २ ॥
तात मात वंधू सुत तजी लोक लाजा ।
तुम विना सुख और सकल मेरे किहिं काजा ॥ ३ ॥

---

३ रा पद—कुरवान=न्योछावर, वलिहारी । मौला=स्वामी । कुदरति=क्या कुदरत, क्या मजाल है किसी की । पनह=पनाह (फा०), शरण ।

४ था पद—सुहवति=(अ०) सतसंग । दरदवंद=दर्दमंद, विरह कातर ।

प्रभु दयाल कहियत हो सकल अँतरजामी।
काहे न सँभाल करहु सुन्दर के स्वामी ॥ ४ ॥

(६)

सजन सनेहिया छाइ रहे परदेश।
वालापन जोवन गयो पंडुर हूवा केस ॥ (टेक)
मेरे मन में और थी तुम कछु ठानी और।
तुम करि हो सोई सही मेरी झूठी दौर ॥ १ ॥
में जान्यो औसर भलो पीय मिलहिंगे आइ।
तेरे कछु भायें नहीं तलफि तलफि जिय जाइ ॥ २ ॥
में अवला अति ही दुखी तुम समृथ सब वात।
जब सुदृष्टि करि देपिहो तब मेरे कुसरात ॥ ३ ॥
मे चातक पिय पिय करों तुम जलधर जलदांनि।
सुन्दर विरहनि यों कहैं प्यास वुझावो आंनि ॥ ४ ॥

(७)

हरि निरमोहिया कहां रहे करि वास।
पहले प्रीति लगाइकें अव क्यों भये उदास ॥ (टेक)
लाड लडाये वहुत ही हौंस पुजाई कोडि।
वनिजारा की आगि ज्यों गये वलंती छोडि ॥ १ ॥
पलक घरी जुग जात है क्यूं करि रापौं प्रांन।
में जानों संगही रहों तुम यह तौरी तांन ॥ २ ॥

---

५ वां पद—प्रान त्याग होंन लाग=प्राणों का त्याग होने लग गया है। देहु दाद=पुकार सुन। वास=भूका। कहियत=कहाये जाते हो।

६ ठा पद—पंडुर=सफेद। (बुढ़ापा छा गया तब)। भायें=भावैं=परवाह। कुसरात=कुशलात, खैरसल्लाह, सुखोपना।

बीति गये दिन बहुत ही अंतरजामी राइ।
कै तुम आवौ आपतें कै तुम लेहु बुलाइ ॥ ३ ॥
अबतौ ऐसी क्यौं बनें प्यारे प्रीतम लाल।
सुंदर बिरहनि यौं कहै दरसन देहु दयाल ॥ ४ ॥

(८)

हरि हम जांणियां, है हरि हम हीं मांहिं।
जौ बाहर कौं देषिये, तो कछु दूजा नांहिं ॥ (टेक)
जौ हम इहां बैठे रहैं तौ वह नाहीं दूरि।
जौ शत जोजन जाइये तौ उंहऊं भरपूरि ॥ १ ॥
शेष नाग बैकुंठ लौं जहां लगै ब्रह्मंड।
वह हरि उहंऊंते परै इहां परै नहिं षंड ॥ २ ॥
यौंही वेदन मैं कह्यौ यौंही भाषहिं संत।
यौं जाणैं बिन ह्वै नहीं जनम मरन कौ अंत ॥ ३ ॥
जाकौं अनुभौ होइ है सोई जानै ज्ञांन।
सुन्दर याही संमुझि है याही आतम ज्ञांन ॥ ४ ॥

(९)

ब्रह्म बिचार तें ब्रह्म रह्यौ ठहराइ।
और कछू न भयौ हुतौ भ्रम उपज्यौ थौ आइ ॥ (टेक)
ज्यौं अन्धियारो रैनि मैं कल्पि लियौ रजु व्याल।
जब नीकें करि देषियौ भ्रम भाग्यौ ततकाल ॥ १ ॥

---

७ वां पद—कोडि=कोटि, बहुतसी। तौरी तांन=खतम काम कर दिया, जिराली ही ठानी। झटक कर मेरे ध्यान से निकल गये।

८ वां पद—उंहऊं=वहां भी वही। षंड=खंड, टुकड़ा अर्थात् उसका विभाग नहीं वह अखण्ड है।

ज्यों सुपनें नृप रंक ह्वै भूलि गयो निज रूप।
जागि पर्‌यौ जब स्वप्न तें भयौ भूप कौ भूप॥ २॥
ज्यों फिरतें फिरतौ द्दसै जगत सकल ही ताहि।
फिरत रह्यौ जब बैठिकें तब कछु फिरत न आहि॥ ३॥
सुन्दर और न ह्वै गयौ भ्रम तें जान्यौं आंन।
अब सुन्दर सुन्दर भयौ सुन्दर उपज्यौ ज्ञांन॥ ४॥

(१०)

(संस्कृतमय)

दृश्यते वृक्ष एक अति चित्रं।
ऊर्द्ध मूलमधोमुख शाखा जंगम द्रुम शृणु मित्रं॥ (टेक)
चतुर्विंश तत्वभिर्निर्मितं वाचः यस्य दलानि।
अन्योऽन्य वासनोद्भव तस्य तरोः कुसुमानि॥ १॥
सुख दुःखानि फलानि अनेकं नानास्वादन पूतं।
तत्रात्मा विहंगम तिष्टति सुन्दर साक्षीभूतं॥ २॥

---

९ वां पद—आंन=अन्य, दूसरा, आप से भिन्न, द्वैतभाव। सुन्दर भयौ=निज रूप प्राप्त हुआ। वा शुद्ध सच्चिदानन्द रूप की प्राप्ति हुई।

१० वां पद—संस्कृत भाषामय पद है। दृश्यते=दिखाई देता है। चित्रं=विचित्र, अद्भुत। ऊर्द्धमूलम्=उसकी जड़ ऊपर को है। अधोमुखशाखा=डालियां नीचे को ओर हैं। वाचः यस्य दलानि=(छंदांसि यस्य पर्णानि—गीता) वचन उसके पत्ते हैं। जंगम द्रुम=चलता हुआ वृक्ष। शृणु मित्रं=हे मित्र सुनो। चतुर्विंश तत्वभिर्निर्मितं=चौबीस तत्वों से बना हुआ है। अन्योऽन्यवासनोद्भव (मद्भुतानि वा)=नाना प्रकार की वासनाओं से उत्पन्न हुए। तस्य तरोः कुसुमानि=उस वृक्ष के पुष्प हैं। सुखदुःखानि फलानि=सुख दुःख आदिक द्वंद्व उसके फल हैं। अनेकं=अनेक। नानास्वादन पूतं=नाना प्रकार के उन फलों में स्वाद भरे हैं (पूतं=पूर्त्तं)। तत्रात्मा विहंगम तिष्टति=वहां आत्मारूपी पक्षी

(११)

(संस्कृतमय)

क्व गतन्निजपरविभ्रमभेदं ।
यन्नानात्वं दृश्यते पूर्वमधुना रूपं ममेदं ॥ (टेक)
यथा शरीरे अंग पृथग्नहि ज्ञानकर्मकरणानि ।
तथा अहं व्यापक परिपूर्णः स चराचर सर्वाणि ॥ १ ॥
यथा सागरे भंगबुद्बुदा उत्पद्यन्तेऽनंताः ।
तथा विश्वमयि अहं विश्वमयि सुंदर मध्याद्यंताः ॥ २ ॥

(१२)

(आरती)

आरती परब्रह्म की कीजै ।
और ठौर मेरौ मन न पतीजै ॥ टेक)
गगन मंडल मैं आरती साजी, शब्द अनाहद झालरि बाजी ॥ १ ॥
दीपक ज्ञान भया प्रकासा, सेवग ठाडे स्वामी पासा ॥ २ ॥

बैठा हुआ है । सुंदर साक्षीभूतं=सुंदरदासजी कहते हैं कि, वह पक्षी साक्षीभूत होकर बैठा है । यह वृक्ष का रूपक इस शरीर पर घटाया गया है । इसका ही वर्णन गीता के अ० १५ । श्लो० १–३ में है । वहां विश्ववृक्ष कहा है ।

११ वां पद—क्वगतं=कहां गया । निजपरविभ्रमभेदं=अपना पराया आप और दूसरा ऐसा भ्रम भरा भेद (द्वैतभाव) । यन्नानात्वं दृश्यते पूर्वं=जो इस ब्रह्म ज्ञान से पहिले नानात्व भेद दिखाई देता था वह (मिट गया)—न रहकर, अधुनारूपं ममेदं=अब मेरा निज आत्मस्वरूप हो गया है । यथा...करणानि=शरीर से उसके अंग पृथक् नहीं और ज्ञान, कर्म और कारण पृथक नहीं वैसे ही—तथा . सर्वाणि= वैसे ही मुझ व्यापक में सर्व चराचर व्यापते हैं । यथा.. ऽनंताः=समुद्र में जैसे बुद्बुदे बनते विगड़ते हैं । तथा...द्यन्ताः=वैसे ही मैं विश्व में और विश्व मुझ में आदि मध्य और अंत पाता है ।

अति उछाह अति मंगल चारा, अति सुख विलसै वारंबारा ॥ ३ ॥
सुन्दर आरती सुन्दर देवा, सुन्दरदास करै तहां सेवा ॥ ४ ॥

(१३)

आरती कैसें करौं गुसांई ।
तुमहीं व्यापि रहे सब ठांई ॥ (टेक)

तुमहीं कुंभ नीर तुम देवा, तुमही कहियत अलप अभेवा ॥ १ ॥
तुमहीं दीपक धूप अनूपं, तुमही घंटा नाद स्वरूपं ॥ २ ॥
तुमहीं पाती पहुप प्रकासा, तुमही ठाकुर तुमही दासा ॥ ३ ॥
तुमहीं जल थल पावक पौंना, सुन्दर पकरि रहे मुख मौंना ॥ ४ ॥

इति श्री स्वामी सुन्दरदास विरचित पद समाप्त सर्वपद संख्या २१३

---

१२ वां पद—[आरती] निर्गुण उपासना में यह परापूजा का विधान है जिसका एक अङ्ग आरती (आरात्तिक—नीराजन) भी है। मानसिक पूजा की विधि वेदांत के आचार्यों ने भी लिखी है। शंकराचार्य आदि के रचे विधान प्रस्तुत हैं। आरती में घंटा, शंख, दीपक आदि की आवश्यकता होती है। दीपक के स्थानापन्न ज्ञानरूपी दीपक है। घंटा, झालर आदि के शब्दों के स्थानापन्न अनाहत नाद है। अपरोक्षता का भाव है जिसमें सेव्य सेवक की एकता प्रदर्शित है। ब्रह्मानंद की प्राप्ति ही अति उछाह है। इस आरती की सुंदरता प्रत्येक अङ्ग में विद्यमान है इसही से सबही सुंदर है। निर्गुण उपासक महात्माओं ने सबही ने आरतियां कही हैं। कबीरजी, नानकजी, रैदासजी, नामदेवजी, दादूजी और दादूजी के अन्य शिष्यों ने भी आरतियां कथन की हैं। तुलसीदासजी ने तो रामायणजी तक की आरती लिखी है, यद्यपि वे सगुण उपासक थे।

१३ वां पद—इस दूसरी आरती में तो परमात्मा (सेव्यदेव) को सर्वव्यापी कहकर आरती की प्रत्येक सौंज में बता दिया है। यह गहरा अद्वैत भाव है। यहां तो कोई रत्ती भर भी अवकाश नहीं रक्खा है। पूर्ण एकता और कैवल्य है ॥ इति ॥

॥+॥ पदों की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥+॥

फुटकर काव्य

अथ फुटकर काव्य

॥ अथ चौबोला ॥※

दोहा

पीपरदेसैं गवन करि वरवट गये रिसाइ।
परासषी मो रोवना साल रिदै नहिं जाइ॥ १ ॥

※ इन छंदादिका क्रम कुछ तो (क) मूल पुस्तक से और कुछ (ख) खुली पुस्तक से और शेष क्रम की संगति से रखा गया है। (क) पुस्तक में "चौबोला, गूढार्थ, "पद" की समाप्ति के आगे पाने २५४॥ से २५६ तक हैं।

छंद १—(इन छंदों में गूढ़ अर्थ के निमित्त शब्दों में श्लेष प्रायः रक्खा है और चार नाम प्रत्येक दोहे में से निकलते हैं। कहीं शब्दों को विच्छिन्न करने से, कहीं यतिभंग से, कहीं शब्द में न्यूनाधिक करने से अर्थ निकलता है।)—पी=पीव, प्रियतम। परदेसैं=दिसावर। दूसरा अर्थ—पीपरदा=पीपलदा एक कस्बा राज्य जयपुर में है। वरवट=वड़ का वृक्ष। दूसरा अर्थ गांव का नाम। रिसाइ= रूसकर, अप्रसन्न होकर। परा सषी=हे सखी! पड़ गया। मो रोवना=मुझको रोना (विलाप करना)। दूसरा अर्थ—परास गांव का नाम। मोरो—मोर गांव का नाम, टोडे रायसिंह के पास जहां सुन्दरदास जी का एक स्थान भी है। साल-रिदैं=साल, कसक, दुःख का खटका। रिदै=हृदय दिल में। दूसरा अर्थ=साल-रदैं—सालरदह=गांव का नाम।

वहे रावरे कौंन दिशि आव रापि मन मोर।
हर्रैं हर्रैं जिनि फिरहु करहु कृपा की कोर ॥ २ ॥
जभी रीस तुम करत हो सदा फरक दै जात।
अनारपनौं कौंनैं वद्यौ करुणा नैंकु न गात ॥ ३ ॥
मैंथी अपने माइ के सगा मिल्या मोहि द्वार।
करौं जीव नौछावरी धना गई वलिहार ॥ ४ ॥

छंद २—वहे रावरे=वहेडा (औषधि)। दूसरा अर्थ—रावरे=राज (आपके, प्यारे के (हाथी घोड़े लश्कर) किस दिशा (तरफ़) वहे, गये। आंव रापि=आंवला (औषधि)। दूसरा अर्थ—आवो मेरा मन रक्खो—अर्थात् दिशावर से पधार कर मेरे मन की शांति करो। हर्रैं=हरड़ै (औषधि)। दूसरा अर्थ—इधर उधर (मुझे छोड़ कर)। अध्यात्म में इन दोनों छंदों का ब्रह्म सम्बन्ध में अर्थ स्पष्ट ही है। भगवद्भक्ति के अभाव से वा आत्मध्यान के न होने से मन को महा क्लेश होता है। त्रिफला संकेत त्रिगुण का है। त्रिगुण में न फँसकर मन को परमात्मतत्त्व में लीन करने के निमित्त प्रार्थना है कि मुझ पर ऐसी कृपा करो कि चित्त विषयों में न जाय।

छंद ३—जभी=जबही। रीस=गुस्सा, रोस। सदा=हृदय, सर्वदा। आवाज़। फरक दै जात=फड़कने लग जाय। दूसरा अर्थ—जभीरी=झंभीरी (फल)। सदाफर=सदाफल, सीताफल (फल)। श्रीफल। धीस। अनारपनौं=अनाड़ीपन, चतुराई का न होना। करुणा=दया। दूसरा अर्थ—अनार (फल)। करुणा (फल)।

छंद ४—मैं थी=मैं (अपनी) मां के (मय के, पीहर) गई थी। दूसरा अर्थ—मैंथी (साग)। सगा मिल्या=प्यारा मुझे मिल गया। दूसरा अर्थ=साग (शाक)। करौं जीव नौछावरी=मैं अपने प्राणों को (प्यारे पर) न्योछावर (अर्पण) कर दूं। दूसरा अर्थ=कलौंजी, वा करोंदा। धना गई=धन (तन, मन मन) को वार फेर भगवदर्पण कर दिया। दूसरा अर्थ=धनिया (साग, मसाला)।

सूंठिक चूकौ तूं धनी पी परिहरि किम जाइ।
अज मौ इनि दीधौ विरह वचन सँभालौ आइ ॥ ५ ॥
चंपा कदे न पाव मैं जुही तिहारैं हेज।
जाही विधि तुम अब कहौ जाइ विछाऊं सेज ॥ ६ ॥
केत कीन मैं वीनती केव रापि हौं चित्त।
सेव तीनि विधि करत हौं कुंज कली के मित्त ॥ ७ ॥

अध्यात्म में अर्थ निकल रहा है कि माइ, माया में मैं फँसा था। परन्तु भगवान तो मुझे गुरू के बताये द्वार (रास्ते) से प्राप्त हो गये। उन प्रियतम परमात्मा पर मेरे प्राणों को मिटा दूं। धन्य धन्य मैं बलिहार जाऊं कि मेरा ऐसा भाग्य उदय हुआ, गुरु कृपा से।

छंद ५—सूं (स्यूं—गुजराती) ठिक (ठिगाकर) चूकौ (चूकते हो)। हे धनी तू ! हे पी (पीव-पीतम) ! तू हम दीनजनों को परिहरि (छिटका कर) किम (क्यों) जाइ=जाता है। हमारे अपराध से प्रभू ! आप हमें निराधार न छिटकाइये !। दूसरा अर्थ—सुंठि=सुंठि (औषधि)। चूकौ=चूका (खट्टा साग)। पीपरि=पीपल (औषधि)। अज (आज वा अब भी) मौ (मुझे) इनि (इन्होंने, प्यारे ने) दीधौ (दिया)। वचन सँभालो आइ=मिलने के कौल करार को मेरे पास आकर निभावो। दूसरा अर्थ—अजमोइ=अजवाइन वा अज-मोद (औषधि) सँभालो=संभालू (वातहर्त्ता औषधि)।

छंद ६—चंपा=१ चांपे, दवाये। जुही १—जो रही। हेज=प्रेम। २ चंपा (सुगंध वृक्ष फूल)। जुही २=जूही (सुगंध वृक्ष गाछ फूल)। —जाही (वृक्ष विशेष), जाइ (जया कुसुम, चमेली) ये चार निकले।

छंद ७—केत=कितनी। केतकी=केतकी (सुगंध पौधा पुष्प)। केव=खेकर, निरंतर। केवरा=केवड़ा (सुगंध पौधा पुष्प)। सेव=सेवा। तीनि-विधि=त्रिविधि, तन, मन, धन वा मन बुद्धिचित्त से वा भक्ति ज्ञान वैराग्य से। सेवती=सुगंध पुष्प। कुंजकली=कुंजगली। कुंज=सुगंध पुष्प। यों चार नाम निकले।

रत नहिं दोसैं तोर चित्त मो तीपो मन आहि।
लालन यहु दुख बहुत है मानि कह्यौ मिलि चाहि ॥ ८ ॥
गौरी मेरौ पीव तजि पर्‍यौ कानरा बोल।
कैसैं होत कल्यान अब रूठौ नाह हिंडोल ॥ ९ ॥
सूहौ मुहि सांई करी धना सीस सिरताज।
आशा पूरइ जीव की राम गरीब निवाज ॥ १० ॥
दुवा तिहारी लेतही कलमष रहे न कोइ।
काग दशा सब मिटि गई लेप कर्म यौं होइ ॥ ११ ॥

छंद ८—रत=अनुरक्त। मो तीपो=मेरा तीव्र (मन) आहि=है। रतन=रत्न। मोती=मुक्ता, मोती। लालन—हे लालन, प्यारे, लाडले ! मानि कह्यौ=कहना मानूं। लाल=लाल, रत्न। मानिक=माणिक्य। ये नाम निकले।

छन्द ९—गौरी मेरो…—हे गौरी सखी ! मेरा पीतम मुझे तजि गया। कान में ऐसा असह्य वचन पड़ा, सुना। अब कुशल नहीं जब नाह (नाथ) हिंडोले पर से या हिंडोले की ऋतु में रूस गया। गौरी, कानड़ा, कल्यांण, हिंडोल इन रागों के नाम निकलते हैं।

छन्द १०—सूहौ मुहि…मेरे स्वामी ने मेरे सुहाती मेरे ऊपर कृपा करी। मैं धन्य हूं सबका सिरताज हो गया मेरा सीस (भगवतचरणों में नत होकर) धन्य हुआ। आशा पूरइ ..—भगवान दीनबन्धु हैं, इस क्षुद्र जीवन की आशा को पूर्ण कर दी। इनमें से सूहा (राग) धनासी (धनाश्री राग)। आशा (आसा राग)। पूरइ (पूरिया, वा पूर्वी राग)। रामगरो (रामग्री राग) ये नाम निकलते हैं।

छन्द ११—दुवा तिहारी…—दुवा=दुआ, शुभाशीस। कलमष=पाप। काग-दशा=कागले की सी अर्थात बुरी दशा, स्थिती। कर्म का लिखा, भाग्य का भोग। इनमें से—दुवाति (दवात स्याही की), कलम (लेखनी), कागद (कागज़, पत्र), लेखक (लिखनेवाला) ये चार शब्द निकले।

मारू मन कौं पटकि कैं के दारा सूं प्रीति।
नट वाजी भूलौं नहीं भैरव रापौं जीति ॥ १२ ॥
वलकल वोढें का भयौ का विलमाहिं रहाइ।
का समीर साधन किये लाहो नूर दिपाइ ॥ १३ ॥
आगरा सु मम पीव है दिलि मैं और न कोइ।
पट नारी तातें भई राजमहल मैं सोइ ॥ १४ ॥

छन्द १२—मारू मन...—मन को मारू (एकाग्र कर लूं)। के दारा सूं—स्त्री से प्रेम क्यों किया ? नटवाजी (नटकला, फुरती से कर्म फन्द से निकलने की कला), भैरव—भैरव समान बलवान मन को जीत कर, वश में लाकर। इसमें से—मारू (राग), केदारा (राग), नट (नटनारायण राग), भैरव (भैरव राग), ये चार नाम निकले।

छन्द १३—वलकल...—वलकल (वृक्ष की छाल, भोजपत्र का ओढन) वोढै (पहनने से)। विल (गुफा, मठ) में घुस रहने से। समीर (पवन) के साधने (प्राणायाम प्रत्याहारादि करने से)। लाहो (लाभ, परम लाभ की प्राप्ति)—आत्म साक्षात्कार, नूर (तेज, प्रकाश) दिखाइ=दिखाई देने से, दर्शण ज्योतिस्वरुप के होने से। सच्चा फल मिल सकता है। उसकी प्राप्ति के विना अन्य क्रियाएं वृथा हैं। इसमें से वलख (बलख बुखारा नगर), काविल (कावुल शहर), कासमीर=कश्मीर नगर। लाहोर (शहर)—ये चार नाम निकलते हैं। (नोट—लाही नूर में नू का लोप करना पड़ता है, वा नूर को नगर का विकृतरूप मान लें)।

छन्द १४—आगरा...—मेरा पीतम आ गया वा घर में आ गया है (गरां=घरां, घर में)। दिलि में=मेरे दिल में वही वस रहा है अन्य कुछ नहीं है। मैं मेरे राजा (पति) के महल (स्थान) में आनन्द में रहती हूं इससे पटनारी (मुख्य, प्यारी सुहागिनी—वा पटराणी) वन गई हूं। भगवान् की अत्यन्त कृपापात्र वन गई अर्थात् मुझे ब्रह्म साक्षात्कार से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गई है। इस दोहे में से—आगरा (शहर), दिली (दिल्ली शहर), पटना (शहर), राजमहल (वंगाल

काशी लागा बहुत ही गया और ही बाट।
अजो ध्यान अब करत हौं तिरबेनी के घाट॥ १५॥
कुरुपेत कौनि दान तूं हरिद्वार तब जाइ।
बदरी तासौं क्यौं रहै सुर सरीर मैं न्हाइ॥ १६॥
थरौ लीपि का कीजिये शिवहार हि पय पान।
बहर बलाइन समझई बौरी नैक न ज्ञान॥ १७॥

॥ इति चौबोला ॥ १ ॥

का शहर जिसे जयपुर के महाराज मानसिंहजी ने वहां की विजय करके आबाद किया था। जयपुर राज्य के परगने टोडे में भी एक राजमहल करबा बनास नदी पर सुन्दर बसा है।)—ये चार नाम निकले।

छन्द १५—काशी...—तू अन्य वाट (बुरे रास्ते, मार्ग) जाकर क्या तू शील व्रत (यति व्रत=ब्रह्मचर्य आदि उत्तम मार्ग में) प्रवृत्त क्यों नहीं हुआ? अजो (अजु=तल्लीन) ध्यान अब करता हूं। इडा पिंगला सुषुम्नारूपी नाडी नदियों के स्थान में साधनशील होकर। इस दोहे में से चार नाम निकलते हैं—काशी, गया, अयोध्या, त्रिवेणी (प्रयाग) तीर्थ।

छंद १६—कुरु पेत कौ...—हे नदान मूर्ख! तू कुरु=कर। पेत=क्षेत्र जो काया, उसको उत्तम कर्मों से शुद्ध कर ले। तब तू हरि (परमात्मा) के द्वार (धाम को) जायगा। ता (उस) प्रीतम ब्रह्म से तू क्यों बदला हुआ (बददिल वा बेदिल) रहता है? सुर जो देवता उनका सा शरीर (काया) न्हाय (पाकर) भी। अथवा शरीर में सुर (स्वर) का साधनरूपी इडा पिंगला नदियों में (नाडियों के स्थानों में) साधनशील होकर भी।—इस दोहे में ये चार नाम निकलते हैं—कुरुक्षेत्र हरिद्वार, बद्रीनाथ, सुरसरी (गंगा)।

छंद १७—थरौ लीपि...—थड़ा जो शरीर उसके शृंगार और लड़ाने से क्या प्रयोजन। इसको पालने से वैसाही फल है जैसा कि शिवहार=शिव के गले का हार, सर्प जो है उसको दूध पिलाना। "पयः पानं भुजंगानां केवलं विषवर्द्धनम्"। अथवा

॥ अथ गूढार्थ ॥

दोहा

शिव चाहत है आपनौं विधि नीकैं करि धारि।
विष्णु इहै निशि दिन रहै व्याप न शील विचारि ॥ १ ॥

थड़ा=चौका लीप पोतने की आवश्यकता (साधुओं और यतियों को) नहीं है, क्योंकि उनका कल्याणकारी अहार दूध है। वहर=वहिर बाहर के विषयादिक बलाएं हैं, अनिष्टकारी हैं। हे बावली तुझको ज्ञान नहीं है। इस दोहे में से चार नाम निकलते हैं—थड़ौली (गांव का नाम), शिवहार (सिंवार—राजावतों का ठिकाना), वहर—वहरांवड़ा (गांव सवाई माधोपुर राज्य जयपुर में), वौरी—वौंली (कस्बा तहसील—राज्य जयपुर में)।

इति चौवोला की सुन्दरानन्दी टीका।

गूढार्थ—दोनों कविता प्रकरण "चौवोला गूढार्थ" एक ही शीर्षक में भी लेते हैं। पूर्व प्रकरण में चार २ शब्द वा नाम निकलते हैं और उनके साथ दूसरे अर्थ भी। परन्तु इस उत्तर प्रकरण में सब दोहों में ऐसा नहीं है। इस कारण इसको पृथक् रक्खा है। यह भी अन्तर्लापिका का एक भेद है। शब्दालंकार में अर्थालंकार की भी झलक है। अध्यात्म अर्थ स्पष्ट ही निकलता है।

१ म छंद - १ अर्थ—शिव=कल्याण। विधि=क्रिया, विधान, साधन, अभ्यास। विष्णु=(विसन) व्यसन। "विद्या व्यसनम् व्यसनम् हरिनाम केवलम् व्यसनम्"। अपने जीवन का उद्देश्य नित्य निरंतर रटना और ध्यान। २ अर्थ—शिव=महादेव। विधि=ब्रह्मा। विष्णु=विष्णु भगवान, नारायण। ये तीनों देव तीनों गुणों—तम, रज, सत—के सृष्टि क्रम में प्रधान स्वरूप माया विशिष्ट ब्रह्म के हैं। तीनों गुणों से अतीत वा परे होने को केवल शील (सत्कर्म) के विचारते रहने से ही इस अवस्था (तुरीया) में व्यापकता नहीं प्राप्त हो सकती है। अंतर्मुखी होकर अंतरात्मा का साक्षात्कार ही व्यापकता दे सकता है।

वासुदेव हित छाडिकैं प्रद्युम्नहि मन दीन्ह।
अनिरुद्धहि कीयौ सदा संकर्षण नहिं कीन्ह ॥ २ ॥
राम लक्ष्मन शत्रुघन भरत जानि करि प्रीति।
सीतां शान्ति सदा रहै यह सन्तन की रीति ॥ ३ ॥
हनूमान कूं जांनि कैं सुग्रीवहि रटि राम।
वालि कनक तौरै श्रवन अंगद कौनैं काम ॥ ४ ॥

---

२ रा छंद—१ ला अर्थ—वासुदेव=परमात्मा। प्रद्युम्न=काम, विषयादि की कामना। अनिरुद्ध=बेरोक, स्वतन्त्र, यथेच्छ अनर्गल प्रवृत्ति से। संकर्षण=संयम, विषयादि से मन को खैंचना।—२ रा अर्थ—वासुदेव=श्रीकृष्ण। प्रद्युम्न=श्रीकृष्ण के पुत्र। अनिरुद्ध=श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के बेटे। संकर्षण=बलरामजी, श्रीकृष्ण के बड़े भाई। यों चारों पवित्र नाम एक साथ आये हैं। इनमें से उक्त प्रथम अर्थ निकलता है।

३ रा दोहा—पहिला अर्थ—शत्रुओं का—(काम, क्रोध, लोभ, मोहादि का) घन (समूह) इस शरीर वा अन्तःकरण में भरत (भरता हुआ, अन्दर प्रवेश करता हुआ) जानकर, प्रीति (भक्ति, तल्लीनता) का लक्ष्य राम (परमात्मा) में सीतां (पिरोने से, पूर्ण ओत प्रोत लगा देने से) शांति (परमानंद उत्तम अवस्था) सदा रहती है वा रखते हैं। संतन (परमात्मा के प्यारे भक्त साधु जनों) की यही रीति (प्रक्रिया वा विधि) है।—दूसरा अर्थ—राम=रामचन्द्रजी। लक्षमन=रामचन्द्र के तीसरे छोटे भाई। शत्रुघन=रामचन्द्र के चौथे छोटे भाई। भरत=रामचन्द्र के दूसरे छोटे भाई। सीता=जानकीजी, रामचन्द्रजी की राणी। ये पांच नाम निकलते हैं, इनही द्वारा उक्त अर्थ भासमान होता है।

४—जांनिकैं=यह जान करके, अथवा ज्ञान प्राप्त कर लेने की अवस्थामें, मान (अभिमान, अहंकार) को हनूं (मारुं अर्थात् आपामार गुणातीत हो जाऊं) और सुग्रीवहि (अच्छे गले वा रागसे अथवा सुघरता से) राम (परमात्मा) को निरन्तर रटि (भजता रहूं)। वह अंगद (आभूषण) कनक वालि (सोने की

चौकी बंध

|| चामर छन्द || दरस तें उसका नांव दिल में इस्क उपजै दरद ।
दरदवंद पुकार करतें होइ सब सों फरद ॥
दर फकीरी (में) फिरत फारिक जानि सोई मरद ।
दर मजल सोइ जायगा दिल किया सुन्दर सरद ॥४॥

इसके पढ़ने की विधि ।

चित्र काव्य के चित्र के मध्य में 'द' अक्षर से प्रारंभ करके 'नें' अक्षर को कूंट तक पढ़ कर उसके आगे पार्श्व में 'उसका' से लगाकर 'जैं' तक पढ़ कर अंदर का 'दरद' शब्द पढ़ें । यों एक चरण प्रथम का हो गया । अब उसही मध्यस्थ 'द' से प्रारंभ कर फिर उल्टा 'दरद' शब्द को पढ़कर दूसरे पार्श्व में के 'वंद' से 'सों' तक पढ़ते हुए अंदर के 'फरद' शब्द को पढ़ें । यहां दूसरा चरण हो चुका । फिर वैसे ही उस मध्य के 'द' से पार्श्व तीसरे के 'कीरी' आदि को पढ़ते हुए कोने के 'ई' को पढ़ कर अंदर के 'मरद' शब्द को पढ़ें । यों तीसरा चरण हो गया । अन्त में फिर उसही मध्यवर्त्ती 'द' से पार्श्व चौथे के शब्दों को पढ़ते हुए 'सुन्दर सरद' पर अन्दर छन्द को समाप्त करें । चौथा चरण हो गया ॥

त्यागी माया देवकी कियौ जसोमति हेत।
पिवै अमी रस गोपिका कान्ह मिले कुरु पेत ॥ ५ ॥
राम राम रटिवौ करहु रामा रमा निवारि।
धर्म धाम मैं प्रगट है काम काम कौं मारि ॥ ६ ॥

वाली कान में पहनने की) किस काम की जिससे कान ही टूटने लग जाय। यहां शरीर और उसके विषयानंद से अभिप्राय है, कि इस विषयलोलुपता का आनन्द वास्तव में आत्मा का परम शत्रु अहितकारी है। इससे उलटी हानि होती है—अधोगति और नरक निवास हो जाता है। अतः त्यागने योग्य है।—दूसरा अर्थ—हनुमान, जानकी, सुग्रीव, वाली, अंगद—ये नाम निकलते हैं स्पष्ट ही जिनके अन्दर से उक्त अर्थ आता है।

५—देव (परमात्मा) की माया (त्रिगुणात्मक प्रकृति) को त्यागी (जीत ली) और जसोमति (शुद्ध बुद्धि से) जैसा भी परमोत्कृष्ट हेत (प्रेम-पराभक्तिभाव) किया। गोपि का (अन्तरात्मा में—भ्रमर गुफा में छिपा) प्रेम (पराभक्ति) का अमीरस (अमृत—ब्रह्मानन्द) को पान करै, मग्न हो जाय। क्योंकि कुरुपेत (धर्म का मूल क्षेत्र) पवित्र अन्तःकरण—सच्चा हृदय जो है, उसमें कान्ह (कृष्ण-परमात्मा) मिले (प्राप्त हुए)। २ रा अर्थ—इसमें माया (वसुदेव की कन्या), देवकी (वसुदेव की राणी, कृष्णजी की जननी)। जसोमति=यशोदा कृष्णजी को पालन करनेवाली माता। गोपिका। कान्ह। कुरुक्षेत्र। ये नाम स्पष्ट वुलते हैं। श्रीकृष्ण ने अपनी जननी देवकी को छोड़कर गोकुल वृन्दावन में जसोदाजी को माता जान प्रेम किया। वहां वसने से यह फल अधिक हुआ कि गोप गोपिकाओं को पराभक्ति मिली। वे प्रेम की धजा कहाई। कुरुखेत वा प्रभासक्षेत्र में बिछुड़े कृष्ण फिर मिले।

६—अर्थ स्पष्टसा ही है—रामनाम वारंवार भजते रहो। रमा (लक्ष्मी, धनधाम) वा लोभ को। रमा (स्त्री, कामिनी, काम) को निवारि (तजकर)। धाम धाम (घट घट) में परमात्मा की सत्ता चेतनरूप से अवभासित होती है। काम (कामदेव, विषय) और काम (कर्म) को मारि (निवृत्त) वा त्याग कर।

गो पर गो चारत फिर्‌यौ गोरस पोयौ मन्द।
गोरपनाथ न ह्वै सक्यौ गोविन्द गह्यौ न चन्द॥ ७॥
वार वार गणिवौ कियौ वार गई सब वीति।
वार वार क्यौं फिरत है वार वार मन जीति॥ ८॥
अर्क हि त्यागै जानि कैं चन्दन जाकै पास।
ता राजा के संग है नभ मैं कियौ निवास॥ ९॥

७—गो इंद्रियों का चार (व्यवहार) ही करता रहा और भटकता फिरा। गोरस (ब्रह्मानन्द वा ज्ञान का आनन्द) खो दिया, हे मंदबुद्धि मूर्ख !। योग की क्रियाएं करता रहा परन्तु श्रीगुरु गोरक्षनाथ की सी सिद्धियां प्राप्त नहीं कर सका। गोविंद (परमात्मा) की प्राप्ति भी नहीं हो सकी और न चन्द (चन्द्रमा की सी शीतलतामय शांति ही) पा सका। वा कोरी गायें ही चराता फिरा उनसे दुग्ध पाकर गोरस की प्राप्ति कर नहीं सका। गो (गाय को रख, पाल करके) रख कर भी उनका नाथ (स्वामी) अर्थात् गोपाल (भगवद्भक्त) नहीं हो सका। गो (इंद्रिय) का विंद स्वामी मन गह्यौ (वश) में नहीं कर सका। और न चन्द (परमात्मारूपी सूर्य से प्रकाश पानेवाला जीवात्मा चांद) को ही ध्यान, योग वा भक्ति से परमात्मा में (उसके चरणों में) गह्यौ (लीन कर सका)।

८—वार वार (वारं बार, बेर बेर में) द्रव्य को मुद्राओं को गिण गिण कर, धन संग्रह किया। इसही में वार (समय, आयु) बीत गई। वार वार (द्वार द्वार, घर घर, मत मतांतरों में) क्यों भटकता है। मन को प्रत्येक समय निरंतर वहिर्मुखता वा विषयों से निकाल कर अन्तर्मुख करके जीति (वशकर, एकाग्र करता रह)।

९—जिसके पास चंदन है वह पुरुष अर्क (आकड़े, मदार) को त्याग देता है। आत्मानन्दरूपी चन्दन के सामने विषयानन्द आकड़ा सदृश कटु है। जिस राजा (परमेश्वर) के संग (सामीप्य मोक्ष) प्राप्त किया जो नभ (गगन मंडल-शून्य लोक-अनंतता) में निवास कियो (प्रविष्ट है) सर्व व्यापक है। दूसरा अर्थ—

अग्नि बाण करि चौगुनें लक्ष्ण एकहु नांहिं।
अनुड्वान सो जांनिये संमुझि देपि मन मांहिं ॥ १० ॥
मिश्री निद्रा पंडसुत चतु रक्षर त्रय नांम।
पीयें आयें अरु मिलें सुख ह्वै आठौं जांम ॥ ११ ॥
ऋपी करण वसुदेव सुत इनके अर्थ हिं जांनि।
तीन नाम तिनमैं प्रगट चतुरक्षर पहिचांनि ॥ १२ ॥
रामार्पण सब करत हैं कृष्णार्पण नहिं कोइ।
कृष्णार्पण कृष्ण हिं मिलै रामार्पण घर षोइ ॥ १३ ॥
रामा पाइ रवि पुत्र की तर जो ह्वै पर नारि।
दास रहै सो दुःख मैं तीनौं उलटि विचारि ॥ १४ ॥

अर्क=सूर्य। चंद=चन्द्रमा। तारा=नक्षत्र। नभ=आकाश मंडल। ये शब्द ज
सम्बन्धी इसमें से निकलते हैं।—

१० वां दोहा-अग्नि=१ एक। बाण=पांच ५। १+५=६। ६ के चौगुने
चौबीस। चौवीस लक्षण में से एक भी जिस पुरुष में न हो, वह पुरुष अनुड्वान
है, मूर्ख है।

११—मिश्री पिये (मीठा पीने से) निद्रा लिये (सर्वरोग हरी निद्रा,
नींद से) पंडसुत=युधिष्ठिर=धर्म—धर्म मिले (धर्म की प्राप्ति से)। (इन
अक्षर वाले शब्दों के अभिप्राय से सुख होवै।

१२—ऋपी=ज्ञानी। करण=दानी। वसुदेवसुत=कृष्ण=योगी।

१३—रामा=स्त्री (इससे स्थूल प्रेम-विषय वासना) के अर्थ सब (लै
जन संग्रह करते हैं। स्त्री पुत्रादि में मोह कर सर्वस्व खोते हैं। परन्
(परमात्मा) के अर्थ दानादि, ध्यान, ज्ञान नहीं करते। प्रथम से अनिष्ट, द्वि
इष्ट की प्राप्ति है।

१४—रमा का उल्टा—मार। रविपुत्र=यम। तर का उल्टा=रत,
आसक्त। दास का उल्टा सदा।

रसु सोई अमृत पिवै रन सोई जिह ज्ञांन।
शुप सोई जो बुद्धि विन तीनौं उलटे जांन॥ १५॥

तारी वाजैं कुंभ ज्यौं पैरा गर्व गुमांन।
लैंवौ मिथ्या राति दिन लाभ न होइ निदांन॥ १६॥

तरक बुराई बहुत विधि हैरिप माया जाल।
नरम होइ पल एक में करन जाइ तत्काल॥ १७॥

मरा मना भजिवौ करौ गरा पदो नहिं कोइ।
ईसो धूसा जानिये हूका पैंलि न सोइ॥ १८॥

नयराना व्यापक सकल रकारानि सब ठौर।
वदेसुवा सब में बसै मीनानघ सिर मौर॥ १९॥

नाकरिये नहिं मांगते कछून लागत दांम।
रैंमानैं जु त्रिपा बुफैं पी पाणी विश्राम॥ २०॥

---

१५ वां दोहा—रसु का सुल्टा—सुर, देवता। रन का सुलटा—नर, मनुष्य। शुप का सुल्टा—पशु, मूर्ख।

१६ वां दोहा—तारी का सुल्टा—रीता। पैरा का सुलटा—राखै। लैंवौ का सुल्टा—वौलैं।

१७—तरक का सुल्टा—करत। हैरिप का सुलटा, परि है। नरम का सुलटा, मगन है। करन का सुल्टा, नरक।

१८—मरा मना का सुल्टा—नाम राम—राम नाम। गरापदो का सुलटा—दोप गरा=राग दोप। ईसो धूसा का सुल्टा—साधू सोई। हूका पैंलि का सुलटा—लिपै काहू-काहू (न) लिपैं।

१९—नयराना का सुल्टा—नारायण। रकारानि का सुल्टा—निराकार। वदेसुवा का सुल्टा—वासुदेव। मीनानघ का सुल्टा—घननामी। जिसके बहुत नाम हों। अनंत गुणवाला।

कर्म काटि न्यारा भया वीसौं विश्वा संत।
रमैं रैनि दिन राम सौं जीवै ज्यौं भगवंत ॥ २१ ॥
नाम हृदै निश दिन सुनै मगन रहै सब जांम।
देपै पूरन ब्रह्म कौं वही एक विश्रांम ॥ २२ ॥

॥ इति गूढार्थ ॥ २ ॥

॥ अथ आद्यक्षरी ॥❀

दोहा

स्वा ति वून्द चातक रटै, **मी** न नीर बिन छीन ॥
दा दू जीयौ रामहित, **दू** सर भाव न कीन ॥ १ ॥
स मदृष्टि सब आतमा, **त्य** क्त किये गुण देह ॥
क र्म काट लागै नहीं, **रि** दै विचार सु येह ॥ २ ॥

२०—२१—२२—दोहों में कोई विशेष टीकायोग्य गूढार्थ नहीं दिखाई देता है ॥

॥ इति गूढार्थ की सुन्दरानन्दी टीका ॥

❀ इन आठ दोहों में आठ अक्षरों का यह दोहा स्वा० सु० दा० जी ने इस ढंग से दिया है कि एक २ अक्षर, एक २ दोहे के पाद के आदि में आ गया है। चित्रकाव्य के भेदों में 'आद्यक्षरी' भी एक चतुराई होती है। यह अंतर्लापिका का एक भेद है—("अलंकार मंजूषा" पृ० २१)—

दोहा यह है:—

स्वा—मी—दा—दू—स—त्य—क—रि ।भ—जे—नि—रं—ज—न—ना—थ—॥
ति—न—ही—दी—या—आ—पु—ते ।सुं—द—र—कै—सि—र—हा—थ—॥

१—चातक=पपीहा। मीन=मछली।

२—त्यक्त=छूटे। मिटे। काट=मैल।

भव जल राये बूडते, जे आये उन पास ॥
निर्भै कीये पलक मैं, रंच न जम की त्रास ॥ ३ ॥
जन्म मरण तिनि के मिटे, नजरि परे जे कोई ॥
नाटक मैं नाचै नहीं, थकित भये थिर होइ ॥ ४ ॥
तिरत न लागी वार कछु, नवका दीयौ नांम ॥
हींन जाति हरि कौं मिले दीरघ पायौ धांम ॥ ५ ॥
या में फेर न सार कछु आशा पूरइ आइ ॥
पुन्य पाप के फन्द तें, ते सब दिये छुड़ाइ ॥ ६ ॥
सूंन्य मांहि सूरय उदय, दश हूं दिशा प्रकाश ॥
रहै निरन्तर मग्न है, कैसो जन्म विनाश ॥ ७ ॥
सिद्ध भये सब साधि कैं, रही न कोऊ शंक ॥
हारि जीत अब को करै, थपै और ई अंक ॥ ८ ॥

॥ इति आद्यक्षरी ॥ ३ ॥

५—दीरघ=बड़ा, विशाल ।

७—सून्य=शून्यावस्था । निर्वृत्ति का स्थान । सूरय=ब्रह्म का प्रकाश । कै=किये । सौ=सारे । वा अनेक ।

८—साधिकैं=साधन करके । अभ्यास के बल से । हार जीत=जीवन जंजाल का जुवा खेल । थपै=स्थापित हो गये, चण गये । अंक=हिसाब, लेख । कर्म रेखा ॥

॥ अथ आदि अंत अक्षर भेद ॥ ४ ॥

दोहा

येकाकी जेई भये । करी न कोई टेक ॥
येक ब्रह्म सौं मिलि गये । कमधज साधु अनेक ॥ १ ॥
दोऊ कुल तें ह्वै जुदो । इन के संग न जाइ ॥
दोप छाडि पावै मुदो । इहां उहां सुख पाइ ॥ २ ॥
तीनौं पन मैं ह्वै जती । नख शिख पावै चैन ॥
तीक्षण होइ महा मती । नर हरि देषै नैन ॥ ३ ॥

आद्यन्ताक्षरी में यह छंद है:—ये क ये क दो इ दो इ । ती न ती न चा रि चा रि । पां च पां च सा त सा त ।

(१) त्यागी, अकेला—"एकाकी यतचित्तात्मा" (गीता) टेक=हठ, तर्क वितर्क, वाद विवाद, संदेहादि । कमधज=कवंधज—महावीर, शूरताधारी, जिन्होंने अपना सिर भक्ति ज्ञान में दे दिया और काम क्रोध लोभ मोह विषयादि से लड़े ।

(२) दोऊ कुल=हिन्दू और मुसलमान । अथवा स्त्री पुत्रादि सम्बन्धियों का कुल और विषय और इन्द्रियादि का कुल। मुदो=मुद्दआ (अ०)—असल मतलब, प्रधान अर्थ वा प्रयोजन (ज्ञान भक्ति वा ध्येय परमात्मतत्व की प्राप्ति) । इहां उहां=इस लोक में और परलोक में ।

(३) तीनोंपन=बालकाल, युवावस्था और वृद्धावस्था । अर्थात् बालब्रह्मचारी और संयमी—जैसे कि सुन्दरदासजी स्वयम् थे । चैन पाने का उनका निजका अनुभव था सोही कहा है । मती=बुद्धि महा तीक्ष्ण (तेज, तीव्र) हो जैसे वे आप तेज़ अक़्ल के थे । नर हरि=नर (भक्त वा ज्ञानी जन) हरि (परमात्मा) को देखै—साक्षात् अनुभव करैं । वा नर हरि=नृसिंह (भगवान) ।

चारि वेदकी सुनि रिचा । रिस आपनी निवारि ॥
चाहि छाडि ज्यौं ह्वै सचा । रिण सिर तें जु उतारि ॥ ४ ॥
पांवन नाम सदा जपां । चरन कवल चित्त राच ॥
पांनि ग्रहण कैसैं थपां । चमकि कहैं मुख सांच ॥ ५ ॥
साध संग ऊंची दसा । तम रज कौ ह्वै पात ॥
सार सुधा पावै उसा । तत दरसी कुशलात ॥ ६ ॥
आयौ ठाहर अवस आ । ठहरायौ दिठ पीठ ॥
आशा तृष्णा छाडि आ । ठवकि लियौ मन धीठ ॥ ७ ॥

---

(४)—रिचा=ऋचा, मंत्र । रिस=क्रोध, हठ । चाहि=कामना । सचा=निष्कपट, भगवान से सच्चा प्रेम । रिण=ऋण । तीन प्रकार के ऋणों (कर्जों) से ज्ञानी पुरुष उऋण होकर उतार देता है—पितृऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण ।

(५)—पांवन=पवित्र । जपां=जपते रहैं । राच=रचाकर, खूब लगा कर । पांनिग्रहण—पति परमेश्वर से स्त्री-पुरुष का सा गाढ़ प्रेम । कैसे थपां=स्थापन करें, जोड़ें । चमकि=सतर्क, सावधान होकर, संसार के धोखे से चमक कर । सदा सत्यव्रत धारण करें ।

(६)—दसा=दशा, स्थिति, दर्जा, मंज़िल । तम रज=तमोगुण और रजोगुण का पात (गिराव) निवारण होकर सतोगुण (शांतिभाव) उत्पन्न हो वा पावै । उसा=वैसा जैसा कि हरेक आदमी को नहीं मिलता । अत्यन्त उत्कृष्ट । महान । ततदरसी=तत्त्वदर्शी, ज्ञानी । कुशलात=शांति, कैवल्य की अवस्था । योगक्षेम ॥

(७)—चंचल मन अष्टांग योग साधन से अपनी ठाहर (ठौर=स्थान, जगह, अन्तरात्मा में स्थित निश्चल) आही तो गया । दिठ पीठ=दृष्टि वा पृष्ट परसे, सन्मुख वा पीठ पीछे, अपरोक्ष वा परोक्ष । आ=आव, आव ऐसे ध्यान वा वचन के

घेरि पंच पर्वत लंघे । रिद्धि सिद्धि दी डारि ॥
माती हरि रस सौं उमा । रिझये शिव शिवनारि ॥ ८ ॥
रापत काहे न वापुरा । मसकति करि कै माम ॥
नास करै मति आपना । मरद होह तज काम ॥ ९ ॥
लेवै तौ हरि नाम ले । हरि सौं करै सनेह ॥
देवैं तौ उपदेश दे । हम जानत हैं येह ॥ १० ॥
तापस कै काचा मता । तप करि जारत गात ॥
माल मुलक चाहै रमा । तरसत ही दिन जात ॥ ११ ॥

साधन से । ठवकि=रोक लिया । धीठ=ढीठ, धृष्ट ।

(८)—पंच पर्वत=पांच इन्द्रियां वा पंचतत्व जीते । लंघे=उलांग गये । रिद्धिसिद्धि=करामातें । "करामात कलंक है" (दादूजी का वचन) ऐसा समझ छिटका दी । उमा=पार्वती, प्रकृति अपने प्रवृत्ति के स्वभाव को छोड़ निवृत्ति में लग गई । शिवनारि=पार्वती, माया । शिव=परमात्मा, परम पुरुष को प्रसन्न किया ॥

(९)—वापुरा=वेचारा, दीनजन । माम=अहंकार । मसकति=मशक्कत (अ०) मेहनत, साधन, अभ्यास । अपना=आत्मा का । अज्ञान वा कुकर्म से अपनी आत्मा का अकल्याण मत कर । मरद=मर्द (फा०) वीर होकर काम (कामनाओं) को त्याग दे ॥

(१०)—लेने देने का व्यवहार इतना ही उत्तम है कि लेने को हरि नाम है देने को सत्संग" । "साधुजन लेवोही करतु हैं" । "साधुजन देवो ही करतु हैं" । ये दोनों सवैया सु० दा० जी के ऐसे ही अर्थों को वताते हैं ।

(११)—जो तपस्वी तप करके कच्चा मता (मनसूवा) कर लेता है, तप से डिग जाता है, वह अपने शरीर को मानों वृथा ही जलाता गलाता है । जिसने संसार के धन, जन, राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति की कामना और लालसा में तरसते ही जीवन गमाया । वह वृथा जीया ।

गेरत नग नर जग मगे । हरिनाक्षी अति प्रेह ॥
येक न जान्यौ जिनि किये । हठ सिर डारी पेह ॥ १२ ॥
जाप जपे बिन है सजा । गिरा अमी रस पागि ॥
भाव राषि सज्जन सभा । गिर परि चरनहुं लागि ॥ १३ ॥
माधवजी भजि त्यागि मा । रस पी बारंबार ॥
लाभ कौन यातें भला । रहै सुरति इकतार ॥ १४ ॥
जाल पसार्‌यौ है अजा । हद बेहद नहिं नाह ॥
राति दिवस आवै जरा । हरि भजि करि निर्वाह ॥ १५ ॥

---

(१२)—मृगनयनी स्त्री से अति प्रेम करके रति में अपने जोहर (वीर्य) का क्षय कर, जग मगे (जगत के मार्ग में—विषयानन्द में) अनुरक्त रह कर, एक अर्जुन परमात्मा को नहीं जाना । उन्होंने तो हठ कर अपने जीवन को धूल में मिला दिया ।

(१३)—रामनाम के जपे बिना (पुनर्जन्म के भोगों का) दण्ड मिलता है । इस लिये जिह्वा (वाणी) से अमृत भरे नाम संकीर्त्तन में जुटजा । साधु संगति में श्रद्धा रख । उनके और भगवान के चरणों में पड़जा ।

(१४)—मा (लक्ष्मी, धनादि सम्पत्ति) त्याग कर भगवान को लागकर भजता रह । नामामृत सदा पीता रह । सुरति (भगवान में सच्ची रति वा वृत्ति) एक तार से लगातार इकतार लगी रहने से बढ़कर और अच्छा लाभ कुछ भी संसार में नहीं है ।

(१५)—अजा—अजन्मा (माया) ने जीवों पर मोहजाल फैला रक्खा है जैसे शिकारी हिरन आदि को फासने को । शिकारी के जाल की तो कोई हद वा ओर-छोर भी होता है । परन्तु मायाजाल की कोई सीमा नहीं है और न इसके नाह (फंदों वा बंधनों) की कोई हद ही है । भगवान को भजकर इस फंद से निकल कर जीवन को बिता ॥

वास करत सब जग मुवा। रन वन चढे पहार ॥
पाप कटै न बिना कृपा। रटि लै सिरजन हार ॥ १६ ॥

॥ इति आद्यंताक्षरी ॥ ४ ॥

॥ अथ मध्याक्षरी ॥

छप्पय

शंकर कर कहि कौन ॥ पिनाक ॥
कौन अंबुज रस रंगा ॥ भ्रमर ॥
अति निलज्ज कहि कौन ॥ गनिका ॥
कौन सुनि नाद हिं भंगा ॥ कुरंग ॥

---

(१६)--संसार वा जगत जन्मता है मरता है और अपने वसने के अनेक उपाय करता है। अरण्य, वन वा पहाड़ों पर भी वास करता है वा एकांत वास करता है। परन्तु बिना भगवत्कृपा के पाप नहीं कट सकते। इस लिए बनानेवाले मालिक को भजता रह ॥

आ ठ आ ठ घे रि घे रि मा रि। रा म ना म ले ह दे हा ॥ ता त मा त गे ह ये ह। जा गि भा गि मा र ला र। जा ह रा ह वा र पा र ॥ (१६ तक) ॥

॥ इति आद्यंताक्षरी ॥ ४ ॥

मध्याक्षरी—तीनों मध्याक्षरी छन्द अंतर्लापिका के भेद हैं, क्योंकि प्रश्नों के उत्तर छन्दों ही में दिये हैं। यही नियम है (देखो "प्रियाप्रकाश" पृ० ४११)

(१)—पिनाक= महादेवजी का धनुष। गनिका=वेश्या। कुरंग=हिरण—नाद (गाना) सुनकर स्तब्ध हो जाता है अथवा खुड़का सुनकर चमक जाता है। कुंजर=हाथी जो विषय-मद में करतबी हथणी को देख कर उस पर झपटता है और

काम अन्ध कहि कौंन ॥ कुंजर ॥
कौंन कै देषत डरिये ॥ पंनग ॥
हरिजन त्यागत कौंन ॥ कलेश ॥
कौंन पाये तें मरिये ॥ मोहुरो ॥
कहि कौंन धात जग में रवन ॥ कनक ॥
रसना कौं को देत वर ॥ सारदा ॥
अब सुन्दर द्वै पप त्यागि कै ।
'नाम निरंजन लेहु नर' ॥ १ ॥※ (१) ॥
सब गुन युक्त सु कौंन ॥ विचित्र ॥
कौंन सकुचें नहिं देतें ॥ उदार ॥
विष्णु पारषद कौंन ॥ सुनंद ॥
दूर दुख कौंन तजे तें ॥ मदन ॥

गाड़े में जा पड़ता है । पंनग=सर्प-विषधर काला सांप । कलेश=क्लेश । भगवत् की भक्ति या ब्रह्म ध्यान के आनन्द में उनको संसार का दुःख नहीं गामता है । मोहुरो=ज़हरी मोहरा । रवन=(रमण) रम्य, सुन्दर । कनक=स्वर्ण, सोना । वर=वरदान सारदा=शारदा, सरस्वती । द्वै पप=दोनों पक्ष—हिन्दू और मुसलमान का । निरंजन मतवाले दोनों से भिन्न हैं ॥—

※ इसका उत्तर एक साधु पुरोहित श्री नारायणजी द्वारा प्राप्त हुआ सो यों हैः— "शंकर करहि पिनाक भ्रमर अंबुज रस रंगा । अति निलज्ज गनिका सु कुरँग सुनि नादहि भंगा ॥ कहि कुंजर (खंजन) कामांध अनल (पंनग) देखत ही डरिये । हरिजन त्याग कलेश बहुत (महरु) खाये ते मरिये । कनक धात जगमें रवन रसना को दे सरस वर । इनमें द्वै पप त्यागि के नाम निरंजन लेहु नर ॥ १ ॥

(२)—विचित्र=चतुर अद्भुत प्रतिभा का । उदार=दानी । विष्णु पारपद=श्रीकृष्ण का सखा जिसका नाम सुनंद था । मदन=कामदेव । अचेत=सावधानी जिसमें न हो, मूर्ख । पातग=पातक, पाप । वन्यज=वाणिज्य, व्यापार । मघवा=इन्द्र, मेघ, बादल ।

समुझत नहीं सु कौन ॥ अचेत ॥
कौन हरि सुमिरत भागै ॥ पातग ॥
वनिक वृत्ति कहि कौन ॥ वन्यज ॥
कौन जल वर्षन लागै ॥ मघवा ॥
कहि कौन नृपति तजि द्वन्द्व सब ॥ जनक ॥
सदा रहै मध्यस्थ मन ॥
यौ सुन्दर आपुहि जानि तूं ।
'चिदानन्द चैतन्य घन' ॥ २ ॥

चौपई ※

पोवै कहा सूत्र कै मांहिं ॥ मनिका ॥
नारद सुनत चालै को नांहिं ॥ कुरंग ॥
सीस कवन कै अंकुश गंजन ॥ कुंजर ॥
को विदेह भजि भयौ निरंजन ॥ जनक ॥

जनक=वैदेही जनकराजा जो सुख दुःख दोनों को जीत चुके थे और फिर राज्य करते थे और उदासीन (मध्यवर्त्ती) रहते थे। शुक को ज्ञान देने वाले। "उत्तर वरण जु बाहिरै बहिर्लापिका होय। अंतर अन्तरलापिका यह जानैं सब कोय"। (कवि प्रिया की टीका। प्रियाप्रकाश पृ० ४१०)

※ इसमें से नि-रं-ज-न-भ-ग-वं-त-सु-क-दे-व-दा-दू-दा-स । यह निकलता है।

(५) – नाद=उत्तम गान सुनते ही हिरण खड़ा रह कर सुना करता है। शिकारी को मौका मिल जाता है। गंजन=मारनेवाला। वश करने वाला। विदेह=जिसको योगारूढ़ता वा ज्ञान की ऊंची गति मिल गई हो। राजा जनक कर्मयोगी थे। राज करते हुये भी इतने ज्ञानी सिद्ध थे कि परमहंस शुकदेवजी ने भी उनसे ज्ञान सीखा था, जब पिता व्यासदेव ज्ञान की पराकाष्ठा तक उनको नहीं पहुचा सके थे।—इसही आख्यायिका के संकेत स्वरूप मध्याक्षरों में 'शुक' मुनि का नाम

कौन नगर जहां उपजै लौंन ॥ सांभर ॥
नदी नाथ सो कहिये कौन ॥ सागर ॥
का ऊपर असवार चढन्त ॥ पवंग ॥
कहा कटै भजतें भगवन्त ॥ पातक ॥
दुखदाइक सो कहिये कौन ॥ असुर ॥
गिर कैलाश कवन को भौन ॥ शंकर ॥
पंथी कौं का दीजै भेव ॥ संदेस ॥
कौन त्यागि चाले सुकदेव ॥ भवन ॥
को वन मैं गहि बैठै मौन ॥ उदास ॥
हस्ती के सिर शोभा कौन ॥ सिंदूर ॥
काके कीये कनक अवास ॥ सुदामा ॥
त्यागी कौन सु दादूदास ॥ ४ ॥ वासना ॥ ३ ॥

॥ इति मध्याक्षरी ॥ ५ ॥

दिया है। और इस में भगवंत—निरंजन—और दादूदास को साथ कहने से यही अभिप्राय है कि जैसे शुकदेव भगवंत स्वरूप हो गये थे वैसे ही दादूजी ब्रह्मरूप हो गये थे। निरंजन पंथों में सिद्धान्त की यही विशेषता है कि भक्तिमय-ज्ञान द्वारा ही मात्र अद्वैत की सिद्धि प्राप्त होती है। शुकदेवजी से गौड़पादाचार्य—शंकराचार्य—रामानन्द—कबीर—गोरख—नानक—दादूदयाल आदि सिद्ध महात्माओं द्वारा यह सिद्धांत जगत में व्यापक होकर लाखों का इसने निस्तारा किया।

३—इन चारों चौपई छन्दों में से जो उत्तर निकलता है वह छन्द के अंदर न होने से अर्थात् बाहर रहने से बहिर्लापिका है। और मध्य में से उत्तर निकलता है—अर्थात् उत्तरों के शब्दों के आदि के और अन्त के अक्षर छोड़ दिये जाने से बीच के अक्षर उत्तर देते हैं।

॥ अथ चित्रकाव्य के बन्ध* ॥

(१) अथ छत्र बन्ध ।

छप्पय

सुंनहुं अंक की आदि दशाइक विधि सुत केते ।
रस भोजन पुनि जान भनौ योगांगहि जेते ॥
जलज नाभि दल बूझि हुई कै कंचन बांनी ।
निरपि भुवन पुनि कहौ रंभ वय किती वषांनी ॥
जग मांहि जु प्रगट पुरान कै नंदन॥नख कर पग गनं ॥
सब साधन के सिर छत्र यह 'सुन्दर भजहु निरंजनं' ॥ १ ॥

---

* प्राचीन गुटके में ये १४ चित्रकाव्य चित्रों में दिये हैं, तथा इनमें से ७ के छंद भी पृथक् दिये हैं उनके नाम ये हैं—छत्रबंध, कमलबंध १, कमलबंध, २ चौकीबंध १, चौकीबंध २, वृक्षबंध, गोमूत्रिकाबंध। मैंने 'चित्रकाव्य' ऐसा नाम यों रक्खा है कि ये छन्द चित्रों में भी आ सकते हैं। इसलिए इनको एकस्थानी भी कर दिया है, और यही क्रम खुले पत्रे की पुस्तक का है।

१—छत्रबंध— यह छप्पय अन्तर्लापिका की है। पदार्थों के प्रथम शब्दों के प्रथम अक्षरों से—'सुं—द—र—भ—ज—हु—नि—रं—ज—नं'—यह पादार्थ निकलता है जो छन्द के अन्त में विद्यमान होने से अन्तर्लापिका हुई। इसकी व्याख्या दी जाती है— सुंनहुं अङ्क की=अङ्कों की आदि सुन्य (शून्य है)। अथवा अंकों की आदि ऐका १ है ऐसा सुना है। दशाइक...=वा विधिसुत=सनकादिक ४ हैं—सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनातन। इनकी गिनती ४ है। और इनकी दशा सदा सर्वदा बाल्यावस्था बनी रहती है और ये अमर हैं। ब्रह्मा के ये मानसपुत्र हैं। सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए थे।—रस भोजन=भोजन के पदार्थों के रस छह हैं=मीठा,

खट्टा, खारा, चरपरा, कड़ुवा, और कसेला। योगांग=आठ हैं—१ यम, २ नियम, ३ आसन, ४ प्राणायाम ५ ध्यान ६ धारणा ७ प्रत्याहार, ८ समाधि। जलज नाभिदल=ब्रह्मा के कमल के (जिसमें वह प्रगटा) १० दल (पांखड़ियां) हैं। कंचन वर्नी=उत्तम सोने के १२ वानी कही जाती हैं। यह सोना "बारहवानी का" है, ऐसा कहते हैं। भुवन=लोक १४ हैं—७ स्वर्ग और ७ पाताल। (स्वर्ग ७—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक। ७ पाताल—तल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल।) रंभवय=रंभा इन्द्रकी अप्सरा की सदा १६ वर्ष की वय रहती है। पुराण=१८ प्रसिद्ध हैं (पद्म, विष्णु, वराह, वामन, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मांड ब्रह्मवैवर्त, १० भविष्य, भागवत, मार्कंडय, मत्स्य, नारद, स्कंद, कूर्म, लिंग, १८ गरुड़।) नंदन=पुत्र (जन्म लेते ही) के २० नख होते हैं। सब साधन के...=यावन्मात्र भी जितने ज्ञान कर्म और भक्ति के साधन (प्रक्रिया—अभ्यास) मुक्ति वा ब्रह्मैक्य के लिए हैं उन सबका शिरमौर यह निरंजन निराकार शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म परमात्मा का भजन है। उसको भजना चाहिये। इस छप्पय के पदों के आद्याक्षरों में संख्याएं हैं—०—१—(२)—४—६—८—१०—१२—१४—१६—१८—२०। इसका यह अभिप्राय लिया जा सकता है कि शून्य में से क्रमशः सब सृष्टि हुई। जो बीस तक संख्या ली गई इसका अर्थ यह माना जा सकता है कि निरंजन का भजन बीसों विस्वा (पूर्णतया) उत्तम और सब में ऊंचा है, जिसके सब साधन का प्रभाव वा फल अवश्य ही सुप्राप्य और सद्गति देनेवाला है।—इस छप्पय का उत्तर वा संख्याओं का उल्लेख एक दूसरे छप्पय में चित्रकाव्य के चित्र में दाहिनी तरफ को छत्र के नीचे दिया हुआ है। सुविधा के लिए यहां भी लिख देते हैं।—"सुन्यौं आदि एकड़ो, दसा सनकादिक एकं। रस भाजन पट् कहि, भनत अष्टांग विवेक॥ जलजनाभि दल दसम, हुई कलि वानी वारा। निरषि लोक दसचारि, रंभ षोडस व्रय प्यारा॥ जग मांहि पुरान सु अष्टदस, नंदन नख बीसहु गनं। सब साधन के सिर छत्र यह, सुन्दर भजहु निरंजनं" ॥ १ ॥ सब साधन . का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि सर्व साधुओं (सन्त, महात्मा, योगी, भक्त आदिकों) के सिर पर छत्र है। निरंजन का भजन सबका रक्षक है। इसकी छत्रछाया में सब

(२) अथ कमल वंध

छप्पय

दरसन अति दुख हरन, रसन रस प्रेम वढ़ावन ॥
सकल विकल भ्रम दलन. बरन वरनौ गुन पावन ॥
सुढरन कृपा निधान, षवरि जन की प्रतिपालन ॥
हलन चलन सव करन, रितय करि भरि पुनि ढारन ॥
सठ संमझि विचारि संभारि मन, रहत न काहे परि चरन ॥
नम नरक निवारन जानि जन, सुंदर सव सुख हरि सरन ॥ २ ॥

उपासकों और ज्ञानी आदिकों की रक्षा और सिद्धि का योगक्षेम होता है। इस उत्तर की छप्पय की अर्धालियों के आद्यक्षरों से भी वही पादार्थ निकलता है—सुं–द–र–भ–ज–हु–नि–रं–ज–नं ॥ चतुरदासजी के लिखित चित्रकाव्य के चित्र में इस ही प्रकार मूल छप्पय और उसके उत्तर की छप्पय आमने सामने दी हुई हैं। उत्तर की छप्पय उलटी लिखी हुई है। उलटी लिखने से ही उक्त अर्धाली स्पष्ट पढ़ी जाती है और ऐसा न करते तो सुन्दर वा संगत भी नहीं रहती ॥—यहां ही यह वात भी लिख देनी उचित है कि स्वामी चतुरदासजी ने जिस पानेपर छत्रवंध का चित्र लिखा है, उसी पर नीचे गोमूत्रिका के दोनों छन्दों को ऊपर नीचे लिखकर "गोमुत्रिका वंध जिहाज" नाम देकर जिहाज के आकार की चेष्टा की है। परन्तु ग्रन्थकार स्वामी सुन्दरदासजी ने "गोमूत्रिका वंध" ही नाम दिया है जहाज वंध का नाम नहीं दिया है। अतः हमने गोमूत्रिका के आकार ही चित्र में लिखे हैं वा त्रिपदी वध भी जो मूल प्राचीन गुटके में है। गोमूत्रिका वंध के छंद से (१) त्रिपदी (२) चरणगुप्त (३) कपाटवंध (४) अग्निकुण्ड (५) अश्वगति वंध–"कविप्रिया", "चरण चन्द्रिका" आदिक ग्रन्थों में वनने सम्भव लिखे मिलते हैं। परन्तु हम को जहाजवंध नहीं मिला। असम्भव यह भी नहीं है। चतुरदासजी ने भी किसी आधार अथवा प्रमाण ही से जहाजवंध वनाया होगा।—संपादक ॥

(२) कमल वन्ध १ ला—अर्थ स्पष्ट है। अंत्य पद में 'नम' शब्द नमस्कार

(३) कमल बंध

छप्पय

गगन धर्‌यौ जिनि अधर टरत मरजाद न सागर ॥
निर्गुन ब्रह्म अपार कहै को लिपि कै कागर ॥
टगत न धरनि सुमेर हठ हि गन यक्ष भयंकर ॥
रिदय न पावत तौर विष्णु ब्रह्मा पुनि शंकर ॥
स्वर्गादि मृत्यु पाताल तर भजत तोहि सुर असुर नर ॥
रत भये जानि सुन्दर निडर प्रगट निकट हरि विस्वभर ॥ ३ ॥

कर ऐसा अर्थ देता है। रसन रस=जिह्वा पर नाम के उच्चारण, वा भजन करने से प्रेमानन्द बढ़ाने वाला—हरि भगवान के चरणों का आश्रय है। विकल=बुद्धि की विकलता। दलन=नाशक। भ्रम=अज्ञान, द्वंद्व। पावन (पवित्र वा पवित्र करने वाले) हरि चरणों के गुणगण। वरन वरनौ=भांति-भांति के, वा अनंत प्रकार के हैं। अथवा वर जो श्रेष्ठजन (ब्रह्मादिक देव, ऋषिमुनि भी उनका नं=नंही। वरनौ=वर्णन कर सकते हैं। सुढरन=बहुत (दीनजनों पर) दया से द्रवीभूत (जिनका हृदय पिघला सा) होता है। खबरि=दशा पर वा ज्ञात होते ही। प्रतिपालन=पालना करने वाले, दीनजनों की बुरी दशा में सहायक। हलन चलन=जड़ को चेतन (करने वाले—अर्थात् जीवत्व) के स्रष्टा। रितय=रीते को वा रीता करके। भरि ढारन=भरकर फिर हलका देनेवाला, रीता कर देने को समर्थ—"रीता भरै भर्‌या ढुलकावै"। नम=नमस्कार कर ॥

(३) कमलबंध २ रा—कागर=कागज, पत्र, पुस्तक। टगत न=नहीं डिगते, स्थिर हैं। हठहि=दूर हो जाते हैं। रिदय=हृदय। तौर=तेरा, अथवा ढंग, भेद। मृत्यु=मृत्युलोक, पृथ्वी पर। अंत्य पाद की अन्वय यों होगी—विश्वंभर हरि को निकट में प्रगट जानि सुन्दरदास निर्भय (निडर) रत (अनुरक्त-तल्लीन) हुये (हो गये)।

(४) चौकी वंध

चामर

दरस तें उसका नाव दिल में इसक उपजै दरद ॥
दरद वंद पुकार करतें होइ सवसौं फरद ॥
दर फकीरी में फिरत फारिक जानि सोई मरद ॥
दर मजल सोई जाइगा दिल किया सुंदर सरद ॥ ४ ॥

(५) चौकी वंध ।

चौपईया

या पासें आप रहै अविनाशी देखि विचारहु काया ॥
या काहु न जाना जगत भुलाना मोहे मोटी माया ॥
या मांटी मांहैं हीरा निकस्या सतगुरु पोज लषाया ॥
या पाल लपेट्यां सुंदर दीसै याही पासैं पाया ॥ ५ ॥

(६) गोमूत्रिका वंध

दोहा

माया दुख को मूल है काया सुख नहिं लेश ।
पाया विष मामूर है आया नखतहि केश ॥ ६ ॥

---

(४) चौकीवंध १ ला—दरसतें···उसके दर्शनों और नाम लेने से हृदय में प्रेम और विरह की वेदना उत्पन्न होती है। दुरद वंद=दर्द मंद विरह से दुखी भक्तजन। फरद=(फा०) पृथक् त्यागी। फारिक (अ०)=त्यागी। मरद=(फा०) मर्द, पुरुषार्थी। सरद (फा०) सर्द, शांत।

(५) चौकीवंध २ रा—या पासें=इस देह (काया) धारी मनुष्य के पास (निकट=हृदय में) परमात्मा रहता है। मोहै=क्योंकि भगवान की माया मोह जाल फैला कर भुला देती है। मांटी=काया जो मृत्तिका आदि से बनी है और मरने पर मिट्टी हो जाती है। हीरा=परमात्मा रूप अमूल्य रत्न। लषाया=बताया। पाल लपेट्यां=यह शरीर 'चामकी पुतली' है;

(६) गोमूत्रिका वंध—इसकी भी व्याख्या "चित्र०" से दी जाती है।

गोजी गोजी नर नियें बिंदु पाल रह राम।
दक्ष विवेकी पाइ है चतुरक्षर विश्राम ॥ ७ ॥ *

यथा गोमूत्रिका—गो=बैल, वृषभ चलते हुए मूतै और उसकी मूत्रधारा टेढी मेढी भूमि पर उघड़ै उसके आकार का लहरिया सा हो उसका चित्र बंध—इसकी विधि "सूधी पंक्ति युगल लिखो तिर्यक बांचि सुजान। सूधे तिर्यक शब्द इक गोमूत्रिका प्रमान"। १५। (चित्र चंद्रिका ग्रन्थ पृ० ४४।)—(गोमूत्रिका के प्रमाण दोहे की व्याख्या)—दो पंक्तियां छन्द की सीधी लिखें। उन्हें पहिले सीधी रीति से पढ़िये। फिर दोनों पंक्तियों के अक्षरों को एक २ छोड़ कर पढ़िये ऊपर का पहिला तो नीचे का दूसरा। (ऊपर का दूसरा तो उसके साथ नीचे का तीसरा-इत्यादि) टेढ़ी रीति से दोनों रीति से पढ़ने में जहां एक ही अक्षर निकलै वहीं 'गोमूत्रिका' बंध होता है। यथा 'माया' और 'काया' में दूसरा अक्षर-'या'-एक ही बुलाता है। ऊपर नीचे की पंक्तियों में यही बुलता है। इसको एक ही बेर लिखा जाय तब गोमत्रिका का आकार हो जाता है ॥—अर्थ दोहे का—काया शरीर में लेशमात्र भी (वास्तविक—सात्विक) सुख नहीं है। विषयों का सुख परिणाम में दुःख देता है। विषय सब माया के विकार मात्र हैं। मामूर=भरा हुआ—खूब भरपूर जन्म भर इन विषयों का विष खाया है। और अब शिपनख सफेद बाल भी आ गये। मरने चले परन्तु विषय नहीं घटे ॥

* ७ वें छंद के अन्तिम चरण में पाठांतर 'दक्ष' शब्द का 'चतुर' शब्द है।

(७) (गोमूत्रिका)—गो=इन्द्रिय। जी=जीव। इन्द्रियों के सुख को जीता जिस नर (पुरुष) ने नियें (नियत=निश्चय माना) कर निर्णय कर लिया, सो ठीक नहीं। बिंदु (शरीर का वीर्य) पाल कर अर्थात् जितेन्द्रिय रह कर रह (रहै वा रटै) राम (भगवान को)। दक्ष=चतुर। विवेकी=ज्ञानी। चतुरक्षर=चार अक्षरों—गोविंदजी—में विश्राम=शांति वा सुख। चित्र में गोविंदजी निकलता है)।

(७) अथ चौपड वंध

चौपई

हों गुन जीत सहों सबकी जु। हौं सनमान सयान तजौं जु॥
हौं कन राषत या तन में जु। हौं वन में तजि जात हुतौ जु॥ ८॥

(८) अथ जीनपोस वंध

उछाला

सरस इसक तन मन सरस। सरस नवनि करि अति सरस॥
सरस तिरत भव जल सरस। सरस लगत हरि लइ सरस॥ ६॥
सरस कथा सुनि कैं सरस। सरस विचार उहै सरस।
सरस ध्यान धरिये सरस। सरस ज्ञान सुन्दर सरस॥१०॥

(यह छंद चित्रकाव्य का ही है ग्रन्थ में नहीं है।)

(६) अथ वृक्ष वंध

मनहर

एक हो विटप विश्व························भ्रम भूल है॥११॥

(यह छंद "मन के अंग" में २३ वां छंद है।)

(१०) अथ वृक्ष वंध

दोहा

प्रगट विश्व यह वृक्ष है, मूला माया मूल।
महातत्व अहंकार करि, पीछे भया सथूल॥ १२॥

---

(८) (चोपड़ वंध)—हौं=मैं। गुन=माया के तीनों गुणों को। सहों=तितिक्षा रखता हूं। सनमान सयान=मान अपमान चतुराई (छल कपट आदिक)। कन=अल्प अहार। थोड़ा भोजन करता हूं॥

(९) (जीन पोशवंध)—सरस शब्द के अर्थ=(१) आनन्दमय (२) भक्ति-सहित (३) ताजा सदा रहनेवाला (४) रस सहित—"रसो वै सः"—रस ब्रह्म ही है। (५) काव्यादि में नवरस (६) भोजन में षट्रस (७) सार वस्तु (८)

शाषा त्रिगुन त्रिधा भई, सत रज तम प्रसरंत।
पंच प्रशाषा जानि यों, उपशाषा सु अनंत ॥ १३ ॥
अवनि नीर पावक पवन, व्योम सहित मिलि पंच ॥
इनही कौ विस्तार है, जे कछु सकल प्रपंच ॥ १४ ॥
श्रोत्र तुचा दृग नासिका, जिह्वा है तिन मांहिं ॥
ज्ञान सु इन्द्रिय पंच ये, भिन्न-भिन्न वर्त्ताहिं ॥ १५ ॥
वाक्य पानि अरु चरन पुनि, गुदा उपस्थ जु नाम ॥
कर्म सु इन्द्रिय पंच ये, अपने अपने काम ॥ १६ ॥
शब्द स्पर्श जु रूप रस, गंध सहित मिलि पुष्ट ॥
मन बुद्धि चित्त अहं तहां, अंतहकरन चतुष्ट ॥ १७ ॥
इन चौबीस हु तत्व कौ, वृक्ष अनूपम एक ॥
सुख दुख ताके फल भये, नाना भांति अनेक ॥ १८ ॥

स्वादिष्ट। (९) सुन्दरभाव और प्रेम पूर्वक। अतः जहां जैसा अर्थ लगै वा उचित हो लगालें।

(१०) (वृक्ष बंध २ रा)—देखो "ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाखा…"। (कठ-६।१३)=विश्व संसार। प्रगट=व्यक्तरूप, स्थूल होने से इन्द्रिय और ज्ञानगोचर। मूलमाया=प्रकृति साम्यावस्था में। मूल=जड़, आदि कारण। महातत्व=महत् तत्व। पीछे भया स्थूल=पहिले सूक्ष्म था। फिर त्रिगुण संपर्क से वा विकृत होने से प्रकृति विश्वरूप में स्थूल हो गई। "अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वे" (गीता)। प्रसरंत=प्रसार, विस्तार होकर महान् सृष्टि बन गई जो अनत अपरिमित है। पंच प्रशाखा=(यहां स्वामीजी ने महत्तत्व और अहंकार को दो मानकर और त्रिगुण मिलाकर) पांच प्रथम शाखा=स्कन्ध, डाले माने हैं। उपशाखा=प्रपंच, पंचीकरण की विधि से जानने योग्य। अवनि··पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश= ५। नेत्र आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां। शब्दादि=पांच तन्मात्राएं। वाक् आदिक=पांच कर्मेन्द्रियां। मन, बुद्धि, चित, अहंकार=अंतःकरण चतुष्टय। यों ५+५+५+५+४=२४ तत्व सांख्य में हैं।

तामें दो पक्ष वसहि, सदा समीप रहांइ।
एक भपै फल वृक्ष के, एक कछू नहिं पांइ ॥ १९ ॥
जीवातम परमातमा, ये दो पक्षी जांन ॥
सुन्दर फल तरु के तजैं, दोऊ एक समांन ॥ २० ॥

(११) अथ नाग वंध

मनहर

जनम सिरानौ जाइ·········नाग पासि परि है ॥ २१ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग में २९ वां छंद है।)

(१२) अथ हार वंध

मनहर

जग मग पग तजि··················धारिये ॥ २२ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अङ्ग में ३० वां छंद है ॥)

* (१३) अथ कंकण वंध

डुमिला

हठ योग धरौ·······················दूरि करै ॥ २३ ॥
(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग में ३२ वां छंद है ॥)

तामैं...उस विश्वरूपी वृक्ष में दो पक्षी रहते हैं। (१) माया से उपहित चेतन जीव। और (२) माया से अलिप्त चेतन ब्रह्म। वृक्ष के (ससार के भोग रूपी) फलों को जीव पक्षी खाता है। जब फल खाना (संसार के भोग अर्थात् माया के विकार विषय स्वादों को) जीव पक्षी छोड़ दे, तो वही ब्रह्मस्वरूप हो जाय।—"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया..." इत्यादि (मुंडक ३।१।)

* प्राचीन गुटके में दोनों कंकणवंधों के चित्र जो दिये हैं उनमें शब्द केवल वृत्त ही में हैं। चतुरदासजी के लिखे पत्रों में जो इनके चित्र हैं वे उक्त प्रकार से भी हैं और व्यूह प्रकार से भी।

(१४) अथ कंकण बंध

दुमिला

गुरु ज्ञान गहे ……………………राज करै ॥ २४ ॥

(यह छंद 'उपदेश चितावनी' के अंग में ३३ वां छंद है ॥)

॥ इति चित्रकाव्य के बंध ॥ ६ ॥

*॥ अथ 'कविता लक्षण' ॥

छप्पय

नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीकौ लग्गै ।
अंग हीन जो पढ़ै सुनत कविजन उठि भग्गै ॥
अक्षर घटि वढि होइ षुडावत नर ज्यौं खड्डै ।
मात्र घटै वढि कोइ मनों मतवारौ हड्डै ॥
औढेर कांण सो तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा ॥
कहि सुन्दर हरिजस जीव है, हरिजस विन मृत कहि तथा ॥२५॥

अथ गण विचार

छप्पय

माधोजी है मगण यहै है यगण कहिज्जै ।
रगण रामजी होइ सगण सगलै सु लहिज्जै ॥
तगण कहै तारक जरांत सु जगण कहावै ।
भूधर भणिये भगण नगण सुनि निगम बतावै ॥
हरि नाम सहित जे उच्चरहिं, तिनकौ सुभगण अट्ठ हैं ।
यह भेद जके जानैं नहीं, सुन्दर ते नर सट्ठ हैं ॥ २६ ॥

---

* यह नाम संपादक का दिया हुआ है ॥ सं० ॥ (२५) शुद्ध और सुन्दर कविता का लक्षण कितना अच्छा कहा है। औढेर=वहँगा औढेरिया । कांण=कांणां, एकाक्षी ।

(२६) अर्थ स्पष्ट। आठों गणों (म-य-र-स-त-ज-भ-न) के उदाहरण दिये हैं। देवता वर्णन में अशुभ नहीं।

गणों के देवता और फल

मनहर

* सब गुरु मन लघु आदि गल भय जांनि,
सत इम अन्त लेहु मध्य जर मानिये।
भूमि नाक चन्द तोय वायु सो गगन सूर,
अगनि हु आठ यह देवता वपानिये॥
लक्ष्मन वुद्धि जस भय आयु भ्रमन स,
तरु वंशनाश रोग जर मृत्यु ठानिये।
अष्ट गन नाम अरु देवता समेत फल,
सुन्दर कहत या कवित्त मैं प्रमानिये॥ ३ ॥

* मगण नगण मित भगण यगण भृत्य,
सगण रगण शत्रु जत सम नित्य हैं।
मिलै दोइ मित सिद्धि मित भृत्य जय जानि,
मित सम मिलै कछु लक्षण कुछित्य हैं॥
मित अरु शत्रु मिलै दुख उतपन्न होइ,
मिलै भृत्य मित करै कारिज को सत्य हैं।

---

* यह तारे का चिन्ह जिन छंदों पर है वे न तो प्राचीन गुटके (क) में न खुले पत्रे की पुस्तक (ख) में किन्तु केवल चतुरदासजी के हाथ के लिखे हुए रंगीन चित्रों में हैं जो पत्रे (ख) खुली पुस्तक के साथ सम्पादक को फतहपुर से मिले थे।—सम्पादक।

(१) मगण—SSS तीनों गुरु—पृथ्वी देवता। श्री (लक्ष्मी) फल। (२) नगण—III तीनों लघु—स्वर्ग देवता। वुद्धि फल। (३) भगण—SII—आदि गुरु फिर दो लघु—चन्द्रमा देवता। यश फल। (४) यगण—ISS आदि में लघु फिर दो गुरु। जल देवता। आयु फल। (५) सगण—IIS—पहिले दो लघु अन्त में एक गुरु। वायु देवता। भ्रमण (विदेश गमन) फल।

दास दोइ नाश होइ भृत्य सम हानि सोइ,
सुन्दर भिरति रिपु हारि कोउ पत्य हैं ॥ ४ ॥
※ सम मित साधारण समभृत्य तैं विपत्ति,
सम द्वै निफल सम रिपु शुद्ध होइ जू।
अरि मित शून्य फल शत्रु दास त्रियनाश,
रिपु सम मिलत हि हारि होत सोइ जू॥

---

(६) तगण—ऽऽ।—प्रथम दो गुरु अन्त में एक लघु—आकाश देवता। शून्य (वंशनाश) फल। (७) जगण—।ऽ।—मध्य में गुरु आदि अन्त में लघु। सूर्य देवता। रोग फल। (८) रगण—ऽ।ऽ मध्य में लघु और आदि अन्त में गुरु—अग्नि देवता। मृत्यु फल। नीचे के कोष्टकों में शुभ और अशुभ गणों को स्पष्ट लिखते हैं।

सं०	शुभगण	गण रूप	देवता	फल	मित्रादिक
१	म गण	ऽ ऽ ऽ	पृथ्वी	लक्ष्मी	मित्र
२	न गण	। । ।	स्वर्ग	बुद्धि	मित्र
३	भ गण	ऽ । ।	चन्द्रमा	यश	दास
४	य गण	। ऽ ऽ	जल	आयु	दास
५	ज गण	। ऽ ।	सूर्य	रोग	सम
६	र गण	ऽ । ऽ	अग्नि	मृत्यु	शत्रु
७	स गण	। । ऽ	वायु	भ्रमण	शत्रु
८	त गण	ऽ ऽ ।	आकाश	शून्य	सम

अरि दोइ मिलैं तहां प्रभु कौं हरत वह,
सुगण विचारि धरि असुभ न पोइ जू।
ह झ ध र घ न प भ दग्ध अक्षर आठ,
सुन्दर कहत छंद आदि देन जोइ जू ॥ (५) ॥

(४) (५) इन दोनों छंदों में गणों का संयुक्त शुभाशुभ फल दिया है। जिसको कोष्टक द्वारा स्पष्ट दिखाते हैं:—

दो दो गण	संबंध	परस्पर का योग	योग का फल
मगण+नगण SSS+III	(आपस में दोनों) मित्र	१—मित्र+मित्र ···	१—सिद्धि
		२—मित्र+दास ···	२—जय
		३—मित्र+सम ···	३—हानि
		४—मित्र+शत्रु ···	४—दुःख
भगण+यगण SII+ISS	दास	१—दास + मित्र ···	१—कार्य सिद्धि
		२—दास + दास ···	२ नाश
		३—दास + सम ···	३—हानि
		४—दास + शत्रु ···	४—हार (पराजय)
जगण+तगण ISI+SSI	सम	१—सम + मित्र ···	१-साधारण (अल्प फल)
		२—सम + दास ···	२—विपत्ति
		३—सम + सम ···	३—विफल
		४—सम + शत्रु ···	४—विरुद्ध
रगण+सगण SIS+IIS	शत्रु	१—शत्रु + मित्र ···	१—शून्य
		२—शत्रु + दास ···	२—त्रिया नाश
		३—शत्रु + सम ···	३—हार (पराजय)
		४—शत्रु + शत्रु ···	४—स्वामि नाश

* कक्का के वरन लघु बारा पडी मांहि त्रिय,
सुरां मध्य पंच लघु अआदि समान है।
युत लघु पूरब दीरघ करै आ ई ऊ ॠ,
ॡ ए ऐ ओ औ अं अः सु दीरघ वपान है॥
दूपन चालीस और भूपन च्यारि सत,
पिंगल व्याकरण काव्य कोस सौं पिछांन है।
जीतै पर सभा लपै वात पर मन हू की
सबही सराहै कवि सुन्दर कहांन है॥ ६॥

सम=उदासीन। भृत्य=दास। कुछित्य=कुत्सित, बुरा। सुंदर=मित्र (यहां यह अर्थ) उपत्य=उत्पत्ति। ब्रुद्ध=विरोध। विरुद्ध। सोइजू=सोही। ऐसा ही निश्चय करके। प्रभु=स्वामी। असुभन=अशुभगणों को। पोईजू=खो दीजै। त्याग दो। आदि देन जोइ जू=आदि (प्रारंभ में) देने के योग्य नहीं हैं। आदि में उनको न दीजे।

(६) कक्का=वर्णमाला के अकारांत (वा इकारांत उकारांत आदि) सब अक्षर लघु ही रहते हैं। बारापडी=बारह स्वरों सहित वर्णों में से। त्रिय=तीन वर्ण आ-ई-ऊ वा इनसे संयुक्त अक्षर। सुरांमध्य=स्वरों (सोलहों) में से। पंच= अ-इ-उ-ऋ-ऌ। अ+आ—इ+ई—उ+ऊ—ऋ+ॠ—ऌ+ॡ—ये समान हैं। 'युत लघु पूरब दीरघ करैं'=संयुक्तों के पहिलेवाले ("संयुक्ताद्यं दीर्घं") दीर्घ (गुरु) हो जाते हैं। आ से अः तक ११ स्वर (भाषा में) और इनसे संयुक्त व्यञ्जन भी दीर्घ होते हैं (गुरु)। (श्रुतबोध। छंद प्रभाकर। काव्य प्रभाकर)। "संयोगी को आदि जुत बिंदु जु दीरघ होय। सोई गुरु, लघु और सब कहैं सयाने लोय" ॥ ३३ ॥ (कविप्रिया)।

दूपन चालीस—काव्य के दूषण अनेक हैं। "काव्य प्रकाशादि में शब्द दोष १६, वाक्यदोष २१, अर्थदोष २३, और रसदोष १०। सब ७० कहे हैं" (काव्य प्रभाकर। १० मयूख)। इसमें ३९ दोष गिनाये हैं। 'काव्य कल्पद्रुम' के प्रथम

संख्या वर्णन

*गनपति रदन मही दिनेशचक्ररथ,
चन्द शुक्रनेत्र एक आतमा ही जानिले।
गजदंत अयन नयन कर पाद पक्ष,
नदीतट नागजिह्वा द्विज दोइ मांनिले॥
राम हरनयन अगनि क्रम वलि संध्या,
काल ताप जुर सूल पद्म तीन आंनिले।
पांनि वांनी वरन आश्रम अजमुख वेद,
कूट जुग सेना मुक्तिफल च्यारि पांनिले॥ ७॥

भाग 'रसमञ्जरी' में ६० दोप निरूपित किये हैं। ग्रन्थकार ने किसी मत से २० कहे हैं। और भूषण चार शत—इससे काव्यगुण और अलङ्कारादि सब मिला कर कहे हैं ऐसा प्रतीत होता है। सुन्दर स्वामी का पांडित्य अगाध था॥

(७) एक वाची संख्या के शब्द—गणेशजी के एक दांत ही है। मही=पृथ्वी। दिनेश=सूर्य के रथ के एक ही पहिया है। शुक्राचार्यजी के एक ही नेत्र है॥ दो के वाची—हाथी के दो दांत होते हैं। अयन दो=उत्तरायण, दक्षिणायन। पाद=पांव दो। पक्ष=शुक्ल और कृष्ण, अथवा पक्षी के दो पांखें। सांप के दो जीभ। द्विज=दो जन्म होते हैं॥ तीन के वाचक—राम=रामचंद्र, परशुराम, वलराम। शिवजी के तीन नेत्र। अग्नितीन=वाडवाग्नि, दावाग्नि, जाठराग्नि। अथवा दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय। क्रम=विक्रम=वल (तन, मन, धन।) वलि=त्रिवली की तीन रेखा। संध्या तीन=प्रातः, मध्यान्ह, सायं। काल=भूत, वर्त्तमान, भविष्यत्। ताप=तीन ताप, तापत्रय, (दैहिक, दैविक, आह्निक। ज्वर=वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर। सूल=त्रिशूल के तीन कांटे। पद्म=पुष्कर का वाची शब्द वृद्ध पुष्कर, शुद्धवाय, ज्येष्ठकुंड। और क्रम विधि के अर्थ में=१ वेदविधि, २ लोकविधि, ३ कुलविधि॥ चार वाची संख्या शब्द=पांनी=चार खान वा योनिवर्ग—जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज। ४ वाणिएं=परा,

* सनकादि वारि निद्धि संप्रदा उपाइ अंग,
जोधार चरन दिशि च्यार अंतःकरन है ॥
तत्व शर इन्द्री हरमुख पांडु वर्ग यज्ञ
पित मात कन्या पाप वायु पंच वरन है ॥
शासतर संपति करम दरशन रितु,
रस राग अंग यती पट सु तरन है।
धात दीप तृड ऋषि वार हय परवत
समुंदर पुरी सात कहत धरन है ॥ ८ ॥

पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी। ४ वर्ण=ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्री, शूद्र। ४ आश्रम=ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, बानप्रस्थ, संन्यास। अजमुख=ब्रह्माजी के चार मुंह। ४ वेद=ऋग्, यजु, साम, अथर्व। कूट=(इसका प्रयोग चार वाची का नहीं मिला, अतः) चार अवस्थाएं आत्मा सम्बन्धी—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, कूटस्थ (तुरीया)। वा चार नीतियां—साम, दाम, दण्ड, भेद। अथवा विष्णुजी चतुर्भुज हैं उनकी चार भुजा। वा कूंट (कोना) चार कोने। जुग=युग चार हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग। सेना=चतुरंगिणी=हाथी, घोड़े रथ, पैदल। मुक्ति चार=सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य। फल=चतुष्फल=चतुर्वग=धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। पानिले=हाथ में ले, ग्रहण कर।

(८) सनकादि चार, ब्रह्मा के पुत्र=सनक, सनंदन, सनत्कुमार, सनातन। वारि, निधि=इसका पता चार के अर्थ में नहीं लगा। न तो वारि ही चार के अर्थ में प्रयुक्त होता, न निधि शब्द ही। वारिनिधि=जलनिधि=समुद्र के अर्थ में लें तो वे भी सात हैं। निधि भी नौ हैं। हमें ग्रन्थ "कविप्रिया" की टटोल से इसका शुद्ध पाठ 'वारण रद' हो सकता है मिला—ऐरावत के चार दांत होते हैं (प्रियाप्रकाश—पृ० २३०)। संप्रदा=संप्रदाय चार हैं—श्रीसम्प्रदाय, निम्बार्क, माध्व और वल्लभाचार्य। उपाइ=साम, दाम, दंड भेद। अंग=मस्तक, धड़, हाथ, पांव। जोधार (डि०) योद्धा चार प्रकार=गजारोही, अश्वारोही, रथारोही, पदाति (पैदल)।

चरन=चरण—छंद के चार और चोपायों के चार पाद वा पांव। दिशा चार—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण। अंतःकरण चतुष्टय=मन, बुद्धि चित्त, अहंकार। पांच वाची संख्या—तत्व पांच=पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश। शर=कामदेव के पांच तीर। मोह, मत्त, शोष, विरह, अचेतन। पांच ज्ञानेन्द्रियां—आंख, कान, नाक, जीभ खाल। हरमुख=महादेवजी के पांच मुख जिनसे वे पंचमुख कहाते हैं। पांच पांडव=युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव। वर्ग=पांच वर्ग—कु चु टु तु पु—कवर्गादि पांच २ अक्षरों के (वर्णमाला में) यज्ञ=पंचमहायज्ञ—स्वाध्याय, अग्निहोत्र, अतिथिपूजन, पितृतर्पण, वलिवैश्वदेव। पांच पिता=जन्म देनेवाला, राजा, जीवदान देनेवाला, गुरु (दीक्षा वा विद्या देनेवाला) और ससुरा। पांच माता=जननी, गुरुपत्नी, राजा की राणी, सास, मित्रपत्नी। पांच कन्या=अहल्या, द्रोपदी, तारा, कुंती, मंदोदरी। पाप=ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, गुरुपत्नी गमन और इनके साथ संसर्ग। वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान। वरन,=वर्णित। छह की-शास्त्र ६=चारों वेद, पुराण और धर्मशास्त्र (स्मृति)। ६ संपत्ति=सम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरति, समाधान। कर्म=छहकर्म—यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान लेना, दान देना। दर्शण=छह दर्शण—सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत। ऋतु=छह ऋतु—वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर। रस=षट्रस—खट्टा, मीठा, खारा, कड़ुवा, चरपरा, कसैला। राग=छहराग—भैरव, मालकौस, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ (मलार)। अंग=वेद के छह अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष, निरुक्त। यति=(यह ईति का रूपांतर प्रतीत होता है)—छह इति ७ भी हैं। अति वृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डीदल, चूहादल, तोतादल, परतंत्र (वा, ओला पड़ना)। और यति छह ६ ये हैं=लक्ष्मण, हनुमान, भीष्म, भैरव, दत्त और गोरख (नानकप्रकाश पू०)तरन=तृण-छहचारे—घास, कडव, पत्ते, पन्नी, तुस, दाणां॥ सात की—धातु=७ धातु—सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांगा, सीसा। वा—(चर्म) रक्त, मांस, मेद, हाड़, चरबी, वीर्य। दीप=७ द्वीप—जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मल, मेद (वा लक्ष) पुष्कर। तृड़=७—सात अन्न—जव, गेहूं, चांवल, मूंग, अरहड़, उड़द, चना। ७ ऋषी=कश्यप,

※ वसु अहि परवत योग अंग व्याकरण,
　　लोकपाल दिगपाल सिद्धि आठ जग है।
पंड निद्धि द्वार नाडी रस ग्रह योगेश्वर,
　　नाथ नन्द ऊपर नौगुण नव तग है॥
दिशा दोप अवतार धुनि नाभि पद्म मुद्रा;
　　वायु दश एकादश रुद्र हर लग है।
मास राशि सूर भक्त संकरांति पंथ पून्यूं.
　　हृदय कवल बारा यम नेम पग है॥ ६॥

अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, वशिष्ट, यमदग्नि। ७ वार—रवि, सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि। हय=सूर्य के सात घोड़े। ७ पर्वत=सुमेरु, हिमालय, उदयाचल, विंध्याचल, लोकालोक, गंधमादन, कैलास। ७ समुद्र=क्षीर, क्षार, दधि, मधु, घृत, सुरा, इक्षुरस। ७ पुरी=अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, द्वारिका, उज्जयनि। धरन=धरणी, पृथ्वी पर॥

(९) ८ की—वसु—८ वसु—धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास। अहि=७ सर्प—वासुकी, तक्षक, कर्कोटक, शख, कुलिक, पद्म, महापद्म, अनन्त। ७ पर्वत=(ऊपर पर्वत गिनाये हैं। जो पर्वत शब्द से आठ लेते हैं वे आगे लिखे पर्वत कहते हैं) हिमालय, मलयगिरि, महेन्द्र, सह्याद्रि, शुक्तिगिरि, ऋक्षपर्वत, विंध्याचल, पारियात्र पर्वत। योग—अष्टांग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। अंग=(अंग ऊपर छह कह आये हैं। इसलिए यह अङ्ग शब्द योग शब्द के साथ समझें)। परन्तु शरीर के ८ अङ्ग साष्टांग कहने में जो आते हैं वे ये हैं—गोडे (पांव के), पांव, हाथ, पेट, सिर, वाणी, बुद्धि और दृष्टि। प्रमाण—"जानुभ्यां च तथा पद्भ्यां पाणिभ्यामुरसा धिया। शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टांग ईरितः"। ("आपटे की डिक्शनेरी" तथा "वैष्णवमताब्जभास्कर")। व्याकरण=८ वैयाकरण—इन्द्र, चन्द्र, काशि, कृत्स्न, पिशली, शाकटायन, पाणिनी, अमर। ८ लोकपाल=इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत,
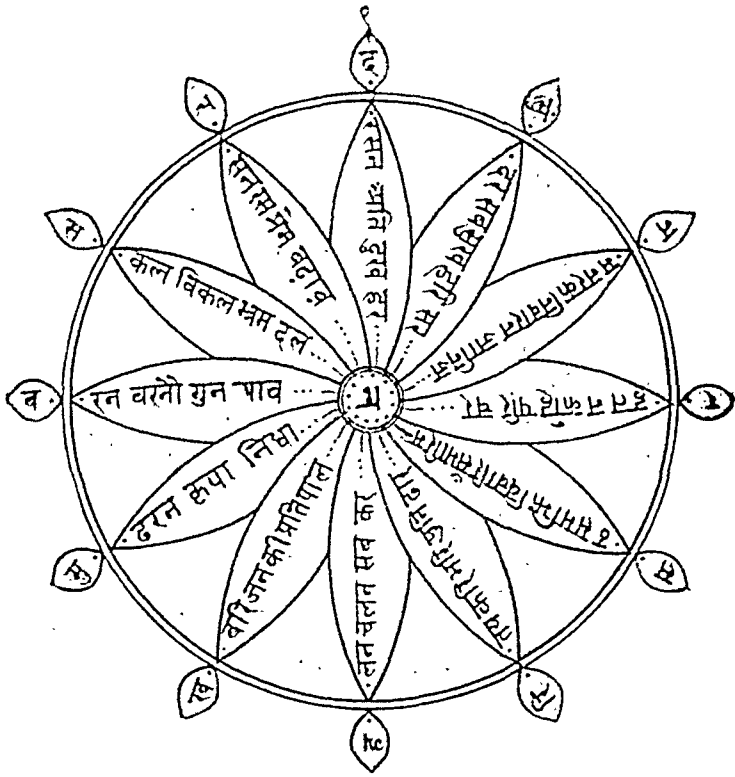
कमल वन्ध

छप्पय

दरसन अति दुख हरन रसन रस प्रेम वढ़ावन।
सकल विकल भ्रम दलन वरन वरनौ गुन पावन॥
सुढरन कृपा निधान खवरि जन की प्रतिपालन।
हलन चलन सव करन रितय करि भरि पुनि ढारन॥
सठ समझि विचारि सँभारि मन रहत न काहू परि चरन।
नम नरक निवारन जानि जन सुन्दर सव सुख हरि सरन॥

पढ़ने की विधि

"दरसन" शब्द के 'दकार' पर १ का अङ्क है—वहां से प्रारम्भ करके वांई ओर की पंखुड़ियों के चरणों को पढ़ते जांय। अन्त का चरण 'सुंदर' वाली पंक्ति में है।

यह छप्पय चित्रकाव्य ही में है, ग्रन्थ में नहीं है।

* तेरा तरवर ताल तेरा द्वार कहूँ फिर
रतन बतावे तेरा ये भी बात सही सो।

वरुण, वायु, कुबेर, शंकर। दिगपाल=८ दिग्गज—ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अञ्जन, पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक। सिद्धि=अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व। जग=जगत में॥ ९ की—खंड=९ हैं—इला-वर्त्त, रम्यक, कुरु, हरिवर्ष, किंपुरुष, भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व, हिरण्य। ९ निधि=पद्म, शंख, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील, खर्व। ९ नाड़ी=इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गंधारी, पूषा, गजजिह्वा, प्रसाद, शनि, शंखिनी। रस=काव्य में ९ रस—शृङ्गार, करुणा, वीर, भयानक, अद्भुत, हास्य, रौद्र, वीभत्स, शांत। ९ ग्रह=सूर्य, चंद्र, बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, राहु, केतु। योगेश्वर=९ है—शुक्राचार्य, नारायण (श्रीकृष्ण), अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन। नाथ ९=गोरक्षनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, कारिणनाथ, गहिनीनाथ, चर्पटनाथ, रेवणनाथ, नागनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्दनाथ (योगाङ्क)। ९ नंद=मगध देश का राजा महानंद और उसके ८ पुत्र, यों नवों को चाणक्य ने विष से मारा था। ९ गुण—शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य। ऊ पर नौ—इस शब्द का कुछ संशोधन नहीं हो सका। यह लेखक दोष से किसी शब्द का अशुद्ध रूप है॥ १० की संख्या—दश दिशाएं प्रसिद्ध हैं। १० दोष=चोर, जुवारी, अज्ञ, कायर, गूंगा, बहरा, अंधा, पांगला, नपुंसक, कुरूप। १० अवतार=कच्छ, मच्छ, वामन, वराह, नृसिंह, परशुराम, रामचन्द्र, बुद्ध, कलंकी। धुनि, नाभि, पद्म—ये दश की संख्या के वाची कैसे हैं इसका पता नहीं लगा। १० मुद्रा योग में=महामुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबंध, जालंधरबंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालन (हठयोग प्रदीपिका में)। १० वायु=प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, देवदत्त, कृकल, धनञ्जय। ११ रुद्र=अज आदिक॥ १२ मास। १२ राशिएं मेष आदिक। १२ आदित्य विवस्वान् आदिक। १२ भक्त प्रहलाद आदिक। १२ संक्रांतिएं। १२ पंथ=बारा बाट।

रतन भवन विद्या जम भट इन्द्री देव,
विषय कहीजैं चौदा पंद्रा तिथि कही सो ॥
सुर सिंगार उपचार कला पारषद,
वय रंभा सोला सत्रा कोटि जल मही सो ।
समृत पुरान प्रवराम सेना भारत की,
भारहू अठारा वै अठारा ध्याइ लही सो ॥ १० ॥

---

(१०) १३ तरवर=कल्पवृक्षादि । तेरह वृक्षों का प्रमाण—'उदुम्बरं वटप्लक्षं जम्बुकमथार्ज्जुनम् । पिप्पलंच कदंबंच पलाशलोघ्रतिंदुकम् । मधूक माम्रसर्ज्जंच बदरं पर्यकेशरम्" । (गरुड़पुराण १९८ अ० । शब्दकल्पद्रुम से) । १३ ताल=तेरह बड़े सरोवर—मानसरोवर आदिक अथवा १३ तालैं—चौताला, तिताला आदिक । १३ द्वार=देवद्वार, राजद्वार, इत्यादिक । तेरह रत्न=सूंठ के गुण कथन में तेरह रत्न गिना बोलते हैं । रत्न पांच, नौ और १४ हैं ॥ १४ रत्न=लक्ष्मी कौस्तुभ मणि, रंभा, सुरा, अमृत, विष, ऐरावत, शार्ङ्ग-धनुष, धन्वंतरि, कामधेनु, चन्द्रमा, कल्पवृक्ष, महाबुली अश्व । १४ भवन=७ तो लोक और ७ द्वीप मिल कर । १४ विद्याएं=४ वेद+६ शास्त्र+१ मीमांसा+१ धर्मशास्त्र+१ न्याय+१ पुराण । १४ यम=धर्मराज, यमराज, मृत्यु, अंतक, वैवस्वत, नील, दध्र, काल, सर्वभूतक्षय, परमेष्ठी, वृकोदर, उदुम्बर, चित्र और चित्रगुप्त । भट=१४ यमों के १४ भट । इन्द्रिय १४=५ ज्ञानेन्द्रिय+५ कर्मेन्द्रिय+४ अंतःकरण । देव=१४ इन्द्रियों के १४ देवता । विषय=१४ इन्द्रियों के १४ मुख्य विषय (शब्द, स्पर्श आदिक) । १५ तिथिएं=प्रसिद्ध हैं प्रतिपदा कृष्ण से अमावास्या तक, अथवा प्रतिपदा शुक्ला से पूर्णिमा तक ॥ १६ सुर=स्वर वर्ण—अ से अः तक । १६ सिंगार—शृङ्गार—शौच, उबटन, स्नान, केशबंधन, अङ्गराग, अञ्जन, दन्तरंजन, (मिस्सी), मंहदी, बीड़ी, वस्त्र, भूषण, सुगंध, पुष्पमाला, तिलक, टीकी, ठोडी पर बेंदी । १६ उपचार=षोडशोपचार पूजन—आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, वस्त्र, गंध, अक्षत, पुष्प धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, आरती, नमस्कार (वा दक्षिणा) १६ कला=चंद्रमा की १६

※ उगनीस और बात विस्वा नख मानुष के,
वीस चक्षु श्रुति भुजा रावन कै सुनियां।
इक वीस स्वरग सु वाईसी सो पातसा की,
क्षौहणी तेईस जरासंध साथि गुनियां॥
च्यारि वीस अवतार च्यारि वीस तीर्थंकर,
च्यारि वीस तत्त्व पीर च्यारि वीस धुनियां।
एक तें चौवीस लग संख्या संज्ञां कही यह,
सुंदर मिलावौ जति कवि पुनि पुनियां॥ ११ ॥※

कलाएं—अमृता, मानदा, पूपा; तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनि, चन्द्रिका, कांति, ज्योत्सना, श्रिय, प्रीति, अंगदा, पूर्णा, पूर्णामृता। १६ पारषद=जय विजय आदिक भगवान के पार्षद। ८ सखा श्रीकृष्ण के और आठ सखा श्रीरामचन्द्र के। वयरंभा=रंभा अप्सरा की सदा १६ वर्ष की अवस्था रहती है। प्रवराम=१८ प्रधान प्रवर—आत्रेय, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज, यमदग्नि, आंगिरस, गौत्तम, काश्यप, च्यवन, भार्गव, पराशर, शक्ति, शांडिल्य, आप्नुवान, मरीचि, वार्हसपत्य, अगस्त्य, वत्सस। सेना भारत की=महाभारत में १८ अक्षौहिणी थी—११ कौरवों की ७ पांडवों की। १८ भार वनस्पति के कहे जाते हैं। भगवद्गीता की १८ अध्याय हैं, स्मृतियां और पुराण भी १८ ही हैं। १८ स्मृतियां=मनु, याज्ञवल्क्य, पराशर, वशिष्ठ, हारीत, नारद, अत्रि, आपस्तम्ब, शातातप, संख, लिखित, व्यास, भारद्वाज, कास्यप, दक्ष, विष्णु, यम, वृहस्पति १८। १८ पुराण—विष्णु, वाराह, वामन, पद्म, शिव, अग्नि, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त्त, ब्रह्माण्ड, भविष्य, भागवत, मार्कंडेय, मत्स्य, नारद, लिंग, स्कन्द, कूर्म, गरुड़।

※ नोट—ये ९ कवित्त क्रम संख्या में, संख्याओं सहित, इस विचार से नहीं दिखाये—अर्थात् इन पर ऊपर से चली आई हुई संख्या इस विचार से नहीं लगाई गई थी कि "पंच विधानी" को ढूंढ़कर लगावें। परंन्तु पंचविधानी हमें पृथक् कोई कहीं नहीं मिली। "भूलि गयो हरिनाम को तू सठ"...। इस कवित्त

पर "पंचविधानी" ऐसा नाम लिखा हुआ ही चतुरदासजी के पत्रों आदि में मिला। परन्तु यह किसी भी अभिप्राय या अर्थ से पंचविधानी नहीं कहा जा सकता है। 'सवैया" ग्रन्थ के "कालचितावनी" के अङ्ग का यह ८ वां छंद मात्र है।

(११) १९ उन्नीस पिण्डस्थान कहे जाते हैं (तिथ्यादित्व—शब्दकल्पद्रुम)। २० विश्वा। वीस नख (नाखून) दोनों हाथों और दोनों पांवों के। रावण के १० सिरों में २० आंखें और २० ही कान और वीसही भुजा सुनी जाती है। २१ स्वर्गों के नाम नहीं मिले। २२ सेना बादशाह की बाईसी कहाती थी। २३ अक्षौहिणी मगध देश के राजा जरासंध के पास थी जब वह मथुरापर चढ़ कर आया था। २४ अवतार=ब्रह्मा, बाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस और हयग्रीव। २४ तीर्थंकर=जैनियों के २४ देवता—ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभ, सुबुधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्यस्वामी, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, और महावीर स्वामी। २४ तत्त्व=प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार, पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, मन, पांच तन्मात्राए, पांच महाभूत। (पुरुष इनसे भिन्न है)। २४ पीर=मुसलमानों के २४ पैगम्बर=(अलैहिस्सलाम) आदम, शीश, नूह, इब्राहीम, याकूब, इसहाक, यूसुफ, इस्माईल, ज़करिया, यहया, यूनुस, दाऊद, अयूब, लूत, सुलेमान, स्वालह, शुएब, ईसा, मूसा, इलयास, हारूं, यसआ, जिलकिफ़्ल, मुहम्मद साहिब। (इनके अतिरिक्त और बहुत से पैगम्बर हुए हैं। परन्तु यहां प्रधान २४ से प्रयोजन है।) 'पीर' शब्द गुरु (दीक्षा देनेवाले) का अर्थ देता है। इसलाम धर्म में 'खलीफ़ा' और 'इमाम' बड़े धर्म-शिक्षक और शासक बहुतायत से हैं (खलीफ़ा तो ४ ही प्रधान हैं जो मोहम्मद साहब के पास व पीछे हुए थे।)

❀ गणना छप्पै पंचक

अथ नव निधि के नाम

छप्पय

प्रथम पद्म निधि कहत द्रुतिय पुनि महा पद्म सुनि ।
तृतिय संपसे नाम चतुर्थय मकर कहैं मुनि ॥
पञ्चम कच्छप होइ षष्ट सो प्रगट मुकुन्दं ।
कुन्द सप्तमं जांनि अष्टमं निल्ल भणिदं ॥
अब नवम पर्व्व कविजन कहत ये नव निधि के नाम हैं ।
कहि सुन्दर सन्तन आदरहिं ते वंछहिं जु सकाम हैं ॥ २७ ॥

अथ अष्ट सिद्धि के नाम

प्रथमहिं अणिमा सिद्धि द्रुतिय पुनि महिमा कहिये ।
तृतीय सु लघिमा जांनि चतुर्थी प्रापति लहिये ॥
प्राकाशक पंचमी ईपिता पष्टी जांनहु ।
अवसिता जु सप्तमी अष्टमी वसिता मानहुं ॥
ये अष्ट महा सिधि प्रगट ही ग्रन्थनि मांहिं वपांनिये ।
हरि भक्तनि के आधीन हैं सुन्दर यौं करि जांनिये ॥ २८ ॥

❀ यह नाम सम्पादक ने दिया है ।

(२७) निल्ल=नील । भणिद=कहते हैं । पर्व्व=खर्व ।

(२८) अष्टसिद्धिएं—"अणिमा महिमा चैव लघिमा प्राप्तिरेवच । प्राकाम्यंच तथेशित्वं वशित्वं च तथा परम् ॥ यत्र कामावसायित्वं गुणानेता नथैश्वरान्" ॥ (मार्कंडेय पुराण) ये ही स्पष्ट "ब्रह्मवैवर्त्त पु०" में—"अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा । ईशित्वं च वशित्वं च सर्वकामावसायिता" ॥ परन्तु 'अमरकोष' में कामावसिता को न देकर गरिमा को दिया है—"अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा । प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः" ॥

अथ सप्त वारों के नाम

प्रगट होइ आदित्य सोम जब हृदयें आवै।
मंगल दशहू दिशा बुद्ध तब ही ठहरावै॥
बृहस्पति ब्रह्म स्वरूप शुक्र सब भाषत ऐसें।
थावर जंगम मध्य द्वैत भ्रम रहै सु कैसें॥
है अति अगम्य अरु सुगम पुनि सद्गुरु बिन कैसें लहैं।
यह वार हि वार विचार करि सप्तवार सुन्दर कहै॥ २९॥

अथ बारह मास के नाम

कार्तिक काटै कर्म मार्गशिर गति यज्ञासा।
पोष मिल्यौ सतसंग माघ सब छाडी आसा॥
फाल्गुन प्रफुलित अंग चैत्र सब चिंता भागी।
वैशाषा अति फला जेष्ट निर्मल मति जागी॥
आषाढ गयौ आनन्द अति श्रावण श्रवति अमी सदा।
भाद्रव द्रवति परब्रह्म जदि अश्विनि शांति सुन्दर तदा॥ ३०॥

अथ बारह राशि के नाम

छप्पय

मीन स्वाद सौं बंध्यौ मेष मारन कौं आयौ।
वृष सूकौ ततकाल मिथुन करि काम बहायौ॥
कर्क रही उर मांहि सिंघ आवतौ न जांन्यौ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल उडांन्यौ॥

प्राकाशक=यह प्राकाम्य नाम की सिद्धि के स्थान में लिखा है। ईषिता=ईशित्व सिद्धि। अवसिता=कामावसिता सिद्धि। वसिता=वशित्वं सिद्धि।

(२९) बारहिवार=बारम्बार, निरंतर। मार्गशिर=मार्गशीर्ष, अगहन।

(३०) द्रवति=प्रेम में मग्न हो हृदय बहने लगै। अश्वनि=यहां निरंतर, नित्य का अर्थ है=अ+श्व=कल जिसमें नहीं। और आश्विन मास का अर्थ तो है ही।

वृश्चिक विकार विप डंक लगि सुंदर धन मित न भयौ।
परि मकर न छाड्यौ मूढमति कुंभ फूटि नर तन गयौ ॥ ३१ ॥

ज्ञान नरक

छप्पै एकादशी *

मन गयंद बलवंत तासके अंग दिषाऊं।
काम क्रोध अरु लोभ मोह चहुं चरन सुनाऊं ॥
मद मच्छर है सीस सुंडि तृष्णा सु डुलावै।
द्वन्द दसन हैं प्रगट कल्पना कान हलावै ॥
पुनि दुविधा दृग देखत सदा पूंछ प्रकृति पीछै फिरै।
कहि सुन्दर अंकुश ज्ञान कै पीलवान गुरु बसि करै ॥ ३२ ॥

---

(३१) राशियों के नामों पर अक्षरों से अर्थान्तर दिखाने की चेष्टा है। ब्रिप=वृक्ष। सूकौ=सूख गया। कर्क=करक, कसक। सिंघ—ध्वनि से, सींग। आवतौ=उगता हुआ क्रमशः निकला इससे ज्ञात नहीं हो सका। अकतूल=अक का अर्थ पाप (अघ), तूल रुई की तरह (जैसे पिंदने में धुनने से) उड़ गया वा अकतूल=वादवान नाव का हवा भरने से नाव को चञ्चल करता है। विकार=विषय का विप, वीछू के डङ्क समान। धन=संसार की सम्पत्ति। मकर=मक्र, फरेब, कपट, दम्भ। कुंभ=जैसे घड़ा फूट कर नाश होता है और फिर काम नहीं आता, वैसे यह मनुष्य शरीर मृत्यु पाकर किसी काम का नहीं रह जाता है। अतः जीतेजी ही भजन, ज्ञान, भक्ति करना।

* यह नाम सम्पादक का दिया हुआ है। ये सब ग्यारह छप्पय ज्ञान की पराकाष्ठा और वेदांत सिद्धांत से सराबोर हैं।

(३२) इस छप्पय में मन को हाथी का सुंदर रूपक बांधा है। द्वन्द दसन हैं प्रकट हाथी के वाहर के दो दांत (दो तो) दीखने मात्र हैं, वैसे द्वैत वा भेद भ्रम मात्र ही है।

पातिशाह रहमान हज़ूरी कीये बंदे।
और किये उमराव जिते अवतार कहिदे॥
अवलि दूम अरु सीम चिहारम पंच हज़ारी।
उनकौं सूबा दिये किये जग में अधिकारी॥
वे बंदे निकट सदा रहैं पिजमतगार हज़ूर के।
कहि सुन्दर दूर पड़े रहैं जे सूबाइत दूर के॥ ३३॥

परब्रह्म पतिशाह ज्ञान कहिये सहजादौ।
सांख्य योग अरु भक्ति वड़े उमराव अनादौ॥
और क्रिया सब रीति जज्ञ जप तप व्रत जेते।
तीर्थ अटन स्नान दान यम नियम सुकेते॥
ज्यौं व्याह समै अपने सुतहिं सहजादौ करि गाइयौ।
कहि सुन्दर सहजादौ उहै पातिशाह उर लाइयौ॥ ३४॥

जाग्रत देह स्थूल सकल गुण वर्त्तत जामहिं।
स्वप्न सु लिंग शरीर उहै विधि जानहुं तामहिं॥

---

(३३) पतिशाह=परमात्मा बादशाह—सर्वेश्वर सर्वनियंता। रहमान (अ०)= अत्यंत दयालु। दूम=दोयम (फा०) दो हजारी वा दूसरे दरजे के। सीम= (फा०) सोयम=तीसरे दरजे के। पंजहजारी=पांच हज़ार के मनसबदार, बहुत बड़े दरजे के। बादशाह के दरबार और आमखास और मनसबदारी का रूपक भक्तों और ज्ञानियों को लेकर बांधा है।

(३४) सहजादा=शाहज़ादा—बादशाह का पुत्र। ज्ञानरूपी शाहजादा बादशाहरूपी ब्रह्म से प्रगट होता है। 'आत्मा वै पुत्रः'— पुत्र है सो अपनी आत्मा ही है। 'ज्ञान ब्रह्म'—ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है। भावार्थ यह कि ईश्वर को पुत्र समान ज्ञान ही अत्यंत प्यारा है। 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' (गीता) ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है। जिसको परमात्मा ने अपने हृदय से लगाया—अपना समझा कृपा करके वही (भक्त वा ज्ञानी) पुत्र समान अपनाया गया। 'यमे वै वृणुते'—

सुषुपति में सब लीन स्वप्न जाग्रत पुनि आवै।
तीनि अवस्था मांहि भ्रमै सो जीव कहावै॥
साक्षातकार तुरिया विषै ईश्वर ताहि वषानिये।
तुरिया अतीत सो ब्रह्म है सुन्दर यौं करि जानिये॥ ३५॥

अंत्यज देह स्थूल रक्त मल मूत्र रहे भरि।
अस्थि मांस अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपरि॥
शूद्र सु लिंग शरीर वासना बहु विधि जामहिं।
वैश्य हु कारण देह सकल व्यापार सु तामहिं॥
यह क्षत्री साक्षी आतमा तुरिय चढ़ें पहिचानिये।
तुरिया अतीत ब्राह्मण उही सुन्दर ब्रह्म वषानिये॥ ३६॥

अहंकार चांडाल बहुत हिंसा कौ कर्त्ता।
मन कौ शूद्र सुभाव कर्म नाना विस्तर्त्ता॥
बुद्धि वैश्य यह होइ करै व्यापार जहां लौं।
चित्त सु क्षत्रिय जानि नृपति नहि लोक तहाँ लौं॥
यह ब्राह्मण साक्षी आतमा सदा शुद्ध निर्मल रहै।
तुरिया अतीत जानहुं उही ब्रह्म रूप सुन्दर कहै॥ ३७॥

उसको योग्य समझता है उसही को दरस दिखाता है। अर्थात् ज्ञान और भक्ति ही से परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। ("यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः......"। कठ।२ या वल्ली।२२)

(३५) वेदांत के अनुसार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया चार ही अवस्थाएं हैं। शुद्ध निर्गुण तुरीयातीत ब्रह्म को उक्त चारों से परे भिन्न ही स्वामीजी ने कहा है।

(३६) चार वर्ण और पांचवां अंत्यज कहकर उक्त ५ अवस्थाओं को मानने का रूपक बांधा है। तुरिय=घोड़ा अश्व कहकर सुंदर श्लेष से अलङ्कार किया है।

(३७) अंतःकरण चतुष्टय और पांचवें आतमा को लेकर वही वर्णों का अलङ्कार बांधा है।

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै।
दुतिय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै॥
तृतिय भूमिका निदिध्यास नीकी विधि करई।
चतुर्भूमि साक्षातकार संशय सब हरई॥
अब तासौं कहिये ब्रह्म विदु वर वरियान वरिष्ट हैं।
यह पंच षष्ट अरु सप्तमी भूमि भेद सुन्दर कहे॥ ३८॥
सुख दुख नींद अरूप जबहिं आवहिं तब जानैं।
शीत हु उष्ण अरूप लगेतें सब पहिचानैं॥
शब्द रु राग अरूप सुनेतें जानें जांहीं।
वायुहु व्योम अरूप प्रगट बाहरि अरु मांहीं॥
इहिं भांति अरूप अखंड है सो कैसें करि जांनिये।
कहि सुन्दर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनिये॥ ३९॥

---

(३८) साक्षात्कार तक चार। और फिर तीन भूमिका वर—वरियान—वरिष्ट। और ज्ञान की ७ भूमिकाएं योगवाशिष्टानुसार "हठयोग प्रदीपिका" में प्रारंभ में कही हैं जिनका कथन ऊपर भी अन्यत्र टीका में कर दिया गया है। वे ७ भूमिकाएं हैं—शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, परार्थभाविनी और तुर्यगा। (हठयोग प्रदीपिका। उपदश १। श्लो० ३ की टीका और पादटीप।)। इनमें प्रथम ४ तो सम्प्रज्ञात समाधि की, और आगे की ३ (सातवीं तक) असम्प्रज्ञात समाधि की हैं।

(३९) सुखदुःखादि स्थूल दृश्यमान तो नहीं है परन्तु अरूप और मनबुद्धि इन्द्रियों से (स्पर्शादि से) जाने जाते हैं। परन्तु आत्मा चेतन स्वरूप है तब भी इस प्रकार कैसे जाना जा सकता है! अर्थात् योग के प्रकारों ही से साक्षात हो सकता है। जो ज्ञान की भूमिकाएं दी है इनसे जो प्रक्रिया वेदांत में दी है उससे भी।

एक सत्य परब्रह्म एकतें गनती गनिये।
दश दश आगे एक एक सौ ताईं भनिये॥
एकहिं को विस्तार एक कौ अंत न आवै।
आदि एक ही होइ अन्त एकहि ठहरावै॥
ज्यौं लूता तंत पसारि कै वहुरि निगलि लूता रहे।
यौं सुन्दर एक अनेक ह्वै अन्त वेद एकै कहे॥ ४० ॥

अन्तहकरण अदृष्टि प्रमाता मापनिहारौ।
इन्द्रिय पंच प्रमाण प्रगट गज ताहि बिचारौ॥
पंच विषय सु प्रमेय उहै कपरा गहि मापै।
इन तें गज यह भयौ प्रमा पुनि ताहि स्थापै॥
चत्वार विभाग प्रपच यह अज्ञान तैं दिषात है।
कहि सुन्दर वस्तु विचार तें जगत विलै ह्वै जात है॥ ४१ ॥

अन्तहकरण चतुष्ट प्रमाता तोलत जानहुं।
इन्द्रिय पंच प्रमाण तराजू वाट वषानहुं॥

---

(४०) जैसे परब्रह्म एक है उससे अनंत सृष्टिएं हैं। वैसे ही एक की संख्या से अनेक अनंत संख्याएं एक २ वढ़ाने से वनती हैं। और संख्याओं में से एक २ घटाने से शेष एक रह जाता है। ऐसे ही सारी सृष्टि ईश्वर से निकली है और उसही में समा जाती है। जैसे मकड़ी जाला पूरकर फिर अपने अन्दर समेट लेती है। यह दृष्टांत प्रायः वेदांत में सृष्टि और प्रलय के समझाने में दिया गया है।

(४१) प्रमाता, प्रमाण प्रमर और प्रमेय—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय—को वजाज, गज और कपड़े के दृष्टांत से समझाया है। प्रमा=यथार्थ ज्ञान। स्मृति (याद) से प्रमा भिन्न है। प्रमा ज्ञान का करण ही प्रमाण कहाता है। प्रमा ज्ञान अवाधित अर्थ को वताता है अर्थात् विषय करता है। प्रमा ज्ञान प्रमाता साक्षी चेतन के आश्रित है नहीं अंतःकरण के आश्रित है। (देखैं विचार सागर अङ्क १९७—२०१)। ये साभास ज्ञान होने से अविद्या (अज्ञान) कहा है।

तौलन लागै ताहि पंच जे विषै प्रमेयं।
तौलै तें ठहराइ प्रमाता ही कौ ज्ञेयं॥
कहि सुन्दर वस्तु विचार तें कहां प्रमाता पाइये।
पुनि कहां प्रमाण प्रमेय है कहां प्रमा ठहराइये॥ ४२॥

(१२) अथ अन्तर्लापिका

छप्पय

(१)

लंका मारि क्षत्रिय प्रहारि हलधारि रहै कर।
महीपाल गोपाल व्याल पुनि धाइ गहै वर॥
मेघ आश धुनि प्यास नाश रुचि कंवल वास जहिं।
बुद्ध तात हनु तात प्रगट जगतात जानि तिहिं॥
तुम सुनहु सकल पंडित गुनी अर्थ हि कहौ विचार करि।
चत्वार शब्द सुन्दर वदत 'रामदेव सारंग हरि"॥ ४३॥

(२)

देह मध्य कहि कौंन कौंन या अर्थ हि पावै।
इन्द्रिय नाथ सु कौंन कौंन सब काहू भावै॥

---

(४२) यहां ताखडी बाट के उदाहरण वा दृष्टांत से वही विषय समझाया है। वस्तुविचार=वेदांत की प्रक्रिया से विचार करने से जो अचेतन है वह चेतन के प्रत्यक्ष में लुप्त हो जाता है।

(४३) इस अंतर्लापिका में "१ राम—२ देव—३ सारंग—४ हरि" यह चार शब्द निकलते हैं। पहिले चरण में १ रामचन्द्र २ परशुराम और बलराम निकलते हैं जो "राम" शब्द के अर्थ में हैं। दूसरे में राजा, कृष्ण, जो देव के द्योतक वा पर्याय हैं। व्याल (सर्प) को पकड़ कर खाय सो मयूर (सारंग) है। मेघ और पपीहा भौंरा और चातक भी सारंग कहे जाते हैं। बुद्ध तात= बुध का बाप चन्द्रमा जो 'हरि' का पर्य्याय है। हनुतात=हनुमान का पिता पवन जो 'हरि' का पर्याय है। जगतात=भगवान 'हरि' हैं ही।

पायें उपजत कौंन कौंन के शत्रु न जनमैं।
उभय मिलन कहि कौंन दुष्ट के कहा न तनमैं॥
अब सुन्दर को पावन जगत कौन रहे पुनि व्यापि करि।
"प्रान जान मन मान सुख साधु संग हित नाम हरि" ॥ ४४ ॥

(३)

कापालिक मत कौंन कौंन त्रेता युग कर्मा
रवि सुत कहिये कौंन कौंन जैननि के धर्मा॥
त्यक्त सयंज्ञा कौंन कौंन संतति मुख सोहै।
वचन प्रमान सु कौंन कौंन कतहूं नहिं मोहै॥
कहि सुन्दर अंकुश कौंन सिरि आन पकरि काले कहौ।
'योग यज्ञ यम नेम तजि नाम सत्य दृढ करि गहौ" ॥ ४५ ॥

---

(४४) देहमध्य='प्राण'। अर्थजाने='जान', ज्ञानी। इन्द्रियनाथ='मन'। सबको भावै='मान', सम्मान। मान पाये 'सुख' उपजै। साधु के 'शत्रु' नहीं होता। उभय मिलन='संग', मिलाप। दुष्ट के 'हित' (परहित, अच्छा चाहना वा प्रेम) नहीं। जगत को पावन (पवित्र) करनेवाला 'नाम' (भगवान का)। सर्वत्र व्यापक 'हरि' भगवान हैं। यों अंत्य पाद के शब्द निकले।

(४५) कापालिक मत=योग' (कापालि शैवमत के जोगी जो मनुष्य का कपाल वा खोपड़ी रखते हैं और देवी के बलि चढ़ाते हैं)। त्रेता का कर्म= 'यज्ञ'। रविसुत='यम'राज। जैन का धर्म=नेम नाथ। त्यक्तसयंज्ञा=त्यागने के लिए शब्द='तजि' 'सयंज्ञा'=संज्ञा का विकृत रूपांतर (यदि 'त्यक्त सुसंज्ञा' पाठ हो तो अच्छा)। संतों के 'नाम' (भगवान का) सोहै। कतहूं नहिं मोहै सो 'सत्य' है जो मोहसे डांवाडोल नहीं होवै। अंकुश 'करि' (हाथी) के मांथे में आन (लावै, दै)। किस शब्द को लेकर पकड़ने के अर्थ में कहैं ?—'गहौ' शब्द को। यों अंत्य पाद के शब्दों का अंतर्लापिका में प्रयोग हुआ।

(१३) वहिर्लापिका

उत्तम जन्म सु कौंन कौंन वपु चित्रत कहिये।
ब्रह्मा पोज्यो कवन कौंन पय ऊपरि लहिये॥
धनुप संधियत कौंन कौंन अक्षय तरु प्रागा।
दृग उन्मीलत कौंन कौंन पशु निपट अभागा॥
अब दान कवन कर दीजिये कौंन नाम शिव रसन धर।
कहि सुन्दर याकौ अर्थ यह "नमोनाथ सब सुखकर"॥ ४६॥

(१४) अथ निमात छंद

मनहर

जप तप करत धरत व्रत............लपत जन॥ ४७॥

(इस छंद के सब अक्षर अकारान्त हैं और यह 'सवैया' के 'चाणक के अंग' में २ रा छंद है।

---

(४६) यह भी अन्तर्लापिका ही है। क्योंकि अर्थ छंद में से ही निकलता है। अन्त के र कार के साथ 'न-मा-ना-थ-स-ब-सु-ख-क-र मिलाने से जो शब्द बनते हैं सोही अर्थ देते हैं। यथा उत्तम जन्म—'नर' का है। किसका वपु (शरीर) चित्रित है 'मोर' (मयूर) का—चंदवें और रंग हैं। ब्रह्मा ने क्या खोजा ?—'नार' (नारि=सावित्री)। पय (दूध) के ऊपर से क्या लेते हैं ? 'थर'-(मलाई)। धनुप में क्या सांधा (लगा कर चलाया) जाता है ? 'सर' (शर=तीर)। प्राग (प्रयाग में अक्षय रोंख कौन है—'वर' (वड़—वटवृक्ष—अक्षयवट।)। उन्मीलित (खुले हुए—निद्रारहित) दृग (नेत्र) कौन हैं ?—देवता 'सुर' देवगण को निद्रा नहीं आती वे सदा जाग्रत ही रहते हैं। इसीसे उनका नाम 'अस्वप्न' भी है। यथा—'आदित्या ऋभवोऽस्वप्ना अमर्त्या अमृतान्धसः' (अमरकोश।१।१।८)। निपट अभागा पशु—'खर' (गधा) है। दान किससे देते हैं ?—'कर' (हाथ) से। 'सुख' शब्द बोलने में यहां 'सुक्ख' बुलैगा, परन्तु लिखने में ख (केवल) से ही रहैगा, नहीं तो सुख, खर ये दोनों शब्द विकृत हो जायगे।

(१५) अथ निगड बंध

छप्पय

(१)

अधर लगै जिनि कहत वर्ण कहि कौन आदि कौ।
सब ही तें उत्कृष्ट कहा कहिये अनादि कौ॥
कौन बात सो आहि सकल संसार हि भावै।
घटि वढ़ि फेरि न होइ नाम सो कहा कहावै॥
कहि संत मिलैं उपजै कहा दृढ करि गहिये कौन कहि।
अब मनसा वाचा कर्मना "सुन्दर भजि परमानन्दहि" ॥ ४८ ॥

(२)

प्रथम वर्ण महिं अर्थ तीनि नीकी विधि जानहुं।
द्वितिय वर्ण मिलि अर्थ तीनि सोऊ पहिचानहुं॥
त्रितिय वर्ण मिलि अर्थ तीनि ता मध्य कहिज्जै।
चतुर्वर्ण मिलि अर्थ तीनि तिनि कौं सु लहिज्जै॥

---

(४८) निगड़=वेड़ी, जंजीर। इस छप्पय के अन्दर "परमानंद हि" वाक्य में जो शब्द निकलते हैं वा अक्षर काम में लिये जाते हैं वे गुथे हुए से हैं। इससे इसे निगड़वंध कहा है। प—पकार अक्षर पवर्ग का आदि का (पहिला) वर्ण (अक्षर) है। पवर्ग के पांचो अक्षर होंठ मिलने से बुलते हैं। औष्ठ्य है। पर=उत्कृष्ट। अनादि परमात्मा। परमा=शोभा सब को भाती है। परमान= प्रमाण (सबूत) देने से बात पक्की होती है। परमानंद=संत मिलने से परमानंद प्राप्त होता है। परमानंदहि=(हि—इति निश्चयेन) परमानन्द ही को निश्चय करके दृढ़ (दृढ़ता—मजबूती से) गहि=नाम पकड़ो वा ग्रहण करो। भजि= प्राप्ति के अर्थ चितवन, ध्यान करते रहो।

"कविप्रिया" में केशवदासजी ने इसे "व्यस्त समस्तोत्तर" नाम दिया है (१६ प्रभाव। ५२।)

पुनि त्यों पंचम षष्ठम सप्तमं अष्टम नवम सुनहु पछू।
कहि सुन्दर याको अर्थ यह "करन देत काहू कछू" ॥ ४६ ॥

---

(४९) प्रथम वर्ण 'क'—इसके तीन अर्थ=जल, अग्नि, सुख। 'कर'—इसके तीन अर्थ=हाथ, किरण (सूर्य वा चांद की), हाथी की सूंड़। 'करन'—इसके तीन अर्थ=राजा करण (महादानी), इन्द्रिय, देह। 'करन दे'—इसके तीन अर्थ=(१) करने दे (काम आदिक को), (२) जकात (कर) न दे (मत दे) (३) करन दे—कर्ण (कान) दे—उपदेश गुरु वाक्य में। 'करन देत'—इसके तीन अर्थ (१) करन (करण राजा) देता है। (२) (सूर्य वा चन्द्रमा) कर (किरणें) देते हैं। (३) कर (अपना हाथ) पतिव्रता स्त्री (दूसरे पुरुष को) नहीं देती है—अनन्य भक्त दूसरे को नहीं भजता है। 'करन देत का'— इसके भी तीन अर्थ—(१) क्या करने देता है ?—अर्थात् कर्म करने से क्या रोकता है ?। (२) करन (करण राजा) क्या देता है ? अर्थात् सोना देता है। (३) करन (करण—कान) देता है (लगाता है—गुरु शास्त्र के वचन में) क्या ? (पूछता है कि) क्या सुनता है ध्यान देकर ?—गुरु का उपदेश सुनता है। 'करन देत काहू'—इसही प्रकार तीन अर्थ हो सकते हैं। 'करन देत काहू कछू'—इसके भी 'कछू' का प्रयोग करने से तीन अर्थ हो सकते हैं। छह सात अक्षरों—अर्थात् क-र-न-दे-त-का-हू-तक अर्थ यथार्थ चलते हैं। आगे क—छू—के लगाने से कोई विशेष अर्थों की योजना सम्भव प्रतीत नहीं होती।

इस छप्पय पर फतहपुर के महंत स्वामी श्री गंगारामजी के दिये संग्रह में, एक पाना टीका का मिला। उसकी आवश्यक संशोधन के साथ, अविकल नकल यहां दे देते हैं कि जिससे उस प्राचीन टीका की रक्षा हो और पाठकों को विशेष प्रकाश मिले। "शीत ऊष्न दुख कर सु कहा चहै विषयी पशु नर। शबद विषै पुनि धर सु कहै जग जन शिष गुरु॥ पुनि सुर ताको ध्यान तासु जग मुनि कहै कहा मुनि। अदत, दया, पतिव्रत, अंग सो देत न गुनि॥ मन, मुनि, हरिजन देत अङ्ग का तन की दशा जे तन पछू। अब याको अर्थ जु येह है 'करन देत काहू कछु'।१। दोहा। कै सुख, कै जल, कै अनिल, कै सर, कै पुनि काम। कै कंचन

सौं प्रीति तजि, अरु भजिये हरिनाम ।२। कर गज पुष्कर, हस्त कर, कर जगात कर दांन। कर विषया तजि हरि भजो जो प्रभुं अमी समांन ।३। करण कहावै रवितनय, करण कहावै कांन। करण नांव चख इन्द्रियन करणधार भगवान ।४। क—जल, अग्नि, सुख—क कहिये जल जाकू तो शीत लागै। क कहिये अग्नि जाको उष्न लागै। क कहिये सुख सो भजन सों लागै। क कहिये काम जासों विषय के अन्त में दुःख होइ। कर जो विषयी सो कर भोग कर कहा चहै ? विषयों को ।१। नृप जो राजा कर भोग कहा चहै ? हासिल चहै, नाम चहै जगात ।२। सुर जो देवता कर भोग कहा चहै ? पूजा चहै ।३। करन जो कान भोग कहा चहै ? शब्द कों चहै ।१।—करन जो शिक्षा इन्द्रिय भोग कहा चहै ? विषय चहै ।२। करण राजा कहा चहै ? पुन्य कियो चहै ।३।—अब गुरु कै पास तीन जिग्यासी (जिज्ञासु) आये तिनको समुच्चय से उपदेश गुरु ने यह दियो कि "तुम करन दो"—। सो उन तीनों ने अपने २ आशय के अनुसार अर्थ किया। (१) प्रथम जगतन (संसारी) ने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम (हाथों से) दान दे। (२) जन जो साधुजन—उसने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम कान दे शास्त्र श्रवण में। (३) अरु शिष्य ने यह अर्थ किया कि 'करन दे'—नाम अपनी इन्द्रियों को (बाहर से रोक कर) हरि के ध्यान में दे। सो आगे तीनों ने ये ही किया—(१) जगतन ने तो दान दिया। (२) अरु साधु ने शास्त्र श्रवण किया। (३) अरु शिष्य ने हरि—ध्यान किया ॥५॥—अब मुनिजन जीवन कौं निषेध करते हैं—कर दान दियौ तो का ? कुछ नहीं कियौ। १ चौपाई०। पावन निमत्त०। 'करन'—श्रवन कियौ तो का ? कुछ नहीं कियौ। और 'करन दे' ध्यान धरयो तौ का ? कुछ नहीं कियौ ॥६॥ 'कर न देत'—या का ऐसा अर्थ होता है—काहू सूम किसी पुरुष कौ कर से दान नहीं देता है। कर हाथ करि कै दयावान पुरुष किसी जीव मात्र को चोट नहीं देता। 'करन देत काहू'—पतिव्रता काहू (अन्य पुरुष) को हाथ नहीं देती (स्पर्श नहीं करती) है ॥७॥ 'करन देत काहूक'—मन वांछित में अपने वृत्ति देत ।१। 'करन देत काहूक'—मुनि अपनी इन्द्रियों को हरिध्यान में देत (लगाते हैं) ।२। 'करन देत काहूक'—

(१६) अथ सिंघावलोकनी

संज्ञा कौंन अखंड कौंन हरि सेवा लावै।
कंठ बिराजै कौंन कौंन नर संग कहावै ॥
गुनहगार का पाइ कहा चाहै सब कोई।
कपि कै गल में कहा कहा दुंहुवनि मिलि होई ॥

हरि आपकी भक्ति काहू कौं (जात पांत पूछे नहिं कोइ। हरिकों भजे सो हरि का होइ।) कोई भी हरि की भजै उसे ही देत (दे देता है)। ३।८। 'करन देत काहू कछू'— तन जो पिछला जन्म काहू कौ कछू—बिपर्जै—(उलटी) क्रिया न देत—नहीं देता है वा होने देता है—(सब कुछ प्रारब्ध कर्मानुसार होता रहता है बिपरीत नहीं होता है। शरीर अपने भोग भोगता है।) ।१। 'करन देत काहू कछू'—साधु काहू को कुछ दंड नहीं देता है ।२। 'करन देत काहू कछू'—(मुनिजन) इन्द्रियों को विषयों में तनिक भी नहीं जाने देते हैं ।३।—॥९॥ दूजो अर्थ—सिद्धान्त अवस्था में करन जो इन्द्रियां निरहंकार हुई थकी—कैसे ही बरतो—प्रारब्ध की प्रेरी थकी—ज्ञानी के बाधा नहीं। जीवन्मुक्त हुवा बरतै। "ज्ञानी कर्म करै नाना बिध···"। इत्यादि अब मुनिजन जीवों का साधन को निषेध करते हैं—अरे दान दिया तो का ?—कुछ नहीं। चौबोला छंद—"पावन हेत देह जो दांनां। जीवन कीमति कसकस दांनां॥ हस्ती हांइ करि खैंहैं दांनां। सुंदर संत मिले नहिं दांनां ॥१॥ श्रवन करयौ तो कहा ? कामना करिकैं—कुछ नहीं। श्रवण करयो (अरु) धारणा नहीं करी तो कहा ? कुछ नहीं ।२। ध्यान धरयो तो कहा ? कुछ नहीं। (क्योंकि)। दोहा। "ध्यान धरे का होत है, (जे) मनका मैल न जाइ॥ बगमी मीनी का ध्यान धरि, पशू बिचारे खाइ" ॥३॥ (इति निगड-बंध को अर्थ संक्षेप सौं समाप्त) ॥

नोट—इस प्रकार के अर्थों का पाना (पत्र) हमको उक्त संग्रह में प्राप्त हुआ सो यहां लिखा गया। दुःख तो इस बात का है कि न जाने ऐसे कितने पत्रों तथा ग्रन्थों का उन महाप्रज्ञ स्वामी सुं० दा० जी का था जो शिष्यादि की असावधानी और काल के प्रभाव से नष्ट हो गया ॥

अब सुन्दर पथिक कहा कहै मुक्त क्षेत्र का नाम है।
कहि हर रिपु हजरति थान कौ "सदा मारसी काम" है ॥ ५० ॥

(१७) अथ प्रतिलोम अनुलोम

काठ माहिं का देत कहा प्रीतम कौं कीजै ॥
पाव चढ़त सो कहा कहा धनुष हि संधीजै ॥
कापर ह्वै असवार वचन का प्रत्यक्ष कहावै।
पान करै सो कहा कहा सुनि अति सुख पावै ॥
अब कहा दृढ़ावै जैनमत का विरहनि उर लगि बकी।
कहि सुन्दर प्रति अनुलोम है "यह रस कथा दयालकी" ॥ ५१ ॥

(१८) अथ दीर्घाक्षरी

मनहर

"झूठे हाथी झूठे घोरा..................प्रानी है" ॥ ५२ ॥

(इस छंद में सब अक्षर गुरु अर्थात् दीर्घ हैं, और यह छंद 'सवैया' के 'काल चितावनी के अंग' का २५ वाँ छंद है।)

(१९) ज्ञान प्रश्नोत्तर चौकड़ी *

प्रथम होइ जिज्ञास ग्रहै दृढ केरि वैरागा।
बाहिर भीतरि सकल करै मन वच क्रम त्यागा ॥
सद्गुरु सरनै जाइ कहै प्रभु मेरै चिन्ता।
जन्म मरन बहु काल भ्रमत नहिं आवै अन्ता ॥
क्यूं छूटौं आवागवन तें मेरै यह चिन्ता भई।
अब आयौ हौं तुम्हरै सरन तुम सद्गुरु करुणामई ॥ ५३ ॥

---

* यह नाम सम्पादक का दिया हुआ है। सं०। इसके चारों छंदों में वेदांत का सार सरल सुंदर वाक्यों में कूट २ कर भर दिया है। १-२-३-४ इन चारों छंदों में वेदांत की प्रक्रिया अति ही संक्षेप में स्वामीजी ने कृपा करके कही

देष्यौ अति जिज्ञास शुद्ध हृदये लय लीना।
सद्गुरु भये प्रसन्न ज्ञान वासौं कहि दीना॥
जन्म मरन नहिं तोहि वहुरि सुख दुःख न दोऊ।
काल कर्म नहिं तोहि द्वन्द्व परसै नहिं कोऊ॥
अब तत्वमसीति विचारि शिष सामवेद भाषै स्वयं।
कहि सुन्दर संशय दूरि करि तूं है ब्रह्म निरामयं॥ ५४॥
आतम ब्रह्म अखंड निरन्तर है अनादि कौ।
जन्म मरन कौ सोच करै नर वृथा वादि कौ॥
स्वप्नै गयौ प्रदेश वहुरि आयौ घर मांहीं।
जब जाग्यौ घर मांहि गयौ आयौ कहुं नांहीं॥
यहु भ्रमहो कौ भ्रम ऊपनौ भ्रम सब स्वप्न समान है।
कहि सुन्दर ताकौ भ्रम गयौ जाकै निश्चय ज्ञान है॥ ५५॥

प्रश्नोत्तर

पूछत शिष्य प्रसंग पूछि शंका मति आनै।
तुम कहियत हो कौन मूढ़ तूं मोहि न जानै॥
किहि विधि जानौं तुमहिं देह के कृत मात देषै।
तो प्रभु देषौं कहा ज्ञान करि आशय पेषै॥
गुरु कहो ज्ञान ज्यौं मैं सुनौं सुनि करि निश्चय आनि है।
अब मैं प्रभु उर निश्चय कियौ तो सुन्दर कौ जानि है॥ ५६॥

है। अधिकारी हुए बिना तो शिष्य नहीं हो सकता। और योग्य सद्गुरु मिले बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसका एक प्रसंग है—ऐसा कहते हैं कि सुंदरदासजी के कुछ वेदांत के सवैये एक ज्ञान के पिपासावाले मनुष्य ने सुने तो वह तुरंत विरक्त हो गया। और ब्रह्म प्राप्ति के निमित्त मग्न हुआ सुंदरदासजी को ढूंढ़ता हुआ उनके पास फतहपुर आया, पंजाब के लाहोर शहर से चल कर। यहां फतहपुर में स्वामीजी की अत्यन्त उच्च अवस्था ज्ञान की और उनके शुद्ध आचरा

(२०) काया कुंडलिया *

काया गढ को राव थौ अहंकार बलवंड ।
सो लै अपनै वसि कियौ आतम बुद्धि प्रचंड ॥
आतम बुद्धि प्रचण्ड खंड नव फेरि दुहाई ।
मन इन्द्रिय गुण रैत आपने निकट बुलाई ॥
सब सौं ऐसैं कह्यौ बसौ तुम हमरी छाया ।
सुन्दर यौं गढ लियौ विषम होतौ गढ काया ॥ ५७ ॥

विचार देख कर उनका शिष्य हो गया और बहुत काल समीप रह कर ज्ञानमय भक्ति के आनन्द के रस को पान करता हुआ पंजाब की तरफ विचर गया । उसही बात की भूमिका पर यह रचना स्वामीजी की की हुई हो तो मानने योग्य है और ऐसा ही प्रतीत होता है । ऐसी प्रक्रिया और साधना वेदांत ग्रन्थों में बहुत उत्तम और विस्तार से लिखी हुई हैं और वेदांत के जिज्ञासु पुरुष उस प्रणाली से ज्ञान प्राप्त करके अद्वैत सिद्धि को पाते हैं—भगवान और गुरु कृपा के प्रताप से । वेदांत की "बृहतत्रयी"—वेदांत की "लघुत्रयी" । गोरखनाथजी—कबीरजी—दादूजी श्यामचरणदासजी आदि महात्माओं की वाणियां, सद्गुरु और सत्संग ।

* कुंडलिया के पहिले 'काया' शब्द संपादक का लगाया हुआ है क्योंकि इस कुंडलिया में काया का वर्णन है ।

(५७) (कुंडलिया)बलवंड=निजबल के घमंड में मदमत्त । आत्मबुद्धि=आत्मज्ञान—ब्रह्मज्ञान । खंड नव=इस शरीर में सकल सृष्टि सूक्ष्मरूप से मानी हैं । और यह नवद्वारका महानगर है । दुहाई=डोंडी राजा के हुक्म की । रैत=रइयत, प्रजा । छाया=छत्रछाया, आधीनता में । विषम=दुर्घट, दुर्दम, कठिनता से प्राप्त होनेवाला । अहंकाररूपी राजा को ब्रह्मानन्द राजा ने जीत कर काया गढ़ को अपने आधीन कर लिया । अहंकार पर विजय पाते ही मन और इन्द्रिय तथा विषयादि भी आधीन हो गये ।

(२१) अथ संस्कृत श्लोकाः

छंद शार्दूलविक्रीडितं

माधुर्योत्तर-सुन्दरां मम गिरां गोविन्दसम्बन्धिनीम्।
यो नित्यं श्रवणं करोति सततं स मानवो मोदते ॥
न्यूनाधिक्य विलोक्य पण्डितजनो दोषं च दूरी कुरु।
मे चापल्यसुबालबुद्धि कथितं जानाति नारायणः ॥१॥
पृथ्वीवारिचतेजवायुगगनं शब्दादि तन्मात्रकम्।
बाह्याभ्यन्तरज्ञानकर्मकरणैर्नाना हि यद्दृश्यते ॥
तत्सर्वं श्रुतिवाक्यजालकथितं अन्ते च मायामृषा।
एकं ब्रह्म विराजते च सततं आनन्दसच्चिन्मयम् ॥२॥

श्लोक १—माधुर्योत्तर=अत्यन्त मधुर। माधुर्यगुण जिसमें अत्यधिक हो। गिरा=वाणी, रचना। मोदते=मोद में भरता है। प्रसन्न हो जाता है। चापल्य=चपलता। भावार्थ=मेरी वाणी (रचना) भगवत्संबन्ध की (शांतरस-प्रधान) है। जो अत्यन्त ही मीठी है और सुंदर है। जो पुरुष इसे नित्य ही सुनता है वह आनन्द (ब्रह्मानन्द) पाता है। पंडित जन इसमें कमी वेशी को देखकर जो कुछ दोष दीखें उसे दूर कर लें—सुधार लें। मेरी तो यह बालबुद्धि और चपलता से की हुई वा कही हुई रचना है। इस बात को ईश्वर ही जानता है (अर्थात् मैंने तो परमात्मतत्व सम्बन्धी वाणी कही है। इसको भगवान परमात्मा जानता है कि कैसी बनी। बुरीभली सब उसको अर्पण है। अथवा मुझे लोग बड़ा महात्मा और कवि भले ही मानें, वास्तव में भगवान के सामने मेरी यह केवल बाललीला और अविनय मात्र है। जिसके लिए भगवान क्षमा करेंगे।)

श्लोक २—पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा और आकाश पांच तत्व, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच तन्मात्राएं, बाहर भीतर ज्ञानेन्द्रिय तथा अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) तथा ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां (हस्त, पाद,

छंद अनुष्टुप्

अहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेत्यहं ब्रह्मेति निश्चयम्।
ज्ञाता ज्ञेयं भवेदेकं द्विधा भावविवर्जितम्॥ ३॥
अहं विख्यात चैतन्यं देहो नाहं जडात्मकम्।
जडाजडो न सम्बन्धो देहातीतं निरामयम्॥ ४॥

छंद भुजंगप्रयातं

न वेदो न तन्त्रं न दीक्षा न मन्त्रं, न शिक्षा न शिष्यो न आयुर्न यन्त्रं।
न माता न ताता न बन्धुर्न गोत्रं, नमस्ते नमस्ते नमस्ते विचित्रम्॥ ५॥

वाक् उपस्थ और मेढ़) से जो स्थूल सूक्ष्म रूपों में नाना पदार्थ और कर्म दिखाई देते वा ज्ञात होते हैं, ये सब सुनने और कहने के जाल मात्र हैं, नाम रूपात्मक जगत् सारा का सारा ही मिथ्या झूठी माया ही है। वस्तुतः एक ब्रह्म सत्-चित-आनन्द स्वरूप ही विराजता है वा सर्वोत्कृष्ट परमपवित्र सर्वशुद्ध ही सच्चा है और कुछ नहीं है।

श्लोक ३—निश्चय यही है कि मैं (मेरी आत्मा) ब्रह्म है, मैं (मेरी आत्मा) ब्रह्म है, मेरी आत्मा ब्रह्म है। ज्ञाता (जाननेवाला) और ज्ञेय (जो जाना जाय विषय पदार्थ) वे दोनों एक ही हैं, भिन्न नहीं हैं, दिव्यज्ञान होने की दशा में वे एक ही हो जाते हैं। और द्विधाभाव—द्वैत—ब्रह्म और माया—मैं और तू—ज्ञाता और ज्ञेय—ऐसा द्वैतभाव मिट जाता है।

श्लोक ४—मैं (आत्मा) विख्यात चेतनस्वरूप (ब्रह्म) हूं। जड़ात्मक देह (स्थूल) नहीं हूं—अर्थात् देह में आत्मा का अध्यास करना अज्ञान है। जड़ के साथ चेतन का सत्य सम्बन्ध नहीं है—अर्थात् जो जड़ है सो चेतन नहीं, और चेतन है सो जड़ नहीं। वस्तुतः जड़ सब मिथ्या भ्रम है— जो कुछ है सो चेतन वा उसकी सत्ता ही है—क्योंकि वह चेतन निरामय (निर्लेप—निरंजन) मायातीत देह (जड़) से भिन्न है। देखो ब्रह्मसूत्र पर शंकर भाष्य का उपोद्घात—"युष्मदस्मद्..."।

श्लोक ५—जो न वेद है, न तंत्रशास्त्र है, न दीक्षा (गुरुवाक्य) है, न मंत्र

छंद अनुष्टुप्

त्र ई जी च त्रिधा प्रोक्तं चि मा अ वै त्रिधास्तथा।
चि त्र मा ई अजिज्ञातुं सत्सा स सा ससाश्रिता ॥ ६ ॥

(२२) अथ देशाटन के सवैया *

इन्दव छन्द

लोग मलीन परे चरकीन दया करि हीन लै जीव संघारत।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य रु सूदर चारुहि वर्ण के मंछ बघारत ॥

है, न शिक्षा है, न शिष्य है, न आयु (काल) है, न यंत्र (ज्ञान और कर्म की सामग्री) है। न माता है, न पिता है, न बन्धु है, न गोत्र है। उस अद्भुत ज्ञानातीत (परमात्मा) को नमस्कार है, नमस्कार है ॥ (सुंदरदासजी ने अन्यत्र भी ऐसा वर्णन किया है।)।

श्लोक ६—त्र=ब्रह्म। ई=ईश्वर। जी=जीव। ये तीनों त्रिधा पृथक् २ कहे हैं। चि=चित्। मा=माया। अ=अविद्या। ये भी त्रिधा पृथक् २ तीन कहे हैं। परन्तु इन छहों (ब्रह्म-ईश्वर-जीव-चित्-माया और अविद्या) को यथार्थ तत्वतः तत्वज्ञान से जानने के लिए (सत्सा) सच्छास्त्रों (स) सत्संग (सा) साधुजनों (स) सत्य (सा) साम्य [अर्थात् समदर्शीभाव— "शुनिचैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः" (गीता)] वा साधन अथवा (स) समता (उक्त ही) को आश्रित करैं। अर्थात् उनको ठीक २ जानने के निमित्त इन साधनों का अवलम्बन करना पड़ता है। इनके बिना दिव्य वा सत्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥

इन श्लोकों में बहुत उत्तम पदार्थ भरे हैं। परन्तु स्थानाभाव से विस्तार से व्याख्या नहीं दी जा सकती है। विद्वान आप प्रयास करके विशेष विवरण ढूंढ़ निकालैं ॥ इति ॥

कारो है अंग सिंदूर की मांग सु संपनि रांड ज़ुरे हग फारत।
ताहितें जांनि कही जन सुन्दर पूरब देस न संत पधारत ॥ १ ॥
दया नहिं लेस रु लील के भेप रु ऊभसै केसन रांड कुलच्छन।
रांधत प्याज विगारत नाज न आवत लाज करै सब भच्छन॥
बैठिये पास तौ आवत वास सु सुंदरदास तजौ न ततच्छन।
लोग कठोर फिरैं जैसें ढोर सु संत सिधार करैं कहा दच्छन॥ २॥
बात तहां की सुनी श्रवनौं हम रीति पछांह की दूरितें जांनी।
बोलि विकार लगै नहिं नींकी असाडे तुसाडे करै षतरांनी॥
काहु की छौंति न मानत कोउ जी भट्ठदी रोटी रु खूहदा पानी।
सुंदरदास करै कहा जाइकै संग तें होइ जु बुद्धि की हानी॥ ३॥
हिक्क लाहोरदा नीर भी उत्तम हिक्क लाहोरदा बाग सिराहे।
हिक्क लाहोरदा चीर भी उत्तम हिक्क लाहोरदा मेवा सिराहे॥

---

* इन सवैयों का नाम 'दशों दिशा के दोहे' भी लिखा देखा गया। परन्तु यह नाम ठीक नहीं। जो नाम ऊपर दिया वही समीचीन और संगत है। स्वामी सुंदरदासजी ने देशाटन बहुत किया था और अपने अनुभव का लेशमात्र मनोरंजक चमत्कृत भाषा में, अपने शिष्यों के ज्ञान वा मोद के अर्थ, इन दश सवैयों में कहा है। यदि वे अपने भ्रमण का सारा वृतान्त भलीभांति लिखते तो सबको बहुत लाभ होता। और कुछ पत्रे इस सम्बन्ध के थे भी वे नष्ट हो गये वा अप्राप्त हैं। ऐसा महंत गंगारामजी से ज्ञात हुआ था। इन सवैयों में (१) पूर्व देश (२) दक्षिण देश (३) पंजाब (४) लाहौर (५) गुजरात (६) मारवाड़ (७) मालवा (८) कुरसाना (९) फतहपुर (१०) उत्तर देश—इतनों के नाम आये हैं। लाहोर, मालवा, कुरसाना, और उत्तर देश की प्रशंसा की है। अन्य देश अप्रिय लगे थे। (१) खरे चरकीन=खड़े २ मल त्यागते हैं, प्रायः जल में ही। मंछ बघारत=मछली को पका कर खाते हैं। सिंदूर की मांग=पूर्व में स्त्रियां प्रायः सिंदूर की मांग (सीमंत) सौभाग्य चिन्ह की लगाती हैं। (२) वास=दुर्गंध। ततूच्छन=तत्क्षण, तुरंत।

(३) असाढे=हमारा। तुसाढे=तुम्हारा। खतरांनी=पंजाब में खत्री अधिक हैं। भट्ठदी=तन्दूर की (बनी रोटी)। खूहदा=कुए का (निकला पानी) यह वर्णन सुंदरदासजी की प्रथम यात्रा का है जब वे पंजाब में गये थे।

हिक लाहोरदे हैं बिरही जन हिक्क लाहोरदे सेवग भाये।
    कितइक बात भली लाहोरदी ताहितैं सुंदर देपनैं आये ॥ ४ ॥
औरतौ देस भले सब ही हम देपि भया गुजरात हू गांडी।
    आभत छोत अतीत सौ कीजै बिलाई रु कूकर चाटत हांडी ॥
बिवेक बिचार कछू नहिं दीसत डोलत जूथ जहां तहां रांडी।
    सुंदरदास चलौ अब छांडिकै और रहोगे तौ होइगी भांडी ॥ ५ ॥
बृच्छ न नीर न उत्तम चीर सु देसन मैं गत देस है मारू।
    पांव मैं गोपरु भुर्ट गडै अरु आंपि मैं आइ परै उडि बारू ॥
राबरि छाछि पिवै सब कोइ जु ताहि तैं पाज रतंधुर न्हारू।
    सुंदरदास रहौ जिन बैठिकै बेगि करौ चलिबे कौ बिचारू ॥ ६ ॥
भूमि पवित्र हु लोग विचित्र हु राग रु रंग उठत्त वहींतें।
    उत्तम अन्न असन्न वसन्न प्रसन्न है मन्न जु षात तहींतें ॥
वृच्छ अनंत रु नीर वहंत सु सुंदर संत विराजै जहींतैं।
    नित्य सुकाल पडै न दुकाल सु, मालव देस भलौ सबहींतैं ॥ ७ ॥
पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन, देस बिदेस फिरे सब जाने।
    केतक द्यौस फतेपुर माहिं सु, केतक द्यौस रहे डिडवाने ॥
केतक द्यौस रहे गुजरात, उहांहु कछू नहिं आयौ है ठाने।
    सोच बिचारि कै सुंदरदास जु याहि तें आनि रहे कुरसाने ॥ ८ ॥

---

(४) हिक=एक। सिराहे=सराहिये, प्रशंसा कीजे। दा=का। बिरहीजन=परमात्मा के विरह में कातर वा मस्त। (५) गांडो=चूतिया, भोंदू। जूथ=यूथ, समूह, इकट्ठा। रांडो=स्त्रियां। भांडी=फज़ीहत, अपमान। (६) गत देश=गया-बीता मुल्क। मारू=मरुस्थल, मारवाड़ (जोधपुर बीकानेर, जैसलमेर इ०)। भुर्ट=भुरट, एक प्रकार का घास में छोटा कांटेदार फल। बारू=बालूरेत। रतंधू=रतौंधा, रात को नहीं सूझना। (एक क्षुद्र रोग है)। न्हारू=नहारवा, बाला। (७) उठत्त वहींतें=उस देश के नामी गवैये हैं। असन्न=असन, खाद्य पदार्थ। वसन्न=वसन, वस्त्र। खात तहीं तैं=वहां से लेकर, खरीद कर खाते पहनते हैं। (८) आयो है ठाने=ठान (स्थान) पर आया।

("फूहड़ नारि फतेपुर मांहीं" ।)

सुचि अचार कछू न विचारत मास छठैं कबहूंक सन्हांहीं ।
मंड पुजावत वार परैं गिर ते सब आटे मैं चोसनि जांहीं ॥
बेटी रु बेटन कौ मल धोवत वैसेंहिं हाथन सौं अँन पांहीं ।
सुन्दरदास उदास भयो मन फूहड़ नारि फतेपुर मांहीं ॥ ९ ॥
कंद रु मूल भले फल फूल सुरस्सरि कूल बने जु पवित्तर ।
आधि न व्याधि उपाधि नहीं कछु तारि लगें तें टरैं जु मनत्तर ॥
ज्ञान प्रकास सदाइ निवास सु सुन्दरदास तिरै भव दुस्तर ।
गोरखनाथ सराहि हैं जाहि जु जोग कै जोग भली दिस उत्तर ॥१०॥

। इति देशाटन के सवैया ।

॥ २३ ॥ अथ अंत समय की साखी ॥

निरालम्ब निर्वासना इच्छाचारी येह ।
संस्कार पवन हि फिरै शुष्कपर्ण ज्यौं देह ॥ १ ॥*
जीवन मुक्त सदेह तूं लिप्त न कबहूं होइ ।
तौ कौं सोई जानि है तब समान जे कोइ ॥ २ ॥

अर्थात् स्थिति हुई । (वहां अधिक नहीं ठहर सके) । फतहपुर में कुछ वर्षों रह कर रामत को चलेगये । कई वर्षों पीछे आकर स्थिर बसे । कुरसाने=मारवाड़ में एक गांव है । यहां असेंतक ठहरे रहे । यहां का प्रसंग और जलवायु हितकर और प्रिय रहा । अनेक ग्रन्थों की रचना यहीं हुई । (९) फूहड़नारि=फतहपुर में भिक्षान्न यथारुचि न मिलने पर महात्मा ने अपने हृदय की अप्रसन्नता को यथार्थ कह दी है ।
(१०) गोरखनाथ सराहि है=महात्मा सिद्ध गोरक्षनाथजी ने भी उत्तराध (हिमालय प्रदेश) को योग और तप साधना के योग्य बताकर प्रसन्नता प्रगट की है ॥

* यह दोहा ऊपर भी अन्यत्र आ चुका है ।

अंत समय की साखी—यह=यह आतमा । निरालंब=स्वतंत्र, किसी के आश्रित नहीं । निर्वासना=वासना (कामादिक विषयों में मन की लालसा) से रहित ।

मानि लिये अंतहकरण जे इन्द्रिनि के भोग।
सुन्दर न्यारो आतमा लग्यो देह कौं रोग॥ ३॥
वैद हमारै रामजी औषधि हू है राम।
सुन्दर यहै उपाइ अब सुमिरन आठौं जाम॥ ४॥
सात वरस सौ मैं घटै इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है देह पेह की पेह॥ ५॥
सुन्दर संसै को नहीं बड़ो महोच्छव येह।
आतम परमातम मिले रहौ कि बिनसौ देह॥ ६॥

॥ इति फुटकर काव्य संग्रह समाप्त ॥ ६ ॥

॥ इति श्रीस्वामी सुंदरदास विरचित समस्त सुंदर ग्रंथावली सम्पूर्णम् ॥

॥ शुभम् ॥

परन्तु यह देह (स्थूल, जड़) कर्मफल संस्कारों के बल रूपी वायु से सूखे पत्ते की तरह जन्मान्तर प्राप्त करती रहती है। आत्मा निर्विकार है। देह विकारवान् है। जे इन्द्रिन के भोग ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के जितने भी सुख दुःखादिमय भोग हैं वे अंतःकरण तक ही प्रभाव डालते हैं, आत्मा में उनका कोई संसर्ग मात्र भी नहीं होता। आत्मा अलिप्त है। जो रोग है सो इस शरीर ही में है, आत्मा में नहीं है। सुंदरदासजी वर्षीयान् ९३ वर्ष के थे—निर्बलता का ही रोग था। पेह=मिट्टी, मृतिका। को नहीं=काई नहीं, कुछ नहीं। आतम परमातम मिले, महात्मा सुंदरदासजी जीवन्मुक्त थे। उनको ब्रह्मानंद मिल चुका था॥ इति॥

"फुटकर काव्य संग्रह" की छंद संख्या सब इस प्रकार है—चौबोला=१७+ गूढार्थ=२२+आद्यक्षरी से मध्याक्षरी तक=३०+चित्रकाव्य के १९+कविता और गणागण के=७+संख्या वर्णन से बारह राशि के छंदतक=१०+छप्पय एकादशी से अंत समय की साखीतक=४४। यों १४९ छंद हैं।

॥ इति श्री सुन्दरग्रन्थावली की सुन्दरानन्दी टीका समाप्त ॥॥

ॐ तत्सत्
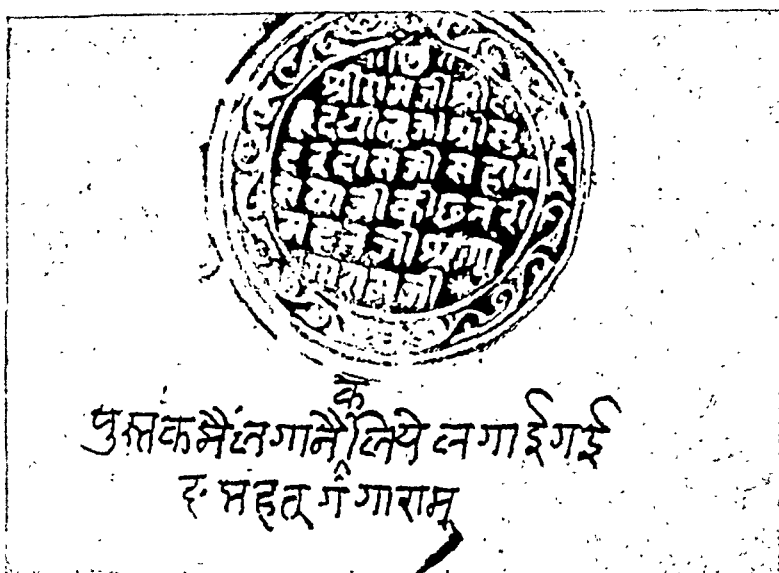
महंत गंगारामजी की मुहर

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता।

परिशिष्ट

"सवैया" ग्रन्थ के छंदों की अनुक्रमणिका

[संकेत—जिन पर उलटी सुलटी कामां लगी हैं वे प्रायः अंत्यपादार्ध हैं।]

शुद्धिपत्र

(३) सवैया (सुन्दर विलास)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८५		२	कोउ	कौ
३८७		८	शोभत	शोभित
३८९		१	आषिर	अषिर
३९९		५	चरनूं	चरमूं
३९९		१९	हुं	हूं
४००		४	आपुनि	आपुनी
४०१	टीका	२	हंत	दंत
४०३	मूल	३	तोनौं	तीनौं
४०४		८	दोगज	दोजग
४११		३	ऐसौंहि	ऐसैंहि
४१२		४	अपने	अपने
४१२		१७	मेरौ	मेरै
४१३		१४	धस्यौ	धस्यौ
४१८		७	विकम	विकर्म
४२४		३	अघं है	अघै है
४२५		१०	दूध	दूध
४३१		४	जतक	जेतक
४३४		५	ताकों नाह	ताकौं नहिं
४३४	टीका	१	(१२)	(११)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३५		१५	अपने	अनेक
४३७		४	वारस	वा रस
४४१		२	त्यौं	ज्यौं
४४१		५	कं	कैं
४४१		१०	काटत	काठत
४४५		१४	कोई	जोई
४४६		१	नंकु	नैंकु
४५०		६	फेरि	फेरी
४६०		६	करं	करैं
४६०	टीका	४	बिल्व बिल्व के आगे से बिल्वकेश्वर, नील पर्वत कनखल, हरिद्वार पढ़ कर बिल्व गङ्गयो आदिक पढ़ैं।	
४६५		१६	मकरी	मछरी
४६८		१०	आंक	आक
४७५		८	वूठि	वूढि
४७५	टीका	८	पक्ष	पद्म
४७६	,,	१	संघारौ	संवारौ
४७८	मूल	१	प्रिय	पिय
४७९		१३	वंन	वैंन
४७९		१३	संन	सैंन
४८०		१३	जज	जजै
४८७		५	वीतै	वीचै
४८९		५	सथ	साथ
४८९		१५	पुि।	पुनि

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६०		७	रिङ्गा	रङ्गा
४६१		३	क्षद्र	क्षुद्र
४६२		५	वश्य	वैश्य
४६२		६	छह	छांह
४६२		१२	अबर	अंबर
४६७		२	कीजिये	दीजिये
५७७		३	लागौ	लागै
५८६		१५	हात	हाथ
६४०		३	चूच	चुंच
६४२	टीका	८	६	८
६४६	"	२	के आगे छपने से रह गया।	इसका आख्यान साधु रामदासजी दूबलधनियां ने यों बताया है कि—

(४) साषी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६६	२	बिल	बिलै
६६८	२	कं	कैं
६६५	१२	सुन्द	सुन्दर
६६६	३	सुन्द	सुन्दर
७०५	१	ब्रह्म	ब्रह्मा
७०६	४	पांडुवा	पंडुवा
७११	१२	होइ	कोइ
७२७	७	है लुभइ	रहै लुभाइ
७३५	६	गये	भये
७६२	७	धौले	धौले

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७७२		२६	ऐस	ऐसैं
७७६		६	हात	होत
८०७		२	तृप्त	तृप्त
८०७		४	सांधै	साधे
८११		१०	वंघन	वंधन
८१२		१२	हस	हसै
८१२		१६	कम	कर्म
८१६		८	सुददर	सुन्दर
८१६		१२	काइ	कोइ

(५) (पद भजन)

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८२१		३	दूत	दूध
८२६		१०	वरे	वारे
८३२		५	विचारा	विचारा रे
८३२		६	नहीं	नाहीं
८३३		१	मथुन	मैथुन
८३४		७।८	वी। वी	धी। धी
८३४		१०	गुप्ता	गुप्त
८४१		२	भ्र दूरि सब मकरिये	भ्रम सब दूरि करिये
८४५		३	पसा	पासा
८४७		७	संसुझावैं	संमुझावैं
८४७		१५	सुन्न	सुन्दर
८६१		१२	दासिन	दासनि
८७०		४	निं	तिन
८७६		११	सीवैं	सोवैं

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८७९		८	(टक)	(टेक)
८८९		१५	मांते	मांने
९०२		१७	तहां	तहं
९३७		२	रूप ममेदं	रूप मभेदं

(६) फुटकर काव्य

पृष्ठ	मूल	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७०	टीका	४	६।१३।	६।१।
९७२		११	तारक	तारक
९७६		१	कका	कक्का
९७८		२	दिशि	दिशा
९८७		३	नरक	गरक
९८९		८	वश्य	वैश्य
९८९		१५	निमल	निर्मल
९८९		१६	अतात	अतीत
९९२		५	लंका	लंक
१००२			शादूल	शार्दूल